काल-चक्र

मूल लेखक

चुन्नीलाल मडिया

अनुवादक

श्याम् संन्यासी

प्रकाशक

कृष्णा ब्रदर्स, कचहरी रोड, अजमेर

KAL CHAKRA

(Novel)

Chunnilal Madia

Translated by

Shayamu Sanyasi

Rs. Eighteen only

प्रकाशक :

जयकृष्ण अग्रवाल

कृष्णा ब्रदर्स

कचहरी रोड, अजमेर ।

मूल्य : अट्ठारह रुपया

मुद्रक :

एच० सी० कपूर

टाइम्स प्रिन्टिग प्रेस, ब्रह्मपुरी अजमेर ।

लेखकीय

गुजराती 'जनशक्ति' दैनिक के सम्पादक श्री रविशंकर वि० मेहता ने जब अपने पत्र के लिए धारावाहिक रूप से प्रकाशनार्थ उपन्यास की माँग की तो मुझे कल्पना भी न थी कि प्रति सप्ताह एक किस्त लिखकर देना कितना मुश्किल काम है। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि चित्रकार ने चित्र बना दिये, फोरमैन ने उन्हें पेज में लगा भी दिया और तब किस्त लिखी गयी। फिर भी पाठकों ने इसे पसन्द किया, सराहा—इसे मैं अपने लेखन-श्रम की सार्थकता मानता हूँ।

सुप्रसिद्ध सिने-निर्माता श्री सोहराब मोदी ने इस उपन्यास पर "समय बड़ा बलवान" नाम से हिंदी मे फिल्म बनाने का निश्चय किया है, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

—चुन्नीलाल मडिया

लेखक और कृति

बहुचर्चित गुजराती उपन्यास 'वेला-वेलानी छांयडी' के हिन्दी अनुवाद 'कालचक्र' के प्रकाशन के समय, इसके लेखक, स्वर्गीय श्री चुन्नीलाल मडिया की याद आना स्वाभाविक है।

चुन्नी भाई से मेरा परिचय, बम्बई में, एक दिन, सुप्रसिद्ध प्रकाशन संस्था, वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड के कार्यालय में, अकस्मात् ही हो गया। उन दिनों वे युनाइटेड स्टेट्स इन्फरमेशन सर्विस के बम्बई-स्थित गुजराती-मराठी विभाग के अध्यक्ष थे; और अमरीका के दौरे से हाल में ही लौटे थे। मैने उनकी कुछ कहानियाँ और नाटक पढ़े थे, और उनकी लेखनी का कायल था। वह भी मेरा नाम सुन चुके थे। परिचय के साथ ही, हम दोनों एक-दूसरे के बहुत निकट आगये।

मुझे कहीं मिलने के लिए जाना था, समय निश्चित हो चुका था और बातों में समय बीता जा रहा था। श्री मडिया ने इस बात का बराबर खयाल रखा, और बम्बई की व्यस्त सड़क पर मेरे लिए टैक्सी जुटा दी। चुन्नीलाल मडिया नामक लेखक का कायल तो मैं था ही, अब व्यक्ति और मानव मडिया का कायल भी हो गया।

शायद उसी शाम या दूसरी शाम के लिए उन्होंने मुझे अपने यहाँ आमन्त्रित किया था। मैं गया। उनकी पत्नी, दक्षा बहिन और बच्चों से परिचय हुआ और गुजराती कथा-साहित्य, लेखन की समस्याएँ आदि पर देर तक बातचीत होती रही।

चुन्नी भाई का बड़ा आग्रह था कि मैं उनके उपन्यासों का हिन्दी में अनुवाद करूं। उन्होंने एक उपन्यास मुझे उसी वक्त दे भी दिया। उनका विश्वास था कि उनका गुजराती प्रकाशक हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन के लिए तैयार हो जायगा। मैंने उस उपन्यास का अनुवाद शुरू कर दिया था कि पता चला, गुजराती प्रकाशक हिन्दी प्रकाशन के लिए राज़ी नहीं है। काम वहीं छोड़ देना पड़ा।

लेकिन उस उपन्यास ने मुझे बहुत प्रभावित किया। फिर तो मैंने मडिया के सभी उपन्यास और नाटक मँगा कर पढ़े। सौराष्ट्र के जीवन का उनका चित्रण अद्भुत है, लेकिन उनका नाटककार प्रायः उनके कहानीकार और उपन्यासकार पर हावी हो जाता है, विशेष रूप से नाटकीय संवादों के सम्बन्ध में—हर उपन्यास को पढ़ कर मेरी यह राय दृढ होती गयी।

मडिया से पत्र-व्यवहार होता रहा, बम्बई जाने पर मुलाकात भी होती रही और हम एक-दूसरे को अपनी-अपनी साहित्यिक गति-विधि से अवगत करते रहे।

और एक दिन, समाचारपत्रों में, पी० ई० एन० की कान्फ्रेंस से लौटते समय, अहमदाबाद स्टेशन पर हृदय-गति रुक जाने से चुन्नी भाई के, घर-परिवार से दूर, अकस्मात् मरने के समाचार पढ़कर मैं स्तम्भित रह गया!

उनके जीवन-काल में तो उनकी कृतियाँ हिन्दी में प्रकाशित होने की अभिलाषा पूर्ण न हो सकी। अब पहली कृति हिन्दी में आ रही है और आशा है कि और भी कृतियाँ हिन्दी में प्रकाशित होंगी।

मडिया ने पचासेक के करीब पुस्तकें लिखीं, जिनमें १३-१४ तो उपन्यास ही हैं।

यह उपन्यास

मडिया का यह उपन्यास आज से ७०-७५ वर्ष पहले के सौराष्ट्र के जीवन, जनता और सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित है। लेखक

ने उस युग के मानव की नियति के चित्रण और आलेखन के लिए काफी बड़ा फलक चुना है। ठेठ सोरठी रंग को पूरी तरह सुरक्षित रखा गया है। अंगरेजियत का प्रवेश अभी हो ही रहा था, भारतीय सस्कृति का उत्स तब सूखने नहीं पाया था। जीवन की हार-जीत और व्यापार-व्यवसाय के हानि-लाभ में व्यक्ति अपने आपे को बनाये रखना जानता था।

व्यक्ति और उसके परिवेश के सूक्ष्मतम निरीक्षण और चित्रण की मडिया की विशेषता के इस उपन्यास मे भी दर्शन होते हैं। पौन सदी पहले की रेल गाड़ी, उसका स्टेशन, प्लैटफार्म पर पानी पिलाने वाली बुढ़िया, राजकोट के सड़क-रास्ते, ग्रामीण जनों और व्यापारियों की संकुचित मनःस्थितियाँ, उदारता और कृपणता, आशा और निराशा, हास और रुदन, यहाँ तक कि तीसरे दिन आने वाला डाकिया भी लेखक का कला-स्पर्श पाकर सजीवन हो गया है।

अपने पात्रों को प्राणपूरित और जीवित पुरुष बनाने या चित्रित करने की मडिया की क्षमता प्रशंसनीय है। ओतमचन्द-जैसा साधु पुरुष, कीला कामदार या कंघी वाला-जैसा अलमस्त दार्शनिक जीव, एथल आयर और हीरी अहीरिन-जैसे शुद्ध भारतीय अथवा सोरठी ग्रामीण जन और दकुमाई, समरथ, मकनजी मुनीम-जैसे दुष्ट जन—सभी अपनी जगह और अपनी भूमिका में स्वाभाविक लगते हैं।

पूरे उपन्यास में चम्पा और नरोत्तम के प्रेम की—भारतीय जीवन के परम्परागत प्रेम की कहानी एक सूत्र की तरह चलती है। इसमें लेखक ने बड़े ही संयम से काम लिया है, क्योंकि ७०-७५ वर्ष पहले के जीवन में उच्छृंखलता की कहीं गुंजाइश नहीं थी। उस समय वाग्दान के बाद ही प्रेम प्रस्फुटित होता था और आर्थिक उतार-चढ़ाव के साथ उसमें परिवर्तन भी हो जाया करते थे।

कहानी में एक और प्रेम-प्रकरण कीला कंघी वाला और मीठी बाई स्वामी का है, जो अपनी मर्यादा, पावनता और विवशता का अलग ही रंग लिये हुए है।

व्यंग्य—तीखा और तिलमिलाने वाला व्यंग्य लिखने में भी मडिया सिद्धहस्त हैं। उपन्यास में कई प्रसंगों और चरित्रों के माध्यम से परिष्कृत व्यंग्य की सृष्टि की गई है।

लेकिन उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता उसके स्थानीय रंग और स्थानीय बोली अथवा क्षेत्रीय शब्दों के प्रयोग में है। अनुवाद में इन विशेषताओं को अक्षुण्ण रखने का पूरा प्रयत्न किया गया है।

श्यामू सन्यासी

...........A writer should create living people; people, not characters. A character is a caricature. If writer can make people live there may be no great characters in his book, but it is possible that his book will remain as a whole, as an entity...........

—Ernest Hemingway

× × ×

देख गुलशन की तरफ़, देख ज़रा लुत्फ़े बहार,
रक्स करना है तो फिर पॉव की ज़ंजीर न देख ।

'मज़रूह' सुलतानपुरी

× × ×

न फिर हम न अफसानागो शबे ग़म.
सहर तक है क़िस्सा तमाम अपना-अपना ।

'शाद' अजीमाबादी

× × ×

A novel is great and good in direct proportion to the illusion it gives of life and a sense of living. It is great in direct proportion to the degree it enfolds the reader and permits him to walk in imagination with the people of an artificial but very real world, sharing their joys and sorrows, understanding their perplexities........

—John P. Marquand

क्रम

कालचक्र

हे अलक्ष्मी, रुक्षकेशी, तुमि देवी अचंचला;
तोमार रीति सरल अति, नाहि जान छलकला।

—रवि ठाकुर

श्री चुन्नीलाल मडिया के बहुप्रशंसित गुजराती उपन्यास 'वेला वेलानी छांयडी' का यह हिन्दी अनुवाद 'कालचक्र' के नाम से जब प्रकाशित हो रहा है तो दैव दुर्विपाक से श्री मडिया हमारे बीच नहीं रहे ! हृदय-गति रुक जाने से उनकी आकस्मिक मृत्यु हुए काफी समय गुजर गया !

१

घोड़ागाड़ी के घुँघरू

वाघणिया गाँव के सीमान्त में इस समय ओतमचन्द सेठ की घोड़ागाड़ी के घुँघरू बज रहे थे। वाघणिया से अमरगढ़ स्टेशन तक का बैलगाड़ी का कच्चा रास्ता घोड़े की टापों और गाड़ी के घुँघरुओं से गूँज उठा था।

वैसे और दिन इस रास्ते से इक्की-दुक्की बैलगाडी, दो-चार पैदल किसान अथवा मुसाफिर, सरकारी 'बंडल' ले जाने वाला घुड़सवार और डाक विभाग का पैदल हलकारा भले ही गुजर जाये, बाकी तो यहाँ आमतौर पर सन्नाटा ही छाया रहता था। कभी किसी चरवाहे बालक की बाँसुरी की दर्द भरी तान, किसी भटकी हुई गाय के रँभाने की आवाज या गायों के समूह के साथ रहने वाले साँड के डकराने के स्वर के अतिरिक्त यह सारा हलका मानो सोया पड़ा रहता था।

लेकिन इस समय ऊँची नस्ल के घोड़े की टापों की आवाज़ दिशाओं को गुँजा रही थी और एक-एक बालिश्त गहरी धूल वाले कच्चे रास्ते पर घोड़े की टापों से गर्द के बादल उड़ रहे थे।

सिर तक ऊँचे उठते बगूलों में से धूल के महीन रजकण उड़-उड़ कर घोड़ा गाड़ी के अन्दर जा रहे थे और पांचेक बरस की उम्र के एक बालक की आँखों में भर रहे थे। लेकिन वह बालक घोड़ा गाड़ी की सैर का इतना शौकीन और इस समय रास्ते के दोनों ओर फैले हुए हरियाले खेतों की शोभा को देखने में इतना तल्लीन था कि धूल के

बगूलों और आँखों में घुसने वाले रजकणों की उसे कोई परवाह नहीं थी।

"काका, काका, वह जो जा रहा है न, उसे क्या कहते हैं?" खेत में तेजी से भागते हुए एक चौपाये को अँगुली से दिखलाते हुए उस किशोर ने गाड़ी के अन्दर बैठे एक वयस्क से सवाल किया।

"वह हिरन कहलाता है..." चाचा ने बिल्कुल सीधे-सादे ढंग से जवाब दे दिया।

गाड़ी के भीतर चाचा और भतीजा तो इस तरह की बात कर रहे थे और कोचवान वशराम अगली बैठक पर बैठा, मस्त होकर, अपने मन पसन्द नाटक के एक गीत की तान छेड़ रहा था :

सुनो दिल्ली के तखतधारी,
क्षत्री बदनामी क्यों लेगा रे....
मेरे घर है पतिव्रता नारी,
क्षत्री बदनामी क्यों लेगा रे

"काका, मैं भी गाड़ी चलाऊँगा।" सहसा बालक ज़िद करने लगा।

चाचा ने समझाया : "अच्छे बेटे गाड़ी नहीं चलाते। गिर जाओगे।"

"नहीं, गिरूँगा नहीं। मैं तो गाड़ी चलाऊँगा।" बालक 'ऊँ-ऊँ' के अभिनय के साथ ज़िद करता रहा।

वशराम ने अपने प्रिय गीत को अधूरा छोड़ दिया और बोला : "छोटे मालिक, बटुक भैया को रुलाओ मत! उन्हें मेरी गोद में आ जाने दो। थोड़ी देर लगाम पकड़े रहेंगे तो उनकी ज़िद पूरी हो जायेगी।"

गाड़ी थोड़ी देर के लिए रुकी। वशराम ने पीछे की ओर मुड़कर बटुक को थाम लिया और "आओ, बटुक भैया, गाड़ी चलाओ!" कहते हुए उसे स्नेह पूर्वक अपनी गोद में बिठा लिया।

बटुक खुश हो गया। उसके नन्हें से हाथों में वशराम ने घोड़े की

लगाम थमाने का दिखावा किया; और गाड़ी पुन: अमरगढ़ स्टेशन के रास्ते तेज़ी से भाग चली।

धूल भरे रास्ते पर घोड़े की टापों की धंसती हुई आवाज और उसके गले में बँधे हुए घुँघरुओं की तेज़ झनकार को सुनकर रास्ते के दोनो ओर के खेतों में काम करने वाले किसान थोड़ी देर के लिए अपना काम छोड़कर खेतों की मेढ़ों पर आ खड़े होते और उस राजसी वाहन को देख-देख क्षण-भर के लिए आनन्द, आश्चर्य और गर्व का अनुभव करने लगते थे। काठियावाड़ की धरती पर अभी "तेल की गाड़ी" अर्थात् मोटर का आगमन नहीं हुआ था। ओतमचन्द सेठ की यह फिटन गाड़ी थी, जिसे स्थानीय लोग 'फेटीन' कहते थे, अभी तक बड़ी-बड़ी रियासतों और गिने-चुने धनिकों के यहीं पहुँच पाई थी। बैलगाड़ी की सभ्यता में फिटन घोड़ागाड़ी या चार पहियेवाली बग्घी भी एक अजूबा ही थी।

इसीलिए इस अजूबे को देखने के लिए खेतों पर छाक-कलेवा ले जानेवाली किसान औरतें सिर पर रखी मटकी-छबड़ी को थामे खड़ी रह जाती थीं, और जगल से ईंधन बटोर कर लाने वाली वृद्धाएँ सिर का बोझ उतार हथेली से कपाल पर छाया कर बड़े कुतूहल से चार पहिये वाली इस नये ढंग की घोड़ागाड़ी का निरीक्षण करतीं और तब आपस में बतियाने लगती :

"यह तो वाघणिया वाले ओतमा सेठ की गाड़ी है·····"

"और वो भीतर में कोण बैठा था ?"

"वो तो ओतमा सेठ का छोटा भाई नरोत्तम है।"

"छोटा भाई ? वो ही जो दुकान में मसनद लगा के बैठे हैं ? छोटा बड़ा हो गया है।"

"बरस-दिन जाते क्या देर लगे हैं बहना ! बाप-भी तो बेचारे को इत्ता मुन्ना-सा छोड़ के सिधार गये थे। ओतमा सेठ ने ही छोटे भाई को पाल-पोस के बड़ा किया। भाई तो फिर भी सगा, माँ का जना था, परन्तु भौजाई तो लाख कहो, परायी जनी ही कही जावे है। मगर

धन्न है लाडकोर सेठानी, जिसने छोटे देवर को सगे, पेट जाये बेटे से भी सवाया मानकर पाला-पोसा। आज इस छोटे ने वेपार-बनिज और काम-धन्धे का सारा बोझ उठाकर बड़े भाई को निचिन्त कर दिया। इसको केवे है किस्मत !"

वशराम मस्त होकर गीत गा रहा था। उसकी गोद में बैठा बटुक उछल-उछलकर ऐसा सन्तोष अनुभव कर रहा था मानो घोड़े को वही हांक रहा हो। और नरोत्तम, थोड़ी ही देर में, ट्रेन से उतरने वाले अमरगढ़ के मेहमानों के विचारों मे तल्लीन हो रहा था।

रास्ते में पड़ने वाले किसी गाँव के छोर पर खेलने वाले नंग-धड़ंग बच्चों की शैतान टोली इस शानदार घोड़ागाड़ी को देखकर आनन्द से किलकारी लगाती; और कोई-कोई शरारती लड़का तो इस नई सवारी की सैर का मज़ा लूटने के लिए पीछे लटक भी जाता था।

बटुक के लिए आज का दिन बड़े आनन्द का था। ओतमचन्द सेठ ने जब से यह बग्घी ली थी, वशराम ने नन्हें बटुक को घोड़ा-गाड़ी और अपने-आप से भी इतना हिला लिया था कि नासमझ बालक सारा-सारा दिन गाड़ी में ही घूमा करता था। बाल-प्रेमी वशराम ने बटुक को गाड़ी में बैठने का ही नहीं, गाड़ी हाँकने का शौक भी लगा दिया था।

इसलिए घोड़े की लगाम पकड़कर ही बटुक को सन्तोष नहीं हुआ ! उसने जल्दी ही वशराम को हुक्म दिया : "चाबुक लाओ, चाबुक।"

बूढ़े वशराम ने अपने बच्चा मालिक को खुश करने के लिए उसके नन्हें हाथ में चाबुक थमा दिया।

अब तो बटुक और भी उल्लसित हो गया। "चल घोड़े, चल !" कहता हुआ वह घोड़े की पीठ पर सपासप चाबुक फटकारने लगा।

हाट-बाजार के काम से निकले हुए परिचित किसान गाड़ी हाँक रहे इस बालक को पहचान कर कह उठते : "कौन,बटुकभाई है न ?" और फिर प्रसन्न होकर तारीफ करते : "वाह बहादुर, वाह !"

कोई दलाल-गुमाश्ता रास्ते में मिलजाता तो पूछलेता : "क्यों नरोत्तम भैया, किधर ?"

नरोत्तम जवाब देता ! "मेंगणी वाले कपूर सेठ आ रहे हैं; उन्हें लेने स्टेशन जा रहा हूँ।"

"वास्तु-पूजा के निमित्त आते होंगे, क्यो ?"

"हाँ।"

"अच्छा भैया, अच्छा। मगर अब पहुँचने की जल्दी करो। आज गाड़ी सिर्फ ढ़ाई घण्टा 'लेट' है, स्टेशन पर पहुँची ही समझो।"

गाड़ी नियमानुसार ढ़ाई घण्टे "लेट" होगी, यह हिसाब लगाकर ही नरोत्तम वाघणिया से चला था। अब उसे यह आशका होने लगी कि अगर गाड़ी ढ़ाई घण्टे से अधिक 'लेट' न हुई तो सम्भव है चूक भी जाये। इसलिए उसने वशराम को हुक्म दिया :

"अब बटुक को गोद से उतार कर जरा रफ्तार बढ़ाओ। गाड़ी आ गयी और हम देर से पहुँचे तो कपूर सेठ को बुरा लगेगा।"

वशराम ने बेमन से बटुक के हाथ से लगाम ले ली। बटुक ने विरोध तो बहुत किया, लेकिन स्टेशन जल्दी पहुँचना भी बहुत जरूरी था। वशराम ने गाना बन्द कर दिया और घोड़े की रफ्तार तेज़।

"जगड़िया की सीमा में धुआं दिखाई देने लगा है।" नरोत्तम ने दूर पर दिखायी देती ट्रेन की ओर वशराम का ध्यान आकर्षित किया।

वशराम ने बटुक के हाथ से चाबुक लेकर सड़ासड़ घोड़े की पीठ पर मारा। घोड़ा गाड़ी लेकर उड़ चला ....

......साथ ही नरोत्तम के विचारों का चक्र भी पूरे वेग से घूमने लगा।

नरोत्तम सोच रहा था, कपूर सेठ को लिवा लाने के लिए भाईसाहब ने तो मकन जी मुनीम से कहा था, फिर ऐन वक्त पर भाभी ने मुनीम के बदले मुझे यह काम क्यों सौंप दिया ?

"काका, काका! कौआ!" गाड़ी में बैठा हुआ बटुक बोल उठा।

परन्तु इस समय उस नासमझ बालक को 'हां बेटा, कौआ !' जैसा औपचारिक उत्तर देने का अवकाश भी काका को कहां था ?

मितभाषिणी और सगी माँ से भी अधिक प्रेम करने वाली लाडकोर भाभी ने शायद ही कभी भाभी होने के नाते अपने इस प्यारे देवरके साथ हँसी-मज़ाक किया होगा ! लेकिन आज वाघणिया से रवाना होने के पहले भाभी ने नरोत्तम को पास बुलाकर, आँखें नचाते हुए, उसके कान मे धीमे से जो-कुछ कहा, उसे सुनकर नरोत्तम के कान के बूटे तक लाल हो गये थे। इस समय भी, भाभी के उस वाक्य को याद कर, गाड़ी में बैठा हुआ नरोत्तम किसी मुग्धा की तरह लज्जा, संकोच, क्षोभ और इस सबके परिणाम स्वरूप एक अनोखे आह्लाद का अनुभव करने लगा।

इस तरह के मिले-जुले अभूतपूर्व भावों की अनुभूति का कारण यह था कि वह अमरगढ़ स्टेशन पर उतरने वाले मेहमानों के सम्बन्ध में कल्पना के घोड़े दौड़ा रहा था।

"काका, वो जो पेड़ पर बैठा है, उसे क्या कहते हैं ?"

नासमझ बालक विचारों के मधुर जाल को बार-बार छिन्न-भिन्न किये दे रहा था; परन्तु कल्पना में मस्त नरोत्तम का इन बाधाओं की ओर जरा भी ध्यान नहीं था।

लेकिन बटुक तो मानों आज अपने चाचा के कल्पनाविहार में सतत विघ्न डालने का निश्चय करके ही बैठा था। जब मौखिक प्रश्नों का उत्तर न मिला तो उसने अपने दोनों हाथों से चाचा को झकझोरते हुए हुक्म दिया:

"काका, मेरी यह बाँसुरी खराब हो गयी। बजती ही नहीं। ठीक कर दो न।"

नरोत्तम को लाचार होकर कल्पना की उड़ान से धरती पर उतरना ही पड़ा। बटुक की बाँसुरी में फंसे कचरे को साफ करने के लिए फूंक मारते हुए नरोत्तम की निगाहें दूर से दिखाई दे रहे रेलवे सिगनल पर जा पड़ी और वह चिल्ला उठा :

७

"वशराम, वशराम ! वह देखो, सिगनल का हत्था गिरा दिया या है। गाड़ी आयी ही समझो। घोड़े को ज़रा तेज़ करो !"

वशराम ने फौरन घोड़े की पीठ पर चाबुक फटकारा। घोड़ा पहले ही भागा जा रहा था, अब हवा से बातें करने लगा।

लेकिन नरोत्तम को उसकी चाल फिर भी धीमी लग रही थी।

वशराम जानता था कि छोटे मालिक जल्दी से जल्दी अमरगढ़ स्टेशन पहुँचना चाहते हैं—ट्रेन से मेहमानों के उतरने से पहले ही वह स्टेशन पहुँच जाना चाहते हैं ताकि उन्हें फौरन घोड़ा गाड़ी में बिठाया जा सके। लेकिन जल्दी पहुँचने का असली कारण क्या था इसे तो केवल नरोत्तम ही जानता था।

२

जंगल में

अमरगढ़ स्टेशन पर अभी प्लेटफार्म नहीं बना था। खुले खेत में होकर एक पटरी चली गयी थी। उसी के बगल में इकहरे झोंपड़े जैसा छप्पर डाल दिया गया था। लोग-बाग इसी को स्टेशन मानकर सन्तोष कर लेते थे। इस क्षेत्र में दानवीर समझे जाने वाले ओतमचन्द सेठ ने यात्रियों की सुविधा के लिए 'ब्राह्मणिया पानी' की एक प्याऊ लगवा दी थी। इस प्याऊ के छप्पर तले एक बड़ी नांद और तीन-चार मटके पड़े रहते थे।

घुटे हुए सिर वाली एक बुढ़िया ब्राह्मणी ट्रेन के समय यात्रियों को पानी पिला दिया करती थी।

अमरगढ़ के आस-पास उससे लगे हुए गाँवों की संख्या अधिक होने के कारण और रात में उतरने वाले यात्रियों के ठहरने की कोई सुविधा न होने से ओतमचन्द सेठ ने स्टेशन से दो-एक खेत के फासले पर परती जमीन में एक कुआँ खुदवाकर लम्बा-सा ओसारा और कुछ कमरे बनवा दिये थे। इस 'धर्मशाला' की देख-माल का काम अलारखा नामक एक मकराणा चौकीदार को सौंपा गया था। इस सार्वजनिक जगह में गरीब-गुरबे, बाबा-साधु और अपंग-भिखारी आदि स्थायी रूप से डेरा डाले पड़े रहते थे। इधर कुछ दिनों से ओतमचन्द सेठ ने खुदा के इन बन्दों को एक वक्त खिचड़ी खिलाने का सदाव्रत भी खोल दिया था।

घोड़ा गाडी अभी स्टेशन से दूर ही थी कि उसके घुँघरूओं की आवाज़ सुनकर सबके कान खड़े हो गये। "शायद ओतमचन्द सेठ आये हैं!"

जैसे ही वशराम ने स्टेशन की सीढ़ियों के आगे गाड़ी को खड़ा किया, चारों ओर से लोगों ने उसे घेर लिया! उन लोगों में खुद स्टेशन मास्टर थे, प्याऊ पर बैठने वाली कंकू बुढ़िया थी, चौकीदार अलारखा था और थे कुछ निठल्ले कुतूहल प्रिय तमाशबीन। बड़े मालिक से कुछ दान-खैरात पाने की उम्मीद में दो-एक साधु-फकीर भी वहाँ आ पहुँचे थे।

लेकिन घोड़ा गाड़ी में ओतमचन्द सेठ के बदले छोटे मालिक और बटुक को देखकर सभी को निराशा हुई। यद्यपि एक लँगड़े भिखारी ने नरोत्तम को आशीर्वाद देकर बदले में 'एक पैसा दोगे बाबा?' की याचना भी की, लेकिन सामने से भक-भक करते गाड़ी के इजिन को सिगनल तक आया देख नरोत्तम बटुक को साथ लिये फौरन पटरियों के नजदीक पहुँच गया था।

पुराने माडल का, दो हाथ ऊँचे भोंगेवाला इंजिन छक-छक भक-भक करता हुआ जैसे ही समीप आया, नीचे खड़े देहाती यात्री बिदक कर कुछ कदम पीछे हट गये। गाड़ी रुकी और उसमें से मेंगणी-वाले कपूर सेठ नीचे उतरे। साथ में उनकी पत्नी सन्तोकबा बड़ी लड़की चम्पा और छोटी लड़की जसी भी उतरीं।

थोड़े से किसानों और बिना टिकट यात्रा करने वाले इक्के-दुक्के साधुओं को छोड़ आज ट्रेन से उतरने वाले खास यात्रियों में कपूर सेठ का परिवार ही उल्लेखनीय था। लोग उनकी ओर ऐसे आदर और अभ्यर्थना से देख रहे थे मानो राजा-महाराजा की सवारी आयी हो। खुद स्टेशन मास्टर फाटक पर खड़े होकर अन्य यात्रियों से टिकट लेने के बदले ओतमचन्द सेठ के मेहमानों की सेवा में आ खड़ा हुआ था। पोर्टर, इंजिन-ड्राइवर को 'लाइन क्लियर' का कागज़ थमा कर, इन लोगों का सामान उठाने के लिए चला आया। प्याऊ पर बैठी

कंकू बुढ़िया ने फुर्ती से जमीन पर की धूल लेकर लोटे को माँजा, धोया और उसमें मटके का ठण्डा पानी भरकर हाथ में दो-तीन गिलास लिये सम्भ्रान्त मेहमानों को पानी पिलाने के लिए आ पहुँची।

अमरगढ़ के दरिद्र स्टेशन पर ऐसे सफेदपोश अमीर यात्री शायद ही कभी देखने को मिलते थे, इसलिए लोगों पर खासा रोब गालिब होगया और देखते-देखते उन मेहमानों के चारों ओर अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गयी। इधर-उधर भटर गश्ती करते हुए नंग-धड़ङ्ग बच्चे भी उनके चारों ओर इकट्ठा हो गये। यहाँ तक कि पोर्टर के घर की औरतें भी घूँघट की ओट से बड़े घर के इन मेहमानों को देखने के अपने कुतूहल को रोक न सकीं।

मेहमानों का माल-असबाब उठाकर घोड़ा गाड़ी में रखने के लिए काफी संख्या में 'स्वयं सेवक' तैयार हो गये। वहाँ उपस्थित बहुत से लोग प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से ओतमचन्द सेठ के आश्रित थे और इसलिए अपने आश्रय दाता को खुश करने का मौका हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। खुद स्टेशन मास्टर ने मेहमानों के खाने का डिब्बा उठाने की कोशिश की, परन्तु व्यवहार कुशल और समझदार नरोत्तम ने उसे ऐसा नहीं करने दिया।

इस इलाके में चाय पीने का रिवाज़ अभी शुरू ही हुआ था; और लोगों के मन में इस नये पेय की बड़ी महिमा थी, इसलिए एक बूढ़ा लोहाणा (सौराष्ट्र की एक जाति-विशेष) 'बमनिया चाय' की केतली लेकर स्टेशन पर घूमा करता था। इस समय वह भी सेठ लोगों की कृपा दृष्टि पाने के लोभ से प्रेरित अपनी केतली लिये वहाँ आ गया और पीतल के प्याले-तश्तरी में उफनती हुई चाय भरने जा ही रहा था कि धर्म परायण कपूर सेठ ने दोनों हाथ जोड़ कर उसे मना कर दिया: "हमें चाय पीने की मनाही है।" और लगे हाथों, आवश्यकता न होने पर भी, मनाही के कारण की व्याख्या कर दी : "कहते हैं कि चाय के बगीचों में पत्तियों को खून की पुट दी जाती है, इसीलिए उबालने पर रंग लाल हो जाता है।"

इस सफाई को सुनकर आस-पास खड़े कितने ही आदमी मन में हँसे और कितनों ही के दिल में मेहमानों की इस धर्मपरायणता के प्रति आदर पैदा हुआ।

अन्त में वशराम ने ही मेहमानों का असबाब उठाया और घेरे में से जगह बनाता हुआ नरोत्तम आगे बढ़ा।

"अरे, बटुक कहाँ गया, बटुक ?" नरोत्तम बोल उठा : "अभी-अभी तो मेरी अँगुली पकड़े खड़ा था !"

क्षण-भर के लिए सब के होश गुम हो गये और फिर यहाँ-वहाँ बटुक की खोज की जाने लगी। तभी वशराम की आवाज़ सुनाई दी, जो सामान लेकर घोड़ा गाड़ी तक पहुँच गया था :

"अरे फिकर मत करो; बटुक भैया तो यहाँ आ गये हैं।"

जाकर देखा तो गाड़ी में वशराम की बैठक पर बटुक हाथ में लगाम पकड़े शान से बैठा था और वशराम की नकल करता हुआ घोड़े को चलाने के लिए मुँह से टिटकारी लगा रहा था। लेकिन घोड़ा बटुक से कहीं ज्यादा समझदार था और टस-से-मस नहीं हो रहा था।

"अबे, लगता है कि बड़ा होकर तू साईस ही होगा।" नरोत्तम ने हँसकर भतीजे से कहा और सब लोग गाड़ी में बैठ गये।

गाड़ी के चारों ओर फिर भीड़ लग गई। अब तो हमेशा गम्भीर रहने वाले नरोत्तम को भी इन चिपकू लोगों पर गुस्सा आने लगा। गुस्से का एक कारण यह भी था कि इस भीड़-भाड़ के कारण वह अभी तक मेहमानों से खुलकर बात नहीं कर पाया था। वशराम ने बटुक भैया को अपनी गोद में ले लिया और धीरे से गाड़ी हाँक दी; परन्तु कुछ आश्रितों ने फिर भी पिण्ड न छोड़ा और गाड़ी के पटरे थामे साथ-साथ चलने लगे। कोई कहता था कि मालिक, सवेरे से भूखा हूँ; कोई कहता था कि पहनने को साबुत कपड़ा नहीं है, तो कोई कहता था कि औरत बीमार है और मुझे धुँधला दिखायी देता है। इन रिरियाते भिखारियों पर उदारहृदय नरोत्तम भी इस समय झुँझला उठा। कुछ दे-दिलाकर उसने किसी तरह उनसे मुक्ति पायी।

"मुल्क में मंगते बहुत बढ़ गये हैं।" कपूर सेठ ने बड़प्पन जतलाते हुए कहा और फिर अन्ताक्षरी पढ़ने की तरह 'मंगते' शब्द से सम्बन्धित एक कहावत भी लगे हाथों सुना गए : "मंगतपन के तीन गुण, नहीं बेरा (कर), नही बेठ (बेगार); मंगत-मंगत सब कहें, सुख से भरता पेट ।"

मितभाषी नरोत्तम ने इस बेसिर पैर की बातचीत में भाग नहीं लिया तो कपूर सेठ संकुचित हो गये और केवल बोलने के लिए बोले :

"हमारी मेंगणी में इतने मंगते नहीं है............यहाँ कितने सारे हैं......... ।"

"ये तो कुछ भी नहीं हैं सेठ जी !" वशराम बीच में बोल उठा : "वाघणियां पहुँचने पर पता चलेगा कि कितने भिखारी हैं ! वास्तु-पूजा का पता चलते ही गाँव गांव से भिखारियों के दल चले आ रहे हैं भोज की जूठन खाने के लिए........."

"मेरी चम्पा की वाघणिया गाँव देखने की बड़ी इच्छा थी। कई दिनों से तकाज़ा कर रही थी।" कपूर सेठ की धर्म पत्नी सौभाग्यवती सन्तोकबा ने फरमाया ।

चम्पा बड़ी देर से चोरी-छुपे नरोत्तम की ही ओर देख रही थी। माँ की बात सुनकर उसने लज्जा से आँखें झुकाली ।

अब उस झुकी पलकों वाले खिले हुए सुन्दर गुलाबी मुखड़े की ओर ताकने की बारी नरोत्तम की थी ।

"मैंने तो बहुत कहा कि बिक्री के इस मौसम में दुकान सूनी छोड़कर कहीं जा नहीं सकता। परन्तु ओतमचन्द सेठ ने बहुत आग्रह किया; यहाँ तक लिख दिया कि तुम्हारे आये बिना वास्तु का मुहूर्त ही न होगा। इसलिए हमें आना पड़ा।" कपूर सेठ महज शिष्टाचार निभा रहे थे। लेकिन नरोत्तम का ध्यान उनकी बातों की ओर नहीं था। न उसने सुना, न समझने की कोशिश की। यत्रवत् 'हूँ' 'हाँ' कहकर औपचारिकता निभाता रहा, जिसमें मेहमान को बुरा न लगे ।

असल में इस समय उसका मन चम्पा की चम्पकवर्णी देह में उलझा हुआ था।

एक बार फिर वाघणिया का सीमान्त घुँघरुओं की तीखी झनकार से गूँज उठा।

एक बार फिर वशराम ने उमंगित होकर अपना गीत शुरू कर दिया।

एक बार फिर बटुक खेतों में दिखायी पड़ते पशु-पक्षियों की ओर अंगुली दिखाता हुआ नरोत्तम से पूछने लगा : "काका, काका, वह जो उड़ रहा है न, उसे क्या कहते हैं?"

लेकिन बटुक के ऐसे बचकाने सवालों का जवाब देने की फुर्सत इस समय नरोत्तम को कहाँ थी? खेतों में उड़ने वाले स्थूल पक्षियों की इस समय उसे तनिक भी चिन्ता नहीं थी। क्योंकि उसके हृदय में ही 'कुहू कुहू' करते एक पक्षी ने कलरव आरम्भ कर दिया था।

"काका, उस पेड़ पर वो जो बैठा है न, उसे क्या कहते हैं?" जिद्दी बच्चा अपने चाचा का पिण्ड छोड़ ही नहीं रहा था।

कपूर सेठ और सन्तोकबा भी बटुक के बचकाना सवालों से तंग आ चले थे।

लेकिन बटुक निराश होने वाला जीव नहीं था। वह अपनी बात की रट लगाये ही रहा!

"काका, बताओ न, उसे क्या कहते है?"

सहसा चाँदी की घण्टी बज उठी हो ऐसा मीठा स्वर सुनाई दिया : "कोयल!"

बटुक की जिज्ञासा को शान्त करने के लिए नरोत्तम के बदले चम्पा ने जवाब दे दिया था।

नरोत्तम ने सिर उठाकर देखा। 'कोयल' शब्द का उच्चारण भूल कर, जिस कण्ठ से इस शब्द का उच्चारण हुआ था, उस कोकिला की ही ओर निर्निमेष देखने लगा।

सामने वाली बैठकी पर बैठी चम्पा ने फौरन नरोत्तम की उन

कुतूहल भरी निगाहों को बांध लिया और उस जंगल में होकर जाती हुई घोड़ा गाड़ी मे क्षण-भर के लिए उन दोनों की आँखे चार हो गयीं।

कपूर सेठ तो इस गहरी चिन्ता में निमग्न हो गये थे कि आगामी मौसम मे कपास का भाव क्या होगा; परन्तु सतर्क सन्तोकबा की अनुभवी आँखों से उन दोनों का यह दृष्टि-मिलन छिपा न रहा। क्षण-भर के लिए उन्हें नरोत्तम और चम्पा का चार आँख होना अच्छा भी लगा; मेगणो से चलते समय विवाह योग्य बेटी को ठिकाने लगाने की जिस लम्बी योजना पर उन्होंने पति से साथ परामर्श किया था उसके कार्यान्वित होने का शुभारम्भ होता दिखाई दिया। लेकिन दूसरे ही क्षण उनके रूढ़ि ग्रस्त मस्तिष्क की गहराइयों में दबे हुए वाणी, व्यवहार और आचरण सम्बन्धी परम्परागत विचार खल-बली मचाने लगे।

सन्तोकबा को इन दिनों खाँसी नहीं आती थी, फिर भी उन्होंने बहुत कोशिश करके जबर्दस्ती गला खँखारा और नरोत्तम की आँखों में आँखें डालकर बैठी हुई पुत्री को सचेत किया।

शर्मीली चम्पा ने फौरन नरोत्तम की ओर से दृष्टि हटाली और उनकी वह चाक्षुष-मैत्री वहीं भंग हो गयी।

चम्पा ने लजाते हुए सन्तोकबा की ओर देखा तो उस भोली-भाली युवती के यह ठीक से समझ में नहीं आया कि माता की कृत्रिम रोष भरी दृष्टि उसे फटकार रही है या उसका समर्थन कर रही है !

चम्पा से उम्र में छोटी, परन्तु शरारत में उससे बहुत आगे बढ़ी हुई नटखट जसी बड़ी देर से और बहुत गौर से बड़ी बहिन के आचरण का चुपचाप निरीक्षण कर रही थी।

चाक्षुष-मैत्री भंग होने के बाद जब चम्पा ने छोटी बहिन की ओर देखा तो ऐसे मामलों में बहुत अधिक जानकारी रखने वाली जसी, आँखें नचा-नचा कर बड़ी बहिन की ओर देखने लगी। मानो उसकी चंचल निगाहें बड़ी बहिन पर यह मौन अभियोग लगा रही थीं कि 'मैंने

तुम को पकड़ लिया ! मुझ से कुछ भी छिपा नहीं है !' और फिर जसी ने बड़ी फुर्ती से चम्पा की जाँघ में चिकोटी काटी, मानों बड़ी बहिन को उसके अपराध की सजा दे रही हो !

नरोत्तम के सिवा किसी को भी इस बात का पता न चला।

सबकी उपस्थिति में चम्पा चीख तो-नहीं सकती थी, परन्तु मूक फिल्म के दृश्य की भाँति उसने ओठ खोलकर निःशब्द सिसकारी जरूर भरी।

यह देखकर नरोत्तम को मन-ही-मन हँसी आ गयी।

"अब की कपास की फसल कैसी होगी ?" बड़ी देर से कपास की नई फसल के भावों की चिन्ता में मग्न कपूर सेठ ने ऐसे खुशनुमा वातावरण में जब यह नीरस प्रश्न पूछा तो नरोत्तम को बुरा लगा। उसने उतनी ही नीरसता से जवाब दे दिया।

'अच्छी ही रहेगी।"

गाड़ी में फिर शान्ति छा गयी। बटुक भी शायद किसी पक्षी के विचारों में खो गया था। अकेले वशराम के मुँह से पुरानी रंग भूमि के लोकप्रिय गीतों का अनवरत प्रवाह चल रहा था। लेकिन वह इन यात्रियों की ओर पीठ किये बैठा था, इसलिए किसी गिनती में नहीं था।

सन्तोकबा की नकली खाँसी के बाद चम्पा नरोत्तम से आँखें मिलाने की हिम्मत नहीं कर सकी। वैसे अब उसे नरोत्तम से आँखें मिलाने की जरूरत भी नहीं रह गयी थी। दो युवा हृदय दृष्टि के तारों के बदले रास्ते भर चुपचाप दिल के तारों को जोड़ते रहे।

और नटखट नन्ही जसी कभी चम्पा की ओर तो कभी नरोत्तम की ओर देखती हुई अजीब कुतूहल से उस 'अज्ञेय लीला' का अवलोकन करती रही।

"काका, मुझे कोयल चाहिए।" देर तक चुप रहने के बाद बटुक ने आखिर अपनी माँग पेश कर ही दी।

"अब सारी बातें घर पहुँचने के बाद।" नरोत्तम ने जवाब दिया : "देखो, घर आ गया।"

वाघणिया का गोंहड़ा आते ही वशराम ने गाड़ी की चाल धीमी कर दी और गाँव के प्रवेश द्वार के समीप कबूतर चुगाने की छतरी के पास तो उसने गाड़ी को रोक ही दिया। ओतमचन्द सेठ, उनके साले दकु भाई, मुनीम मकनजी आदि सभी लोग मेहमानों का स्वागत करने के लिए गाँव के बाहर तक आये हुए थे।

३

तीन युवा हृदय

ओतमचन्द को देखते ही कपूर सेठ गाड़ी से उतर पड़े। अतिथि और आतिथेय दोनों ही स्नेह पूर्वक गले मिले। फिर ओतमचन्द ने गाड़ी में बैठते हुए नरोत्तम से कहा :

"तुम जल्दी घर पहुँचो! हम लोग पैदल घूमते-घामते आ जायेंगे।"

वशराम ने गाड़ी को गली में मोड़ दिया और ओतमचन्द अपने मेहमान के साथ गाड़ी के पीछे-पीछे चलने लगे।

रास्ते में उन्होंने अपने साथ आये हुए दकुभाई का परिचय कराया :

"ये हैं दकु भाई, आप तो शायद नहीं पहचानते............मेरे साले हैं......", ओतमचन्द ने एक धूर्त से लगते आदमी का परिचय कराते हुए कहा।

"नाम से जानता हूँ—कागज पत्तर पर इन्हीं के दस्तखत किये रहते हैं।" कपूर सेठ ने बताया।

"दुकान का सारा भार दकुभाई ने उठा लिया है। व्यापार की मुझे कोई भी चिन्ता नहीं रह गयी?" ओतमचन्द ने अपने साले की तारीफ करते हुए कहा।

"जब अपने ही घर का विश्वसनीय आदमी मिल जाय तो चिन्ता किस बात की?" दकु भाई की प्रशस्ति में कपूर सेठ ने अपना स्वर भी मिलाया।

"और ये हैं हमारे मुनीम मकनजी।" ओतमचन्द सेठ ने एक

आबनूस जैसे काले स्थूल काय आदमी से परिचय कराया "खाता-खतौनी और लिखत-पढ़त में परम-प्रवीण। चौथाई लाख तक के सारे हिसाब इन्हें जबानी याद हैं। पूरा बही-खाता मुँह जबानी सुना सकते हैं। नींद में भी पूछा जाये कि कौन सी रकम किसके खाते में कौन से पन्ने पर किस तिथि-मिति को खतायी गयी है, तो फौरन बता देंगे।"

"सच्चा मुनीम इसी को तो कहते हैं।" कपूर सेठ ने मुनीम की प्रशंसा में भी अपना स्वर मिलाया और उन्हें एक कहावत याद आ गयी, जिसे उन्होंने तुरंत कह सुनाया: "बूढ़े कह गये है कि जिसका हिसाब चोखा उसका नसीब चोखा।"

बातें करते हुए जब वे घर पहुँचे तो वशराम ने दरवाजे पर गाडी खोल दी थी और घोड़े को अस्तबल मे बाँधने के लिए ले जा रहा था कि तभी बटुक ने घोड़े पर बैठने की जिद पकड़ ली, इसलिए वह उसे घोड़े पर बिठा रहा था।

पुरुष वर्ग बाहर ओसारे में झूले पर बैठ गया। उधर भीतर के कमरे में लाडकोर सन्तोकबा की आवभगत कर रही थी। मेंगणी के हालचाल पूछती हुई वह तिरछी नजरों से चम्पा और जसी को देखती जा रही थी। चतुर लाडकोर दोनों बहिनों के अलग-अलग रंग-ढंग, हाव-भाव, स्वभाव और चेहरे-मोहरे का बारीकी से निरीक्षण कर रही थी; और साथ-ही-साथ मन में तौल रही थी कि इन दोनों कन्याओं में से अपने कुँआरे देवर के लिए कौन उपयुक्त रहेगी।

ओसारे में पट्टे डाल दिये गये और पुरुष भोजन करने बैठे। दकु भाई और मुनीम बड़ी देर से गुप-चुप बातें कर रहे थे, इसलिए इस समय भी वे जान-बूझ कर थोड़ा परे हट कर ही बैठे, जिससे उनकी गुप्त मन्त्रणा में विघ्न न पड़े।

मकन जी मुनीम दकु भाई के कान में फुसफुसा रहा था; "बराबरी का मामला है। और लड़की भी बिलकुल बालू के हम उम्र है। मेहमान अगर राजी हो जाये तो समझ लो कि बालू की जिन्दगी सुधर गयी।"

अन्दर के रसोई घर से दकु भाई का छैल-छबीला लड़का बालू हाथ में लड्डुओं की थाली लिये परोसने के लिए आया तो कपूर सेठ इस लड़के का बनाव-सिगार देखकर दंग रह गये। ओसारे में बालू की 'एण्ट्री' (प्रवेश) नौटकी में विदूषक के प्रवेश की तरह आकर्षक—बल्कि कहना चाहिए कि चौकानेवाली थी। कपूर सेठ उस युवक के 'ऐक्टर-कट' खत और गरदन तक उतरते बालों की ओर देखते ही रह गये। खुद मकनजी भी मन-ही-मन हँसे बिना न रह सका। परन्तु फिर भी दूसरों को बुद्धू बनाने में कुशल उस मुनीम ने दकुभाई को उकसाया :

"मेहमान से इसका परिचय तो करवाओ दकुभाई।"

और औंधी अक्ल के दकु भाई ने अपने सुपुत्र की तारीफ के पुल बांधना शुरू कर दिया।

"बच्चे की उम्र तो कम है, लेकिन बुद्धि का फैलाव बहुत ज्यादा···" बालू के हर कारनामे के वर्णन के अन्त में दकु भाई इस टेक को जरूर दुहरा देता था।

और मुनीम मकनजी बालू के कारनामों का बड़े उत्साह से समर्थन करता जा रहा था।

कपूर सेठ केवल शिष्टाचार के नाते 'हाँ-हूँ' कर रहे थे।

अकेला ओतमचन्द अपने साले की निरर्थक बकवास से उकता कर सिर नीचा किये चुपचाप कौर निगल रहा था।

सगे बाप के मुँह से अपनी विरुदावली सुनकर बालू फूल कर कुप्पा हो गया और दूने उत्साह से परोसने लगा—हाँ, बीच-बीच में वह अपने अस्त-व्यस्त होते हुए बालों में कंघी भी जरूर कर लेता था; लेकिन ऐसा करने में उसका उद्देश्य मेहमान पर अपना रौब गालिब करना ही था।

"अभी तो आपने बालू का गाना नहीं सुना।" दकु भाई ने अपने सुयोग्य पुत्र के बहुमुखी व्यक्तित्व का एक नया ही पहलू मेहमान के समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा : "गला इतना सुरीला है कि सुनकर तबीयत खुश हो जाती है।"

"अच्छा ?" मेहमान ने आश्चर्य मिश्रित प्रशंसा का भाव व्यक्त किया।

"जी हाँ।" दकु भाई ने सोत्साह कहा : "दुपहर के बाद दो-एक चीजें सुनायेंगे आपको।"

लेकिन दकुभाई के दुर्भाग्य से दुपहर के बाद थके-माँदे मेहमान आराम करते-करते थोड़ी देर के लिये सो गये; और दकु भाई को उसके बाद भी अपने सुयोग्य बेटे की गायकी का परिचय देने का मौका न मिला। क्योंकि तीसरे पहर, धूप कम होते ही, ओतमचन्द सेठ ने मेहमानों को नया हुक्म सुना दिया : "चलिये, अब नया मकान देख आयें......... कल तो वास्तु-पूजा की गहमा-गहमी रहेगी, इसलिये आज आराम से सब कुछ देख लिया जाये।"

और कपूर सेठ अपने मेजबान के साथ नया मकान देखने के लिए चल दिये। पुरुष वर्ग की मर्यादा का पालन करते हुए उनसे कुछ फासले पर महिला वर्ग भी पीछे-पीछे रवाना हुआ। लाडकोर बड़े उत्साह के साथ सन्तोकबा और उनकी दोनों पुत्रियों को अपना नया मकान दिखाने के लिए लिये जा रही थी।

पुराने जमाने के शिष्टाचार के कुछ अलिखित नियमों के अनुसार नरोत्तम को इस समय वास्तव में तो पुरुष वर्ग के साथ जाना चाहिये था, परन्तु अपने यौवन सुलभ खिचाव के कारण वह चम्पा के साथ जाने के प्रलोभन का संवरण न कर सका।

नरोत्तम के इस आचरण की छूत बालू को भी लग गयी और वह भी जान-बूझ कर पीछे रह गया और किसी गीत की कड़ी गुनगुनाने लगा।

बालू का बाँकपन लाडकोर को आरम्भ से ही फूटी आँखों नहीं सुहाता था। इस समय अपरिचित मेहमानों के साथ में उसे छैलापन का प्रदर्शन करते देखा तो लाडकोर ने गुस्से से भर कर आखें तरेरी। लेकिन इस तरह के इशारे समझने की अक्ल उस बुद्धू लड़के में कहाँ थी ? वह लातों का देवता बातों से कैसे समझता ?

"यह है अपना मकान......" बीसेक फुट दूर से एक नये बने मकान को दिखलाते हुए ओतमचन्द ने कहा ।

"ओ-हो-हो ! आपने तो पूरा जंगल ही घेर लिया है ओतमचन्द भाई ।" मकान का विस्तार और उसकी आसपास की खुली जमीन देख कर कपूर सेठ ने विस्मित होते हुए तारीफ की ।

"जमीन बिलकुल सस्ते में मिल गयी और जुगाड़ भी बैठ गई, इस लिये सोचा कि मकान बना ही लिया जाये ।" ओतमचन्द ने जवाब दिया : "आज जैसा कल नहीं होता । हमारे बड़े व्यापार का जोखिम भी बड़ा होता है । कल की कौन जानता है ?"

"लेकिन, भले मानस, पत्थर में भी कहीं इतना पैसा फँसाया जाता है ?" कपूर सेठ ने कहा । "इसमें से तो टका ब्याज भी नहीं उपजेगा?"

"ब्याज भले न उपजे, पत्थर में लगाया पैसा सुरक्षित तो रहेगा । व्यापार में धूप-छाँह की तरह नफा-नुकसान लगा ही रहता है....पैसा आता भी है और चला भी जाता है...लेकिन इन पत्थरों को तो कोई ले जाने से रहा......"

"हाँ, यह सच है, एकदम सच !" कपूर सेठ ने समर्थन करते हुए कहा : "मकान बनाकर आपने वाकई बड़ी बुद्धिमानी का काम किया ओतमचन्द भाई ।"

दोनों व्यापारियों की इस व्यावहारिक बात को सुनकर पीछे चले आते मुनीम और दकु भाई को मन-ही-मन हँसी आ गयी । वे ऐसी दूर-दर्शिता को एकदम व्यर्थ समझते थे, क्योंकि उनकी मन्द बुद्धि दूर तक देख जो नहीं पाती थी ।

दरवाजे में दाखिल होते समय कपूर सेठ ने मेहराब पर बड़े अक्षरों में खुदे ये शब्द पढ़े :

"**ह रि नि वा स** ।"

और थोड़ी देर सोचने के बाद उन्होंने कहा :

"आपने तो मकान पर अपने नाम के बदले भगवान का नाम खुदवा दिया ।"

"यह सब ईश्वर की ही लीला है ! हम सब तो उसके हाथ के खिलौने हैं......"

"सच है ! सच है !"

"धन, लक्ष्मी सभी कुछ उसी की माया है, पैसा हाथ का मैल है आज आता है और कल चला जाता है......आज का दिन अच्छा है तो कल बुरा भी आ सकता है......"

"सच है !"

"इसलिए चढ़ती के दिनों का अहंकार नहीं करना चाहिये और पड़ती के दिनों का शोक भी नहीं करना चाहिये। जिन्दगी धूप-छाँह का का खेल है।" ओतमचन्द ने कहा ! "धन-दौलत से मोह नहीं होना चाहिये। यह दुमजिला मकान मैने जरूर बनाया है, परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि यह मेरा ही है। मिल्कियत मालिक बदलती रहती है। इस सम्पत्ति का आज मैं भोग कर रहा हूँ, कल कोई दूसरा ही इसका भोग करेगा......इसीलिये मैंने इसे भगवान का नाम दिया और भगवान को अर्पण कर दिया।"

ओतमचन्द जब इस तरह भैंस के आगे भागवत-धर्म की बीन बजा रहा था, तो दकु भाई और मुनीम मन-ही मन हँस रहे थे।

ओतमचन्द ने सारे मकान में घूम-फिर कर मेहमान को एक-एक कमरा दिखलाया :

"यह बाहर का ओसारा (बरामदा) है......यह रसोई घर......यह भण्डार......ये सोने-बैठने के कमरे......"

ठीक उसी समय दुमंजिले पर लाडकोर सन्तोकबा को एक-एक कमरा दिखाती हुई कह रही थी :

"यह हमारे सोने-बैठने का कमरा......यह मेहमानों का कमरा...... और यह हमारे नरोत्तम भाई की आने वाली दुलहिन का कमरा......"

सुनकर नरोत्तम का शरमाना तो स्वाभाविक था; परन्तु न जाने क्यों, चम्पा के चेहरे पर लाज की लाली उतर आने से वह गोरा चेहरा एकदम लाल-गुलाल हो गया था।

बड़ी बहिन के चेहरे का यह आकस्मिक भाव-परिवर्तन कौवे जैसी तेज निगाहों वाली जसी से छिपा न रहा; यहाँ तक कि उसे इसके कारण का पता भी चल गया ।

उसने फौरन हँसते-हँसते चम्पा की बगल में चिकोटी काटी ।

इतनी कुशल हुई कि दोनों प्रौढ़ाएं लाडकोर और सन्तोक बा उस समय कुछ आगे निकल गई थीं; क्योंकि जसी के द्वारा चिकोटी काटे जाने पर चम्पा के चेहरे पर बड़ी मधुर मुसकान फूट आयी थी और उसकी मुस्कराहट को देखकर नरोत्तम भी मुग्ध भाव से हँस दिया था । यदि उन तीनों युवा हृदयों के मुक्त हास्य को बड़ों ने देख लिया होता तो उनके मन में जरूर गलत फहमी पैदा हो जाती ।

यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ कि पुरुष वर्ग उस समय वास्तु-पूजा के लिए बनाये गये हवन कुण्ड का निरीक्षण कर रहा था । और लाडकोर इस नये मकान मे बनी नये ढग की आलमारियों को खोल-खोल कर उनकी 'चोर दराजों' की करामात सन्तोकबा को दिखा रही थी ।

इस बीच बाल गन्धर्व बालू ने अपने किन्नर कण्ठ का परिचय देने के लिए दो-एक कर्कश गीत गाने का प्रयत्न कर देखा; लेकिन अकेले दकु भाई के सिवा उसे किसी भी श्रोता की ओर से दाद नही मिली तो बेचारा कलाकार निराश और निरुत्साहित होकर घर लौट गया । मगर घर पर भी वह अकेला पड़ गया और 'भोक्ता बिन कला नहीं' सूत्र की सच्चाई समझ में आते ही पुन: नये मकान की ओर दौड़ आया और नीचे से ही पुकार उठा :

"भोजन तैयार हो गया है; महाराज खाने के लिए बुला रहे हैं ।"

"चलो ! चलो !" कहते हुए जब सब लोग नीचे उतर आये तो केवल चम्पा और नरोत्तम वहाँ नहीं थे ।

"कहाँ गयी चम्पा ? कहाँ गयी चम्पा ?" क्षण-भर के लिए तो बेचारी सन्तोकबा के होश ही गुम हो गये । खुद लाडकोर भी बुरी तरह घबरा गयी थी ।

इतना अच्छा हुआ कि यह नाजुक सवाल ज्यादा देर तक उलझा हुआ नहीं रहा। जसी नीचे से फौरन दुमंजिले में दौड़ी गई और वहाँ से उसने उच्च स्वर मे घोषणा की :

"चम्पा बहिन और नरोत्तम भाई ये रहे यहाँ........"

सुनने वालों पर इस बात की अपने-अपने ढग से अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हुईं।

चम्पा और नरोत्तम लजाते हुए सिर नीचा किये जीना उतरे।

केवल जसी, इस विजय-गर्व से कि 'क्यों कैसा पकड़ा', बड़ी बहिन की ओर देख-देख कर लगातार हँसे जा रही थी।

घर लौटते समय, रास्ते में चम्पा ने, किसी को पता न चले इस तरह छोटी बहिन के समीप जाकर अपने को परेशान करने के दण्ड-स्वरूप उसकी बगल में दूने जोर से चिकोटी काटी और इस तरह जसी द्वारा बड़ी बहिन को दो बार सताये जाने का पूरा बदला ले लिया।

फिर तो रास्ते-भर उन तीनों युवा हृदयों की टोली घर पहुँचने तक बराबर मुस्कराती ही रही।

४

रंग में भंग

दूसरे दिन ओतमचन्द के घर और भी मेहमान आ गये। छोटा-सा वाघणिया गांव आदमियों से भर गया।

वास्तु-पूजा के साथ बड़े भोज का आयोजन भी किया गया था, जिससे सारे गाँव में एक प्रकार की चेतना-सी फैल गयी थी। सारे इलाके के दलालों, आढ़तियों और अपने कार-बार से सम्बन्धित व्यापारियों को ओतमचन्द ने इस शुभ प्रसंग पर आमन्त्रित किया था। गाँव का बाजार और गलियाँ बाहर से आये हुए लोगों से भरी-भरी लग रही थीं।

गांव वालों के लिए तो सबसे बड़ा आकर्षण भोज ही था। ओतमचन्द जैसे सम्पन्न लोग इस गाँव में गिने-चुने ही थे। बाकी गाँव में कुल मिलाकर गरीब लोगों की बस्ती ही अधिक थी। इसलिए गाँव के सभी गरीब और नाई, धोबी, कुम्हार आदि इस बड़े भोज की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे। दुमंजिले मकान का वास्तु-पूजन बड़ी धूम-धाम से होने के समाचार सुनकर आस-पास के गांवों के मंगते-भिखारी भी काफी बड़ी संख्या में वाघणिया आ पहुँचे थे। गाँव वालों के शुष्क नीरस जीवन में मालदारों के यहाँ होने वाले ऐसे समारोह और भोज थोड़े आनन्द और सरसता की सृष्टि कर दिया करते हैं।

बड़े सबेरे से ही नये मकान में शहनाई और नगाड़ा बजने लगा था। प्रवेश द्वार की मेहराब पर और दरवाजों के चौखटों और

टिल्लों (तोड़ों) पर आशापालव के तोरण टाँग दिये गये थे। गांव का पंडित शम्भू गौर हवनकुण्ड के चारों ओर वास्तु-पूजन के लिए पूजा की सामग्री सहेज कर रख रहा था।

ओतमचन्द अपनी शादी के समय सिलवाये रेशमी लम्बे कोट को पहने पूजा के लिए पटे पर बैठ गया था। उसकी बगल में बैठी हुई लाडकोर ने भी शादी के समय की साड़ी पहिन रखी थी।

बगल वाले रसोई घर में भोज की जोर-शोर से तैयारियाँ हो रही थी; इसलिए लोगों का आवागमन बहुत बढ़ गया था। लेकिन दकु भाई कहीं दिखायी नहीं दे रहा था, इसलिए ओतमचन्द को मनः ही मन आश्चर्य होने लगा।

जब उसका यह आश्चर्य बहुत बढ़ गया और वह जब्त न कर सका तो पूजा के दौरान मुनीम को अपने पास बुलाकर ओतमचन्द सेठ ने पूछा।

"दकु भाई कहाँ है ?"

धूर्त मुनीम ने जवाब दिया। "मुझे मालूम नहीं।" और रहस्यमय ढंग से मुस्कराकर एक ओर टरक गया।

शम्भू गौर श्लोक पर श्लोक दागता जा रहा था और ओतमचन्द चुप बैठा सुन रहा था; गौरजी जिस वस्तु के 'समर्पयामि' का आदेश देते उस वस्तु का वह विधिपूर्वक समर्पण कर देता था। लेकिन यह सारा काम वह यन्त्रवत् ही कर रहा था; यज्ञ विधि में ओतमचन्द का मन लग नहीं रहा था।

दकु भाई की अनुपस्थिति ने ओतमचन्द को व्यग्र कर दिया था। उसने दो-चार लोगों से पूछा भी, लेकिन जब किसी से सन्तोषप्रद उत्तर नहीं मिला तो वह खिन्न हो गया। इस शुभ अवसर पर सगे साले की अनुपस्थिति का जरूर कोई खास कारण होना चाहिए, यह आशंका उसे बार-बार सताने लगी।

इस बीच समझदार लाडकोर बिलकुल मौन साधे रही। लेकिन पूजा करते हुए जब ओतमचन्द बार-बार दकुभाई के बारे में पूछ-ताछ

करने लगा तो उससे रहा न गया। अपने स्वभाव के अनुसार उसने पति को स्नेह भरी, लेकिन दृढ़ स्वर में मीठी-सी फटकार सुनायी।

"चुप रहो न ! पूजा के समय तो मन को शान्त रखो !"

"लेकिन दकु भाई कहीं दिखाई जो नहीं दे रहा !"

"दिख जायेगा खुद ही............कहीं इधर-उधर चला गया होगा किसी काम से............" लाडकोर ने रहस्य भरे स्वर में कहा और फिर आवाज़ में मिश्री घोलकर आदेश दिया। "पूजन के समय अब अधिक बोलना-वतियाना रहने दो और गौर जी जैसा कहते हैं करते जाओ।"

प्यारी पत्नी की इस आज्ञा को मानने के सिवा कोई चारा ओतमचन्द के सामने रह नहीं गया था। वह चुप हो गया—बोलना बतियाना उसने बन्द कर दिया। लेकिन मन की बेचैनी किसी भी तरह मिट न सकी। दकु भाई की रहस्य-भरी अनुपस्थिति ओतमचन्द के मन में तरह तरह की आशंकाएं जगा रही थी।

वास्तु पूजन का कार्य जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया और शम्भू गौर के मुँह से 'समर्पयामि' का सूत्रोच्चार जैसे-जैसे बढ़ता गया ओतमचन्द के मन की आशंकाएं भी उसी अनुपात में बढ़ती और प्रबल होती गयीं। लेकिन बगल में बैठी स्नेह भरी पत्नी द्वारा मौन रहने का जो आदेश दिया गया था वह इतना प्रभावशाली सिद्ध हुआ कि लाडकोर की आज्ञा की कभी भी अवहेलना न करने वाला ओतमचन्द इस समय भी उसके आदेश का उल्लंघन न कर सका।

पूजा समाप्त होने पर जैसे ही गौरजी ने आसन से उठने की अनुमति दी ओतमचन्द जोर से पुकार उठा—"बालू !"

लेकिन बालू की ओर से उसे कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला। तब ओतमचन्द ने एक बार फिर पुकारा और पास खड़े लोगों से पूछा। "बालू कहाँ चला गया ?"

"अभी अपने घर की तरफ जाता दीखा था।" एक किसान के लड़के ने जवाब दिया।

ओतमचन्द का विचार, दकुभाई को बुला लाने के लिए बालू को भेजने का था. लेकिन जब यह सुना कि वह खुद भी घर चला गया है तो उसने एक कुर्मी से कहा। "टपु, जल्दी से जा और दकुभाई को घर से बुला ला।"

दकुभाई की उपस्थिति के लिए पति का ऐसा आग्रह देख लाडकोर मन-ही-मन झुँझला उठी; लेकिन प्रकट कुछ कह भी नहीं सकती थी। उसे कुछ घबराहट भी हो रही थी, क्योंकि इस समय जिस कारण से दकुभाई अनुपस्थित था उसे लाडकोर अच्छी तरह जानती थी। लेकिन पति को वह कारण बताने का साहस वह अपने में जुटा नहीं पा रही थी। उसने स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि साले की अनुपस्थिति को लेकर उसका पति इतना बेचैन हो जायेगा।

लाडकोर काम में लग गयी, लेकिन केवल शरीर से, मन उसका काम में न लग सका।

तभी जिस टपु कुर्मी को दकुभाई को बुला लाने के लिए भेजा था उसने लौटकर ओतमचन्द से कहा।

"दकुभाई की तबीयत अच्छी नहीं है, इसलिए लेटे हैं। उन्होंने कहा है कि मेरा रास्ता मत देखना।"

बगल के कमरे में लाडकोर ने यह बात सुनी और अपने सगे भाई के इस विचित्र आचरण पर मन-ही-मन सुलग उठी।

अब लाडकोर को लगा कि पति को वास्तविकता से अवगत करा ही देना चाहिए। जो बात देर-अबेर मालूम हो ही जायेगी, उसे छिपाने की बेकार कोशिश क्यों की जाये? यह सोचकर जब लाडकोर बाहर ओसारे में आयी तो मकनजी मुनीम ने उसे बताया।

"सेठ गये हैं दकुभाई के घर.......... जल्दी में जूता पहनना भी भूल गये............"

लाडकोर चुप सुनती रही। उधर मुनीम और भी मर्माहत करने वाला वाक्य बोला।

"जूता पहनना तो भूलेंगे ही ! जब सेठजी ने यह सुना कि दकुभाई बीमार, बिस्तर में पडे हैं तो सेठजी बेचारे मारे घबराहट के नंगे पाँवों ही दौड़ पड़े ...."

लाडकोर को यह समझते देर न लगी कि मुनीम व्यंग्य कर रहा है। मुनीम और दकुभाई की दाँत काटी रोटी की बात लाडकोर को अच्छी तरह मालूम थी। वह इस बात को भी समझ गयी कि आज सबेरे जो घटना घटी है उसकी जानकारी दकुभाई ने इस मुनीम को अवश्य दे दी है और दकुभाई की अनुपस्थिति का कारण भी मुनीम जरूर जानता है।

और, आज सवेरे-सवेरे जो काण्ड हो गया था उसके लिए लाडकोर व्यथित हो उठी। उसका व्यथित हृदय अपने को ही दोषी मान पश्चात्ताप से भर गया। काफी सोच-विचार कर वह इस नतीजे पर पहुँची कि आज के मंगल अवसर पर जो दुःखद काण्ड हुआ वह न होता और भौजाई को वह जो चुभती बातें कह गयी वे न कही होतीं तो कितना अच्छा होता !

लेकिन अब क्या हो सकता था ? धनुष से छूटे तीर की तरह लाडकोर के मुँह से निकली कड़वी चुभती बातें हमेशा के लिए निकल गयी थीं और इन्हें लौटा कर लाया नहीं जा सकता था— न फेंका हुआ तीर लौटाया जा सकता है और न मुँह से कही हुई बात लौटायी जा सकती है। दुर्वचनों से जो अनिष्ट होना था वह तो हो ही गया था, अब केवल दुष्परिणामों को भोगना रह गया था, जिन्हें भोगना ही होगा।

५

ननद और भौजाई

हुआ यह कि दकुभाई की पत्नी समरथ आज सवेरे-सवेरे लाडकोर के पास आयी थी। दकुभाई जब तक क्वांरा रहा, बिना मां-बाप का वह अनाथ लड़का, अपने बहिन-बहनोई के यहीं पड़ा रहता था। लेकिन जब बड़ा हो गया तो ओतमचन्द ने उसकी शादी कर दी और काम-काज में उसकी रुचि और योग्यता देखी तो व्यापार में उसे इकन्नी का हिस्सेदार बना लिया। उसके बाद दकुभाई ने अपने बहनोई के पड़ोस में ही अलग मकान ले लिया और वहां रहने चला गया। अलग घर बसाने में दकुभाई की पत्नी का कर्कशा स्वभाव भी एक कारण था। वही कर्कशा समरथ आज सवेरे-सवेरे लाडकोर के पास आयी थी और उसी में से सारी रामायण खड़ी हुई थी।

समरथ स्वभाव से कंगाल और भुक्खड़ थी। लेकिन भुक्खड़पने के साथ ही अपने को बड़ा समझने का झूठा दम्भ भी उसमें बहुत था। इसलिए अकसर ननद-भौजाई में ठन जाया करती थी। हर बात में नाक-भौं सिकोड़ना, नाराज़ हो जाना और बुरा मानना छोटे मन और ओछी बुद्धि की समरथ की आदत में शुमार था। पति की स्थिति साधारण होते हुए भी वह हर मामले में अपनी ननद के घर की नकल करने की कोशिश करती, अपने आपको लाडकोर के समकक्ष समझती और जब भी इसमें असफल होती तो निराशा से बौखला कर अपने घर के रहन-सहन और पहनने-ओढ़ने आदि सभी बातों में लाडकोर से बराबरी का दावा करने का हठ ठान लेती थी। एक बार उसे

अपने मायके जाना था तो अमरगढ़ स्टेशन तक जाने के लिए उसने वशराम को घोड़ागाड़ी जोतने का हुक्म दिया; मगर लाडकोर ने जब यह कह कर कि 'गाड़ी तो हमारे बटुक के लिए है, तेरे लिए नहीं,' इनकार कर दिया तो मारे गुस्से के उसने जाना ही मुल्तवी कर दिया और इस घोर अपमान के लिए वह दो महीने तक लाडकोर से बोली नहीं थी ।

आज सवेरे-सवेरे समरथ सेठानी ऐसी ही एक भीख माँगने के लिए ओतमचन्द के दरवाजे आयी थी । आते ही उन्होंने लाडकोर के सामने अपनी माँग पेश की ।

"अपनी मोहन माला आज के दिन मुझे पहनने के लिए दे दो ।"

"क्यों भला ?" लाडकोर ने पूछा ।

"मेरा गला सूना जो है ।"

"मगल सूत्र है तो ?"

"यह धागे—जैसी जंजीर तो दिखायी भी नहीं देती ।"

"न दीखे; दिखाने की जरूरत भी क्या है ?"

"इतने सारे मेहमानों में मैं अच्छी लगूँगी ?"

"जैसे हों वैसे दिखने में बुरा क्यों लगना चाहिए और फिर अपनी ना समझ भौजाई को उपदेश देते हुए कहा—"फटे कपड़ों और गरीब नैहर के कारण लजाया नहीं करते, समझी ?"

ननद के इन उपदेशों को सुनने के लिए न तो समरथ आयी थी और न उसकी तैयारी ही थी । उस शौकीन मिजाज को तो सिर्फ पहन ओढ़कर लोगों को दिखाने से मतलब था । इसीलिए उसने मोहन माला की अपनी माँग के समर्थन में यह विचित्र तर्क प्रस्तुत किया ।

"तुम्हारे पास दो मोहन मालाएँ हैं, इसीलिए मैं एक माँगने चली आयी ।"

"किसी के पास ज्यादा हो तो वह दूसरों को देने के लिए नहीं होती, समझी ?"

लेकिन समरथ इतनी आसानी से समझने वाले लोगों में नहीं थी। उसने और भी अजीब दलील दी।

"तुम्हारे पिटारे में रखे-रखे क्या मोहन माला बच्चे देगी ?"

"पिटारे में मोहन माला बच्चे दे या न दे, तुझे इन सब बातों से क्या मतलब ?" लाडकोर ने कुछ उग्र होकर कहा और अपनी निर्बुद्धि भौजाई को फिर उपदेश दे डाला। "तेरी यह बात बहुत बुरी है ! जो अपना हो उसी में सन्तोष करना चाहिए। किसी की अटारी देखकर अपनी झोंपड़ी नही गिरायी जाती, समझी ?"

"लेकिन इतने मेहमानों के बीच नंगा गला लिये घूमूंगी तो मेरी इज्जत........"

"इज्जत तो मेरे दकुभाई की जो है सो है और वह सभी को मालूम है ! मांगे का गहना पहनने से इज्जत बढ़ नहीं जायेगी और न पहनेगी तो घट भी नहीं जायेगी, समझी ?"

लेकिन इस बार समरथ समझने के बदले गुस्सा हो गयी और तमक कर बोली।

"तुम्हें अपनी सेठाई का घमण्ड हो गया है न, इसीलिए यों जली-कटी सुना रही हो !"

"अपनी हम जानते हैं। पर तू बिना सेठाई के किस बात का घमण्ड करती है, यह भी तो पता चले ?" और अन्त में लाडकोर ने भी समरथ को खरी-खरी सुना ही दी : "मरद के कपड़ों में संझा तक सेर धूल भर जाती है और लुगाई को देखो तो सेठानी बनने का शौक !"

समरथ इस नग्न सत्य को पचा न सकी। ननद के इस ताने ने उसे अपनी दरिद्रता का भान आंखों में अँगुली डालकर करवा दिया। आंखों में असली या नकली आंसू भर कर बोली :

"तुम्हारे आश्रित हैं इसीलिए न ऐसी खरी-खोटी सुना रही हो ?"

"कहता कौन है कि हमारे आश्रित बन कर रहो ?……सामरथ हो तो अलग हो जाओ अपना अलग वेपार-धन्धा करो।" लाडकोर ने आखिर चुनौती दे ही दी : और फिर मौका पाकर बहुत दिनों से घुमड़ रहा क्रोध भड़भड़ाकर निकल पड़ा :

"यह तो बनी-बनायी गद्दी मिल गयी सो बैठे चैन कर रहे हो ! जरा पसीना बहाकर पांच पैसे पैदा करो तो पता चले !"

शेरनी-जैसी समरथ इस चुनौती के आगे खरगोश बन गयी। उसकी आँखों में इस बार जो आंसू आये वे सच्चे थे।

"लाडकोर को अवसर मिला तो उसने बहुत दिनों की जमा भड़ास निकालते हुए कहा :

"इसी को तो कहते हैं कि 'घर में नहीं दाने और बीबी चली भुनाने !' खसम बेचारा दिन-भर पत्थर तोड़े और जोरू कहे मोकूं महल चुना दे !"

समरथ मन मसोस कर रह गयी। पर अब बोलने की बारी भौजाई की थी :

"तुम्हारी दी हुई रोटी खाते हैं तभी यह जली-भुनी सुननी पड़ रही है !"

"अब से अपनी ही रोटी खाओ तो पता चल जायेगा कि कितने बीसी सौ होते हैं !"

समरथ ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया :

"आज से तुम्हारी मटकी का पानी हराम हुआ………हमने भाग्य नहीं बेच खाया है………नमक से सूखी रोटी खालेंगे मगर तुम्हारी दया का दूध थू-थू-थू………"

और समरथ मुँह मोड़कर चल दी………लाडकोर पर क्या प्रतिक्रिया हुई, यह देखने के लिए भी न रुकी। बिफरी शेरनी की तरह पीछे अपने घर पहुँच गयी।

× × ×

उस समय घर में दकुभाई और मकनजी मुनीम कपूर सेठ की कन्याओं के बारे में बैठे बातें कर रहे थे। बालू के लिए बड़ी लड़की उपयुक्त है अथवा छोटी, इसका निर्णय सरलता से नही हो पा रहा था, इसलिए दोनों ही कुछ असमंजस की स्थिति मे थे कि एकदम क्रोधोन्मत्त चण्डी के समान समरथ दनदनाती हुई दरवाजे में आ खड़ी हुई और पति को देखकर गरज उठी :

"तुम मे कुछ पानी भी है या सूखे ठूठ ही हो ?"

दकुभाई बेचारा हक्का-बक्का रह गया और लगा मुँह बाये पत्नी की ओर देखने !

"तुम्हारी बाँहों में जोर भी है या हार बैठे हो ?"

पत्नी के इस दूसरे प्रश्न का तात्पर्य भी जब दकुभाई की समझ में नहीं आया तो उसने स्पष्टीकरण की गरज से पूछा :

"बात क्या है ? इतनी-सी देर में हो क्या गया ?"

मकनजी मुनीम भी चकित होकर पूछने लगा :

"बात क्या है सेठानी जी ? समझाकर कहो तो पता चले।"

लेकिन नाक पर गुस्सा लेकर चलने वाली समरथ सीधी बात समझाकर कहना नही चाहती थी। उसने पति को उकसाने के लिए तीसरा सवाल भी पहेली-बुझौवल के ही अन्दाज में पूछा :

"सेर बाजरी कमाने की सामरथ तुममें है या नहीं ?"

"सेर क्या मनों बाजरी कमाने की काबलियत दकुभाई की है," मकनजी ने कहा ! "लेकिन आज तुम्हें यह हो क्या गया है ? कुछ बताओ तो पता चले।"

पत्नी के इस विकराल स्वरूप को देखकर सदा के डरपोक दकुभाई की छाती बैठी जा रही थी। वे लोग उसके इस गुस्से का कारण जानने के लिए कुछ पूछते इसके पहले ही समरथ ने धाड़ें मार-मार कर रोना शुरू कर दिया, मानों आसमान ही टूट गिरा हो!"

मकनजी-जैसा उस्तादों का उस्ताद मुनीम भी इस नाटक को देखकर

चक्कर में पड़ गया। अन्त में दकुभाई ने ही किसी तरह साहस बटोर कर पत्नी से धीरे-धीरे पूछना आरम्भ किया।

लेकिन समरथ और भी ऊँची आवाज़ में फूट-फूट कर लगातार रोते रहने के सिवा कुछ भी सुनने या कहने को तैयार न थी।

अन्त में पति की चिरौरी-विनती से पिघल कर सिसकियों के बीच टूटे-फूटे वाक्यों को रुआँसे स्वर में गाकर पत्नी ने जो-कुछ सुनाया वह इस प्रकार था :

"मैं अभागिन........खोटे नसीबवाली...........मेरी किस्मत में दूसरों के टुकड़े तोड़ना लिखा.........ताने-तिश्ने सुनना पड़ते हैं.........पति के रहते भी दूसरों की दबैल......माँगना और मरना दोनों एक समान.........पैसे वाली ननद का मिजाज.........न सुनने जैसी बातें सुननी पड़ती हैं..... हाय, अपना ही दही खट्टा तो मैं किससे कहूँ...घर के खसम में ही राम होता तो मुझे आज यह सब क्यों सुनना पड़ता........."

इस रुदन मिश्रित संगीत ध्वनि से दकुभाई इतना तो समझ ही गया कि ननद-भौजाई में किसी बात को लेकर झगड़ा हुआ है। लेकिन झगड़ा क्यों हुआ, इसका पता तभी चल सकता था जब समरथ न पद्य-न गद्य की जटिल शैली को छोड़कर सीधे-सरल गद्य में बोलकर बताये।

काफी देर के बाद समरथ पद्य से गद्य की ओर मुड़ी और जब उसकी सिसकियाँ बन्द हो गयी तो लाडकोर से जो कहा-सुनी हुई थी उसका विस्तृत वर्णन उसने खूब नमक-मिर्च लगाकर पेश किया।

सुनकर वास्तव में उत्तेजित तो दकुभाई को होना चाहिए था, परन्तु बीच में उत्तेजित हो उठा मकनजी मुनीम और बोला :

"अरे रे ! लाडकोर सेठानी की यह हिम्मत ! इतना घमण्ड ! सगे भाई-भौजाई को ऐसी जली-कटी सुनादी ?"

लेकिन इतने पर भी जब दकुभाई का पित्ता गरम न हुआ तो बदमाश मुनीम ने सीधे चोट की :

"दकुभाई, तुम्हारी तो, समझो कि नाक ही कट गयी···अच्छी-भली इज्जत दो कौड़ी की हो गयी···तुम तो बहन-बहनोई का काम समझकर रात-दिन जुटे रहो और बहन तुम्हें दो टके का हमाल भी न समझे ! तुम अपनी दुकान समझकर हाड़-तोड़ मेहनत करते हो और मालिक के मन उसकी कीमत कानी कौड़ी के बराबर भी नहीं ! यह है तुम्हारे अहसानों का बदला······मान-पान के बदले जूतियाँ ।"

दाने डालकर मुर्गे लड़ाने में कुशल विघ्न सन्तोषी मुनीम आखिर दकुभाई को चंग चढ़ाने में सफल हो ही गया । समरथ के पद चिन्हों पर चलने वाले उस पत्नी भक्त दकुभाई ने भी कसम खायी :

"आज से बहन के घर का अन्न मेरे लिए गोमाँस के बराबर !"

"तुमने ये इतने साल बेकार ही गँवाये ।" मुनीम ने कहा : "मर-खप कर दूसरों का ही घर भरते रहे । मेहनत तुम करो और मौज दूसरे उड़ायें यह कहाँ का न्याय है ? तुम इतने साल जान खपाते रहे, मगर मेरी भाभी को क्या मिला ? एक सड़ी-सी मोहन माला भी नही । सेठ के छोटे भाई के लिए एक पर एक मँगनियाँ चली आ रही हैं और कुँवर कन्हैया—जैसे तुम्हारे बालू की ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता !"

हमेशा पत्नी के प्रभाव में रहने वाले दकुभाई को लगा कि मुनीम सच ही कह रहा है ।

और अन्त में दकुभाई ने बहनोई से व्यापारिक सम्बन्ध तोड़ने का पक्का फैसला कर डाला ।

भावी योजना मकनजी के पास तैयार थी ही ।

"महिने-दिन में ओतमचन्द सेठ का पेढ़ी का दिवाला न निकला तो मैं अपनी मूछें मुड़वा लूँगा ।" मकनजी ने मूछों पर ताव देकर दकुभाई को आश्वस्त किया ।

मूर्ख दकुभाई फूला न समाया ।

"और उसकी दुकान के ठीक सामने दकुभाई की जोरदार पेढ़ी खड़ी की जायेगी ।"

दकुभाई ने और भी प्रसन्नता का अनुभव किया ।

मकनजी वहाँ से उठकर तभी गया जब उसे इस बात का पूरा विश्वास हो गया कि साले बहनोई में पूरी तरह बिगाड़ हो गया है ।

× × ×

जैसे ही यह पता चला कि ओतमचन्द दकुभाई को नंगे पाँव मनाने के लिए गया है, लाडकोर का मन जाने कैसा हो गया ! इसे भौजाई को जली-कटी सुनाकर दुःखित करने का परिणाम मानकर उसका मन पश्चात्ताप से भर उठा । वह मन-ही-मन मनाने लगी कि अब भाई भौजाई जल्दी से मान जायें और इस मंगल उत्सव में आकर शरीक हो जायें तो मैं गंगा नहाऊँ !

ठीक उसी समय दकुभाई के घर ओतमचन्द सेठ अपने ही छोटे साले के पाँवों में लोट-लोटकर वास्तु पूजन में चलने के लिए उसकी चिरौरी कर रहा था, गयी-गुजरी को भुला देने की प्रार्थना कर रहा था और लाडकोर के उद्दण्ड व्यवहार के लिए स्वयं बार-बार माफी माँग रहा था ।

लेकिन लड़ाकू समरथ और फूट डालने में कुशल मुनीम ने कानों के कच्चे दकुभाई के मन में ऐसी विषैली गांठ बाँध दी थी कि न तो उसने ओतमचन्द की उदारता की कद्र की और न उसकी चिरौरी विनती पर कोई ध्यान दिया ।

लाडकोर बड़ी उत्सुकता से दकुभाई के घर के रास्ते की ओर देख रही थी और पति के साथ आने वाले अपने सगे भाई की प्रतीक्षा कर रही थी । लेकिन अन्त में उसने अकेले ओतमचन्द को ही आते देखा ।

साले के घर से निराश लौटते ओतमचन्द के मानों घुटने ही टूट गये थे ।

६

मंगल कार्य शुरू करो !

आखिर रंग में भंग हो ही गया ! ओतमचन्द उद्विग्न था। लाडकोर अपनी गलती पर पछता रही थी। अकेला मुनीम मन-ही-मन प्रसन्न था।

मकनजी की यह प्रसन्नता उसके अपने ही मन में समायी हुई न रह सकी। "हरि-निवास" में उपस्थित सभी मेहमानों को उसने जब तक सीधे या घुमा-फिराकर दकुभाई के रूठने की खबर न सुनादी, उसके मन को चैन न मिला।

ओतमचन्द ने वास्तु-पूजा का कार्य सम्पन्न किया, मगर बिना किसी उत्साह के।

उत्सव के समापन के बाद सन्तोकबा ने कपूरचन्द सेठ को एक ओर बुलाकर पूछा :

"ओतमचन्द सेठ का छोटा भाई तुमको कैसा लगा ?"

"तुम बताओ कि तुम्हें कैसा लगा ?" कपूर सेठ ने उलटकर यही सवाल सन्तोकबा से किया।

"मेरे मन को तो भा गया है।"

"लड़का तो मुझे भी समझ में आता है। चतुर की चातुरी छिपी नहीं रहती। पानी वाला है।"

"और नन्हीं जसी मुझे बता रही थी कि चम्पा को भी नरोत्तम बहुत पसन्द है।" इस प्रौढ़ उम्र में भी पसन्द होने की बात करते हुए सन्तोकबा थोड़ा शरमा गयी।

"चम्पा को पसन्द है तो यही मानना चाहिए कि भगवान को भी पसन्द है।" कपूरसेठ ने पुत्री की पसन्द पर भगवान के बहाने अपनी स्वीकृति की मुहर लगादी।

"तो अब आप ओतमचन्द सेठ से बात कीजिये।"

"लेकिन क्या उन्हें यह रिश्ता मंजूर होगा?"

"होगा क्यों नहीं? मेरी चम्पा किस बात में कम है? ऐसी लड़की तो जिस घर में भी जायेगी चाँदना हो जायगा।"

"लेकिन सुना है कि नरोत्तम के लिए तो बडे-बड़े घरों से रिश्ते आ रहे हैं।"

"हम छोटे ही सही, मगर तुम बात चलाकर तो देखो।"

"सन्तोकबा ने व्यावहारिक मार्ग सुझाया और फिर एक कहावत, जो उन्हें याद आ गयी थी, कह सुनायी: "जहां घूरा देखते हैं वहीं सब कूड़ा डालने जाते हैं।"

ठीक उसी समय बगल के कमरे में लाडकोर ओतमचन्द सेठ से कह रही थी:

"कपूर सेठ की चम्पा को तुमने देखा?"

"किसलिए पूछ रही हो?"

"हमारे नरोत्तम से उसका जोड़ा खूब मिलता है—मानो राधा और कृष्ण की जोड़ी ही समझलो।"

"लेकिन नरोत्तम तो बराबर इनकार ही किये जा रहा है।" ओतमचन्द ने अपने अनुभव की बात कही।

"अब चम्पा को देखने के बाद मना नहीं करेगा।"

"यह तुम काहे पर से कहती हो कि अब मना नहीं करेगा? तुम्हें कैसे पता चला?"

"ऐसी बातों को तुम आदमी लोग नहीं समझ सकते।" लाडकोर ने गर्व भरे स्वर में कहा: "औरतों की बातें औरतें ही जानती समझती हैं।"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि नरोत्तम और चम्पा के मन जुड़ा गये हैं।"

"वाह, यह खूब रही ! दो-तीन दिन में दोनों के मन जुड़ा भी गये ?"

"तुम दो-तीन दिन की कहते हो, मैं कहती हूँ कि मन तो घड़ी में, बल्कि पलक झपकते जुड़ा जाते हैं।" लाडकोर ने अपने निजी अनुभव के आधार पर कहा, और बरसों पहले की अपनी मुग्धावस्था के एक प्रसंग को याद कर लजाते हुए पूछा :

"अपनी बात भूल गये ?"

पत्नी द्वारा अतीत के मधुर प्रसंग की याद दिलाये जाने पर ओतमचन्द भी थोड़ा लजा गया और तरल मुस्कान के साथ बोला :

"तो अब तुम्हें देवरानी को लाने की जल्दी पड़ी है, क्यों ?"

"हाँ-हाँ मुझे देवरानी को लाने की जल्दी है।" लाडकोर ने स्वीकार किया !" और सो भी चम्पा को छोड़ मुझे और कोई देवरानी नहीं चाहिये।"

"चम्पा पर तुम इतना अधिक मोहित हो गयी हो ?"

"मैं नहीं, तुम्हारा छोटा भाई मोहित हुआ है।"

"छोटे भाई की शादी हो गयी तो आये दिन देवरानी जेठानी में झगड़े होने लगेंगे, यह भी समझ लो।"

"झगड़े भले ही हों; परन्तु अब इतने बड़े घर में मुझे बिना देवरानी के अकेले रहना अच्छा नहीं लगता।"

"किसे अच्छा नहीं लगता—तुम्हें या नरोत्तम को ?"

"हम दोनों को।"

दूसरे दिन शाम तक बहुत से मेहमान वाघणिया से जा चुके थे। केवल कपूर सेठ के परिवार को ओतमचन्द ने आग्रहपूर्वक रोक लिया था—बल्कि यह कहना ठीक होगा कि कपूर सेठ स्वयं ही रुक गये थे।

ओतमचन्द पेढ़ी में एक बड़े तकिये का टेक लगाये बैठा था। घर में एक बड़े उत्सव के सम्पन्न हो जाने की निश्चिन्तता का वह अनुभव

कर रहा था। केवल इस बात का थोड़ा-सा मलाल मन में था कि ऐन वक्त पर दकुभाई ने नाराज होकर रंग में भंग कर दिया।

पूरे तीन दिन तक उत्सव के कारण बन्द रखी गयी दुकान आज ही खोली गयी थी, इसलिए भीड़-भाड़ और चहल-पहल कुछ अधिक ही नज़र आ रही थी। हलकारा जो डाक दे गया था उसमें भी पत्रों की संख्या रोज़ से कुछ अधिक थी; यद्यपि ज्यादातर पत्र वास्तुपूजा के निमंत्रण के औपचारिक उत्तर ही थे। "हमारे खाते में नामे डालकर पाँच रुपए का सुगन स्वीकार कीजियेगा।"—इस प्रकार के वणिक्-व्यवहार की बातें ही उन पत्रों में लिखी हुई थीं। इस खाते जमा रकम कभी कोई पक्ष वसूल नहीं करता, यह बात ओतमचन्द अच्छी तरह जानता था, इसलिए इन पत्रों को पढ़कर वह मन-ही मन बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था।

नियमानुसार आज की डाक में भी बहुत-सी हुँडियाँ आयी थीं। बिक्री का मौसम होने के कारण पैसे-टकों की हेरा-फेरी बड़े पैमाने पर होती थी, इसलिए हुँडियों का लेन-देन भी बहुत बढ़ गया था।

सभी हुंडी पत्रों को इकट्ठा कर ओतमचन्द ने मकनजी मुनीम को थमा दिया। मकनजी ने उनकी टीप करके खताना शुरू कर दिया।

एक ओर बही-खाता लिखा जा रहा था। दूसरी ओर दलाल और आढ़तिये बैठे-बैठे माल की खरीद-फरोख्त की चर्चा कर रहे थे। आज ओतमचन्द की दुकान पर काफी सख्या मे आढतिये और दलाल आये थे। कोठार की ड्योढ़ी के अन्दर कई घोड़े बँधे हुए थे। ड्योढ़ी के बाहर पन्द्रह-बीस बैल गाड़ियां खड़ी थी। कोठार के अन्दर माल का लेन-देन तेज़ी से हो रहा था।

इस सब में दकुभाई की अनुपस्थिति साफ दिखायी दे जाती थी। कुछ व्यापारियों ने तो मुनीम से पूछ भी लिया कि दकुभाई दिखायी क्यों नहीं देते। सभी पूछने वालों को उस चालाक मुनीम ने घुमा-फिरा कर असल बात बता दी।

आज इतने अधिक पत्र आये थे कि ओतमचन्द उन्हें पढ़ते-पढ़ते थक

गया। जिस जमाने में सन्देशों-समाचारों का आदान प्रदान अधिकतर सन्देश वाहकों के द्वारा और मौखिक होता रहा हो उस जमाने के आदमी का लिखित सन्देश पढ़ते पढ़ते थक जाना स्वाभाविक ही था।

आज की डाक में अपनी-अपनी कन्या के लिए नरोत्तम का रिश्ता माँगने वाले पिताओं के पत्र भी काफी तादाद में थे! यह देखकर ओतमचन्द क्षण-भर के लिए सोच-विचार में पड़ गया कि अब इसका क्या उपाय किया जाये? लेकिन दूसरे ही क्षण उसे याद हो आया कि लाडकोर इसका उपाय सुझा ही चुकी है; और इसीलिए कपूर सेठ को सपरिवार आग्रह पूर्वक रोका गया है।

यों तो नरोत्तम पर उसके बचपन से ही कई पुत्रियों के पिताओं की निगाहें लगी हुई थीं। इसका कारण अच्छे खाते-पीते, सुखी, सम्पन्न और सम्मानित घराने के अतिरिक्त ओतमचन्द की सरलता और सद्‌व्यवहार भी था। बल्कि कहना चाहिये कि ओतमचन्द से भी अधिक सदाशयता की धूम सुगृहिणी लाडकोर की थी। नरोत्तम के माता-पिता तो जब वह छह-सात साल का था तभी मर गये थे। भाई-भौजाई ने ही उसका पालन-पोषण किया और आज भी उसे सगे बेटे से अधिक मानते थे; और यह बात उस इलाके में सभी को मालूम थी। और इसीलिए सभी लड़कियों के बाप नरोत्तम से रिश्ता करने को लालायित थे। इतना अच्छा लड़का, उत्तम परिवार और भले सगे उन्हें और कहाँ मिल सकते थे? फिर कपूर सेठ की लड़की को तो खुद लाडकोर ने ही पसन्द किया था। अब ओतमचन्द को याद आया कि मेंगणी में लाडकोर की ननिहाल के दूर के कोई रिश्तेदार रहते हैं एक बार वहाँ जाने का काम पड़ा और व्यापारिक सम्बन्धों के कारण कपूर सेठ के घर भोजन के लिए गये तो लाडकोर ने चम्पा को देखा था; केवल देखा था, कहना सही नहीं है, उसने तो अपने देवर के साथ रिश्ता करने की दृष्टि से उस बालिका की कार्य-कुशलता, चतुराई, सुशीलता आदि सद्‌गुणों की परीक्षा भी कर ली थी। इसीलिए जब वास्तु-पूजा के अवसर पर कपूर सेठ का परिवार वाघणिया आया

तो लाडकोर ने उन्हें अमरगढ़ स्टेशन से लिवा लेने के लिए दूसरे को न भेजकर खुद नरोत्तम को भेजा था.........दूरन्देश पत्नी की इस मोर्चे बन्दी का खयाल आते ही ओतमचन्द मन-ही-मन मुसका उठा ! वह पत्नी का कहा कभी टालता नहीं था, इसलिए इस सुझाव को भी उसने तत्परता से स्वीकार कर लिया। उसका यह विश्वास श्रद्धा की सीमा तक पहुँच चुका था कि कुल-लक्ष्मी लाडकोर जो भी सुझाव देगी वह सारे परिवार के लिए शुभ और श्रेयस्कर ही होगा।

इसलिए ओतमचन्द ने मकनजी को आदेश दिया : "जरा शम्भू गौर को बुला लाओ।"

मकनजी समझ गया। नरोत्तम की सगाई को लेकर जो, गुपचुप खिचड़ी पक रही थी उसकी भनक इस चतुर मुनीम को पड़ चुकी थी। वह उठा और चुपचाप शम्भू गौर के घर की ओर चल दिया।

शम्भू को आवाज़ देकर मकनजी, दकुभाई के घर की ओर मुड़ गया।

माथे पर हाथ दिये दकुभाई साक्षात् निराशा की मूर्ति बना बैठा था। समरथ की वैराग्नि अभी तक शान्त नहीं हुई थी। धू-धू कर जल रही थी। बालू को मेहमानों के सामने अपनी संगीतकला का प्रदर्शन करने का अवसर नहीं मिला था, इसलिए वह भी एक ओर भग्न हृदय कलाकार की तरह उदास बैठा था।

ऐसे विस्फोटक वातावरण में मकनजी ने घर में प्रवेश किया और दरवाजे में कदम रखते ही गरज उठा : "गयी !"

उसकी इस एकाक्षरी घोषणा का कुछ भी सिर-पैर घर वालों की समझ में नही आया है, यह देख मकनजी ने फिर घोषणा की :

"गयी ! गयी !"

"कौन ?" दकुभाई ने पूछा !

"कपूर सेठ की लड़की, और कौन !"

"कहाँ गयी ?"

"नरोत्तम के साथ।" मकनजी ने रहस्योद्घाटन किया : "कपूरिया भी ससुरा लाभ के लोभ में लिपट-चिपक गया।"

"जैसी उसकी औकात वैसा ही तो करेगा।" समरथ ने अपनी राय जाहिर की और फिर शिकायत के स्वर में बोली : "दुनिया का दस्तूर है कि पैसे वालों के बच्चे चाँदी के झुनझुनों से खेलते हैं........ मुझ गरीबनी के राजकुमार-जैसे बालू की ओर कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता।"

"क्यों मन ओछा करती हो भाभी ! बालू के लिए मैं पद्मिनी-जैसी लड़की खोज लाऊँगा; तुम देखती रहो।" मकनजी ने दिलासा दिया और फिर घुग्घू की तरह बैठे दकुभाई की ओर मुड़कर पूछा :

"तुम यों हारे जुआरी की तरह उकड़ूँ क्यों बैठे हो ?"

"मैं तो अब जल्दी ही अपने गाँव लौट जाना चाहता हूँ। दुकान से हिसाब चुकता हो जाये तो अपने रास्ते लगूँ।" दकुभाई ने कहा : "वाघणिया से हमारा दाना-पानी उठ गया। अब तो भला मेरा ईश्वरिया और मैं भला।"

"वाघणिया की धरती से हमारा नाता टूट गया—यहाँ का अन्न-जल पूरा हुआ।" समरथ ने अपने पति का समर्थन किया।

"वाह, हमें अकेला छोड़कर आप लोग ईश्वरिया भाग जायेंगे ?" मकन जी ने दुलराये बच्चे की तरह कहा और आगे बोला : "दकुभाई के बिना इस मकनजी के गले कौर कैसे उतरेगा यह भी सोचा है ?"

"कहने वालों ने सही कहा है कि विपदा में बापदादा का गाँव-घर याद आता है और वही ठौर देता है।" समरथ ने जवाब दिया : "आज हम पर विपदा पड़ी है तो ईश्वरिया ही हमें सहारा देगा।"

"लेकिन मुझे तो यहाँ वाघणिया में दकु भाई के बिना एक छिन भी अच्छा नहीं लगेगा।" मकनजी ने फिर वैसे ही दुलरा कर कहा : "हम दोनों एक दूसरे की आधी जूंठी बीड़ी पीने वाले जिगरी दोस्त हैं.... तुम अकेले ईश्वरिया गाँव चले गये तो तुम्हारे इस यार को यहां चैन

न मिलेगा.........कहे देता हूँ दकुभाई, इस गरीब मुनीम को भी तुम्हें अपने साथ ले जाना होगा।"

"यहाँ ओतमचन्द सेठ के राज्य में तुम्हें किस बात की कमी ?" दकुभाई ने जवाब दिया : "तुम्हें ईश्वरिया ले जाने की मेरी सामर्थ्य नही। तुम्हारे-जैसे मुनीम का हाथी ओतमचन्द सेठ ही बाँध और पाल सकते हैं, मेरे-जैसा गरीब आदमी नहीं।"

"चाहो तो तुम भी बांध सकते हो।" मकनजी ने कहा ! "चाहो तो तुम ओतमचन्द को भी ईश्वरिया में अपने यहाँ नौकर रख सकते हो ! कौन बड़ी बात है !"

सुन कर समरथ का कलेजा ठण्डा हुआ।

दकुभाई इस मुनीम की अर्थपूर्ण वाणी को चुपचाप सुनता रहा। "समझदारी हो तो एक एक ओतमचन्द क्या उसके-जैसे सात सेठियों से तुम ईश्वरिया की अपनी दुकान पर झाड़ू लगवा सकते हो।" मकनजी ने फिर चौकानेवाली बात कही और आँखे नचाकर आगे बोला : "समझ और होशियारी होनी चाहिये मेरे भाई, सिर्फ समझ और होशियारी; और कुछ नहीं चाहिये।"

दकुभाई आंखें फाड़े, मुँह बाए मुनीम की ओर ताक रहा था। अब वह यह जानने के लिए बेताब हो गया था कि समझ और होशि-यारी कहते किसे हैं !

"यहाँ आओ, यहाँ मेरे पास !" मकनजी ने हाथ पकड़ कर दकुभाई को खड़ा किया और फिर गुप्त मन्त्रणा के लिए उसे घसीटता हुआ अन्दर के कमरे में ले गया। चलते हुए भी वह बराबर 'बक-बक' किये जा रहा था : "समझ और होशियारी हो तो अभी बढ़िया मौका है......चोट के साथ चपेट हो जाये.........नगाड़े के साथ तूती की आवाज, हाँ मेरे भाई ! दकुभाई की तीन पीढ़ियाँ तर जायेंगी......दाँव सीधा पड़ गया तो राजा हो जाओगे राजा........."

दकुभाई और मुनीम जब इस तरह सलाह-मशविरा कर रहे थे तो उधर शम्भू गोर अपने पत्र के साथ पेढ़ी पर पहुँचे।

"कौनसा चौघड़िया अच्छा है गौर जी ?" ओतमचन्द ने पूछा !

"किस प्रकार का शुभ कार्य करना है, पहले यह तो बताओ जजमान।"

"यही रिश्ता-नाता, सगाई-सम्बन्ध………"

"किसका ? बटुक भैया का ?" शम्भू गौर ने पूछा।

"जी नहीं, बटुक तो अभी बहुत छोटा है, खिलौनों से खेलने के दिन हैं उसके। मैं तो अपने छोटे भाई नरोत्तम के लिए कह रहा हूँ। बड़ा हो गया है, अब किसी अच्छे घर-घराने में………"

"बड़ी खुशियाली की बात है जजमान, क्या नाम से, बड़ी ही उत्तम बात है।"

दुकान पर जब सगाई का शुभ मुहूर्त छाना जा रहा था, लाडकोर मकान पर लपसी के लिए गेहूँ दलवाने के प्रबन्ध में जुटी थी।

ठीक उसी समय 'हरि-निवास' के दुमंजिले में चम्पा और नरोत्तम रसभरी बातें कर रहे थे और नन्हीं नटखट जसी इन दोनों से मधुर परिहास।

और दकुभाई के घर मकनजी एकान्त में एक भयंकर योजना बना रहा था।

७

पंछी बन बोले

शम्भू गौर द्वारा निकाले हुए शुभ मुहुर्त में चम्पा और नरोत्तम की सगाई हो गयी।

वास्तुपूजन में दकुभाई के यहाँ से कोई आया नहीं था, लेकिन सगाई-जैसे शुभ अवसर पर भाई-भौजाई को निमन्त्रण देने के लिए लाडकोर खुद गयी और उन्हें मनाने के लिए माफी भी मांगी, फिर भी जिद्दी स्वभाव की समरथ टस-से-मस न हुई। सगी बहिन के आग्रह और चिरौरी-विनती से प्रभावित होकर दकुभाई बहिन-बहनोई के यहाँ जाने को तैयार हो गया था, परन्तु साक्षात् चण्डी स्वरूपा समरथ की टेढ़ी निगाहों के आगे उस बेचारे का कोई बस न चला।

जब कह-सुनकर हार गयी तो अन्त में लाडकोर ने कसम धराते हुए कहा! "अगर न आये तो तुम्हें मेरे इकलौते बेटे बटुक की सौगन्ध।"

कहते-कहते लाडकोर के ओठ कांपने लगे। ऐसा लगता था मानों अभी रो देगी दकुभाई पर कसम धराने का फौरन असर हुआ, वह बोल उठा!

"अरे......अरे बहिन, यह क्या करती हो? ऐसी कसम भी कहीं खायी जाती है? भगवान तुम्हारे इकलौते बटुक को सौ बरस का करें।"

मैदान समरथ को अपने हाथ से निकलता दिखायी दिया। लाडकोर

द्वारा अपनाया गया सौगन्ध का शस्त्र रामबाण साबित हुआ था। दकुभाई खड़ा हो गया था और सिर पर पगड़ी लपेटते हुए कह रहा था :

"चलो मैं तुम्हारे यहाँ चलता हूँ और आज का अवसर साधे देता हूँ.........बटुक एक का इक्कीस हो, उसकी वंश बेल फूले-फले और भगवान उसे लम्बी उमर दें।"

लेकिन यो मैदान हाथ से निकल जाने दे तो वह समरथ कैसी ? उसने फौरन पति पर लाडकोर के शस्त्र का पूरी तरह प्रतिकार करने वाला शस्त्र चला दिया :

'दरवाजे से बाहर कदम निकला तो तुम्हें मेरे सगे बेटे-बालू की कसम !"

दरवाज़े की चौखट लाँघ रहे दकुभाई का एक पाँव दरवाज़े के अन्दर ही रह गया। शेरनी-जैसी समरथ ने हथियार तो अचूक ही इस्तेमाल किया था। उस प्रचण्ड हथियार के सामने दकुभाई बेचारा भेड़ा बन गया। उसने ओसारे में नजर डाली तो नौजवान बालू शीशे के आगे खड़ा-खड़ा बाल काढ़ रहा था।

दकुभाई की हालत चक्की के दो पाटों के बीच फँसे हुए व्यक्ति जैसी हो गयी। एक ओर बहिन खड़ी थी और दूसरी ओर पत्नी। एक ओर भानजे की सौगन्ध धराई गयी थी, दूसरी ओर सगे बेटे की कसम दी गयी थी। एक ओर सहोदरा बहिन की आँखों में प्रेम भरी याचना थी : 'चला, 'मेरे घर चलो।' दूसरी ओर क्रुद्ध पत्नी की अंगारे बरसाती आँखों में यह निषेधाज्ञा हुँकार रही थी : 'खबरदार, चौखट के बाहर पाँव भी मत रखो।' एक ओर खून का रिश्ता खींच रहा था, दूसरी ओर वैवाहिक प्रेम का खिचाव था।

ऐसी विकट दुविधा से मुक्ति पाकर स्वतन्त्र रूप से निर्णय कर पाना दकुभाई के बस की बात नहीं थी। दूसरों के हाथ से पानी पीने और परायी सीख पर चलने वाला वह परबस और परावलम्बी पति दरवाज़े के बीचों बीच निर्जीव की भाँति बैठ गया। लाडकोर से उसने मरी हुई आवाज़ में कहा :

"बहिन, तू अपने घर जा। अपने इस अभागे भाई से अब कोई आशा मत रख। हमारे बीच स्नेह का लेन देन शायद खत्म ही हो गया है। मन तनिक भी छोटा मत करना, बुरा भी मत मानना....तेरी आत्मा को दुखाकर मुझे सात जन्म भी चैन नहीं मिलेगा।"

लाडकोर के प्रयत्नपूर्वक रोके हुए आँसू सगे भाई की इस आर्त वाणी को सुनकर एक बारगी ही बह चले। समरथ अपनी इस विजय पर फूली न समायी।

लाडकोर को रोते देख दकुभाई भी विह्वल हो गया। उसने कहा :

"बहिन, दु:खी मत हो, अब ज्यादा दु:खी मत हो। लगता है कि हमारा साथ रहना अब भगवान को ही मजूर नहीं। सब किस्मत की बात है और जो लिखा होता है वही होता है। जा बहिन, तू अपने घर जा।"

पति प्रति क्षण जितना विवश होता जाता था, समरथ का विजयोन्माद उसी अनुपात मे बढ़ता जाता था। आखिर वह जब्त न कर सकी, उसने बड़े ही तिरस्कार से अपना ठेंगा लाडकोर के सामने कर दिया।

लाडकोर के तन बदन में आग लग गयी। उसने गुस्से से कांपते हुए तलवार की धार-जैसे तीखे स्वर में ललकारा :

"तू तीन कौड़ी की बज्जात मुझे ठेंगा दिखाती है? मेरे सारे अहसानों का आज यह बदला मुझे दे रही है? सगी भौजाई का घर समझकर और गम खाकर मै मनाने के लिए चली आयी तो मुझे यह सिरोपा बख्श रही है? मैंने अपने इकलौते बेटे की कसम धराई तो तो तूने उसका भी कोई लिहाज नही किया।"

एक ही सांस में इतना कहकर लाडकोर ने अपना आखरी फैसला सुना दिया :

"तो जा, आज से मेरे लिए भी तेरे घर का पानी हराम हुआ। तुम्हारा दाना मेरे लिए गोमांस के बराबर। अब से यही समझ लूँगी कि मेरी माँ ने लड़का जना ही नही; मै बगैर भाई की हूँ।"

और लाडकोर मुँह फेर कर तेजी से चल दी।

दीर्घ सूत्री दकुभाई सहसा आवेश में आकर चिल्ला उठा : "बहिन! बहिन !"

लेकिन लाडकोर तो सदर दरवाजे तक पहुँच गयी थी।

दकुभाई ने पुकारा : "बहिन, मेरी बात तो सुनती जा......"

लेकिन लाडकोर गली में निकल गयी थी और अब कुछ भी सुनना नहीं चाहती थी।

समरथ ने कठोर स्वर में पति को डपटा :

"चुप भी रहोगे या बहिन-बहिन की रट ही लगाये जाओगे ! दुनिया में जैसे एक तुम्ही तो बहिन के भाई हो।"

पत्नी की आज्ञा को शिरोधार्य कर बेचारा दकुभाई फौरन चुप लगाकर बैठ गया।

× × ×

मन-ही-मन वेदना और क्रोध से छटपटाती लाडकोर ने घर पहुँच कर पति से कहा! "आज से यही समझलो की मेरा दकुभाई मर गया!"

"क्यों भला ?" ओतमचन्द के यह पूछ जाने पर अविरल आंसू बहाते हुए लाडकोर ने जबाब दिया :

"आज से यही समझो कि मैं भाई के होते हुए भी बगैरभाई की हूँ......आज से, समझलो कि मेरे माता-पिता का घर उजड़ गया ··· मेरे नैहर का रास्ता बन्द हो गया........."

ओतमचन्द ने कहा कुछ नहीं, लेकिन मन-ही-मन अपार वेदना का अनुभव किया।

इस आकस्मिक विपत्ति की मार से विह्वल पति-पत्नी ने किसी पर अपनी वेदना को प्रकट न होने दिया; ऊपर से मुस्कराते हुए उन्होने नरोत्तम की सगाई का समारोह सम्पन्न किया। इस पूरे काण्ड के दौरान ओतमचन्द के मुँह से सिर्फ एक ही वाक्य निकला : "जैसी हरि की इच्छा !"

दुमंजिला मकान बनाने और उसका वास्तु-पूजन करने में ओत्तमचन्द को हरि की इच्छा दिखायी दी थी। नरोत्तम और चम्पा के वाग्दान को ओत्तमचन्द ने हरि की इच्छा माना था। और इन दोनों उत्सवों से असहयोग कर दकुभाई ने रग में भग किया तो उसे भी 'जैसी हरि की इच्छा' मानकर ओतमचन्द ने अपने मन को समझा लिया था।

× × ×

और एक फिर वाघणिया के सीमान्त में घोड़ा गाड़ी के घुँघरू गूँज उठे।

समधी को विदा करने के लिए ओतमचन्द ने बड़े सवेरे ही गाड़ी जुतवा दी थी। इस बार भी मेहमानों को अमरगढ़ स्टेशन पहुँचाने का मधुर उत्तरदायित्व लाडकोर ने नरोत्तम को ही सौपा था। लेकिन इस बार चूँकि नरोत्तम की "परिस्थिति" और पदवी में आमूल परिवर्तन हो गया था इसलिए अपनी नाजुक स्थिति के कारण पहले तो उसने मेहमानों को पहुँचाने जाने से भाभी के मुँह पर इनकार कर दिया। लेकिन साफ-साफ कहने वाली लाडकोर ने जब देवरजी को यह कहकर डाँट सुनायी कि 'मन भावे और मूँड़ हिलावे' तो नरोत्तम मन-ही-मन आह्लादित होता हुआ इस मनचीते कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए फौरन गाड़ी मे सवार हो गया।

और सैर के शौकीन बटुक को तो इस मामले में कुछ कहने सुनने की जरूरत ही नहीं हुई। घोड़ा गाड़ी का जिक्र सुनते ही वह घर में सबसे पहले उठकर अँधेरे मुँह वशराम के कोच बक्स पर जा बैठा था।

भिनसारे के धुँधलके में ही दोनों समधी एक दूसरे से मिलकर परस्पर विदा हुए, "आइयेगा-पधारियेगा" की आवाजें गूँजीं और प्रभाती गाते हुए वशराम ने बग्घी को अमरगढ़ स्टेशन की ओर हाँका।

गाड़ी के बाहर और भीतर के वातावरण मे खुशनुमा ताज़गी थी। अभी चार दिन पहले अमरगढ़ से वाघणियां आते-समय गाड़ी में संकोच, क्षोभ और अत्यधिक औपचारिकता का जो बोझिल वातावरण था वह

इस लौटानी में दूर हो गया था। उसका स्थान निकटता, अनौपचारिकता और आनन्दोल्लास ने ले लिया था। आते समय चम्पा और नरोत्तम यद्यपि एक-दूसरे के समीप बैठे थे, परन्तु फिर भी उनमें कई कोसों की दूरी थी। अब जाते समय दोनों के हृदय अद्भुत सामीप्य का अनुभव कर रहे थे।

कोचवान वशराम बड़ी उमंग से प्रभाती गा रहा था :

× × ×

जागिए रघुनाथ कुँवर ········
पंछी बन बोले·········

× × ×

सन्तोकबा अथवा कपूर सेठ को तो इस देहाती प्रभाती में कोई मजा नहीं आ रहा था; परन्तु चम्पा और नरोत्तम 'पंछी बन बोले' की टेक पर परम आह्लादित होकर लहालोट हुए जाते थे।

रास्ते के दोनों ओर के वृक्षों में पक्षी जाग उठे थे। पेड़ों की पत्तियों के बीच उनके पंखों की फड़फडाहट सुनायी दे रही थी। सारी रात एक दूसरे की चौंच में चौंच मिलाकर पास-पास दबके हुए पक्षियों के जोड़े चहचहाकर प्रभात के आगमन का मंगल गान कर रहे थे। गाड़ी में बैठा हुआ दो दिलों का एक जोड़ा भी ठीक ऐसे ही अनुभव में से गुजर रहा था। निस्सन्देह बुजुर्गों की उपस्थिति के कारण उनकी जबानों पर ताले थे, मगर उड़ने के लिए आतुर मन की पाँखों की आकुल फड़फडाहट रोके नहीं रुकती थी। उनके मौन कंठों में नवजीवन की प्रात: वेला का नि:शब्द संगीत मुखर होने के लिए मचल रहा था। सृष्टि का वह सनातन गीत, जो उन दोनों के ओठों तक आकर ठिठक गया था, अन्त में आँखों की राह छलक पड़ा और छलकता ही चला गया।

आते समय नरोत्तम और चम्पा को चोरी-चोरी आँखें लडाते देख नन्हीं नटखट जसी ने पकड लिया था और बड़ी बहिन को खूब परेशान कर इस गुनाह की सजा दी थी; परन्तु वही जसी इस समय उन दोनों

के दृष्टि मिलन को देखकर भी अनदेखा करती हुई मानों उन दोनों के पवित्र प्रेम की मर्यादा का पालन कर रही थी। यहाँ तक कि जो बटुक हमेशा 'काका, इसका क्या नाम है ?' और 'उसे क्या कहते हैं ?' पूछ-पूछकर नाक मे दम कर देता था वह भी इस समय जाने किस अन्तः प्रेरणा से बिलकुल चुप बैठा था।

यह व्यापक मौन मानों सन्तोकबा और कपूर सेठ को भी स्पर्श कर गया था, इसीलिए वे भी मन ही मन विवाह की तैयारियों की योजना बना रहे थे और शायद यह भी सोच रहे थे कि चम्पा का ठिकाना तो लगा, अब नन्ही जसी के लिए भी उपयुक्त लड़का मिल जाये तो दोनो बहनों का विवाह एक साथ ही कर दें।

"लो सा'ब इस्टेशन दिखने लगा।" प्रभाती गा-गाकर थके हुए वशराम ने बिना किसी को उद्देश्य किये यों ही जाहिर सूचना के रूप मे निवेदन किया।

लेकिन किसी ने भी अपनी ओर से प्रत्युत्तर में कुछ भी नहीं कहा अपने-अपने दिवा स्वप्नो में विचरण कर रहे वे यात्री अब भी मौन ही रहना चाहते थे।

लेकिन बातूनी वशराम के लिए वह मौन असह्य हो उठा था। उसने पीछे की ओर देखकर पूछा : "क्यो बटुक भैया, चुप क्यों हो ? बोल क्यों नही रहे ?"

पिछले पहर की कच्ची नींद से जागकर गाड़ी में सवार बटुक को ठण्डी हवा लगी तो चम्पा की गोद मे सो गया था। अब वशराम की परिचित आवाज़ पुकारती हुई सुनाई दी तो चौंक कर उठ बैठा।

यह देखकर कि गाड़ी में कोई भी आदमी इस समय मुझ से बात-चीत करने के 'मूड' मे नहीं है, वशराम ने बटुक से ही पूछा : "क्यों बटुक भाई, किसकी गोद में सो रहे थे ?"

"कह दो कि काकी की गोद में········"

सवेरे के मन भावन वातावरण में मानो पहली ही बार चाँदी की घण्टी बज उठी।

चम्पा कहने को तो कह गयी, परन्तु दूसरे ही क्षण मारे लाज के दुहरी भी हो गयी ।

बटुक ने उससे भी मधुर स्वर में अपनी तोतली वाणी में उस वाक्य को दुहरा दिया : "काकी की गोद में ।"

गाड़ी में पहली ही बार सबको खुलकर हँसने का मौका मिला, जिससे बोझिल वातावरण कुछ हल्का हो गया ।

अब तो मितभाषिणी सन्तोकबा को भी बातचीत में मजा आने लगा । उन्होंने पूछा :

"चाची के साथ मेंगणी चलोगे बटुक भैया ?"

"बड़ा हो जाऊँगा तब आऊँगा ।" बटुक ने जवाब दिया ।

"बटुक भैया, कहो कि चाची को बुलाने आऊँगा ।" वशराम ने उसे सिखाया ।

"चाची को बुलाने आऊँगा ।"

"घोड़ा गाड़ी लेकर बुलाने आऊँगा" । वशराम ने और भी सिखाया ।

"घोला-गाली लेकर बुलाने आऊँगा".......

"हाँ-हाँ, जरूर आना ।" अब तो कपूर सेठ भी बातचीत में शरीक हो गये ।

"लो सा'ब, इस्टेसन आ गया ।" वशराम ने पुकार कर कहा ।

गाड़ी के रुकते ही, नित्य नियमानुसार आश्रितों की अच्छी-खासी भीड़ जमा हो गयी । लेकिन आज नरोत्तम को उनकी ओर ध्यान देने का अवकाश ही कहाँ था ? ट्रेन पिछला स्टेशन छोड़ चुकी थी, इसलिए सब जल्दी-जल्दी प्लेट फार्म पर पहुँच गए ।

कपूर सेठ और सन्तोकबा समझदारी के कारण अथवा सहजरूप से, किसी काम के बहाने, थोड़ा आगे निकल गये और उन्होने थोड़ी देर के लिए नरोत्तम तथा चम्पा और जसी को अकेला छोड़ दिया । इस अवसर से लाभ उठाकर नरोत्तम ने कनफुसकियों में कुछ बातें कर लीं; यद्यपि नन्हा बटुक अपनी बाल सुलभवाणी में 'काका, क्या कह

रहे हो ? मुझे बताओ, मुझे भी बताओ' की रट लगाकर बराबर विघ्न डालता रहा। लेकिन दो युवा हृदय उस समय बटुक की उपस्थिति को सफा भूल गये।

थोड़ी ही देर में भक-भक करता इंजिन आ पहुँचा और बटुक चिल्लाया : "गाडी आ गई !" दोनों की प्रेमवार्ता अधूरी ही रह गयी।

"आइयेगा पधारियेगा !" की आवाजों के बीच गाड़ी चल दी और नरोत्तम तेजी से दूर चली जाती उस गाड़ी की ओर देखता रहा एकटक देखता ही रहा।

कुछ दूर खड़ा वशराम नरोत्तम की उस मुग्ध दृष्टि की ओर देख-देखकर मन-ही-मन मुस्कराने लगा।

नरोत्तम को इस तरह देखते हुए काफी समय बीत गया, यहाँ तक कि ट्रेन आँखों से ओझल भी हो गयी। बहुत समय के बाद भी जब नरोत्तम ने क्षितिज तक फैली दो समानान्तर चमचमाती पटरियों की ओर से दृष्टि नहीं हटायी तो दुनियादार वशराम की मुस्कराहट और फैल गयी। मालिक की उस दृष्टि को लौटाना और घर चलने के लिए कहना वशराम को उचित नहीं लगा। यह काम अन्त में बटुक को ही करना पड़ा।

फिर से बग्घी में बैठने के लिए अधीर उस बालक को अन्ततोगत्वा अपने चाचा को स्वप्नावस्था से जागृत करने को बाध्य होना ही पड़ा। उसने नरोत्तम का हाथ खींचकर झकझोरते हुए कहा :

'काका, अब चलो न जल्दी, रेलगाड़ी तो चली भी गयी !"

"हैं ?" नरोत्तम जैसे हड़बड़ाकर जाग उठा। फिर बटुक से अधिक तो मानों अपने-आपको सुनाते हुए बोला :

"हाँ, रेलगाड़ी तो गयी, चली ही गयी !"

नरोत्तम घोड़ा गाड़ी में बैठ गया। उसके कान में और हृदय में वशराम की गायी हुई प्रभाती का स्वर गूँज रहा था : 'पंछी बन बोले....'

८

सच्चे सपने

सूर्यास्त के समय, कपूर सेठ मेंगणी गाँव के करीब पहुँचे तो एथल अहीर भी अपनी गाय-भैंसों को बटोर कर घर की ओर लौट रहा था।

सेठ को देखते ही एथल ने हुलसकर पूछा: "क्यों कपूर बापू, आज गाँव से लौट रहे हो ?"

"हाँ भाई, हाँ !" सेठ ने भी उतने ही उल्लास के साथ जवाब दिया : " आज गांव हो आए और एक खुशखबर भी लेते आए ...."

"क्या खुशखबर है सेठ बापू, जल्दी बताओ !"

"तुम्हारी चम्पी बेन की सगाई कर आये है।" सेठ के बदले, बोलने के लिए अधीर सन्तोकबा ने एथल को उत्तर दिया।

"बहुत अच्छी बात है, बहुत खुशी की बात है, सेठानी माँ ?" भोले अहीर ने उमंग कर प्रसन्नता प्रकट की और बोला: "अब जल्दी से बिटिया का माँडा कर दो तो हम-जैसों का मुँह मीठा हो.........."

"अभी तो हमी को डेढ़ सेर दूध चाहिये।" सन्तोकबा ने उलट कर जवाब दिया: "हीर बाई से कह कर जल्दी से दुहा लीजो भैया।"

"अभी लो सेठानी माँ। समझ लो कि दुहा गया।" एथल ने गाँव में प्रवेश कर पशुओं को अपने बाडे की ओर हाँकते हुए कहा। कपूर सेठ ने एथल अहीर के यहाँ पिछले कई बरसों से दूध की बन्दी लगा रखी थी, परिणाम स्वरूप दोनों परिवारों में अच्छा मेल-जोल और अपनापा हो गया था।

घर पहुँचते ही सन्तोकबा ने चम्पा को हुक्म दिया :

"जा, जल्दी से हीरबाई के बाड़े से दूध की कलसी भर ला। अभी ताजा-ताजा दुहा जा रहा होगा। दूध हमेशा ऊपर का अच्छा, छाछ हमेशा तले की अच्छी। सारा गाँव उलोच जाये फिर दूध में स्वाद ही क्या रह जाता है ? इसलिए फौरन जाकर ले आ।"

चम्पा ने फुर्ती से पनिहारे की मुँडेर पर से डेढ़ सेरी कलसा उतार कर राख का हाथ फेरा और उस जगमगाते बरतन में अपने दमकते मुखडे का प्रतिबिम्ब निहारती हुई एथल अहीर के बाड़े की ओर चल दी।

एथल अहीर के बाड़े के विशाल आँगन में हीरबाई भैंस दुह रही थी। भगरी भैंस के पुष्ट थनों से दोहनी में छम्-छम्-छम् दूध की धारें गिर रही थी। इकहरे बदन वाली सुडौल अहीरन की गोरी खुली पीठ का बीच वाला भाग ऐसा लग रहा था मानो हरियाले खेत के बीच से पानी की लीक बही जा रही हो। इस समय एथल का सबसे छोटा लड़का बीजल माँ की पीठ पर सवार होने की कोशिश करता हुआ उसे यह कहकर तग कर रहा था : "अम्माँ, भूख लगी है......... रोटी दे..........नहीं तो में भगरी को बिदका दूँगा।"

हीरबाई उस ना समझ बच्चे को बहला-फुसला रही थी : "जरा सा दुहलूँ और तब अपने लल्ला को रोटी दूँ। मेरा राजा बेटा भैंस को बिदकायेगा नहीं। भैंस बिदक गयी और चम्पी बेन दूध लेने के लिए आई तो मैं उसे दूध की जगह क्या दूँगी, अपना कपाल ?"

"कपाल नही, हमे तो दूध चाहिए, दूध !" बाड़े में प्रवेश करती हुई चम्पा कोयल की तरह कूकी।

चम्पा को आया देख बीजल माँ की पीठ से उतर गया। हीरबाई ने चम्पा का स्वागत करते हुए कहा :

"आओ बहिना, आओ ! आज तो बहुत खुश दिखायी दे रही हो। हरख हिये मे समा नहीं रहा है ! क्या बात है ? इस खुशियाली का कारण कुछ हमे भी बताओ।"

"एथल काका ने, मालूम पड़ता है, सब-कुछ बता दिया है !" चम्पा ने कहा ।

"मुझे किसी ने कुछ नहीं बताया ।" हीरबाई ने अनजान बनते हुए कहा ।

"तुम्हें सब पता चल गया है ।"

"जब तक तुम न बताओ, कैसे पता चल सकता है ?" हीरबाई ने दोहनी सहित खटिया पर बैठते हुए कहा ।

"हीर काकी, मुझे जल्दी से दूध नाप दो, नहीं तो ब्यालू में देर हो जायेगी ।" लाड़ में आकर हीरबाई की गोद में बैठते हुए चम्पा ने कहा ।

"देर हो जाये मेरी बला से जब तक सारी बात खुलासेवार नहीं बतायेगी मैं भी दूध नापने की नहीं ।"

हीरबाई की वत्सल गोद में चम्पा को स्नेहमयी माता की गोद-जैसा सुख मिल रहा था । अहीरिन भी उसके निकलते हुए शरीर पर इस ममता से हाथ फेर रही थी मानो वह उसके पेट से जन्मी सन्तान हो ।

रिश्ता होने की खबर तो उसे अपने पति से मिल ही गयी थी, फिर भी उसने बड़े चाव से चम्पा के मुँह से सारी बात विस्तार पूर्वक सुनी । चम्पा ने भी बेझिझक अपना दिल खोलकर उसके सामने रख दिया । दूध-दूध की जगह रह गया और दोनों स्त्रियाँ बातों में ऐसी तल्लीन हुई कि समय का भी भान नहीं रहा ।

'जीजी, तुमने कितनी देर लगादी ?" जसी आ पहुँची और उसने भावी जीवन के सपने सुना रही चम्पा को जागृत किया : "अम्माँ, तो रास्ता देखते-देखते थक गयीं........"

"हाय राम ! मुझे हीरी काकी ने बातों में बझा लिया और मैं सफा भूल गयी !" कहती हुई चम्पा खटिया से उठ गयी ।

हीरबाई ने दूध जोखकर चम्पा को विदा करते हुए कहा : "अच्छा, जाओ ! अभी तो देर हो गयी है, फिर कभी आराम से जी भर कर बातें करेंगी..........."

चम्पा ने जैसे ही घर में प्रवेश किया सन्तोकबा ने फौरन जबान का चाबुक फटकारा :

"अब यों समय-असमय बहुत बाहर घूमना अच्छा नहीं, समझी ? अब तू बच्ची नहीं है; कल को ससुराल जायगी..........."

माँ के मुँह से चम्पा आज पहली बार ऐसे कठोर वचन सुन रही थी। कड़ी जबान से अपरिचित चम्पा को माँ के ये वचन तीखे भी लगे और मीठे भी। तीखे इसलिए कि उस मुग्धा की ताने-तिश्ने सुनने की आदत नहीं थी; मीठे इसलिए कि कल को ससुराल जाने की बात कही गयी थी, जो उसके मन की एकान्त आकांक्षा थी। धीरे-धीरे इस फटकार में निहित कड़वाहट दूर होती गयी और अन्त में मन-प्राणों को आप्लावित करने वाली केवल मिठास रह गयी।

"कल को !"

माँ ने तो इस शब्द का उपयोग 'थोड़े समय' के भावार्थ मे किया था, परन्तु चम्पा वाघणिया से सपनों का जो सोमरस पीकर आयी थी उसकी मस्ती में उसने इन शब्दों का वाच्यार्थ ही किया : कल को ! बस, कल ही को तो साजन के घर जाना है ! वास्तव में, विवाह होने में अभी दो-एक साल की देर तो थी ही परन्तु पति-मिलन की उत्कन्ठा के नशे मे चूर चम्पा को वह दीर्घ अवधि सिर्फ एक लम्बी विरह रात्रि के ही समान लग रही थी।

आज खाने-पीने से निवृत्त होने में काफी देर हो गयी थी। फिर भी कपूर सेठ और सन्तोकबा तुरन्त सोने के लिए नही गये, देर तक ओसारे में बैठे बाते करते रहे। कपूर सेठ हमेशा की तरह झूले में तकिया लगाये झूल रहे थे। सन्तोकबा अपनी सदा की बैठने की जगह ओसारे के खम्बे से टिकी, पाँव फैलाये बैठी थी। घर का काम तो उन्होंने बहुत पहले ही लड़कियों के जिम्मे लगा दिया था, इसलिए साँझ होते ही उनकी स्थूल टांगें बुरी तरह थक जातीं और जब तक दोनों लड़कियों से एक-एक टाँग अच्छी तरह दबवा न लेती; उन्हें नींद नहीं आती थी। इस समय भी, नित्य नियमानुसार, दोनों लड़कियाँ

माँ के एक-एक पाँव की सेवा कर रही थीं। एक अलिखित नियम-साही बन गया था कि चम्पा मां का दाहिना पाँव दबायगी और जसी बायाँ। और इसलिए पुत्र से वंचित सन्तोकबा दोनों लड़कियों को अपनी दाईं-बाईं आँखें मानकर सन्तोष कर लेती थीं।

झूले पर बैठे कपूर सेठ सुपारी काटते हुए बेटी के भावी विवाह की तैयारियों की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे थे। सन्तोकबा ध्यान से सुन रही थीं। सहसा पति को मज़ाक सूझा; बोले :

"चम्पा तो कल को अपनी ससुराल चली जायगी; फिर तुम्हारा दाहिना पाँव कौन दबायगा ?"

सन्तोकबा जरा सोच में पड़ गयीं। लेकिन उनके जवाब देने से पहले ही जसी बोल उठी :

"मैं दबाऊँगी; दाहिना और बायाँ, दोनों ही मैं दबाऊँगी।

सन्तोकबा ने ठण्डी साँस लेकर कहा :

"तू भी परायी अमानत है। तेरा सहारा भी आखिर कितने दिन ?"

"मेरा विचार तो वाघणिया में चम्पा के साथ जसी को भी निपटाने का हो गया था।" कपूर सेठ ने कहा : "दकुभाई के लड़के बालू के लिए मकनजी मुनीम बहुत जोर दे रहा था।"

"किस के लिए ?" जसी के कान खड़े हुए।

"समधी ओतमचन्द के साले दकुभाई है न, उनका लड़का बालू....."

सुना तो जसी ने लजाकर आँखें झुकाली और साड़ी का छोर हाथ में लिये वहाँ से जाने का उपक्रम करने लगी।

पति ने पत्नी से पूछा : " बालू तुम्हें कैसा लगा ?"

जसी और भी शरमा गयी, पाँव के नाखून से जमीन कुरेदने लगी।

सन्तोकबा बालू के बारे मे अपनी राय जाहिर करतीं उसके पहले ही चम्पा ने, जाने क्यों, तिरस्कार पूर्वक अपने ओठ सिकोड़ लिये। चम्पा के इस तरह ओठ सिकोड़ने का शाब्दिक भाष्य यह किया जा सकता है कि देखलिया बालू को, उस कुँए मे कुछ पानी तो है नहीं !

बड़ी बहिन को इस तरह मुँह विचकाते देख जसी को गुस्सा आ गया। उग्र स्वर मे जवाब तलब किया :

"मुँह क्यों बिचका रही हो ?"

प्रश्न ही ऐसा था जिसका जवाब देने के लिए चम्पा को फिर मुँह बिचकाना पड़ता। लेकिन अच्छा हुआ कि उसके पहले ही सन्तोकबा ने मुँह बिचकाने का भाष्य कर दिया :

"बालू तो एकदम नौटंकी की नटी-जैसा जनाना लगता है। मर्द बच्चे-जैसा पानी उसमें है ही कहाँ !"

"नहीं अम्माँ, ऐसा मत कहो।" चम्पा ने सन्तोकबा को मना करते हुए कहा : "जसी को बालू बहुत पसन्द है, मानों राजकुमार ही हो। क्यों जसी ?"

जसी तीसरी बार लज्जा का अनुभव कर आँखे झुकाने जा रही थी कि सन्तोकबा ने साफ-साफ कह दिया :

"राजकुमार नहीं तेरा सिर। मुँह पर की मक्खियाँ तो उडायी नहीं जातीं और चले है राजकुमार बनने। दिन-भर उसे रामजनियों की तरह चोटी पट्टी करने और राग अलापने से ही फुर्सत नहीं मिलती दूसरा काम क्या करेगा ? मर्द बच्चे का मुझे तो उसमें एक भी लच्छन नहीं दिखाई दिया !"

"मुझे भी बिलकुल मवाली-जैसा लगा।" पति ने समर्थन किया : "कहाँ नरोत्तम और कहाँ बालू ! घोड़े-गधे का अन्तर है। काबिलियत कहीं किसी की छिपी रहती है ?"

जसी को जमुहाई नहीं आ रही थी, फिर भी उसने ज़बर्दस्ती तेज़ आवाज़ के साथ जमुहाई लेकर कहा : "मुझे तो नींद आ रही है; अब जल्दी सो जाना चाहती हूँ।"

कोई बैठने का आग्रह करता उसके पहले तो वह वहाँ से उठकर चली भी गयी।

चम्पा ने कहा : "अम्माँ, तुमने बालू का मज़ाक उड़ाया, जसी को अच्छा नहीं लगा।"

"जसी को अच्छा लगने न लगने से क्या होता है ? उसे क्या मालूम कि सोना किसे कहते हैं और कथीर किसे ! अभी उस छोकरी की उम्र ही कितनी है और वह समझती भी क्या है ?" कपूर सेठ ने बालू के साथ-साथ जसी की योग्यता की विवेचना भी कर डाली और फिर पत्नी को जताने के लिए बोले : "मकनजी मुनीम तो पीछे ही पड़ गया था कि बालू से जसी की सगाई कर ही दो, पर मैं मूर्ख तो हूँ नही कि ऐसी हीरा-जैसी लड़की बालू जैसे आवारा के गले बांध देता ।"

"आपने मुनीम को क्या जवाब दिया ?" सन्तोकबा ने पूछा ।

"उसके मुँह पर मना कर देता तो वह बुरा मान जाता । इसलिए मैंने कहा, ऐसे मामलो मे जल्दबाजी से काम लेना अच्छा नहीं होता ········मेंगणी जाकर सोचेंगे और फिर आप लोगों को पत्र लिखेंगे········ अब जाये भैंस पानी में !" और सेठ खिलखिलाकर हँस पडे ।

चम्पा ने कहा—"बापूजी, आपने बहुत अच्छा किया । बालू में एक भी अच्छा लक्षण नही है ।"

"और यह भी सुनने में आया है कि दकुभाई की घरवाली बड़ी झगड़ालू है ।" सन्तोकबा ने कहा—"ऐसी झगड़ालू और कर्कशा सास के पाले पड़कर मेरी जसी की फजीहत ही हो जाती—बेचारी के लिए उम्र-भर का रोना लग जाता !"

"जसी के लिए भी नरोत्तम—जैसा ही एक लड़का ढूँढेगे ।" कपूर सेठ ने पत्नी को आश्वस्त किया ।

"जसी के लिए ऐसी जल्दी भी नहीं है ।" सन्तोकबा ने कहा । फिर सहसा याद आ जाने के कारण बोल उठी । "चम्पा की सगाई की खबर इसके मामा को देनी होगी न !"

"लिख देंगे, जल्दी क्या है ?" पति ने जवाब दिया ।

"नहीं, यो लिख देंगे' कहने से नहीं चलेगा । मेरा मनसुख भाई सबसे पहले है । देर से लिखने पर उसे बुरा लग जायेगा । पिछली

दीवाली पर मैं राजकोट गयी थी तो उसने जोर देकर कहा था कि चम्पा की सगाई, उससे पूछे बिना न की जाये।"

"अच्छा, ऐसा कहा था ?"

"हाँ, वह कहता था कि चम्पा तो किसी बडे लखपति के घर की बहू बनने के काबिल है; उसे ऐसे-वैसे ठिकाने मत बिठा देना।"

"हमने भी ऐसे-वैसे घर तो रिश्ता किया नहीं है !"

"लेकिन चम्पा के मामा से पूछकर यह सगाई की होती तो अच्छा रहता।" सन्तोकबा गम्भीर हो गयी थी।

"नही ही पूछा तो क्या अनर्थ हो गया ?"

"बात अनर्थ की नहीं, मेरे भाई के स्वभाव की है। उसकी आदत तो आप जानते ही हैं। न कुछ सी बात का बुरा मान जाता है।" सन्तोकबा ने घबराये हुए स्वर में कहा: "फिर यह तो शादी-ब्याह का मामला ठहरा। इसमें ननिहाल वालों को मुखिया बनाया होता तो अच्छा रहता। इसीलिए मैं कह रही हूँ।"

"अच्छी बात है, तुम राजी हो जाओ। कल सवेरे ही मनसुखलाल भाई को एक बढ़िया-सा पत्र लिखकर सब बता दूँगा। हमने हलका घर-वर तो ढूँढ़ा नहीं है कि उन्हे बुरा लगे।"

चम्पा का मन दुनियादारी की इन बातों में नहीं लग रहा था। वासन्ती पवन से पुलकित उसकी मनः सृष्टि में एक नई ही दुनिया बस गयी थी। उस नूतन सृष्टि में अपने मन-प्राण को पिरोये, वह काफी देर के बाद दुमजिले पर सोने के लिए गयी।

बिस्तर पर जा सोयी, लेकिन आंखों की नींद उड़ गयी थी। पलकों पर नवजात प्रेम का परिमल इस तरह छा रहा था कि वह दोनों पलकों को मिलने ही नहीं देता था; फिर नीद कैसे आती ?

इस समय वह प्रणयमुग्धा सो तो रही थी मेगणी गाँव के दुमंजिले पर, लेकिन मन पंछी कल्पना की पाँखो के सहारे उड़ता-उड़ता एक सुमधुर स्वप्न लोक में जा पहुँचा था...... ...वह नरोत्तम के गले में

वरमाला डाल रही थी…………चारों ओर सुहागिनें मंगल गीत गा रही थीं…………दुल्हे-दुलहिन सहित बाराती बाजे-गाजों के साथ बाघणिया गाँव के छोर पर पहुँचे…………दुमंजिले 'हरिनिवास' के सामने वर-कन्या को परछा गया………चम्पा ने अपनी वात्सल्यमयी जेठानी के पाँव छुए………'जीती रहो, दूधों नहाओ, पूतों फलो, सौ बरस की उम्र पाओ,'……बड़ी-बूढ़ियों ने आशीर्वादों की झड़ी लगादी……काफी रात बीते नववधू दुमजिले पर शयनगृह में गयी……।

अर्ध-सुषुप्तावस्था में सपनों के सोमरस से मतवाली चम्पा ने एक सिसकी सुनी और उसका सपना टूट गया। वह चौंककर उठ बैठी। देखा तो बगल मे सोयी हुई जसी सिसकियाँ भर रही थी।

६
चिट्ठी और चोट

"चिट्ठी लेना हो, कपूर बापा !"

ओसारे की सीढ़ियों के पास खड़े होकर भूरा डाकिये ने आवाज़ लगायी और चम्पा के कान खड़े हुए। इधर कुछ दिनों से, न जाने क्यों, डाक बंटने के समय, चम्पा जाने-अनजाने किसी के पत्र की प्रतीक्षा किया करती।

कपूर सेठ ने पत्र ले लिया और झूले पर बैठकर पढ़ने लगे। इस बीच सन्तोकबा भी रसोई घर से निकल आयी और पूछा—"किसकी चिट्ठी है ?"

रसोई घर में चूल्हे के पास बैठकर रोटी बनाती हुई चम्पा भी कुतूहलवश थोड़ा समीप आ गयी और सबकी निगाहें बचाकर रसोई घर के दरवाज़े के पीछे छिपकर खड़ी हो गयी।

पूछे गये प्रश्न का जब कोई उत्तर नहीं मिला तो संतोकबा ने फिर पूछा—"किस गाँव की चिट्ठी है ?"

चम्पा की जिज्ञासा और तीव्र हुई। पिता के मुँह से यह सुनने के लिए कि 'बाघणिया की है' वह उत्कंठित हो गयी। लेकिन तभी चिट्ठी में आँखें गड़ाये हुए कपूर सेठ ने कहा—"राजकोट की।"

सुनकर चम्पा निराश हो गयी; लेकिन सन्तोकबा को सन्तोष हुआ। बोली—"अहा, मेरे मनसुख भाई की चिट्ठी है········चम्पा की सगाई की बधाई की········"

"नहीं, बधाई की नहीं········"

"ऐं ? क्या कहा ?"

"बधाई की चिट्ठी नहीं है, भाई।" पत्र का अन्तिम अंश पढ़ते हुए कपूर सेठ ने भारी आवाज़ में कहा—"यों समझलो कि नाराज़ी की है········"

यह अनपेक्षित उत्तर सुनकर सन्तोकबा इस कदर हक्का-बक्का रह गयी कि अधिक पूछताछ करने का होश भी नहीं रहा। दरवाज़े की ओट में छिपी खड़ी चम्पा भी मन-ही-मन भाँति भाँति के तर्क-वितर्क करने लगी।

अन्त में कपूर सेठ ने ही अपने कथन का स्पष्टीकरण किया: "चम्पा की सगाई बाघणिया करने से इसके मामा को बहुत बुरा लगा।"

"सो क्यों ?"

"लिखते हैं कि हीरे जैसी लड़की को धूरे पर फेंक दिया।"

"ओतमचन्द सेठ का घर धूरा कैसे हो गया ? इतना बढ़िया घर······ .."

"मनसुख भाई लिखते हैं कि वाघणिया जैसे गवईं गाँव में चम्पा की जिन्दगी बर्बाद हो जायेगी।"

"तो हमारा मेंगणी गाँव ही कौन बड़ा शहर है ?" सन्तोकबा ने दलील दी।

"मेंगणी बाघणिया से छोटा ही क्यों न हो," कपूर सेठ ने जवाब दिया—"चम्पा के मामा तो लिखते हैं कि मेरी भानजी राजकोट-जैसे बड़े शहर के ही उपयुक्त है और वहीं शोभा पा सकती है।"

"मगर बड़े शहर में ओतमचन्द सेठ के जैसा ऊंचा खानदान कहाँ मिल सकता है। ?"

"मनसुख भाई लिखते हैं कि हमने उनसे कहा होता तो वे ऐसा कुलीन और सम्पन्न घराना ढूंढ़ देते जिसमें एक नहीं अट्ठारह ओतमचन्द समाजायें और पता भी न चले........"

"लेकिन नरोत्तम जैसा दामाद........."

"लिखते है कि राजकुमारों-जैसे सुन्दर सात सौ लड़के मेरी जेब में रखे हैं; लेकिन आप लोगों ने जल्द-बाजी करके चम्पा को गाँव के गोबर में फेक दिया।" कपूर सेठ ने इस बार मनसुखलाल के लिखे वाक्य ही सुना दिये।

"अब जसी के लिए उसके मामा से ही कहेंगे कि शहर का कोई लड़का ढूँढ दें। फिर तो उन्हें सन्तोष हो जायेगा?"

"लेकिन मामाजी तो लिखते हैं कि अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है........."

"क्या मतलब? कुछ भी कैसे नहीं बिगड़ा है?" सन्तोकबा ने घबराकर पूछा—"मेरे कुछ समझ में नहीं आया........."

"मनसुख भाई का कहना है कि अब भी चम्पा की सगाई तोड़ दो तो शहर मे अच्छे से अच्छे घर उसका रिश्ता तय करा दूँ........."

कपूर सेठ की जबान यह बात कहते-कहते लड़खड़ा गयी। संतोकबा सुनकर अवाक् रह गयी। लेकिन रसोई घर के दरवाजे की ओट में खड़ी चम्पा पर तो जैसे वज्र ही टूट गिरा!

ओसारे में भयंकर सन्नाटा छा गया। कपूर सेठ की अन्तर्व्यथा उनके चेहरे पर उभर आयी। और सन्तोकबा इस अनुचित सलाह को सुनकर इस कदर शर्मिन्दा हुई कि सिर उठाकर पति की ओर देखने की हिम्मत भी न कर सकी। बड़ी देर तक सिर झुकाये जमीन कुरेदती रही।

सगाई तोड़ने की अनुचित सलाह से उन लोगों का विक्षुब्ध होना स्वाभाविक था। मनसुख भाई यों तो स्वयं मेंगणी से भी छोटे गाँव के बाशिन्दे थे, लेकिन काम-काज के सिलसिले में शहर में जा बसे थे। व्यापार में अपने ही पुरुषार्थ से आगे बढ़ते हुए वे एक बड़ी और प्रभावशाली ब्रिटिश कम्पनी के दलाल बन गये थे जो काठियावाड़ की कृषि-उपज खरीदने का काम करती थी। मनसुख भाई इस कम्पनी की ओर से काठियावाड़ का कपास खरीदते और उसे विदेश भेजते थे।

दलाली के इस कारोबार में मनसुखलाल को काफी पैसा मिल जाता था; परिणाम स्वरूप उस जमाने के काठियावाड़ में उनकी गिनती 'मालदारों' में होने लगी थी। विदेशी कम्पनी से सम्बन्ध होने के कारण उनका मान-मरतबा भी बहुत बढ़ गया था; इसलिए वे अपने आपको दूसरों से ऊँचा-बहुत ऊँचा समझने लगे थे। दूसरों को और खास तौर पर गाँव वालों को वे हीन समझते और मन-ही-मन घृणा करते थे। राजकोट जंक्शन स्टेशन के सामने एक मकान में वे बहुत-कुछ पाश्चात्य पद्धति के वर्ण संकरीय ढंग से रहते थे। उनका यह 'विलायती' रहन-सहन उस जमाने में लोगों की चर्चा का विषय हो गया था। साहब लोगों की तरह रहने वाले ये सेठजी देशी ढंग से रहने वालों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे। मनसुखलाल का यह दम्भ और अपने को श्रेष्ठ समझने का भाव मेंगणी भेजे गये उनके पत्र के शब्द शब्द में ध्वनित हो रहा था।

पत्र पढ़कर पति-पत्नी विचार मग्न हो गये। वे दोनों अपने को बडे असमंजस की स्थिति में पा रहे थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या करना उचित है। यों तो कपूर सेठ कोई भी निर्णय करने के लिए स्वतन्त्र और सक्षम भी थे, परन्तु अपने साले मनसुखलाल भाई के प्रभाव और मान-मरतबे के कारण उनसे थोड़ा दबते थे। इसीलिए हठात् उन्हें सूझ नहीं रहा था कि ऐसे टेढ़े पत्र का क्या जवाब दें।

सन्तोकबा घबरायी हुई बैठी थी कि रसोई घर से तवे पर रोटी के जलने की गन्ध आयी और वे हड़बड़ाकर उधर भागी। रसोई में जाकर देखा तो तवे पर रोटी जल रही थी और दरवाज़े की ओट में खड़ी चम्पा की आँखों से चौधार आंसू बह रहे थे।

× × × ×

कुछ दिनों बाद मेंगणी गांव में यह खबर सुनने को मिली कि बाघणिया वाले ओतमचन्द सेठ का कार-बार चौपट हो रहा है।

कपूर सेठ को आये दिन इस तरह के समाचार मिलने लगे—

'ओतमचन्द सेठ का हाथ बहुत तंग हो गया।'

'दुकान को काफी धक्का पहुंचा।'

'साख उठती जा रही है और हुंडियाँ बिना सिकरे ही लौट रही है।'

सब को मीठी लगने वाली यह परायी चर्चा मेंगणी के बाजार से वहाँ के घर-घर में फैल गयी। कपूर सेठ के घर में भी इस चिन्ताजनक समाचार पर चुपचाप चर्चा हुई। सुना जाता है कि दकुभाई अपने बहनोई से नाराज होकर दुकान छोड़ गया; वह वाघणिया से ईश्वरिया रहने चला गया; मकनजी मुनीम ने भी सेठ की नौकरी छोड़ दी; ओतमचन्द सेठ को कूल-किनारा नजर नहीं आ रहा और वे पगड़ी बदलने (दिवाला निकालने) का इरादा कर रहे हैं......

कपूर सेठ इस तरह की बातें सुनकर व्यग्र हो गये, लेकिन घर में सबसे अधिक व्यग्र चम्पा थी। एक दिन उसने मौका पाकर डरते-डरते अपने पिता से कहा :

"बापूजी, आप वाघणिया जाकर पता तो लगाइये कि बात असल में क्या है! अगर वे लोग सच ही गाढ़े में हों तो उनकी मदद करना हमारा फर्ज है।"

पुत्री की यह सलाह पिता को छोटे मुँह बड़ी बात तो अवश्य लगी, लेकिन साथ ही बेटी की इस समझदारी पर बाप को खुशी भी हुई। समधी यदि सच ही मुसीबत में हैं तो उसकी इज्जत बचाना, बेटी की दृष्टि से, अपने ही लाभ की बात होगी, यह सोचकर कपूर सेठ दूसरे ही दिन वाघणिया के लिए रवाना हो गये।

× × ×

वाघणिया पहुँचने पर कपूर सेठ ने पाया कि जो उड़ती खबरें मेंगणी में सुनी थीं उनमें अतिशयोक्ति नहीं, अल्पोक्ति ही थी। यहाँ की स्थिति, जितना उन्होंने सोचा था उससे कहीं विषम थी। लेकिन कपूर सेठ को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ऐसी विपत्ति में भी ओतमचन्द सेठ के चेहरे पर नाम-मात्र को शिकन नहीं थी। अपनी बिगड़ी हुई हालत को लेकर न तो उनके मन मे घबराहट थी और न खिन्नता-क्षोभ ही।

"होगा। जो होना था सो हुआ। जैसी हरि की इच्छा।" ओतमचन्द हर बात में पहले की तरह 'हरि इच्छा' की टेक लगा कर छुट्टी पा लेता था।

"लेकिन इसका उपाय क्या है?" कपूर सेठ ने पूछा: "निकलने का कोई रास्ता?"

"न कोई उपाय है न कोई रास्ता।" ओतमचन्द ने कहा: "घर के भेदी ने ही लंका ढायी है तो मैं दूसरों को क्या दोष दूँ? होगा, जैसी हरि की इच्छा।"

इस तरह की व्यापारिक आपदाओं के जानकार कपूर सेठ ने इस विपत्ति से निकलने का व्यावहारिक मार्ग सुझाया। स्थावर जायदाद, जमीन, मकान आदि रिश्तेदारों के नाम और गहने-कपड़े, बरतन-भाँडे वगैरह चल-सम्पत्ति इधर-उधर कर देने की सलाह दी। लेकिन ऐसी एक भी सलाह ओतमचन्द को स्वीकार नहीं हुई।

"नहीं भाई, नहीं! ऐसा गलत काम मुझसे न होगा। मैं किसी के हक का पैसा मारूँगा नहीं। लेनदारों की एक-एक पाई मेरे लिए सोने की मुहर है। जब तक होगा दूँगा। अपना बस चलते किसी को डुबाऊँगा नहीं। जब बस नहीं रह जायगा तो लाचारी है। लेकिन अपना ईमान मैं नहीं बिगाड़ूँगा। किसी का पैसा मार भी लिया तो दूसरे जन्म में चुकाना पड़ेगा—छुटकारा कहाँ है! मुझसे ऐसा बुरा काम न होगा।"

"लेकिन इस तरह चुकाने बैठे तो नंगे नवाब हो जाओगे।"

"जैसी हरि की इच्छा।" ओतमचन्द ने फिर हरि-इच्छा को बलवान बताया और बोले: "बाकी, छल-फरेब मुझसे होगा नहीं।"

"आप तो नरसी भगत बने जा रहे हैं!" कपूर सेठ ने उग्र स्वर में कोसा: "आगे-पीछे का भी कुछ सोचिये। छोटा भाई है, उसका शादी-ब्याह करना है, बाल-बच्चे होंगे········और भगवान का दिया आपका अपना बच्चा भी है—इन बेचारों की क्या गत होगी?"

"सब अपनी किस्मत लेकर आये हैं।" ओतमचन्द ने साभिमान

जवाब दिया : "जो हाथ में है वह भले ही चला जाये, मगर किस्मत का लिखा कौन छीन सकता है !"

ओतमचन्द की इस दार्शनिकता को पाना कपूर सेठ के बूते का नहीं था। उस बेचारे को अपनी बेटी की फिक्र सता रही थी। चाहता था कि किसी तरह अपने होनेवाले दामाद की इज्जत बचा सके। लेकिन 'हरि की इच्छा' को सर्वोपरि मानकर उसी के सहारे रहने वाला ओतमचन्द अपने साथ छोटे भाई नरोत्तम को डुबोये दे रहा था। और यह बात किसी भी तरह कपूर सेठ के गले के नीचे नहीं उतर पाती थी। उन्हें चिन्ता नरोत्तम के 'भाग्य के लिखे' की नहीं, घर और कोठार में उसका जो भाग्य धन-धान्य के रूप में विद्यमान था, उसे बचाने की थी। इसीलिये अन्त में इस संकट से पार पाने के लिए अपनी ओर से आर्थिक मदद करने को तैयार हुए। समधी के बड़े घर और लाख रुपये की इज्जत बचाने के उद्देश्य से कपूर सेठ ने कुछ संकोच, परन्तु साथ ही बड़ी उदारता से कुछ रुपये देने का प्रस्ताव रखा। लेकिन ओतमचन्द ने इस प्रस्ताव को मानने से भी साफ इनकार कर दिया :

"ऐसी बात तो आप मुँह पर भी मत लाइए। आपसे पहले दूसरे और भी कई रिश्तेदार अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक पाँच पैसे उधार देने की बात कह गये है। लेकिन मैंने सभी को यही जवाब दिया कि अब किसी से पैसा उधार लेकर मै कर्ज के पहले से ही भारी बोझ को और नहीं बढ़ाना चाहता।"

"आप मुझे भी 'किसी' यानी पराया समझते हैं ?" कपूर सेठ ने पहली बार अपने होने वाले रिश्ते की दुहाई दी।

"आप तो मेरे अपने हैं, बल्कि अपनों से भी अधिक मेरे सबसे प्रिय और पास के रिश्तेदार। लेकिन डूबने वाला दूसरों के तुम्बे के सहारे कितनी देर तैर सकता है ? माँगे के घी से रोटी भले ही चुपड़ जाये, लड्डू और चूरमा नहीं बन सकता। समझे मेरे भाई।"

"लेकिन आपकी मुसीबत मे हम काम न आ सकें, खड़े देखते रहें

तो रिश्तेदार कैसे ?" कपूर सेठ ने चम्पा की समझदारी भरी सलाह याद कर एक बार फिर आग्रह किया।

और ओतमचन्द ने पुनः उतने ही आग्रह-पूर्वक अस्वीकार करते हुए जवाब दिया : "देखो भैया, मुझ पर तो इस समय आसमान ही फट पड़ा है; आप कहाँ-कहाँ और कितने थेगले लगा सकेंगे ? इसलिए मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिये। जैसी हरि की इच्छा।"

और अपनी इस 'हरि-इच्छा बलीयसी' के साथ उन्होंने उस विषय को वहीं समाप्त कर दिया।

१०
जीवन-रंग

"अजी, सुना ? ओतमचन्द का डिब्बा गोल !"

"पेढी के पटिये पलट गए !"

"ओतमचन्द की दुकान का उठावना हो गया !"

"लाख के बारह हजार और 'होल-लाट' (सारे सामान) का नीलाम !"

"दिन दहाड़े दिवाला निकाल कर गरीब विधवाओं को रुला दिया।"

"बड़ों की बड़ी पोल !"

"नामी साह मारे और नामी चोर मारा जाये।

"बँधी मुट्ठी लाख की और खुल गयी तो खाक की !"

"कल के लखपति आज के भिखारी !"

अखबार के सनसनीखेज शीर्षकों जैसे मिताक्षरी सुभाषित वाघणिया के गली-मुहल्लों में कहे और सुने जाने लगे। गांव के लोगों के लिए मनो-विनोद का अच्छा सामान हो गया। कल तक ओतमचन्द की जो पेढ़ी सारे गाँव की, बल्कि पूरे इलाके की नाक समझी जाती थी आज उसका दिवाला निकल गया था। यह घटना उस छोटे से गाँव के लिए बहुत बड़ी बात थी। इसीलिए लोग-बाग अत्यधिक कुतूहल से इस

घटना के बारे में और इसके परिणाम स्वरूप घटित होने वाली अन्य घटनाओं के बारे में बातें करने लग गये थे।

चर्चा करने वालों के साथ-साथ आलोचकों की भी कमी नहीं थी। कार्य-कारण का पारस्परिक सम्बन्ध जोड़कर ये लोग मनचाहे अभिप्राय व्यक्त करते :

"अपने तो बच गये और दुनिया-जहान को डुबो दिया।"

"अब रोयेंगे लाल कसूमल पगड़ी वाले!"

"लोग भी तो ऐसे ही हैं। बिना सोचे-समझे, आँख मूँद कर ओतमचन्द के यहाँ पैसा जमा कर आते थे। मूल से ब्याज जो प्यारा हो गया था। अब रोयें जी भर कर!"

"बछड़ा कूदता है खूँटे के ही बल। ओतमचन्द ने इतना फैलाव किया था दूसरों की अमानत और अपनी साख पर। उसने तो अपनी सात पीढ़ियों का इन्तजाम कर लिया, मगर सारे गाँव को काली चादर* ओढ़ा दी।"

"खाली गाँव को काली चादर ओढ़ा देता तो कोई हर्ज नहीं था। मगर उसने तो बेचारी गरीब विधवाओं तक को डुबो दिया; यह अच्छा नहीं किया। दुखियारी गरीब औरतें पेट काट कर उसकी दुकान को मातबर पेढी समझ कर अपनी जमा-जथा रख गयी थीं। उन बेचारियों की तो रोटी ही छिन गयी।"

लेकिन उसके बाद की घटनाओं को देखकर आलोचकों को अपनी भूल स्वीकार करनी पड़ी; पर निन्दा के उत्साह में उनसे जल्दबाजी हो गयी थी।

यह बिन बादल की गाज कैसे टूटी, इसका ठीक-ठीक ज्ञान तो

---

* सौराष्ट्र में औरतें परिवार में किसी की मृत्यु हो जाने पर सोग पालने के लिए काली अथवा गहरी नीली चादर ओढ़ती है।

—अनु०

ओतमचन्द को भी नहीं था। उसे तो केवल इतना याद था कि वाघ-णिया से दकुभाई के जाने के बाद एक काफी बड़ी रकम की हुण्डी सिकरने के लिए आयी थी। उस समय दुकान में इतना पैसा नहीं था, इसलिए ओतमचन्द ने आठ दिन की मुहलत माँगी तो हुण्डी लौट गयी। फिर किसी पूर्व नियोजित षड़यन्त्र के अनुसार छोटी-बड़ी असंख्य हुण्डियाँ एक साथ सिकरने के लिए आने लगी। सबको सिकार पाना मुश्किल ही था, इसलिए चारों ओर खबर उड गयी कि ओतमचन्द की पेढ़ी गड़हे में उतरती जा रही है। इस अफवाह ने सभी लेनदारों में तहलका मचा दिया और हर आदमी अपना पैसा उठाने के लिए दौड़ पड़ा।

ओतमचन्द फौरन चेत गया था। अपने ही रिश्तेदारों द्वारा खड़ी की हुई इस विपत्ति से उबरने की उसने बहुत कोशिश की; लेकिन जब किसी भी तरह सफलता न मिली तो उसने लेनदारों का जितना पैसा ईमानदारी से चुकाया जा सकता था, चुकाना शुरू कर किया। सबसे पहले उसने विधवाओं और धर्म संस्थानों का पैसा लौटाने की घोषणा की। लेकिन दोनों ने ही अपना पैसा उसके यहाँ से उठाने से इनकार कर दिया।

ओतमचन्द से अधिक विश्वसनीय और खरा असामी ढूंढ़ पाना उनके लिए मुश्किल ही था। उनको क्या पता था कि यह खरा आसामी अब डूबने ही वाला है। ओतमचन्द ने सांकेतिक भाषा में उन्हें बहुत समझाने-बुझाने की कोशिश की कि जमाना बहुत बुरा आ रहा है, इसलिए अपनी पूँजी अपने पास ही रखो; मैं भी अपनी जिम्मेवारियां घटाना और बोझा कम करना चाहता हूँ। लेनदार कुछ भी सुनने-समझने को तैयार नहीं थे। नतीजा यह हुआ कि जब संकट आया तो जिसका पैसा उसके यहाँ रह गया था, वह रह ही गया.........

बचे-खुचे पैसों और माल-मिल्कियत को इधर-उधर करने की रिश्तेदारो की सलाह को ओतमचन्द ने मानने से इनकार कर दिया और जितना कुछ चुकाया जा सकता था, चुकाने के लिए तैयार हुआ। दुकान का सारा हिसाब-किताबमय जमा-नामे के उसने अपने लेनदारों के

सामने रख दिया। घर की जमा पूंजी ओर माल-मिकिल्यत भी सामने कर दी और कह दिया, 'मेरे पास कुल मिलाकर इतना ही हैं, जितना लिया जा सके ले लीजिए।"

नया दुमंजिला मकान तो पहले से ही गाँव वालों की आँखों में खटक रहा था। लेनदारों की नीयत उसे भी हड़पने को हुई। ओतमचन्द ने जब मकान बेचने का फैसला किया तो कुछ लोग दुःखी हुए, परन्तु बहुत से प्रसन्न भी हुए।

"गरीबों के गले काटकर दुमंजिला हवेली की नींव रखी गयी थी, पाप का पैसा कितने दिन टिकता ?"

"भगवान के घर देर है अन्धेर नहीं; वह सारा हिसाब-किताब यहीं चुकता कर देता है।"

अफ्रीका से लौटे हुए एक लोहाणा व्यापारी ने ओतमचन्द का दुमंजिला मकान खरीद लिया। पुराना मकान और बाजार की दूकानें भी निकाल देनी पड़ीं। अन्त में ओतमचन्द एक किसान के छोटे-से मकान में किराये से रहने के लिए चला गया।

जिस दिन 'हरि-निवास' खाली कर किराये के मकान में रहने के लिए गये, समझदार नरोत्तम ने दिल कड़ा कर किसी तरह हिम्मत बनाये रखी, लेकिन लाडकोर को बहुत बुरा लगा। कितने अरमानों से वह नये मकान में रहने के लिए गयी थी! उसकी सारी अभिलाषाएँ मन की मन में रह गयी। ओतमचन्द उसे सिर्फ एक ही दिलासा दे सकता था, जो उसने दिया : "जैसी हरि की इच्छा !"

लाडकोर अत्यधिक भावुक होते हुए भी दुनिया का ऊँच-नीच समझती थी, इसलिए जीवन के इस उलट-फेर को किसी तरह बर्दाश्त कर गयी। परन्तु नन्हें बटुक की स्थिति बहुत दयनीय हो गयी; वह न तो पूरी तरह हालत को समझता था और न एकदम नासमझ ही था। नाटक के पट-परिवर्तन की तरह जीवन के बदलते हुए रंगों को न वह समझ सकता था, न बर्दाश्त ही कर सकता था। इसलिए बार-

बार पूछने लगता : 'अम्माँ, हमने अपना नया मकान क्यों खाली कर दिया ?' माता-पिता जब भी उसके मुँह से यह भोला सवाल सुनते उन्हें मर्मान्तिक पीड़ा होती ।

साँप के केंचुल छोड़ने की तरह ओतमचन्द बिलकुल आसानी से एक-एक कर सारे परिग्रहों का त्याग करने लगा । संयोग से उस समझदार आदमी ने मन को सन्तुलित बनाये रखने की कला हस्तगत कर ली थी, इसलिए वह अपने जीवन के इस उलट-फेर पर बहुत उद्विग्न नहीं होता था । लेकिन सुखों की सेज पर पौढ़ चुकी लाडकोर का कलेजा मसोस उठता था । उस चतुर गृहिणी को अपने एकाकी पुत्र बटुक के भविष्य की चिन्ता से भी अधिक पुत्रवत् देवर नरोत्तम के आसन्न भविष्य की चिन्ता सताती थी । 'नरोत्तम की शादी का अब क्या होगा ? धन और इज्जत का दुहरा धक्का लगा इसलिए समधियाने वाले कहीं सगाई तो नहीं तोड़ देंगे ?' लाडकोर अपनी इस आशंका को पति के सामने अवश्य व्यक्त नहीं करती थी, परन्तु यह उसे अन्दर-ही-अन्दर खाये जाती थी । अनेक प्रकार की आपत्तियों-विपत्तियों में गले तक डूबे हुए ओतमचन्द को सपने में भी इस बात की आशंका नहीं थी, बल्कि कहना चाहिए कि अपनी हाल की परेशानियों के कारण इस सम्भाव्य आपत्ति की ओर ध्यान देने का उसे अवकाश ही नहीं मिल पाता था । लेकिन लाडकोर का नारी-हृदय इस सम्भावना से कैसे विमुख रह सकता था ? उसकी तेज निगाहों से यह बात छिपी नहीं थी कि नरोत्तम के चेहरे पर ओतमचन्द से भी अधिक गहरा दुःख छाया रहता है । शादी के सपने देखने वाले देवर के दुःख का असली कारण लाडकोर को खूब मालूम था । इसीलिए तो दूरन्देश लाडकोर ने एक दिन डरते-डरते अपने पति से कहा :

"हम तो बर्बाद हो ही गये, अब छोटे भाई नरोत्तम का भविष्य बनाने का भी तो फिक्र करो.........या उसे भी अपनी तरह नंगा फकीर बनाने का इरादा है ?"

"कोई किसी को फकीर नहीं बना सकता ।" ओतमचन्द ने अपना

दार्शनिक ज्ञान बघारा : "सब अपनी किस्मत और रिजक-रोटी साथ लिखाकर आते हैं, समझी ?"

"मैं तो सब समझती हूँ, पर क्या समधी भी इसे समझते हैं ?" लाडकोर ने मर्मस्पर्शी सवाल पूछते हुए कहा :" "दुबले घर में अब वे अपनी लड़की देने को राज़ी हो जायेंगे ?"

"अच्छा है, उनकी परीक्षा हो जायगी—पता चल जायगा कि हमारे समधी कितने गहरे में हैं।" ओतमचन्द ने उदास होकर कहा : "ऐसे ही समय आदमी की परख होती है। सच्चा मोती तो ऐसी हजारों चोटें झेल लेता है, नकली एक ही चोट में चूर-चूर हो जाता है। समझी ?"

पति का सुझाव पत्नी की समझ में चाहे न भी आये, परन्तु वह उसके सिर-माथे तो होता ही है।

ओतमचन्द एक-एक कर सभी कीमती सामान निकालने लगा। जब भी कोई चीज़ बिकती लोगों को कुत्सा का एक और विषय मिल जाता था। ऐसे प्रत्येक अवसर पर लाडकोर का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता, परन्तु ओतमचन्द के हमेशा प्रसन्न दिखायी देने वाले चेहरे पर दुःख की एक रेखा भी नहीं उभरती थी। वह तो मानो विदेहराज जनक की-सी अनासक्ति से एक-एक वस्तु उस सर्व भक्षी आग में झोंकता जा रहा था।

दुमंजिला हवेली बेची, गाँव के बाजार की दो-तीन दुकानें बेच दी और अन्त में अमरगढ़ स्टेशन के पास वाली धर्मशाला को भी बेच देना पड़ा। लेकिन जब घोड़ा गाड़ी बेचने की बारी आई तो पहली बार ओतमचन्द का मन जरा-सा डगमगा गया। कारण यह था कि घोड़ा गाड़ी से नन्हें बटुक का गहरा भावनात्मक सम्बन्ध था। गाड़ी घोड़े और उनके साईस वशराम, तीनों के ही साथ बटुक की ऐसी आत्मीयता हो गयी थी कि उनके अभाव में बटुक की मनः स्थिति की कल्पना करते हुए भी ओतमचन्द को डर-सा लगता था। बड़े अरमानों से बनाये हुए दुमजिले मकान को निकालते समय जिस ओतमचन्द के

चेहरे पर शिकन भी नहीं पड़ी थी वही ओतमचन्द घोड़ा गाड़ी को पराये हाथों में सौपते वक्त असमंजस मे पड़ गया और हजार तरह की बातें सोचने लगा ! एक मन कहता था कि घोड़ा-गाड़ी रख कर बटुक के बाल हृदय को आघात से बचाले; लेकिन दूसरा यह भी विचार आता था कि सारा घर फूँकने के बाद यदि घोड़ा गाड़ी को रख लिया तो लोग यही कहेंगे कि गाँव को डुबोकर अपना घर बचा लिया। और अब मुझ-जैसे गरीब के यहाँ घोड़ा गाड़ी की जरूरत भी क्या है ? टाट में मखमल के पैबन्द की तरह वह न केवल लोगों का ध्यान खींचेंगी, उनकी आँखों में गड़ेगी भी। ऐसी गलती करने से फायदा ?

अन्त में जी कड़ा करके ओतमचन्द सेठ घोड़ा गाड़ी को बेचने के लिए तैयार हुए। लेकिन कीमती गाड़ी और ऊंची नस्ल के घोड़े का तुरंत खरीदार मिलना मुश्किल ही था। उस जमाने में घोड़ा गाड़ी बसाना किसी ऐसे-वैसे का काम नहीं समझा जाता था। इसके लिए बडे कलेजे की जरूरत होती थी; क्योंकि "वाहन रखना हाथी बाँधने से कम नहीं समझा जाता था। अन्त में, शेखाणी नामक एक मेमन व्यापारी जो बरार से अच्छा पैसा पैदा करके लौटा था, उस सुन्दर घोड़ा गाड़ी को खरीदने के लिए राजी हो गया।

जिस दिन गाड़ी और उसका साज-सरंजाम खरीदार को देना था, सारे घर में गहरी उदासी छा गयी। नन्हा, नासमझ बच्चा होते हुए भी बटुक इतना तो समझ ही गया कि अब वशराम की गोद में बैठकर चाबुक फटकारते हुए 'चल मेरे घोड़े, चल !' कहने का अवसर नहीं मिलेगा। इसलिए वह सवेरे से ही फूट-फूट कर रोने लगा था। नासमझ बेटे को यों रोते देख दुःख की मार से विह्वल लाडकोर भी अपने पर सयम न रख सकी। केवल ओतमचन्द ने सारी वेदना को अन्दर दबाये रख हँसते-हँसते इस अप्रिय कर्तव्य को पूरा किया।

गाड़ी के साथ वशराम की भी ओतमचन्द के यहां से अपने आप छुट्टी हो गयी ! उस गरीब के हक में इतना अच्छा हुआ कि शेखाणी ने गाड़ी घोड़े का सौदा करते समय उसे भी अपने यहाँ नौकर रखने का

फैसला कर लिया था । पुराने मालिक के यहाँ से चलते समय वशराम अपने आँसू न रोक सका । बटुक को गोद में उठा कर वह देर-तक उसे पुचकारता और प्यार करता रहा; और अन्त में कलेजे पर पत्थर रखकर नये मालिक की नौकरी बजाने के लिए चला गया ।

"देखा तुमने, ओतमचन्द की बधिया कैसी बैठ गयी ? एकदम सूपड़ा साफ हो गया !"

ओतमचन्द की दुरवस्था पर लोगों को व्यंग्य कसने का एक मौका और मिल गया ।

"लक्ष्मी चंचल है । बड़े-बड़ों को बुत्ता दे जाती है ।"

"इसीलिए तो बुजुर्गों ने कहा है कि कभी धन का अहंकार न करे । अहंकार तो राजा रावण का न रहा, फिर ओतमचन्द किस खेत की मूली है ।"

"जो एक दिन अपने खर्च से धर्मशाला बनाकर सदाव्रत चलाता था, आज खुद उसी के सदाव्रत माँगने के दिन आ गये ।

"यहाँ का किया यहीं भोगना पड़ता है । व्यापार-धन्धे में रोज हजारों सच-झूठ बोलना और सीधा-औधा करना पड़ता है, उसका बदला मिले बिना रह सकता है भला ?"

"दूध की कमाई दूध में और पानी की कमाई पानी में हो जाती है । ऊपर वाले के यहाँ न देर है, न अंधेर; उसका हिसाब एकदम चोखा और साफ रहता है ।"

विघ्न सन्तोषी इस तरह प्रसन्न होते थे तो कुछ सम दुःखी ओतमचन्द के प्रति अपनी सहानुभूति भी प्रकट करते थे ।

"यह तो धूप छाँव है; आना-जाना लगा ही रहता है; कभी घी घना तो कभी मुट्ठो चना । ऐसी बातों का क्या तो हर्ष और क्या शोक । समता का ही नाम सच्चा सुख है ।"

"भाई, पुरुष के नसीब के आगे पत्ता लगा होता है; उड़ते देर नहीं लगती । भाग्य में होगा तो कल इससे भी सवाया-दूना मिल जायगा । न बिगड़ते देर लगती हैं, न बनते ।"

११

मैं कहता हूँ खरी-खरी

"ओतमचन्द है ही इस लायक—उसने खुद होकर मुसीबत को नेवता दिया !"

वाघणिया से लौटकर आने के बाद कपूर सेठ की प्रतिक्रिया इसी तरह के शब्दों में अभिव्यक्त होती थी।

"आगे-पीछे की कुछ न सोची और खुद अपने हाथों पाँव पर कुल्हाड़ा मारा।"

"मैने कितना समझाया कि जमाना बहुत खराब है, आगे और भी बुरे दिन आ रहे हैं, गुजर-बसर के लिए कुछ निकालकर इधर-उधर कर दो, परन्तु उसने मेरी एक न सुनी और अन्त में सभी कुछ खो बैठा।"

पिता की इन प्रतिक्रियाओं को चम्पा चुपचाप सुना करती।

"हम इसमें क्या कर सकते हैं ? सगा समझकर रास्ता सुझाने के लिए गये, मगर उसे तो अपनी इज्जत की पड़ी थी, नाक जो ऊँची रखना चाहता था। यह फिक्र ही कहाँ थी कि पीछे वालों का क्या होगा और वे क्या खायेंगे ?"

"ओतमचन्द सत्यवादी बनने चला है। इस कलियुग में राजा हरिश्चन्द्र बनना चाहता है। हमारी ओर से सवाया हरिश्चन्द्र बने ! उसके सगे बेटे और छोटे भाई को ठीकरी लेकर भीख ही क्यों न माँगना पड़े, हमारी बला से !"

कपूर सेठ जली-कटी सुनाकर दिल का गुबार निकाला करते और चम्पा की छाती में उनके एक-एक शब्द से फफोले उठते रहते। ससुराल वालों पर जो विपत्ति आ पड़ी थी उसका वास्तविक अनुमान अभी चम्पा को नहीं हो पाया था। कपूर सेठ की रोष भरी कटूक्तियों से वह केवल इतना जान सकी कि ओतमचन्द ने विपत्ति में भी बेईमानी करने से इनकार कर दिया और सगे-सम्बन्धियों से किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता लेना स्वीकार नहीं किया। ओतमचन्द के ऐसे हठीले रुख के कारण कपूर सेठ उससे नाराज़ रहने लगे थे; लेकिन चम्पा के मन में अपने ससुराल वालों के प्रति गहरे आदर का भाव पैदा हो गया था।

दिनों के साथ कपूर सेठ की नाराजी भी बढ़ती गयी। नाराजी का एक कारण यह भी था कि चम्पा की सगाई को इतने महीने हो जाने के बाद भी उसकी ससुराल वालों ने गहने-कपड़े आदि कुछ भी नहीं भेजे थे। जब-जब उन्हें यह बात याद आती उनका गुस्सा बन्ध तोड़ने लगता।

"अब वह भिखमंगा किस बिरते पर गहने गढ़ायेगा!" घर में जब भी चम्पा के चढ़ावे का प्रश्न उठता, कपूर सेठ जल-भुनकर फतवा दे देते थे।

चम्पा चोरी-चोरी माता-पिता की आपसी बातचीत सुना करती।

"अब तो सारा गाँव मुँह फाड़कर पूछने लगा है कि चम्पा का चढ़ावा क्यों नहीं आया?" सन्तोकबा शिकायत करती।

"अरे, मैं तो बाजार में सिर ऊँचा करके चल भी नहीं सकता।" कपूर सेठ अपना दुखड़ा रोते—"जान-पहचान के सभी व्यापारी उठते-बैठते सदा यही पूछते हैं, 'क्यों, वाघणिया वाले समधी के क्या समाचार हैं? चूनड़ी और मिठाई चढ़ाने कब आ रहे हैं?"

"लोग पूछेंगे तो जरूर।"

"समधी के साथ हमारी इज्जत का भी सवाल है, इसलिए गोल-

मोल जवाब देकर किसी तरह पिण्ड छुड़ाने की कोशिश करता हूँ, परन्तु दूसरों पर हँसने का ऐसा मौका कौन छोड़ता है ? वे लोग और भी मज़ाक करते हैं : 'सोना आजकल तेज़ है, इसलिए गहना गढ़ाने वाले की खुद की गढ़ाई हो जाती है; सोना खरीदने का यह समय नही,' वगैरह-वगैरह । ऐसी ठिठोलियां सुन-सुनकर मेरे तो कान पक गये ।

"मज़ाक तो उड़ाएंगे ही । दूसरों का मज़ाक उड़ाना किसे अच्छा नही लगता ?" व्यवहार कुशल सन्तोकबा कहती : "हमें धीरज को हाथ से नही जाने देना चाहिए·········समधीजी कोशिश में लगे ही होंगे, इन्तजाम होते ही फौरन आ जायेंगे ।"

"पता नही इन्तजाम किस दिन होगा ?" कपूर सेठ आपा खो बैठते : "हमारी लड़की की जिन्दगी पूरी हो जायेगी, क्या तब इन्तजाम होगा ? सगाई के बाद भी लड़की का इतने दिन चढ़ावा न आये, यह हम आज ही देख रहे है ।"

चम्पा का यह कहने को मन हो आता कि बापूजी, आप क्यों चिन्ता करते हैं ? मुझे गहने-कपड़े, कुछ भी नहीं चाहिए । सोने-चाँदी के गहनों के बिना क्या मैं अच्छी नही लगती ? लेकिन माता-पिता के सामने ऐसी बात कहने की उसकी हिम्मत न हो पाती, इसलिए मन मसोस कर रह जाती थी ।

× × × ×

दिनों के साथ चम्पा की मनोव्यथा बढ़ती गयी । जैसे-जैसे माता-पिता का रुख कड़ा पड़ता गया, चम्पा को अपना भविष्य अधिकाधिक अनिश्चित और अन्धकारमय प्रतीत होने लगा । नरोत्तम क्या सोचते होंगे ! क्या उन्हें भी मेरी ही तरह मनोवेदना होती है ?·········हाय, उनके समाचार कैसे मिलें ?

समाचार ! इन दिनों डाक आने के समय प्रतिदिन चम्पा की आंखें आतुरतापूर्वक दरवाजे की ओर उठ जाया करती थीं । नरोत्तम

का पत्र मिलने की कोई आशा नहीं थी, फिर भी जाने क्यों उसका व्यथित हृदय डाक के समय पत्र की प्रतीक्षा करने लगता था।

"कपूर बापा हो.........।"

एक दिन ठीक डाक के समय दरवाज़े पर किसी ने पुकारा। चम्पा ने रसोई घर के अन्दर से गर्दन उठाकर जालियों की राह देखा तो डाकिये के स्थान पर रूखे चेहरे और अस्त-व्यस्त कपड़ों वाला एक आदमी खड़ा था। चम्पा उसे पहचान न सकी, परन्तु ओसारे में झूला झूलरहे कपूर सेठ ने पहचान लिया और बोले: "आइये, आइये, मकनजी भाई! आइये।" पिता को आगन्तुक का इस तरह स्वागत करते देख चम्पा की समझ में आया कि यह ओतमचन्द सेठ का मुनीम है, जिसे वाघणिया में देखा था।

"आज इधर अचानक कैसे? न कोई खबर, न पाती?" मेहमान को आसन देकर कपूर सेठ ने पूछा।

"जा रहा था ईश्वरिया.........दकुभाई के यहाँ.........सोचा, चलो, कपूर बापा को राम-राम करता चलूँ।"

"आप आये, बड़ा अच्छा किया.........आपका ही घर है........." यह कह कपूर सेठ ने रसोई घर की ओर मुँह करके आदेश दिया—"अजी सुनती हो? मकनजी भाई आये हैं। भोजन परोसो।" और फिर मेहमान को भोजन करने के लिए आमन्त्रित करते हुए बोले; "उठिये, हाथ-मुँह धो लीजिए, भोजन तैयार है, आप ठीक समय पर आये......"

× × × ×

भोजन करते समय वाघणिया की बात चल पड़ी। ओतमचन्द की विपत्ति पर मकनजी ने बड़ी सफाई से अपना दुःख प्रकट किया। कपूर सेठ इस नाजुक विषय को छेड़ना नहीं चाहते थे, परन्तु अपने समधी के बारे में सच्ची बात जानने के कुतूहल को रोक पाना भी सम्भव नहीं था, इसलिए बड़ी सतर्कता से यह सवाल पूछा—

"ओतमचन्द पर इतनी बड़ी मार कैसे पड़ गयी?"

"बहुत बड़ा फैलाव करने का नतीजा भोगना पड़ा।" मकनजी एक के बाद एक कारण बताता चला गया : "लाभ के साथ साथ लोभ भी बढ़ता है। लखपति हो जाने पर आदमी करोड़पति बनना चाहता है। ओतमचन्द सेठ को हमने बहुत समझाया कि ज्यादा फैलाव मत करो, बडे व्यापार में जोखिम भी बड़ा होता है। लेकिन तृष्णा चीज़ ही ऐसी है कि आदमी का मन बस में नही रहता ...."

कपूर सेठ जो बात जानना चाहते थे धूर्त मुनीम उस बारे में एक शब्द भी नहीं बोल रहा था, इसलिए उन्हें स्वयं उस नाजुक सवाल को छेड़ना पड़ा :

"इसमें दकुभाई का भी कुछ........."

"दकुभाई बड़े तकदीर वाले थे कि इस झंझट के आने से पहले ही अलग हो गये; नहीं तो आज हाथ में कटोरा लेकर भीख माँगते नज़र आते।"

मकनजी की एक आँख थाली पर और दूसरी गरमागरम फुलके परोस रही जसी पर थी। वह उलझन में पड़ गया, समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे—एक ही कौर मे उदरस्थ होने वाले घी से तर-वतर मुलायम फुलकों की तारीफ करे या फुर्ती से चलती, बिजली की तरह कौंधकर अलोप हो जाती जसी का बखान करे ? वह बड़ी फुर्ती से फुलकों पर हाथ मारता हुआ दौड़ दौड़ कर परोसती हुई जसी का बारीकी से निरीक्षण करता रहा। हर कौर पर सुभानल्लाह पुकारने वाले मुल्ला की तरह मकनजी भी रोटी के हर कौर पर मन-ही-मन जप रहा था, इस लड़की का रिश्ता दकुभाई के बालू के साथ हो सके तो मज़ा आ जाये !

"धीमे क्यों पड़ गए मकनजी भाई ?" फुलकों पर तेज़ी से हाथ साफ करते मुनीम की गति कुछ धीमी पड़ जाने का सन्देह-सा होने पर कपूर सेठ ने टोका।

टोके जाने पर ही मुनीम को पता चला कि मन-ही-मन बालू और

जसी की जोड़ी बिठाते-बिठाते फुलके साफ करने वाला उसका हाथ धीमा पड़ गया। उसने फौरन दूने वेग से, थाली में जमा हो गए फुलकों का ढेर ठिकाने लगा दिया।

इस बीच रसोईघर में चम्पा ने मुनीम की खुराक और हाजमे का अन्दाज़ पाकर नये सिरे से आटा गूंध लिया था; और सन्तोकबा देहलीज पर बैठी बिन बुलाये मेहमान की ओर आँखें फाड़े देख रही थी।

मुँह की चक्की खाली होते ही मकनजी सेठ ने बड़े तपाक से कपूर सेठ की दुखती रग पकड़ ली: "बिटिया की शादी कब कर रहे है—इसी साल या अगले साल?"

मुनीम के इस युक्ति पूर्ण प्रश्न का उत्तर दे पाना कपूर सेठ के लिए आसान काम नहीं था।

व्यवहार कुशल कपूर सेठ ने चुप लगा जाना ही उचित समझा।

सन्तोकबा की रोष भरी आँखें मुनीम पर और गुस्सा बरसाने लगीं।

लेकिन मुनीम ऐसे नाज़ुक प्रश्न को इतनी सरलता से अनुत्तरित छोड़ने वाला जीव नहीं था। अपने प्रश्न का, जैसे भी हो, उत्तर पाने के लिए उसने कुशल वकील की तरह जिरह करते हुए नये ढंग से सवाल किया: "बाघणिया से चढ़ावा तो आ ही गया होगा?"

कपूर सेठ समझ गये कि मुनीम ताना मार रहा है। उन्होंने सक्षेप में—सिर्फ एक ही अक्षर में जवाब दिया: "नही!"

"ओतमचन्द सेठ ने इस मामले में बहुत देर कर दी।" मुनीम ने बात को आगे बढाया: "सगाई के बाद चढ़ावे में इतनी देर कोई करता है? गहने बनाने में दस-बारह साल तो लगा नहीं करते!"

कपूर सेठ को लगा जैसे यह मुनीम मेरे मन के भावों को ही वाणी में व्यक्त कर रहा है। लेकिन इस गैर आदमी की हाँ-में-हाँ मिलाने में उनकी कुलीनता बाधक हो रही थी।

रसोई घर में रोटियाँ थेप रही चम्पा कान लगाये दोनों की बात-चीत सुन रही थी। लकिन मकनजी चूँकि बात के मर्म तक पहुँच

गया था और मसला भी बड़ा नाजुक था, इसलिए अब बहुत ही धीमे स्वर में नुक्ताचीनी कर रहा था। परिणाम स्वरूप चम्पा को मुनीम के आधे-अधूरे वाक्य ही सुनायी दे रहे थे :

"इन तिलों में अब तेल नहीं रहा·········अक्लमन्द को इशारा काफी ! ······घर में खाने के लाले पड़े हैं, गहने कहाँ से गढ़ायेंगे ? जब लाडकोर सेठानी के गले का मंगल सूत्र ही उतार लेना पड़ा तो चढ़ावा कहाँ से चढ़ायेंगे ? ········उन दिनों को भूल जाओ जब लक्ष्मी पाँव पलोटा करती थी, अब तो मोती की आब उतर गयी—इतने से समझ लो !·········लड़की देकर आप लोग मुसीबत में फँस गये, भाग्य की बात है······ वर्ना चम्पा के लिए लड़कों की क्या कमी—एक से एक बढ़कर राजकुमारों—जैसे लड़के हाजिर हो जाते·······अब तो बिगड़ी बाज़ी सुधारने की सिफत होनी चाहिए······ मैं तो कहता हूँ खरी-खरी···अपने बच्चों की जिन्दगी को अपनी आँखों के सामने बिगड़ते हुए भला कौन माँ-बाप देख सकते हैं ?·········मैं तो कहता हूँ······खरी-खरी·········उपाय ?·········ढूँढ़ा जाये तो अपने आप कई रास्ते निकल आते हैं······ अभी तो सिर्फ सगाई हुई है·······शादी कहाँ हुई है ? भांवरें पड़ जाती तो मसला जरूर टेढ़ा हो जाता·········सगाई की क्या, सगाई तो सिर्फ जबानी जमा-खर्च है·········बच्चों के हित के लिए दी हुई जबान लौटाना भी पड़ जाती है·········मैं तो कहता हूँ खरी-खरी······इज्जत ?······इज्जत-आबरू सब कहने की बात है·········अरे साहब, इज्जत को रोयें या अपने बच्चों की खुशी को देखें ······आप बच्ची की जिन्दगी बनाना चहते हैं या बिगाड़ना ?·········कहने वालों का भला मुँह पकड़ा जा सकता है ?·········दो दिन बक कर सब चुप हो जायेंगे·········फिर किसी को कुछ याद नहीं रहेगा·········लोगों की निगाहें नाक की नोक तक······हाँ साहब, मैं तो कहता हूँ खरी-खरी··· नरोत्तम का नाम छोड़िये·········अब उन तिलों में तेल नहीं·····मैं तो कहता हूँ खरी-खरी·········"

थाली के आटे की आखरी रोटी बेले जाने तक चम्पा मुनीम की

खरी-खरी बातें सुनती रही। उसकी आँख का अन्तिम आंसू भी रोटी के साथ बेला गया। उस रोटी के बाद ही मुनीम ने तृप्त होकर अपना हाथ खींचा और 'बस' करता हुआ जब थाली से उठ खड़ा हुआ तभी बेचारी चम्पा को चैन मिला।

भोजन के बाद मकनजी झूले पर कपूर सेठ की बगल में जा बैठा। भोजन के दौरान वह चम्पा के विवाह-प्रकरण को निपटा चुका था, इसलिए अब सरौता और सुपारी देने के लिए आयी हुई जसी की ओर टक लगाये देखता रहा और फिर उसने शोशा छोड़ा :

"अब इस छोटी का रिश्ता अच्छा घर-घराना देख-भालकर ही तय करना।"

इस बार दरवाजे की ओट खड़े रह कर सुनने की बारी जसी की थी।

"आप की निगाह में कोई अच्छा घर-घराना हो तो बताइये। कपूर सेठ ने कहा।

"अच्छा घर-घराना खोजने की मुझ गरीब की कहाँ सामर्थ्य ?"

"आप तो दुनिया-जहान में घूमते रहते हैं, इसलिए कोई भी घर आपसे छुपा थोड़े होगा।" कपूर सेठ ने ठकुरसुहाती की।

जसी की जिज्ञासा तीव्र हुई और वह मुनीम के श्रीमुख से उच्चरित होने वाली वाक्यावलियों को एक-एक कर ध्यान से सुनने लगी :

"मेरी निगाह में तो दकुभाई का लड़का बालू है.........लड़का बड़ा ही समझदार और होशियार है......उसमें कोई भी ऐब नहीं......ऐसा घर-घराना ढूंढे भी न मिलेगा........अजी नहीं, किसी खार खाये हुए ने या विघ्न सन्तोषी ने यों ही जड़ दी होगी......आप मेरा कहा मानिये........लड़का सभी दृष्टियों से बढ़िया है......जी नहीं, उसमें ऐब नहीं......चाल-चलन, रहना-सहना सब उत्तम है, मैं जो कह रहा हूं......आपसे किसी ने गलत कह दिया है... मैं तो सेठजी, हमेशा कहता हूँ खरी-खरी......अपने पास लल्लो-चप्पे और लाग-बनाव का

काम नहीं······जसी जैसी आपकी वैसी ही मेरी भी लड़की है······भला अपनी ही बेटी के ग्रहित की बात मैं करूंगा ?······बालू-जैसा लड़का तो आप को दिया लेकर खोजने पर भी नहीं मिलेगा······अब मानना न मानना तो दकुभाई के हाथ की बात है · ···उनके यहाँ तो हर रोज सत्रह सौ साठ घर के रिश्ते आते ही रहते हैं······मैं तो कहता हूँ खरी-खरी······हमारे भाग्य सीधे हुए तो पट्टी शायद बैठ भी जाये······कन्या का पुण्य उदय होने पर ही ऐसा घर-वर मिलता है······जसी ने पांचों अंगुलियों से परमेश्वर को पूजा होगा तो रिश्ता हो ही जायेगा······ जी हाँ, मैं तो कहता हूँ खरी-खरी······दकुभाई हां कहेंगे या ना, यह मैं कैसे कह सकता हूँ ? ग्रापका आग्रह है तो उनके कान पर बात जरूर डाल दूंगा······हां-हां, जरूर जरूर ! अपनी ओर से पूरा जोर लगा दूंगा······वाह साहब, यह भी भला कहने की बात हुई ?······क्या मैं गैर हूँ ?······एहसान ? अजी साहब, एहसान तो आपने मुझ पर किया है; ग्रापके घर का अन्न मेरे मुंह मे है······अच्छा शकुन देखकर बात करूंगा तो दकुभाई इनकार नही करेंगे ······"

मकनजी के जाने के बाद भीतर वाले कमरे में जब जसी ग्रौर चम्पा का एक दूसरे से सामना हुआ तो जसी की ग्रांखों में आनन्द उमड़ रहा था ग्रौर चम्पा की आँखों में आँसू······

१२

भाभी का देवर

"बापूजी, घोड़ा गाड़ी जा रही है ?"

वाघणिया की गलियों से ट्रुनुन ट्रुनुन करती हुई शेखाणी सेठ की घोड़ा गाड़ी गुजरती तो आवाज़ सुनते ही बटुक के कान चौकन्ने हो जाते । गाड़ी को देखने के लिए वह खिड़की मे आ खड़ा होता और अपने पिता को भी वहां आने के लिए कहता : "बापूजी, यहाँ आइये न, घोड़ा गाड़ी देखना हो तो आइये ।"

ओतमचन्द भोले बालक की बात मानकर खिड़की में उसके पास जा खड़ा होता ।

"देखिये, अपनी गाड़ी जा रही है !......देखिये, अपना घोड़ा जा रहा है !......वह देखिये, अपना वशराम जा रहा है !" बटुक खिड़की में खड़ा-खड़ा जो भी चीज़ें दिखाता ओतमचन्द को देखना पड़ती थी । वह जिज्ञासु बेटे की तरह सन्तुष्ट होकर कहता : "हाँ बेटा, गाड़ी देखी : घोड़ा देखा; वशराम को भी देखा !"

हालत बिगड़ने के बाद के छह महीनों से ओतमचन्द इसी तरह अपनी जिन्दगी के दिन बिता रहा था । इन छह महीनों में उसे काफी ज्ञान प्राप्त हुआ था । एक ज्ञान तो यह कि पेढी के आकस्मिक पतन का कारण दकुभाई का षड्यन्त्र था । अब तो उस षड्यन्त्र के पक्के प्रमाण भी मिल रहे थे । कई हितैषी उसे समझा भी रहे थे कि धोखेबाज दकुभाई पर बाकायदा मुकदमा दायर कर देना चाहिए । समस्त साधन सम्पत्ति गंवाकर जो ओतमचन्द बिलकुल अकिंचन हो गया था । वह

अपने सगे साले पर मुकदमा चलाने का विचार यदि पक्का कर भी लेता तो भी इस समय मुकदमा दायर नहीं किया जा सकता था, क्योंकि दकुभाई दूरन्देशी से काम लेकर यकायक बर्मा चला गया था।

पत्नी और बच्चे को मकनजी की देखभाल में ईश्वरिया गांव में ही छोड़कर दकुभाई मोलमीन के एक परिचित व्यापारी की चावल मिल में काम करने के लिए चला गया था। मोलमीन जाने से पहले उसने यह प्रचार किया कि बहनोई ने मुझे नगा फकीर बनाकर निकाल दिया, इसलिए रोटी-रोजी की खातिर परदेश जाना पड़ रहा है······धीरे धीरे ओतमचन्द को सच्ची बात मालूम हो गयी, लेकिन उसने उसे मन में ही रखा। दकुभाई की कारगुजारियों की भनक भी उसने लाडकोर को न पड़ने दी। यदि उसे पता चल जाता कि सगे भाई ने ही अपनी बहिन के घर का सर्वनाश किया है तो उसके व्यथित हृदय को और भी पीड़ा होती। इसलिए ओतमचन्द ने यह सचाई उससे छिपाकर ही रखी और अपने मुंह से एक शब्द भी इस बारे मे न निकाला। यही कारण था कि भाई-भाभी के दुर्व्यवहार के प्रति लाडकोर का रोष जल्दी ही शान्त हो गया और वह उन्हें पहले की ही तरह चाहने लगी। वसुन्धरा जैसे उसके विशाल, उदार और क्षमाशील हृदय में छोटे भाई के प्रति पहले ही जैसी प्रेमधारा बहने लगी। इसीलिए जब दकुभाई अपनी सुरक्षा के विचार से बर्मा भाग गया तो लाडकोर को दुखियारे भाई पर दया आ गयी :

"बेचारा परदेश न जाये तो क्या करे? पेट के खातिर दो मुट्ठी नाज तो आदमी को कमाना ही पड़ता है! हमारी दुकान मे पड़ा रहता तो आज चैन से रहता। लेकिन आबदाना उसे यहाँ से ईश्वरिया खींच ले गया। बेचारा बाल-बच्चों वाला आदमी······ औरत और बच्चे का पेट तो किसी भी तरह भरना ही पड़ता है। मुट्ठी धान का जुगाड़ करने के लिए जन्मभूमि छोड़कर ठेठ मोलमीन के काले पानी जाना पडा। भगवान उसे भला-चगा रखे!"

ओतमचन्द यही चाहता था कि लाडकोर का रुख दकु भाई के प्रति उदारता पूर्ण हो। जब लाडकोर धीरे-धीरे उसके अपराध को भूलकर उदार होती गयी तो ओतमचन्द को इससे आनन्द ही हुआ। झगड़ालू भौजाई समरथ के प्रति भी लाडकोर धीरे-धीरे सहिष्णु और उदार होती गई। ओतमचन्द को इससे और भी खुशी हुई। समुद्र की तरह उदार, क्षमाशील और विशाल हृदय वाले इस सद् गृहस्थ की एकमात्र आकांक्षा यही थी कि दुनियादारी की दृष्टि से चाहे उनको अकिंचन समझा जाये, परन्तु कुलीनता का लोप नहीं होना चाहिये। आर्थिक सम्पन्नता तो संयोगवशात् इस घर का परित्याग करके चली गयी थी, लेकिन स्नेह की सम्पन्नता इस गरीब घर से जाने न पाये, इसका सजग प्रयत्न ओतमचन्द निरन्तर करता रहता था। जब पति ने यह देखा कि घर की लक्ष्मी और कुल की देवी लाडकोर के हृदय की निर्मल स्नेहधारा अस्खलित रह सकी है तो उसे परम सन्तोष हुआ।

× × ×

छोटे भाई नरोत्तम के प्रति उनके वात्सल्य में रंच मात्र भी कमी न होने पाये, इस बारे में भी दोनों पति-पत्नी सतत जाग्रत रहते थे। नरोत्तम के बारे में एक काँटा ओतमचन्द के हृदय में बराबर खटकता रहता था। दुकान और मकानात अभी तक दोनों भाइयों के साझे में थे। ओतमचन्द को यह दुःख सालता रहता कि उसने नरोत्तम के हिस्से की सम्पत्ति को भी व्यापार में गँवा दिया। छोटे भाई के हिस्से को इस प्रकार होमने का मुझे क्या अधिकार था? यह विचार बड़े भाई को रात-दिन, सोते बैठते चैन नहीं लेने देता था कि मेरे ही कारण निर्दोष नरोत्तम भी मुसीबत में पड़ गया।

उधर नरोत्तम के मन में कुछ और ही बात थी। वह हमेशा यह सोचा करता कि बड़े भाई की इस गिरी हुई हालत में इन पर बोझ बना बैठा हूँ। पेढ़ी का कारबार समेटने के बाद ओतमचन्द ने बिना किसी संकोच और हीन भावना के वाघणिया के बाजार में एक छोटी-सी दुकान कर ली थी। वह कहता, 'बनिये का बेटा सदा से तेल-हींग बेचता

रहा है, इसमें शर्म किस बात की ?' लेकिन नरोत्तम को लगता था कि इस छोटी-सी दुकान से दो भाइयों के गुजर-बसर लायक आमदनी शायद ही हो सके । इसलिए वह बड़े भाई पर बोझ बनकर रहने के बदले शहर जाकर स्वतन्त्र रूप से कमाना, और इस प्रकार ओतमचन्द की सहायता करना चाहता था ।

लेकिन नरोत्तम जब भी बाहर जाने की बात छेड़ता ओतमचन्द हमेशा उसे यही जवाब देता :

"नहीं भैया, हमें अपना घर और जमीन छोडकर कहीं भी जाने की जरूरत नहीं । भला हमारा बापदादों का यह गाँव और भली हमारी छोटी-सी दुकान……इस दुकान से भगवान एक रोटी देगा तो हम दोनों आधी-आधी बाँटकर खालेंगे । लेकिन कमाने-धमाने के लिए तुझे दूर भेजते मेरा मन नहीं होता ।"

लाडकोर भी देवर को बाहर भेजने के पक्ष में नहीं थी । वह उसे बरजती हुई कहती :

"ना लल्ला, मैं तुम्हें अपनी आँख की ओट कभी न होने दूँगी । बताओ तुम्हें यहाँ किस बात का दुःख है ? 'आज बुरे दिन आगये तो क्या हुआ ? क्या घर के आदमी को निकाल बाहर कर दें ? मुझे तुम्हारी शहर की कमाई नहीं चाहिये...क्या हमने पैसा देखा नहीं है ? और भाग्य में होगा तो कल फिर मिलेगा । लेकिन तुम घर छोड़कर चले गये तो जानते हो, गाँव वाले क्या कहेंगे ? यही कहेंगे कि भाई-भौजाई को देवर की रोटियाँ भारी पड़ गयी । ना दैया मैं तुम्हें दूसरे गाँव नहीं जाने दूँगी । मेरे आँख की दो पुतलियाँ हैं—एक बटुक, दूसरे तुम । मैंने कभी तुम्हें देवर नही समझा, सगा बेटा समझ कर ही पाला-पोसा । आज तुम मुझे छोड़कर जाना चाहते हो, मेरे दिल पर क्या बीतेगी ?...और गाँव वाले क्या कहेंगे ? यहीं न बड़े घर गरीबी आयी तो भौजाई को एक देवर की रोटियाँ भारी पड़ गयी और उसे घर से निकाल दिया । ना दैया, मैं लोगों की ऐसी बोली-ठोली सह न सकूंगी...में तुम्हें वाघणियाँ से बाहर जाने न दूँगी ।"

नरोत्तम बाहर जाने का जितना आग्रह करता भाई-भाभी का

विरोध उतना ही बढ़ता जाता था। वह जानता था कि विरोध के मूल में मेरे प्रति भाई और भाभी का प्रेम ही काम कर रहा है, लेकिन नरोत्तम रोज सवेरे उठकर घर में जो कुछ देखता उससे उसे बड़ी अकुलाहट होती और बाहर जाने का उसका निश्चय दृढ़तर होता जाता।

ओतमचन्द किराये के जिस मकान में रहता था उसकी गली में होकर शेखाणी सेठ की घोड़गाड़ी रोज सुबह-शाम घर के सामने से गुजरती थी। टुनुन-टुन की आवाज सुनते ही बटुक फौरन दरवाजे पर जा खड़ा होता और फिर गाड़ी में बैठने और घोड़े पर सवारी की ज़िद्द करने लगता। ऐसे समय ओतमचन्द और लाडकोर अत्यन्त दुःखी हो जाते थे। वे बहुत चाहते कि जो गाड़ी कभी हमारे पास थी और आज किसी दूसरे की मिल्कियत बन गयी है, वह हमारे घर के सामने से न गुजरे; लेकिन सैर को जाने के लिए इस गली से गुजरे बिना शेखाणी सेठ के सामने कोई चारा नहीं था।

एक दिन इसी तरह घोडा गाडी के घुँघरू बजे और बटुक चौकन्ना हो गया। यह अपनी आदत के अनुसार दरवाज़े पर आ खडा हुआ और चिल्लाने लगा : "वशराम ! वशराम !"

बटुक के परिचित स्वर को सुनकर वशराम ने कहा : "कहो बटुक भैया, कैसे हो ?"

बटुक ने फौरन माँग पेश कर दी : "मुझे घोड़े पर बिठाओ।"

लेकिन इतनी देर में तो गाडी तेजी से गुजरती हुई गली के बाहर निकल गयी।

फिर तो बटुक अपने आपे में न रह सका। उसने फूट-फूट कर रोना शुरू कर दिया : "मुझे घोड़े पर बिठाओ, बापूजी, मुझे घोड़े पर बिठाओ।"

ओतमचन्द देखते रहे। लाडकोर देखती रही नरोत्तम भी विवश देखता रहा।

बटुक की रुलाई तेज़ होती गयी। उसे समझाने का कोई ढंग उन

लोगों की समझ में नहीं आ रहा था। सब मन-ही-मन अपने-अपने ढंग से इस नाजुक प्रश्न की मीमांसा कर रहे थे, लेकिन मन की बात किसी की जबान पर आ नहीं पा रही थी। सभी जानते थे कि बटुक की यह ज़िद निरा बचपना है, लेकिन यह कहने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी।

गाड़ी में बैठने के लिए बटुक रोने लगा और माता-पिता का हृदय हाहाकार कर उठा। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि बेटे को क्या कह कर सांत्वना दें! क्या यह कहें कि अभी वशराम को बुलाकर तुझे घोड़े पर सवारी करायेंगे? नहीं, ऐसा कहना तो पामरता ही होतीं। तो क्या यह आश्वासन दें कि हम अपनी ही नयी घोड़ा गाड़ी खरीदेंगे? नहीं, नहीं; ऐसा कहना आत्मवंचना ही होती।

बटुक की आँखों से आँसुओं की धाराएँ बह रही थी और माँ-बाप विवश खड़े देख रहे थे। और नरोत्तम के कैलेजे पर मानों आरा चल रहा था।

आखिर ओतमचन्द को एक रास्ता सूझ ही गया। वह गम्भीर चेहरा लिये अपनी जगह से उठा। बटुक जिस छोटी-सी छड़ी से चाबुक का काम लेता था। उसे खोजकर उसने वह बेटे के हाथ में थमा दी।

सब चकित होकर उसकी ओर देखने लगे। किसी की समझ में नहीं आया कि ओतमचन्द करना क्या चाहता है।

ओतमचन्द बड़ी आसानी से नीचे झुक कर चारों हाथ-पांव के बल घोड़ा बन गया और चौधार आंसू रोते हुए बटुक को अपनी पीठ पर बिठा लिया।

लाडकोर और नरोत्तम आँखे फाड़े देखते रह गये।

"चलो, अब हम घोड़ा-घोड़ा खेलेंगे।" यह कह कर ओतमचन्द ने चारों हाथ-पांव से घोड़े की तरह कमरे में इधर-उधर चलना शुरू कर दिया।

असली घोड़े पर न सही, पिता की पीठ पर सवारी करना मिला तो रोता हुआ बटुक चुप हो गया ।

नरोत्तम और लाडकोर इस दृश्य को अब भी चुपचाप देखे जा रहे थे ।

घुड़सवारी की अपनी जिद यों पूरी होते देख बटुक मारे खुशी के भूल ही गया कि वह चार पांव वाले घोडे पर नहीं, पिता की पीठ पर चढ़ा हुआ है । और मौज में आकर घोड़े की चाल तेज़ करने के लिए उसने ओतमचन्द की पीठ पर चाबुक भी फटकार दिया ।

यह देखकर नरोत्तम का जी जाने कैसा हो गया, वह कुछ कर न सका । परन्तु लाडकोर से न रहा गया । उसने पति को फटकारा ।

"यह तुम कैसा खेल खिला रहे हो बच्चे को ऐसे अप-लक्षण भी कोई सिखाता है ? और बेटा बाप को चाबुक से मारे, यह कहां की रीति है ?"

"सचमुच का चाबुक थोड़े ही मार रहा है भाई !" नीचा सिर किये चौपाये की तरह इधर से उधर घूम रहे ओतमचन्द ने ऊपर की ओर देखकर पत्नी को जवाब दिया : "हम दोनों तो घोड़ा-घोड़ा खेल रहे है ।"

"ऐसा खेल भी कोई खेलते हैं ?" लाडकोर ने और भी तीखी आवाज़ में पूछा ।

रोते बच्चों को चुपाने के लिए खेलना भी पड़ता है ।" ओतमचन्द ने जवाब दिया ।

"नासमझ बच्चे तो रोते ही हैं; उनके रोने से सच्चे मोती थोड़े ही खिर जाते हैं !" लाडकोर ने कहा : "अभी से बच्चे को यों सिर चढ़ा रहे हो, बाद में पछताओगे । बेटा बाप को चाबुक मारे, ऐसा अनोखा प्यार तो मैंने दुनिया में कहीं देखा नहीं ।"

"अच्छी बात है ।" और पत्नी को शान्त करने के इरादे से ओतमचन्द ने पुत्र से कहा : "बेटे, अब हौले से चाबुक मारना, हां ! इस घोड़े को बहुत ज़ोर से लगती है ।"

इतना कहकर वह फिर कमरे में घोड़े की तरह चलने लगा।

ओतमचन्द की आंखों में उमड़ते वात्सल्य को देखकर लाडकोर का मुँह बन्द हो गया। अब वह कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं रही। कहती भी क्या? इस अद्भुत दृश्य को देखकर उसका हृदय द्रवित हो गया। आंखों में आंसू भर आये। वे आंसू पुत्र के प्रति माता की अनुकम्पा के थे या पुत्र से भी अधिक भोले और सरल हृदय पति के प्रति पत्नी के अमित स्नेह के—कहना कठिन ही है।

इस हृदयस्पर्शी दृश्य को देखकर नरोत्तम इतना विचलित हुआ कि कमरे में रुके रहना मुश्किल हो गया। वह वहां से तुरत बाहर ओसारे मे निकल आया। मन में जो व्यग्रता बहुत दिनों से घुमड़ रही थी वह मानों उसका दम घोटने लगी। अनेक प्रकार की चिन्ताओं ने जैसे उस पर एक साथ हमला बोल दिया।

उसकी आंखों के सामने सोन चम्पा के फूल-जैसी वाग्दत्ता चम्पा कौंध गई……यह वाग्दान टूटने वाला है, इस तरह की अफवाहें उसके कान के परदों पर घन की तरह बज उठीं……असहाय होते हुए भी सीमातीत उदारता की साक्षात् मूर्ति बड़े भाई आंखों के सामने आ खड़े हुए……भोले-भाले बटुक और गृह-लक्ष्मी लाडकोर की मूर्तियां मानस-पट पर उभरीं……और प्रेम, उत्तरदायित्व, कर्तव्य आदि विविध बलों के बीच नरोत्तम खिंचा जाने लगा। भविष्य उसे अन्धकारमय दिखायी दे रहा था। प्रकाश की एक नन्हीं-सी किरण के लिए वह छट-पटाने लगा। वह अपने से संघर्ष करता रहा, करता ही रहा……और यह बात उसकी समझ मे आ गयी कि क्रूर वास्तविकताओं की ओर से आंखें मूँदकर बैठे रहना उचित नहीं; इसमें से कोई-न-कोई रास्ता निकालना ही होगा……दूर खड़े होकर तमाशा देखते रहना बड़े भाई के प्रति अपने कर्तव्य को निबाहने से पराङ्मुख होना है और वही मैं कर रहा हूँ……

लम्बे संघर्ष के बाद नरोत्तम को उस अंधेरे में प्रकाश की एक किरण मिल ही गयी। राजकोट में दूर के एक रिश्तेदार रहते थे।

पैसे-टके से सुखी थे। काफी लोगों से उनका परिचय था। राजकोट शहर भी बड़ा और राजधानी है। मैं वहाँ जाकर अपने से कुछ कमाने लगूँ तो बड़े भाई की मदद कर सकता हूँ······यहाँ के जीवन-संग्राम में मौन साक्षी बनकर जीना अपराध है। मुझे यहाँ से जाना चाहिए, चले ही जाना चाहिए·········

× × × ×

घर में शीघ्र ही एक ऐसी घटना-घटित हुई जिसने नरोत्तम के इस निश्चय को और पक्का कर दिया।

उनके घर का आम रिवाज था कि शाम को खाना खाने के लिए पहले नरोत्तम दुकान से घर आता और वह भोजन करके लौट जाता उसके बाद ही ओतमचन्द खाना खाने के लिए आया करता था। लाडकोर पति के भोजन कर लेने के बाद ही खाना खाती थी। लेकिन एक दिन यह क्रम उलट गया। नरोत्तम किसी काम में लगा था, इसलिए उसने ओतमचन्द से कहा : 'भाई साहब, आप पहले भोजन कर आइये, मैं बाद में चला जाऊंगा।' तदनुसार ओतमचन्द पहले खाना खा गया। फिर काम से निबट कर नरोत्तम भोजन करने के लिए पहुँचा तो अंधेरा हो चुका था। रसोई घर में लाडकोर कन्दील के उजाले में देवर की प्रतीक्षा कर रही थी।

"भाभी, मैंने आपसे कितनी बार कहा कि मुझे देर हो जाये तो आप भोजन कर लिया कीजिये और मेरी थाली ढक कर रख दीजिये। मगर आप सुनती ही नहीं!" पनिहारे पर हाथ-मुंह धोते हुए नरोत्तम ने अपनी भाभी से कहा।

"थाली ढांक कर रखने पर खाने में स्वाद ही क्या रह जायेगा भैया ?" लाडकोर ने बडे ही स्नेह-मधुर स्वर में जवाब दिया।

"लेकिन मेरे लिए आप को आधी रात तक भूखे टंगे रहना पड़ता है न !"

"देर कभी-कभार ही तो होती है, उसकी क्या चिन्ता ? फिर

हम औरतों को जल्दी खाकर कौन हुण्डी सिकारने जाना है ?" बटलोई में से चम्मच के द्वारा कांसी की थाली में खिचड़ी परोसते हुए लाडकोर ने कहा।

रोज की तरह आज भी लाडकोर ने देवर को बड़ी मनुहारों से भोजन कराया। नरोत्तम जितना ही इनकार करता लाडकोर उतने ही आग्रह से उसे परोसती जाती थी।

"बस कीजिये भाभी ! अब और नहीं खा सकता।"

"वाह, इतने में ही तुम्हारा पेट भर गया ? तुमसे तो बटुक अच्छा ! दो कौर ज्यादा ही खाता है !" यह कर लाडकोर ने देवर की थाली में थोड़ी खिचड़ी और एक रोटी और परोस दी।

भोज्येषु माता-जैसी भाभी के इस तौर-तरीके से नरोत्तम अनजान नहीं था। लेकिन आज उसे न जाने क्यों यह लग रहा था कि भाभी अपने हिस्से का खाना भी मुझे खिलाये दे रही हैं। उधर लाडकोर ने यह महसूस किया कि बटलोई में थोड़ी-सी खिचड़ी रह जाने का आभास नरोत्तम को हो गया है, इसलिए वह दूने आग्रह के साथ उसे परोसती और खिलाती रही।

आखिर नरोत्तम भाभी के आग्रह से तंग आ गया। उसने थाली को ढकते हुए दोनों हाथ इस तरह फैला दिये कि कुछ भी परोसा न जा सके। लेकिन लाडकोर ने बड़े स्नेह से उसके हाथों को परे हटाकर थोड़ी खिचड़ी और परोस ही दी।

अब नरोत्तम क्या कहता ? चुपचाप खाने लगा।

"लो, तुम्हारी मनुहार में पानी का लोटा भर कर रखना तो भूल ही गयी !" मसोते (साफ़ी) से हाथ पोंछती हुई लाडकोर उठी और बाहर पनिहारे की ओर चली गयी।

नरोत्तम अपने कुतूहल को रोक न सका। धीरे से चूल्हे के पास जाकर उसने बटलोई का ढक्कन उठाकर देखा तो बरतन एकदम खाली

हो चुका था। लाडकोर ने पोंछ-पांछकर सभी कुछ उसे परोस दिया था।

नरोत्तम चुपचाप खाने लगा, लेकिन अब कौर उसके गले में फंस रहे थे और सारा खाना बेस्वाद हो गया था।

थाली की बगल में पानी से भरा लोटा रखकर लाडकोर फिर चूल्हे के पास जा बैठी। देवर को बहुत धीरे-धीरे, लगभग निरुत्साहित होकर कौर गटकते देख उसने चुटकी ली :

"अब लल्ला, तुम्हें मेरे हाथ का खाना अच्छा नहीं लगता है।"

नरोत्तम ने कोई जवाब नहीं दिया तो लाडकोर ने वैसे ही परिहास भरे स्वर में कहा :

"अब मेरे हाथ का कच्चा-पक्का खाना क्यों अच्छा लगने लगा ? कल-परसों मेरी देवरानी आ जायेगी और तुम्हें बत्तीस तरह के भोजन और छत्तीस तरह की सब्जियाँ पकाकर खिलाया करेगी......मैं भी इस भटियार खाने से छुट्टी पा जाऊंगी और चूल्हा-चौका चम्पा को सौंपकर निश्चिन्त हो रहूँगी।"

'देवरानी' और 'चम्पा' जैसे शब्दों को सुनकर भी जब नरोत्तम के चेहरे पर मुस्कराहट नहीं दिखायी दी तो लाडकोर को बड़ा आश्चर्य हुआ। लेकिन उसको क्या पता था कि देवरजी ने ऐसा कुछ देख लिया है जिससे उनकी हंसी एकदम गायब हो गयी !

किसी तरह खाना खत्म कर नरोत्तम ने कुल्ले किये और चुपचाप दुकान लौट गया।

उस रात उसे नींद नहीं आयी ! खाना-खाते समय उसने जो कुछ देखा उससे उसका मन विक्षुब्ध हो गया था। भाभी मेरे लिए इस तरह कितने दिन भूखी रह गयी होंगी ! भाई साहब को भी इसकी जानकारी शायद नहीं है। भाभी अपने पेट पर पट्टियां बांधकर हम लोगों का पेट भरती हैं ! नहीं, अब मैं इन पर बोझा बनकर नही रहूँगा........मैं

चला जाऊंगा, यहां से कहीं भी चला जाऊंगा……मुझे यहां से जाना चाहिए ·…चले ही जाना चाहिए…· …।

× × × ×

सारी रात नरोत्तम उद्विग्नतापूर्वक जिस वाक्य को रटता रहा, सबेरा होते ही उसने ओतमचन्द के समक्ष उस वाक्य का उच्चारण कर दिया :

"भाई साहब, मुझे जाना ही चाहिए।"

"लेकिन बिना किसी परिचय के तुम जाओगे कहाँ ?"

"इतनी लम्बी-चौड़ी यह धरती है। कहीं भी चला जाऊँगा और तनतोड़ मेहनत कर पैसा पैदा करूँगा।"

"तुम घर की देहरी लाँघकर भी कहीं नहीं गये। बिना परिचय के कहाँ जाओगे और क्या करोगे ?"

"राजकोट में हमारे नजदीकी रिश्तेदार दामोदर मौसा रहते हैं। कहने पर कहीं न कहीं नौकरी-चाकरी लगवा ही देंगे।"

"भैया, मामा-मौसा सब कहने के, और होवे तब तक खाने के।" ओतमचन्द ने लोक-दुनिया के व्यावहारिक सूत्र का उच्चारण कर कहा : "मौसा से सम्बन्ध तो तब था जब हमारे दिन अच्छे थे। अब हमारे बुरे दिन हैं इसलिए हो सकता है कि उन्हें हम से सम्बन्ध होने की बात याद भी न रहे………"

ओतमचन्द के साथ लाडकोर भी नरोत्तम को जाने से रोक रही थी। लेकिन इस बार उसने पक्का इरादा कर लिया था। पूरे तीन दिन खींच-तान के बाद नरोत्तम उन्हें अपना दृष्टिकोण समझा पाया।

भाई-भाभी को आखिर बेमन से भी हाँ कहना ही पड़ा। लेकिन बटुक ज़िद पकड़ गया :

"मैं काका को जाने नहीं दूँगा।"

उस भोले बालक को बहलाना आसान था। नरोत्तम ने घोड़ागाड़ी

का लालच दिया : "राजकोट जाकर तेरे लिए छोटी-सी घोड़ा-गाड़ी भेजूँगा।"

काका का भतीजा खुशी से उछल पड़ा और फौरन राज़ी हो गया।

विदा के दिन लाडकोर ने किसी तरह इन्तजाम करके कसार (एक प्रकार का मिष्टान्न) बनाया। देवर को बड़े प्रेम से भोजन कराया और जाने से पहले उसके हाथ में चाँदी का रुपया और श्रीफल देकर ओख भरी। फिर दोनों हाथों से देवर की बलैयाँ लेकर, दसों अँगुलियों से उसके अनिष्ट का निवारण कर सच्चे मन से आशीर्वाद दिया:

"भले-चंगे रहना और जल्दी-से-जल्दी घर लौटकर आना।"

पलकें भीगने से पहले ही नरोत्तम कदम बढ़ाकर चल दिया।

१३

कीला कँघी वाला

राजकोट के राजमार्ग पर नरोत्तम घूम रहा था।

वाघणिया से रवाना होने के समय ओतमचन्द ने जो-कुछ सलाह सीख दी थी उनमे से एक यह भी थी कि दूर के रिश्तेदार दामोदर मौसा से मिलने में कोई हर्ज नहीं, परन्तु उनके भरोसे न रहना। नरोत्तम ने बड़े भाई की इस सलाह का जरूरत से कुछ अधिक ही पालन किया। स्वाभिमान के खातिर वह किसी भी रिश्तेदार के यहाँ रहने के लिए नही गया, स्टेशन के पास वाली एक धर्मशाला में ठहरा।

शहर के प्रमुख मार्ग पर खड़ा नरोत्तम आते-जाते लोगों को देख रहा था। उन दिनों पाश्चात्य सभ्यता की पहली लहरें यद्यपि आना शुरू हो गयी थीं, परन्तु सोरठी संस्कृति का मूल रग अभी तक धूमिल नहीं हुआ था। वैसे राजकोट मे पोलिटिकल एजेण्ट की कोठी स्थापित हो चुकी थी, इसलिए कुछ गोरे साहब लोगों के साथ-साथ थोड़े-से 'देशी साहब टोपी वाले' भी दिखायी देने लगे थे। परन्तु कुल मिलाकर आम लोगों की परम्परागत वेशभूषा में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। इसलिए वाघणिया मे दुर्लभ, काठियावाड़ के विभिन्न प्रदेशो की पचरगी वेश-भूषा को नरोत्तम नगर के चौड़े राज मार्ग पर खड़ा चकित दृष्टि से देख रहा था।

विभिन्न रियासतों के राजा-ठाकुरों, भाई-भतीजों, कामदार-कारभारियों, खिदमतगारों और खासदारों, व्यापारियों और आढ़तियों आदि को यहाँ एक साथ देखा जा सकता था। विभिन्न रगो के फेंटे

और फींडल (साफे की तरह सिर पर लपेटने का एक वस्त्र), साफे और सिरोपाव, रस्सेनुमा पग्गड़ और चकरी पगड़ियाँ, तनियों वाले केडिये (कमर तक का, घेर वाला मिरज़ईनुमा परिधान) और बाला-बन्दी अंगरखे, चूड़ीदार पायजामे और कसी हुई सलवारें—असली सौराष्ट्र के सभी परिधानों की मानों इस शहर में प्रदर्शनी लगी हुई थी।

वाघणिया की याद आते ही नरोत्तम को खयाल हो आया कि बड़े भाई को पहुँच का पत्र लिखना है ! लोगों से पूछता पाछता वह डाकखाने पहुँच गया। 'मुंडी वाले' पैसे को जेब में से निकाल उसने राजा सातवें एडवर्ड की छाप वाला एक पैसे का पोस्टकार्ड खरीदा और भाई साहब को अपनी पहुँच का पत्र लिख दिया।

नरोत्तम यथा सम्भव किसी सगे-सम्बन्धी का एहसान नहीं लेना चाहता था, इसलिए वह दामोदर मौसा से भी मिलने के लिए नहीं गया। नौकरी या काम-धन्धे की तलाश भी इत्मीनान से करने का विचार कर वह फिलहाल नये शहर के जीवन-व्यापार को देखने के लिए निकल पड़ा था।

आधा दिन तो नरोत्तम ने विभिन्न रियासतो की आलीशान इमारतों को ही देखने में लगा दिया। ऐसे भव्य राजमहल वह अपने जीवन में पहली बार देख रहा था। नरोत्तम ने राजकुमार कालेज देखा······जुदी-जुदी रियासतों के राजकुमारों को देखा······और खेल के मैदान में 'बेट-बाल' का खेल देखकर तो वह चकित-विस्मित ही रह गया।

नये शहर के प्रति सारा कुतूहल शान्त हो जाने के बाद ही नरोत्तम ने दामोदर मौसा से मिलने का फैसला किया। लेकिन वह सीधा मौसा के मकान पर नहीं गया। कागज पर लिखा पता पढ़कर वह गली के नुक्कड़ पर खड़ा हो गया। मौसा देव-दर्शन के लिए तो जाते ही होंगे —उसे विश्वास था कि आते जाते गली के मोड़ पर मिल ही जायेंगे। उसका विश्वास ठीक ही साबित हुआ। वयोवृद्ध मौसा आँखों पर हथेली की छाजन किये धीरे-धीरे नुक्कड़ से गुजर रहे थे। नरोत्तम ने देखते ही जा पकडा :

"क्यों मौसा जी, पहचाना ?"

"कौन हो भाई ?" मौसा ने हथेली की छाजन को थोड़ा नीचे खिसका कर आंखें सिकोड़ते हुए पूछा।

"बस भूल गए ?" नरोत्तम ने कहा : "वाघणिया वाले रिश्तेदारों की याद तो आपको होगी ही ?"

मौसा कुछ चौंके, फिर बोले : "अच्छा, हां ! ओतमचन्द नाम के एक........"

"जी हां, जी हां ! ओतमचन्द भाई वाघणिया वाले।"

"ठीक, ठीक ! ओतमचन्द तो लाखों में एक हैं; उसे भुलाया जा सकता है भला ?" इतना कह कर मौसा आगे बोले : "लेकिन इन दिनों सुना है बेचारा बड़ी मुश्किलों में है। क्यों सच है क्या ?"

"जी मौसा जी, सच है।" नरोत्तम ने जवाब दिया : "थोड़ा नुकसान हो गया है।"

"व्यापार धन्धे में तो चलता ही रहता है—नफा भी होता है नुकसान भी।" मौसा ने वेदान्तियों की तरह दार्शनिकता बघारी : "मनुष्य को इसका न हर्ष करना चाहिये न शोक !"

मौसा के धूर्ततापूर्ण चेहरे की ओर देखता हुआ नरोत्तम चुप खड़ा था, तभी मौसा ने कहा :

'अच्छा भाई, देर हो गयी तो दर्शन नहीं मिलेंगे।"

और नरोत्तम को बोलने का मौका दिये बिना मौसा वहां से चलते बने।

नरोत्तम का रहा-सहा भ्रम भी टूट गया। वह सीधा डाकखाने पहुँचा। इस बार उसने एक पैसे वाला पोस्ट कार्ड नहीं; दो पैसे वाला लिफाफा खरीदा और बड़े विस्तार से विगत वार पत्र लिखा :

पूज्य भाई साहब की सेवामें,

यहाँ आने के बाद, पहुँच का कार्ड लिखा, वह मिला होगा। आज दामोदर मौसा के घर गया था। मुझे देखकर मौसा और मौसी, दोनों बहुत खुश हुए। आपके और भाभी के कुशल समाचार पूछे। उनके यहाँ

न ठहर कर दूसरी जगह ठहरा, इसका उन दोनों ने बहुत बुरा माना। मुझसे बोले कि हमारे घर को प्रीतमचन्द का ही घर समझो, पराया समझने की जरूरत नहीं। मैंने कहा कि अच्छी बात है, बीच-बीच में आपके यहाँ आता रहूंगा। मेरे लायक काम-काज ढूँढ देने का मौसीजी ने आश्वासन दिया है। इसलिए इस बारे में किसी तरह की फिक्र-चिन्ता न करें। अपना पक्का पता अगले पत्र में लिखूँगा।

बटुक के लिए छोटी-सी घोड़ा गाड़ी खिलौने वालों की दुकान पर ढूँढ रहा हूँ। मिलते ही किसी के हाथ भिजवा दूँगा। बटुक की मुझे हमेशा बहुत याद आती है। वह खुश हो, ऐसी बढ़िया घोड़ा गाड़ी भेजूँगा।

मेरी भाभीजी को मेरे प्रणाम कहियेगा। उनका मन दुखा कर यहाँ चला आया हूँ, मगर मुझे यहाँ किसी बात की तकलीफ नहीं है, यह आप उन्हें बता दीजियेगा। उनके आशीर्वाद से यहाँ सब ठीक-ठाक हो जायेगा और हम जल्दी ही मुसीबतों से किनारे लग जायेंगे।

अभी तो काम-काज की तलाश मे लगा हूँ, इसलिए पत्र लिखने में कभी देर-अबेर हो जाये तो आप चिन्ता न करें।

लिखा

नरोत्तम का पालागन

अब शहर के राग-रंग देखने में नरोत्तम की रुचि नहीं रह गयी। बड़ी सड़कों और तंग गलियों में भटकने के बदले वह प्रायः रेलवे स्टेशन पर ही घूमा करता। आने-जाने वाली ट्रेनों को देखकर वह आह्लादित हो जाता था। प्लेट फार्म के एक कोने से दूसरे कोने तक निरुद्देश्य घूमने मे उसे मजा आता था। सामान तौलने की मशीन, सिगनल का हत्था आदि यान्त्रिक करामातें उसे आश्चर्यजनक लगती थीं। और इन सबसे अधिक अनोखी और दिलचस्प तो थी प्लेट फार्म की छोटी-सी दुनिया।

इस दुनिया के निवासियों की संख्या तो बहुत कम थी, लेकिन उसके हर एक पात्र का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व था। स्टेशन मास्टर से लेकर

पोर्टर तक और मीठा दूध तथा पेड़े बेचने वाले से लेकर पानी की प्याऊ पर बैठने वाली बुढ़िया तक—सभी पात्रों की अपनी-अपनी विशेषतायें और जीवन-सम्बन्धी अपने-अपने विचार थे। रात-दिन प्लेटफार्म पर पड़ा रहने और गांजा-चरस फूंकने वाला दखलशा फकीर, पागल-सा दिखाई देता परन्तु वास्तव में परम बुद्धिमान भगला पग्गल, वर्दी पर बिल्ले लगाकर हमाली करने वाले कुली—सभी तो स्टेशन की इस दुनिया के दर्शनीय नमूने थे। और इन सब का सिरमौर था कीला कंघी वाला।

इस कीला कंघी वाले के अद्‌भुत व्यक्तित्व ने नरोत्तम पर जैसे जादू ही कर दिया।

कीला का पूरा नाम था कीलाचन्द कामदार। लेकिन इतना बड़ा और सम्माननीय नाम तो अब स्वयं कीला को भी याद नहीं रह गया था। और सारे शहर में वह कीला कंघी वाले के ही नाम से प्रसिद्ध था। 'कंघी वाला' के व्यवसाय-सूचक तखल्लुस के पीछे भी एक दिल-चस्प इतिहास था, जो समाज-शास्त्रियों का शोध का विषय हो सकता था।

कहा जाता है कि बचपन में कीला सोने के झुन-झुनों से खेला था। लक्ष्मी की गोद में पला यह आदमी गरीबी में जिन्दादिली और आन-बान से जीना जानता था और उसी मस्ती से जी रहा था। स्वाभिमान के साथ रोटी-रोजी कमाने के लिए कृत संकल्प कीला, कई तरह के धन्धे कर चुका था। दिवाली के दिनों में वह आतिशबाजी और पटाखों की फेरी करता, आम की मौसम में आम का व्यापार करता और बाकी दिनों गली गली घूम कर कांच की चूड़ियाँ भी बेचता था। गुजर-बसर के लिए किसी भी धन्धे को ईमानदारी से करने में कीला को बुराई नहीं दिखायी देती और न वह छोटापन ही महसूस करता था।

लेकिन कीला के नाम के साथ जुड़ा हुआ 'कंघीवाला' तखल्लुस तो उसकी एक दूसरी ही गति-विधि का परिणाम था। उन दिनों काठियावाड़ में बाल सवारने के लिए खुरदुरे और भोड़े खम्पारों (कंघों) का ही उपयोग किया जाता था। पुरुष वर्ग को तो अधिक

बाल संवारना होता नहीं था नई रोशनी के कुछ गिने-गिनाये लड़कों ने जरूर बाल रखना शुरू कर दिया था। बाकी स्त्रीवर्ग के केश सम्मार्जन के लिए बाघरी जाति की औरतें बासी रोटियों के बदले अपने हाथों के बनाये खम्पारे और खुरदुरी भोंड़ी कंघियां बेचा करती थीं। कोमलांगियों के उपयुक्त सुथरी कलात्मक कंघियां बम्बई-जैसे बड़े शहरों के अलावा और कहीं नहीं मिलती थीं। कीला ने सबसे पहले बम्बई से आने वाले यात्रियों के पास इन सुबुक कंघियों को देखा और उसकी व्यापार दक्ष बुद्धि में यह वाम बैठ गयी कि कंघियों के धन्धे में अच्छा मुनाफा हो सकता है। उसने उधार पूंजी का प्रबन्ध किया और बम्बई के एक परिचित व्यापारी के मार्फत कंघियों का पहले-पहल आयात किया। इस तरह राजकोट और काठियावाड़ भर में आधुनिक ढग की कंघियों का प्रचार करने का श्रेय कीला ने प्राप्त किया।

स्वावलम्बी कीला ने अपने जीवन-सग्राम के लिए अर्वाचीन किसान मज़दूर संघों द्वारा अपनाये जाने योग्य सूत्र खोज निकाला था: 'हुनर हाथ में उसे चिन्ता क्या?' तरह-तरह के हुनरों पर वह आदमी हाथ आजमा चुका था, इसलिए जीवन-निर्वाह मे उसे कभी कठिनाई नहीं हुई। कंघियों का नया व्यवसाय हाथ में आते ही कीला की प्रतिभा को प्रशस्त क्षेत्र मिल गया: 'ल्योजी विलायती कंघी......' की टेर लगाता हुआ कीला शहर की गली-गली घूमने लगा। चतुर कीला की जबान भी गजब की मीठी थी। महिला ग्राहकों में वह फौरन अपना स्थान बना लेता था। जिसे कभी न देखा हो उस औरत को भी काकी माँ कहकर सम्बोधित करता था। किसी के साथ मौसी तो किसी के साथ भानजी का रिश्ता जोड़ लेता। घर के बच्चे जिसे बुआजी कहते कीला भी उसे बुआजी ही कहकर पुकारता था। 'क्यों भाभू क्यों बुआजी, क्यों मौसीजी, कंघी दूं!' कहता हुआ कीला भारी-भरकम आदरवाची सम्बोधनों के साथ हाजिर हो जाता था। फिर, यह दिखलाने के लिए कि उसे अपने धन्धे की रत्ती-भर चिन्ता नहीं है, अपनी सधी हुई आवाज़ में दुनिया-जहान की गप्पें सुनाकर घरवालों

से बड़े ही सहज भाव से अपनाया कायम कर लेता था। बीच-बीच में बड़ी सफाई से अपने माल की तारीफ भी घुसेड़ देता : "ये बाघरी औरतें बेचती हैं वैसे नुकीले भालों-जैसे खम्पारे नहीं हैं बुआजी ! यह तो विलायत का असली नम्बरी माल है, नम्बरी !" फिर तो इस बातूनी आदमी के वाणी प्रवाह में बही जाती बुआजी की मजाल कि कंघी खरीदे बिना रह सकें।

कुछ समय के बाद कंघियों के व्यवसाय में भी प्रतिस्पर्द्धियों के आ घुसने से उतना मुनाफा न रहा तो कीला दूसरे 'हुनर' की ओर मुड़ गया। इस बीच काठियावाड़ में रेलवे की नई-नई लाइनें खुलती गयीं और लोग-बाग पैदल चलने अथवा बैलगाड़ियों से यात्रा करने के बदले इंजिन वाली गाड़ी से चलने के अभ्यस्त होते गये, इसलिए राजकोट के जंक्शन का भी व्यापारिक दृष्टि से महत्त्व बढ़ता गया। अवसर को पहचानने वाले कीला ने फिर दूरदर्शिता से काम लिया और जंक्शन पर खिलौनों की फेरी करने लगा। लेकिन उसका 'कंघीवाला' तखल्लुस और लोगों में, खास तौर पर औरतों में उसकी लोकप्रियता वैसी ही बनी रही। राजकोट शहर में तो कीला एक प्रसिद्ध व्यक्ति के रूप में मशहूर था ही, अब रेलवे जंक्शन पर खिलौनों का ठेला करने के बाद वह दूर-दूर के यात्रियों में भी मशहूर हो गया।

कीला के खिलौनों के ठेले ने नरोत्तम का मन मोह लिया। इस गाड़ी में महुवा के खरादियों द्वारा खराद कर बनाये हुए रंग-बिरंगे खिलौनों के ढेर लगे रहते—मोर और चिड़िया, चक्की और झुनझुना, हाथी और शेर; एक से एक बढ़कर खिलौने ही खिलौने ! नरोत्तम मुग्ध होकर रंग-बिरगे खिलौनों की ओर देखने लगा। उन खिलौनों में पाँच रंगवाली सुग्गा-सोंटी थी। एक छोटी-सी घोड़ागाड़ी देखकर तो नरोत्तम उछल ही पड़ा। उसे तुरत बटुक की याद हो आयी। इस घोड़ा-गाड़ी को वाघणिया भेज दूँ तो बटुक कितना खुश होगा !

एक दिन स्टेशन पर अपेक्षाकृत शान्ति थी और कीला पीपल की छांह में अपना ठेला खड़ा किये मदार (आक) के पत्तों की बीड़ियाँ

बना रहा था; नरोत्तम कुछ सकुचाता हुआ ठेले के पास पहुँचा और उसने वह घोड़ागाड़ी उठाली। कारीगर ने खिलौना क्या सचमुच की घोड़ागाड़ी ही बनाकर रख दी थी।

देर तक घोड़ागाड़ी के रंग-रूप और बनावट को देखते रहने के बाद नरोत्तम ने उसकी कीमत पूछना चाही, मगर संकोच के मारे उसकी जबान न खुल सकी।

बीड़ी बनाकर उस पर लाल रंग का धागा लपेटते हुए कीला इस ग्राहक को तिरछी निगाहों से देखता जाता था।

आखिर नरोत्तम ने लड़खड़ाये स्वर में पूछा : "इस घोड़ागाड़ी की कीमत क्या होगी ?"

"बिलकुल सस्ती है, ले जाओ........"

"सस्ती तो भी कितने की ?"

"अरे, रख भी लो; तुम्हें लूट तो नहीं लूंगा।" कीला ने कहा।

"तुम दाम तो बताओ।" नरोत्तम लेने से पहले कीमत जान लेना चाहता था।

"बाजार में लेने जाओगे तो डेढ़ रुपए से कम में नहीं मिलेगी। लेकिन मुझे कमाना नहीं है। ले जाओ एक रुपए में........"

नरोत्तम ने जेब में हाथ डाला, लेकिन फिर कुछ सोचकर हाथ बाहर निकाल लिया और घोड़ागाड़ी जहाँ से उठायी थी चुपचाप वहीं रखदी और भारी कदमों से जा ही रहा था कि कीला ने आवाज़ दी :

"क्यों जवान, लौट क्यों चले ?"

नरोत्तम के निरुत्तर रहने पर कीला ने कहा : "ले जाओ, ले जाओ। ऐसी गाड़ी सारे शहर में नहीं मिलेगी। असली महुवा का माल है........"

इतने आग्रह के बाद भी नरोत्तम को पिघलते न देख कीला ने पूछा: "तुम क्या देना चाहते हो ?"

नरोत्तम फिर भी चुप ही रहा तो कीला ने कुछ उग्र स्वर में पूछा : "लेना भी है या योंही उठा-धरी करके शौक पूरा कर रहे हो ?"

"लेना तो है ही ।" नरोत्तम ने जवाब दिया ।

"अच्छा, एक आना कम दो और उठालो । मेरे ठेले का बोझा हलका हो और जगह भी खाली हो जाये ।"

लेकिन नरोत्तम ने गाड़ी को उठाया नहीं, इसलिए न तो कीला का ठेला हलका हुआ न उसमें की जगह ही खाली हो सकी । झेंपता हुआ बिना कुछ बोले वह वहाँ से चला गया ।

नरोत्तम की जगह और कोई ग्राहक होता तो कीला उसे अपनी आदत के अनुसार यह सुनाये बिना न रहता : 'टेंट में पैसा रखकर भी आये हो या यों ही खाली हाथ निकल पड़े हो; लेकिन आदमियों के पारखी कीला ने देखते ही समझ लिया था कि नरोत्तम किसी दूसरी ही मिट्टी का बना है । इसलिए वह कुछ बोला नहीं, केवल नरोत्तम की पीठ की ओर कुतूहल पूर्वक देखता रहा ।

दूसरे दिन खाली समय में कीला रोज की तरह खिलौनों का ठेला पेड़ की छांह में खड़ा किये वहीं पास बैठा बीड़ियां बनाता हुआ दखलशा फकीर और पागल-मगले के साथ गप्पें लड़ा रहा था ।

खिलौनों की बिक्री से होने वाली आय में वृद्धि करने के लिए खाली समय में बीड़ियाँ बनाने का यह उद्योग कीला ने ही खोज निकाला था । वह अपने जीवन-सूत्र 'हाथ मे हुनर उसे चिन्ता क्या ?' पर हमेशा आचरण करता था । जब बीड़ियां तैयार हो गयीं तो उन्हें पान वाले को देने के लिए वह पच्चीस-पच्चीस के बण्डल बनाने जा ही रहा था कि धीरे-धीरे चलता हुआ नरोत्तम वहाँ आया ।

कीला अपना काम करता हुआ दबी निगाहों से नरोत्तम की ओर देखने लगा ।

नरोत्तम खिलौनों की ओर देख रहा था, लेकिन आज उस खिलौने

को हाथ में लेकर देखने की उसकी हिम्मत न हुई, यद्यपि मन बहुत चाह रहा था।

कीला इस विचित्र ग्राहक की ओर सम्भ्रम से देखता रहा।

काफी देर तक नरोत्तम ठेले के सामने खड़ा रहा। फिर एक लम्बी साँस लेकर वहाँ से चल दिया।

कीला ने आवाज़ देकर उसे बुलाया : "ए मोटे !* इधर आओ, इधर। यहाँ मेरे पास !"

आवाज़ में स्नेह और आत्मीयता की पुट थी इसलिए नरोत्तम लौट आया।

कीला समझ गया कि यह कोई ऐरा-गैरा आदमी नहीं है। कई दिनों से प्लेटफार्म पर चक्कर काट रहा है, जरूर कोई बात होनी चाहिए। इस भेद का पता लगाने के लिए कीला ने नरोत्तम को अपने पास स्नेहपूर्वक बिठा लिया और पूछने लगा :

"किस गाँव के रहने वाले हो ? यहां कहां रहते हो ? कौन जाति हो ?" आदि औपचारिक प्रश्नों के बाद कीला ने और भी कई प्रश्न पूछे और ज्यों-ज्यों पूछता गया इस आगन्तुक के जीवन के बारे में अधिकाधिक जानने की उसकी जिज्ञासा तीव्र होती गयी।

नरोत्तम भी स्नेह से पूछे गये प्रश्नों का सही-सही उत्तर देता रहा।

बातों ही बातों में कीला ने नरोत्तम के साथ अपनी सात-आठ पीढ़ी दूर का कोई रिश्ता खोज निकाला और कहा कि एक ही गोत्र के होने के कारण हम एक ही परिवार के हुए।

इससे नरोत्तम का रहा-सहा संकोच भी मिट गया और वह दिल खोलकर आपबीती सुनाने लगा। बातें करते-करते दोनों में इतनी आत्मीयता हो गयी कि कीला भी बीच-बीच में अपनी जीवन कथा

---

*बड़े या बड़के का समानार्थी।

सुनाने लग जाता था वह नरोत्तम के जीवन की घटनाओं से अपने जीवन की घटनाओं की तुलना करने लग जाता। नरोत्तम ने महसूस किया कि कीला भी मेरे ही जैसा दुःखी आदमी है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे के प्रति गहन आत्मीयता का अनुभव करने लगे।

कीला इस भोले-भाले युवक की निश्छलता पर इतना मुग्ध हुआ कि उसने वह घोड़ा गाड़ी नरोत्तम को अपनी ओर से भेंट कर दी।

नरोत्तम ने इतना महँगा खिलौना मुफ्त लेने से इनकार किया तो कीला ने कहा "सगोत्रीय होने के कारण हम अब एक ही परिवार के हुए, इसलिए बटुक—जैसा तेरा वैसा ही मेरा भतीजा भी हुआ। और अपने ही भतीजे को दिये जाने वाले खिलौने के भला मैं पैसे ले सकता हूँ ?"

फिर तो वे दोनों कुटुम्बीजन शाम तक बैठे बातें करते रहे। बातों-ही-बातों में जब नरोत्तम ने यह बताया कि इस अनजान शहर में रहने की जगह खोजना मेरे लिए मुश्किल हो रहा है तो कीला ने तपाक से कहा : "अरे उल्लू की दुम ! अभी तक बताया क्यों नहीं ? इस कीला का शानदार कमरा हाजिर है। तू भी चला आ वहीं रहने; नेक काम में देर कैसी ?"

यह निमन्त्रण पाकर नरोत्तम प्रसन्न हो गया।

कीला ने हंसते-हंसते एक शर्त रखी : "अपनी कोठरी में हाथ से टिक्कड़ सेंकने पड़ेंगे, यह समझ लो ! कीला के अकेले, अविवाहित जीवन में कोई पकाने-पोने वाली नहीं है; और इस उम्र में अब किसी रोटी बनाने वाली के आने की सम्भावना भी नहीं है।

"मुझे खाना पकाना तो नहीं आता, मगर तुम से सीखलूँगा और जो बन पडेगी मेहनत करूंगा।" नरोत्तम ने कहा।

कीला ने यह शर्त मंजूर करली और नरोत्तम उसकी कोठरी में रहने के लिए चला गया।

कोठरी में चारों ओर भयकर अव्यवस्था का साम्राज्य देखकर आरम्भ में तो नरोत्तम को आघात-सा लगा। अविवाहित व्यक्ति के

अस्त-व्यस्त और अराजकतापूर्ण जीवन की वह कोठरी मानों मूर्तिमन्त रूप थी। एक दिन नरोत्तम ने कमरे की सफाई करते हुए कीला से कहा, जो रोटी बना रहा था :

"कीला भाई, रोटी बनानेवाली क्यों नहीं ले आते ? इस सारी झंझट से छुट्टी पा जाओगे।"

"ना भैया, यह मुसीबत पालना अपने बस का नहीं। हाथ से टिक्कड़ सेकना उससे सात जनम अच्छा। शादी के लड्डू काठ के बने होते हैं, काठ के। जब खाकर भी पछताना ही है तो बिना खाये पछताना क्या बुरा ? जब वह इल्लत तेरे गले पड़ेगी तो पता चलेगा ! समझा भाई नरोत्तम !"

कीला की कोठरी में ठौर-ठिकाना लग जाने के बाद नरोत्तम ने वाघणिया अपने बड़े भाई के नाम विस्तार से एक पत्र लिखा और इस कोठरी वाला अपना पता भी उन्हें बता दिया। कीला ने बात-चीत के दौरान दूर का रिश्ता होने की जो बात कही थी उसे बहुत विस्तार-पूर्वक लिखकर नरोत्तम ने अपने भाई साहब को आश्वस्त किया कि मैं यहां कीलाचन्द भाई की देख-रेख में सही सलामत हूँ।

कीला ने जल्दी ही वाघणिया जाने वाला एक आदमी खोज निकाला। वहां का एक किसान शादी का सामान खरीदने के लिए राजकोट आया था। नरोत्तम ने उसके हाथ वह नन्ही-सी घोड़ागाड़ी बड़े भाई को भेज दी और जबानी कुशल-मंगल के समाचार भी कहला दिये।

अब नरोत्तम के लिए काम-धन्धा ढूंढ़ने का प्रश्न खड़ा हुआ। कीला ने उसका हौसला बढ़ाते हुए कहा : "रुपए तो रास्ते में पड़े हैं, बटोरने के लिए कलाइयों में जोर होना चाहिए।" और फिर अपना जीवन-सूत्र कह सुनाया : "हुनर हाथ में तो चिन्ता क्या ?"

लेकिन मुश्किल यह थी कि जीवन के उतार-चढ़ाव से सर्वथा अनभिज्ञ नरोत्तम को एक भी हुनर नहीं आता था—कीला की तरह

बहुत से हुनर जानने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। जीवन के कड़े संघर्षों में ठुक-पिट और घिस-घिसाकर कीला तो शालिग्राम बन गया था, जबकि नरोत्तम ने अभी जिन्दगी की कठोरता और कठिनाइयाँ देखी भी नहीं थीं। कीला ने उसे हिम्मत बंधायी : "फिकर क्यों करता है। मेरे साथ छह महीने काम कर लेगा तो उस्तादों का उस्ताद बन जायेगा।" और फिर उसने अपनी ही प्रशंसा करते हुए कहा : "जानता है, मैं कौन हूँ ? मैं हूँ कीला कंघीवाला—बड़े-बड़े शूरमा भी जिसके आगे पानी भरते हैं।"

१४

मेरा सगा भाई

चाचा की भेजी हुई घोड़ा गाड़ी देखकर बटुक मारे खुशी के अपना आपा ही भूल ही गया। 'काका ने राजकोट से गाड़ी भेजी है' कहता हुआ गली के अपने सभी संगी-साथियों को वह नया खिलौना दिखा आया।

पुत्र को इस तरह प्रसन्न होते देख ओतमचन्द और लाडकोर को भी प्रसन्नता हुई और वे थोड़ी देर के लिए अपना दु ख भूल गए। बटुक उस रंगीन खिलौने को पाकर किसी नयी ही दुनिया में पहुँच गया। लकड़ी का घोड़ा और लकड़ी की गाड़ी उसका सर्वस्व बन गये। वह उन निर्जीव खिलौनों से बातें करता, उनके साथ खेलता और उन्हें प्यार भी करता। बेटे को इस तरह खिलौने में मग्न देखकर लाडकोर की आखें जुड़ा जातीं। कलेजे में लगा गहरा घाव मानों अब भरने लगा था। भूनकाल की दु:खद स्मृतियां भूल चली थीं। निष्ठुर भाई-भौजाई के प्रति जो गुस्सा था वह कम होने लगा था। लाडकोर के प्रेम पूरित हृदय में सभी सगे-सम्बन्धियों के प्रति स्नेह की सरिता पहले की तरह हिलोरें लेने लगी थी। मानों उसके जीवन में विपत्तियों का अन्धड़ कभी आया ही नहीं था। लाडकोर ऐसी शान्ति और परितृप्ति का अनुभव करती मानों उसके पहले के जीवन-क्रम में कोई बाधा, कोई विघ्न पड़ा न हो।

इस बीच दकुभाई भी मोलमीन का एक चक्कर लगा कर ईश्वरिया लौट आया था। मोलमीन यहाँ से बहुत दूर था—ठेठ बर्मा में। वह इतनी दूर गया और सहसा बहुत जल्दी लौट भी आया, इस बात को

लेकर ईश्वरिया गांव के निवासी तरह-तरह की बातें करते थे। जो दकुभाई का पुराना इतिहास जानते थे उनका कहना था कि बर्मा में भी इस बेईमान ने जरूर कुछ अफरा-तफरी की होगी और इसीलिए भाग आया। लेकिन अन्दर का भेद जानने वाले कुछ और ही कहते थे—दकुभाई के कुल उजागर लायक बेटे बालू ने बाप की गैर हाजिरी में गाँव मे ऐसा कुकर्म किया—गांव वालों की जबान में, किसी अहीरिन को 'हराम का हमल रह गया'—कि पुत्र के पराक्रम को रफा दफा करने के लिए पिता को दूर देश से लौट आने के लिए मजबूर होना पड़ा। कुछ लोगों का यह खयाल भी था कि ओतमचन्द के घर में डाका डालकर कानून की गिरफ्त से बचने के लिए दकुभाई बर्मा भाग गया था और अब चूंकि मामले मुकदमे का कोई डर-भय नहीं रह गया है इसलिए बेधड़क लौट आया है। सचाई जो भी हो, इतना निश्चित है कि इस बार दकुभाई कुल का नाम रोशन करने वाले पुत्र की शादी कर उसे ठीक से बाँधने का पक्का इरादा करके ही आया था, क्योंकि ईश्वरिया में पाँव रखते ही उसने मकनजी मुनीम को बालू के लिए कानी-कुबड़ी, बहरी-गूंगी जैसी भी लड़की मिल जाये फौरन खोज लाने का हुक्म सुना दिया था; और आज्ञा पालक मुनीम भी दकुभाई सेठ की समृद्धि का गुण-गान करता हुआ गाँव-गांव घूमने लगा था।

दकुभाई की इस नूतन समृद्धि की खबर उड़ती हुई लाडकोर तक पहुँची। जिस जमाने में गोरी मेमों के अतिरिक्त और कोई बच्चों को बाबा गाड़ी में घुमाने के लिए ले जाना जानता ही नहीं था और यह विचित्र विदेशी वाहन अपवाद स्वरूप किसी पारसी परिवार के सिवाय भारत में अन्यत्र कहीं नहीं दिखायी देता था, दकुभाई ने ठेठ बर्मा से अपने छोटे बच्चे के लिए रंगी-चुंगी बाबा गाड़ी लाकर सारे ईश्वरिया गाँव को चकित कर दिया था। पहले दिन जब वह अपने नन्हें बालक को बाबा गाड़ी में बिठा कर ईश्वरिया के बाजार से निकला तो उसे बाजार का रास्ता मानों तंग पड़ता दिखायी दिया। जिन लोगों ने अपनी सारी जिन्दगी में बैलगाड़ी के अतिरिक्त और कोई वाहन नहीं देखा था

उनके लिए यह नये ढंग की सवारी एक अजूबा ही थी। इसके सिवाय दकुभाई बर्मी ढंग के जो बहुत से रंग-बिरंगे खिलौने लाया था उन्हें देखने के लिए उसके आँगन में दिनों तक गांव के किसानों की भीड़ लगती रही। उसकी पत्नी समरथ को तो यों भी जमीन से एक बालिश्त ऊपर चलने की आदत थी, अब इस नई समृद्धि के नशे में वह आसमान में ही उड़ने लगी और भोले ग्रामीणों के आगे डींग हांकने लगी कि देखते चलो, अभी तो मेरे मोलमीन से मोटर आ रही है मोटर, तेल से चलने वाली मोटर गाड़ी !

दकुभाई की सम्पन्नता के इस तरह के समाचारों को सुन-सुनकर लाडकोर प्रसन्न होती और गहरा सन्तोष व्यक्त करते हुए कहती : 'मेरा भैया खूब कमाकर लाया। आखिर तो वह मेरा सगा—सहोदर भाई है। कोई गैर थोड़े है। भाई के घर सम्पन्नता हुई और हाथ में पैसा रहा तो हम बहिन-बेटियों को भी वार-त्यौहार कपड़ा मिल जाया करेगा। भगवान उसे और भी दें और खूब दें। अपने वालों के पास पैसा रहा तो हारे-गाढ़े उनके आगे हाथ फैलाया जा सकता है; गैरों से तो मांगने से रहे।"

और बड़ी जल्दी ऐसा नाजुक मौका आ भी गया कि लाडकोर को सचमुच ही अपने भाई के आगे हाथ फैलाने को विवश हो जाना पड़ा।

एक दिन शाम को ओतमचन्द को दुकान बढ़ाकर घर लौटने में बहुत देर हो गयी। सामान्य नियम बल्कि कहना चाहिए कि रिवाज यह था कि पति के घर लौटने के समय हँसमुख लाडकोर दरवाजे में आ खड़ी होती और चुपचाप मुस्कराती हुई पति का स्वागत करती। लेकिन आज दिन भर का थका-मांदा ओतमचन्द दुकान से लौटा और पत्नी हमेशा की तरह दरवाजे या आँगन में खड़ी दिखायी नहीं दी तो उसका माथा ठनका। यह सोचकर कि आज मुझे लौटने में देर हो गई इसलिए प्रतीक्षा करते हुए थककर अन्दर चली गयी होगी, उसने सांकेतिक ढंग से खांसकर अपने लौटने की सूचना दी।

सामान्यतः पति के पांवों की आवाज सुनते ही नवोढा की-सी

उमंग से सीढ़ियां उतर कर सामने दौड़ आती पत्नी के जब खाँसने पर भी दर्शन न हुए तो ओतमचन्द को आश्चर्य के साथ चिन्ता भी होने लगी। थोड़ा आशंकित होकर धड़कते हृदय से जब उसने जल्दी-जल्दी ओसारे में प्रवेश किया तो घर में अंधेरा पड़ा था और साँझ वेला के धूमिल प्रकाश में उसने देखा कि लाडकोर ओसारे के एक कोने में सिर तक साड़ी ओढ़े, बटुक को गोद में लिये लेटी है।

इस दृश्य को देखकर ओतमचन्द की आंखें कुछ देर के लिए फटी-की-फटी रह गयीं।

और जब लाडकोर की दबी हुई सिसकी सुनायी दी तो बेचारे ओतमचन्द के प्राण नहों में समा गये। उसने पत्नी को हिलाकर पूछा: "क्यों क्या हुआ ? तबीयत अच्छी नहीं है क्या ? कहीं दर्द-वर्द तो नहीं हो रहा ?"

पति को आया जान कर लाडकोर एकदम हड़बड़ा कर उठ बैठी। साड़ी के पल्ले से गीली आंखों को जल्दी से पौंछने के बाद ही उसे इस बात का भान हो सका कि अँधेरा हो गया है और घर में दीया-बाती नहीं की गयी है। सबसे पहले उसने आले में पधराये गणपति के समक्ष घी का दीया जलाया और फिर चुपचाप कन्दील जलाने बैठ गयी।

ओतमचन्द ने फिर पूछा: "क्यों, आज तबीयत अच्छी नहीं है क्या ?"

लाडकोर ने जब इस बार भी कोई जवाब नहीं दिया तो ओतमचन्द ने पुनः प्रश्न किया: "आज बटुक इतना जल्दी कैसे सो गया ?"

लाडकोर जवाब देने के बदले रसोईघर में चली गयी और खाना परोसने लगी तो ओतमचन्द ने फिर सवाल किया: "आज हुआ क्या है ? कोई बुरी खबर तो नहीं है ?"

लेकिन लाडकोर के गले में रुलाई इस कदर भरी हुई थी कि वह चाहती तो भी उत्तर दे पाना असम्भव ही था। उसने यन्त्र चालित की तरह पति के लिए खाना परोसा और सिर पर हाथ देकर बैठ गयी।

हाथ-मुँह धोकर ओतमचन्द पट्टे पर बैठ तो गया लेकिन पत्नी की

रुआंसी सूरत देखकर उससे कौर तोड़ा न गया। उसने अपने सदा के नियम के अनुसार पूछा : "बटुक ने खा लिया ?"

लाडकोर ने बहुत ही संक्षिप्त-सा उत्तर दिया : "नहीं।"

सुनकर ओतमचन्द और भी आशंकित हुआ। पूछा :

"क्यों नहीं खाया ? बुखार-बुखार तो नही है ?"

"नहीं।" लाडकोर ने जवाब दिया।

"फिर क्यों नही खाया ?"

"खाते-खाते मचल गया और फिर रोते-रोते सो गया।" लाडकोर ने स्पष्टीकरण किया।

कौर तोड़ने के लिए बढ़ा हुआ ओतमचन्द का हाथ वहीं-का-वहीं रुक गया। पत्नी की उदासी का रहस्य उसकी समझ में आ गया।

"खाते समय मचला क्यों ?" ओतमचन्द ने पूछा : "तुमने डाँटा-फटकारा तो नहीं था ?"

'मैं क्यों डाँटती ?" लाडकोर ने जवाब दिया : "लड़का तुम्हीं को प्यारा है, मुझे नहीं ?"

"फिर भूखा क्यों सो गया ?"

"दूध-पेड़े के लिए मचल गया था। शाम को सोनी के लड़के को उसने दूध-पेड़ा खाते देख लिया था; बस, तभी से दूध-पेड़े की ज़िद करने लगा—दूध-पेड़ा दो तो ही खाऊँ, नहीं तो नहीं; अब उस नासमझ बच्चे को कोई समझाये भी कैसे कि........"

लाडकोर ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया। पत्नी बटुक को क्या समझाना चाहती थी उसे ओतमचन्द इस मामूली-से इशारे में समझ गया। घर की इस कदर गिरी हुई हालत की याद ताज़ा होते ही वह व्यग्र, व्यथित और चिन्तित भी हो उठा।

अब ओतमचन्द के लिए खाने में कोई स्वाद नहीं रह गया था। थाली का भोजन ठण्डा होता रहा और दुखियारे पति-पत्नी अपने विकट आर्थिक संकट के बारे में बातें करने में मशगूल हो गये।

"ऐसे कितने दिन चलेगा ?" लाडकोर पूछती रही।

"जब तक भाग्य में लिखा होगा।" ओतमचन्द बार-बार एक ही उत्तर देता रहा।

रूठ कर भूखे ही सो जाने वाले बेटे के दुःख से वह दम्पती इतने व्यथित हुए कि अन्त में ओतमचन्द परोसी थाली पर से उठ गया। उस रात लाडकोर से भी खाना न खाया गया, उसकी तो भूख जैसे मर गयी थी।

× × ×

आधीरात की गजर लग चुकी, पड़ौसियों का बकरव क्रमशः धीमा होता हुआ शान्त हो गया, मगर इस घर के शयनगृह में पति-पत्नी की एक गम्भीर प्रश्न पर बातचीत बराबर चलती रही।

पति जब बिलकुल निराश होता दिखायी दिया तो लाडकोर ने उसे हिम्मत बंधाते हुए कहा : "तुम पुरुष होकर हम चूड़ी वालियों की तरह हिम्मत हार रहे हो? नफा-नुकसान तो होता ही रहता है। क्या दुनिया में अकेले हमीं को व्यापार में टोटा हुआ है? दुनिया में और किसी ने क्या कभी दीवाला निकाला ही नहीं? व्यापार-धन्धे में तो यह सब होता ही है : कभी धूप निकलती है, कभी छाया हो जाती है। कल बटुक के भाग्य मे लिखा होगा तो हम फिर खड़े हो जायेंगे और वह दुमजिला हवेली लोहाणा से वापिस ले लेंगे·········अच्छे दिन लौटेंगे तो हालत सुधरते और पहले से सब-कुछ सवाया होते देर न लगेगी।"

ओतमचन्द अन्यमनस्क-सा जाने क्या सोच रहा था; उसने जैसे पत्नी की बात सुनी ही नहीं।

पति की व्यग्रता को कम करने के विचार से लाडकोर ने रुकते-रुकते कहा :

"तुम एक बार ईश्वरिया जाकर मेरे दकुभाई से बात क्यों नहीं करते?"

सुनकर ओतमचन्द की आँखों में खून उतर आया, लेकिन अपने क्रोध को शब्दो की राह व्यक्त कर पत्नी को दुःखित करना उसे उचित न लगा।

पति के मौन को सम्मति समझ कर लाडकोर ने फिर सलाह दी :

"तुम फौरन ईश्वरिया चले जाओ........मेरा दकुभाई तुम को कभी खाली हाथ नहीं लौटने देगा।"

ओतमचन्द ने मन पर संयम कर छोटा-सा-जबाब दिया : "किसी का दिया और फूस का तापा कितने दिन चलता है ?

"लेकिन मै किसी गैर से माँगने के लिए तो कह नहीं रही हूँ ।" लाडकोर बोली : "दकुभाई तो मेरा माँ का जाया सगा भाई.........."

"खाने-पीने से मदद भले ही कर दे, जिन्दगी की समस्या हल नहीं कर सकता !" इतना कह कर ओतमचन्द फिर चुप हो गया ।

"आज के समय खाने-पीने की मदद हो जाये तो उसी को भगवान का उपकार मानना चाहिए।" लाडकोर ने एक ही वाक्य में घर की भीषण गरीबी का दिग्दर्शन कर दिया ।

"दुनिया इसी तरह चलती है । हमारे ही बुरे दिन आगये तो किसी का क्या दोष ?"

"लेकिन बटुक आज एक चीज के लिए मचला, कल किसी दूसरी चीज़ की ज़िद ठानेगा........" लाडकोर ने कहा : "मुझ से तो बड़ी मनौतियों से जनमे एकाकी बेटे के आँसू देखे नहीं जाते ।"

"बेचारा भोला-भाला बच्चा समझता थोड़े ही है कि कौन चीज़ माँगनी चाहिए और कौन नहीं !"

"इसीलिए तो कह रही हूँ कि इस भोले बच्चे पर ही तरस खाकर मेरे दकुभाई के यहाँ चले जाओ।" लाडकोर ने भूखे बटुक की ओर, जो भूख के बावजूद गहरी नींद सो रहा था, अँगुली से दिखलाते हुए कहा । "सगा मामा अपने भानजे को कभी भूखा नहीं रहने देगा । शास्त्रों में कहा भी है कि एक भानजा सौ ब्राह्मणों के बराबर होता है । मेरा दकुभाई........"

लाडकोर ने जब 'मेरे दकुभाई' की रट लगा दी तो ओतमचन्द से चुप न रहा गया । उसने अपना एक हाथ फैलाकर पत्नी से पूछा : "यह क्या है ?"

"अँगुलियाँ हैं, और क्या ?" लाडकोर ने जवाब दिया।

"बिलकुल ठीक........और यह क्या है ?"

"नाखून।"

"बेशक नाखून ही हैं।" और फिर ओतमचन्द ने एक बड़ा ही विचित्र प्रश्न पूछा : "लेकिन ये नाखून इन अँगुलियों से कितने अलग हैं ?"

और पत्नी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही ओतमचन्द ने गम्भीर स्वर में अपना निर्णय दे डाला :

"दकुभाई हमारा कितना ही करीबी रिश्तेदार क्यों न हो, अँगुलियों से नाखून अलग हैं, सो हैं ही। समझने वाले के लिए इतना इशारा काफी है।"

"मेरा सगा माँ का जाया दकुभाई अपनी सगी बहिन को क्या इतना गैर समझता है ?" लाडकोर ने कुछ रुष्ट होकर कहा : "आप मेरे मायके वालों को इतना गया बीता और गरीब समझते हैं ?"

"भगवान किसी को गरीबी न दे, न कंगाल बनाये !" ओतमचन्द ने अपने अनुभव के आधार पर प्रार्थना के स्वर में कहा और तब आगे बोला : "मैं तो सिर्फ यह कह रहा था कि माँग-जाँचकर किसी का काम नहीं चलता, फूस के तापने से ठण्ड नहीं उड़ती और दूसरों से माँगकर गृहस्थी नहीं चलती; मांगे के घी से भी कहीं चूरमा बनता है ?" और फिर मानों अपने से ही कह रहा हो इस तरह अत्यन्त धीमे स्वर में बोला : "यों तो माँगने से मोती भी मिलते हैं, लेकिन माँगने वाले यानी भिखारी की इज्जत ही क्या ? सिर्फ दो कौड़ी की !"

"हाय राम, सुनो इनकी बातें !" लाडकोर ने मटक कर पहले की ही तरह रोष-भरे स्वर में कहा : "सगे भाई के आगे बहिन के हाथ फैलाने को ये भीख माँगना कहते हैं ! बहिन-बेटियाँ तो जिन्दगी-भर भाइयों से माँगती रहती हैं। भाई से माँग कर लेना हमारा नेग है, लाग है, हक है।"

ओतमचन्द को पत्नी के भोलेपन पर मन-ही-मन हँसी आ गयी।

क्षमा और उदारता की मूर्ति लाडकोर अपने दकुभाई के सारे अपराधों और दुर्व्यवहारों को भूल गयी थी। वह बड़े उत्साह से अपने भाई की आर्थिक प्रगति का वर्णन करने लगी :

"और मेरे दकुभाई की हालत अब तो पहले से कहीं अच्छी है ! आज कल उसके हाथ मे पैसा-ही पैसा है। मोलमीन से गठरियों रुपया लेकर आया है मेरा भाई। अच्छे ग्रह लगते ही तकदीर कैसी खुल गयी है, क्या तुम्हें दिखायी नहीं देता ? ईश्वरिया से जो भी आता है यही कहता है कि मेरी भाभी समरथ को सिर से पाँव तक सोने के जेवरों से लाद दिया है उसने। और मेरे भतीजे बालू के लिए तो बड़े-बड़े नगर सेठों की लड़कियों के रिश्ते पर रिश्ते इस तरह चले आ रहे हैं कि दकुभाई की देहरी पर नारियलों का ढेर लग गया है। तुम्हें कुछ पता भी है ?"

'हाँ ! इन दिनों नारियल का बाजार कुछ तेज़ जरूर है।" ओतमचन्द ने व्यंग्यपूर्वक कहा : "लेकिन यह नहीं मालूम कि तेरे दकुभाई ने नारियल का सट्टा शुरू कर दिया है।"

दु:ख, कष्टों और चिन्ताओं की मार में भी ओतमचन्द हँसी-मजाक करने की अपनी क्षमता को बनाये रख सका था।

× × ×

ईश्वरिया जाना चाहिए या नहीं; इसकी चर्चा वे काफी रात गये तक करते रहे। दकुभाई की करतूतों से अच्छी तरह परिचित ओतमचन्द को उस दो कौड़ी के आदमी के आगे हाथ पसारने के लिए जाते हुए बड़ी हिचकिचाहट हो रही थी। उसके मन की बात तो यह थी कि कमाने के लिए राजकोट गया हुआ नरोत्तम वहाँ से थोड़ा-बहुत पैसा भेजने लगेगा तो यहाँ की गाड़ी ढर्रे पर आ जायेगी, काम-धन्धे को भी थोड़ा बढ़ाया जा सकेगा और किसी गैर का एहसानमन्द होने की जरूरत नही रह जायेगी, परन्तु लाडकोर में इतना धैर्य नहीं था खास

तौर पर पिछली शाम की घटना ने उसके नारी हृदय को बहुत ही व्यथित और अस्थिर कर दिया था और इसीलिए वह ओतमचन्द के ईश्वरिया जाने पर इतना जोर दे रही थी।

ओतमचन्द ईश्वरिया जाने या न जाने के प्रश्न को लेकर बड़ी देर तक दुविधा में पड़ा रहा। लेकिन आखिर प्रेममयी पत्नी की जीत हुई। अपने आप से काफी जूझने के बाद, पत्नी का मन रखने और मोलमीन की कमाई से साहूकार बन बैठे साले का मन टटोलने के इरादे से ओतमचन्द ईश्वरिया जाने के लिए तैयार हुआ ! यद्यपि अन्त तक उसके मन में इस बात का क्षोभ बना रहा कि जिस दकुभाई ने खुद ही सारे सम्बन्धों को तोड़ कर आपसी व्यवहार को खत्म कर दिया उसके यहाँ बिना बुलाये जाना अपमान के घूँट पीना ही है। लेकिन इस समय 'मेरे सगे माँ के जाये दकुभाई' की रट लगाने वाली लाडकोर इस तरह की दलील सुनने के लिए तैयार नहीं थी ?

जब काम-धन्धा जमा हुआ था उन दिनों आढ़तियों-व्यापारियों से लेना वसूल करने के लिए जिस पवन पंखी घोड़ी चन्दरी की पीठ से जीन कभी उतरती नहीं थी उसे तो दिवाला निकलने के बाद लेनदारों के चुकारे में दे देना पड़ा था, इसलिए ओतमचन्द को अब ईश्वरिया तक का रास्ता पैदल ही नापना था। गरीबी के इन दिनों घी उनके लिए इस कदर दुर्लभ हो गया था कि वे उसका स्वाद ही भूल चुके थे। इसलिए रास्ते के नाश्ते के लिए गुड़ पपड़ी बनाकर देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता हाँ, लाडकोर ने मुँह अँधेरे उठकर आटा जरूर सेक दिया और गुड़ की एक डली भी रखदी ताकि ओतमचन्द रास्ते में कहीं पानी पी सके।

बड़े सवेरे, घर से चलते समय, बटुक जाने कैसे जाग गया और उसने पिता से पूछा : 'आप कहाँ जा रहे हैं ?"

भोले बटुक को सच्ची बात बताते ओतमचन्द का मन न हुआ। परन्तु प्रसन्नता से उमंग रही लाडकोर ने फौरन हुलसकर बता दिया :

"बेटा, मामा के घर जा रहे हैं........" और फिर पुत्र को रिझाने के लिए माता ने आगे कहा : "तेरे लिए बढ़िया-बढ़िया चीज़ें लायेंगे। खिलौने और मिठाई और बहुत सी चीज़ें ...."

माता के इन बड़े-बड़े वादों को सुनकर बटुक की कली कली खिल गयी।

और पुत्र के मुस्कराते हुए चेहरे को दार्शनिक की उदास दृष्टि से देखता हुआ ओतमचन्द ईश्वरिया के रास्ते चल पड़ा।

१५

'दुनिया-भर का चोर'

"बस, बस........अब बस कीजिए........"

"वाह, यों कहीं बस किया जाता है ? एक प्याला और लीजिए ।"

"अब नहीं चल सकता, बहुत हो गया ।"

"इसमें बहुत क्या हो गया ?............जो मना करे उसे सबसे प्यारे सगे की सौगन्ध !"

दकुभाई ने अपने मकान के जिस कमरे को 'दीवान खाने' का भारी-भरकम नाम दे रखा था उसमें इस समय केसरिया दूध के कटोरों की मनुहारें हो रही थीं ।

मेंगणी से कपूर सेठ अपनी छोटी लड़की जसी की बालू के साथ सगाई करने के लिए आये थे, बल्कि कहना चाहिए कि मकनजी मुनीम कपूर सेठ को साग्रह बुला लाया था और अब केसरिया दूध के कटोरे-पर कटोरे पिलाकर उन्हें बोतल में उतार रहा था ।

इस बार कपूर सेठ के साथ राजकोट वाले मनसुख लाल भी आये थे । चम्पा का रिश्ता तय करते समय उसके मामा से सलाह या पूर्व-सम्मति नहीं ली गयी थी, जिससे मनसुखलाल बुरा मान गये थे, इसलिए उसके प्रायश्चित स्वरूप कपूर सेठ ने जसी की सगाई में अपने साले को आगे कर दिया था ।

दकुभाई की नई समृद्धि से कपूर सेठ बहुत प्रभावित हुए उस समृद्धि का प्रत्यक्ष दर्शन करने के पहले ही, मकनजी के मुँह से बखान

सुनकर वे पिघल गये थे और बालू के साथ जसी का रिश्ता तय करने के लिए उतावले हो उठे थे। लेकिन राजकोट-जैसे बड़े शहर में रहने वाले मनसुखलाल भाई की बात जुदी थी। उस शहरी आदमी पर अपनी सम्पन्नता का रौब जमाने के लिए दकुभाई को खासी जहमत उठानी पडी थी।

दीवान खाने की सजावट में दकुभाई ने कोई कसर उठा नहीं रखी थी। बर्मी जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं की एक छोटी-सी नुमाइश ही उस कमरे में लगा दी गयी थी। दीवाल के चित्रों में बर्मा के प्राकृतिक दृश्य और बर्मी सुन्दरियाँ; जमीन पर बिछाये गये फर्श और गालीचे बर्मी ढग के; पान-सुपारी की तश्तरी और पानदान की नक्काशी भी बर्मी; शीशे की अलमारी में सजाये हुए लकड़ी के सुन्दर नक्काशीदार खिलौने भी बर्मी। ऐसी सम्पन्नता और सजावट देखकर कपूर सेठ की आँखें ही चौंधिया गयीं, बेचारे हक्का बक्का रह गये ! शहर मे रहने वाले मनसुखलाल भी उस शान-शौक़त से प्रभावित हुए बिना न रहे।

दकुभाई बर्मा के बडे-बड़े शहरों का रंगून, अकयाब, प्रोम और हन्साडा का जिन्हें वह देख आया था, वर्णन करते नहीं थकता था। हर तीसरे वाक्य पर वह 'हमारे मोलमीन' का इस तरह उल्लेख करता मानो यह उसका तकिया कलाम ही हो।

मनसुख भाई-जैसे शहराती आदमी को भी लगा कि जसी के लिए ऐसा सुखी और सम्पन्न घर सारे काठियावाड़ में दूसरा नहीं मिल सकता।

इस समय अच्छी साइत चल रही थी, इसलिए शुभ मुहूर्त में जल्दी से सगाई की विधि सम्पन्न करने का निश्चय करके उसकी प्राथमिक तैयारियों के लिए बालू को बाजार दौड़ा दिया गया था। असल में मकनजी की चाल यह थी कि बिरादरी की उपस्थिति में सगाई का गुड़ खा न लिया जाये तब तक बालू को किसी-न-किसी बहाने घर के बाहर ही रखा जाये, जिससे उस मूर्खाधिराज को मेहमानों के समक्ष अपनी मूर्खता का प्रदर्शन करने का मौका न मिले। इस योजना के

अनुसार दकुभाई ने बालू को साग सब्जी खरीदने, पान-बताशे लाने और सगाई में शरीक होने वालों को खुशियाली तथा नेगियों को नेग बाँटने के लिए सौ रुपए के नोट की खेरीज ले आने आदि काम सौंप कर घर से बाहर धकेल दिया था।

चीनी मिट्टी के चमचमाते बरतनों का तो कपूर सेठ पर कुछ ऐसा रौब गालिब हुआ कि वे मारे कुतूहल के तरह-तरह के बचकाना सवाल पूछने लगे। चीनी मिट्टी के कप-तश्तरी में जब बादाम, पिश्ता और चारोली मिला केसरिया दूध आया तो कपूर सेठ नादान बच्चे की तरह पूछ ही बैठे :

"दकुभाई सेठ, ये बरतन किस धातु के हैं ?"

"धातु के नहीं, चीनी के हैं, चीनी मिट्टी के।" दकुभाई ने अभिमान से सिर ऊँचा करके जवाब दिया : "इन बरतनों की सिफत यह है कि गरमा गरम दूध भरा होने पर भी हस्थ नही जलते।"

यह उस समय की बात है जब काठियावाड़ के दो-एक जंक्शन स्टेशनों के अंग्रेजी ढंग के रिफ्रेशमेन्ट रूमों के सिवाय और कहीं चीनी मिट्टी के बरतनों का चलन नहीं हुआ था। कपूर सेठ की जिज्ञासा और प्रबल हुई और वे यह पूछने का लोभ संवरण न कर सके :

"इन बरतनों में खाने पीने से धरम तो नहीं चला जाता ?"

दकुभाई की बुलन्द हँसी से सारा दीवान खाना गूँज उठा। उसने हँसते हुए कहा :

"सेठ साहब, ऐसे 'कप-तश्तरी' तो उसी के भाग्य में लिखे होते हैं जिसने पिछले जन्म में पाँचों अँगुलियों से पुन्य किया हो। हमारे मोलमीन में तो चीनी की ही थाली और चीनी के ही कटोरे। हमारे मोलमीन में रहन-सहन भी होलसेल यूरोपियन स्टाइल का......हमारे मोलमीन में तो......" दकुभाई का वाक्य अधूरा ही रह गया। दीवानखाने के दरवाजे में ओतमचन्द आ खड़ा हुआ था।

ओतमचन्द का हुलिया इस समय ऐसा हो रहा था कि पहली नजर

में उसे पहचान पाना भी मुश्किल था। इतनी लम्बी मंजिल पैदल ही चलकर आया था इसलिए नंगे पावों के घुटनों तक खेतों की धूलकी परतें चढ़ गयी थीं। पेट मे करीब एक बालिश्त गहरा गड्ढा पड़ जाने से आँखें और भी अन्दर धँसी हुई लग रही थीं। धूल भरे रास्ते के कारण बढ़ी हुई डाढ़ी ने धूलि-धूसरित होकर उसका सारा हुलिया ही बिगाड़ कर रख दिया था।

दकुभाई के मुँह से स्वागत के औपचारिक शब्दों की प्रतीक्षा में ओतमचन्द दरवाजे में ही विजूके की तरह खड़ा रह गया।

भावी समधियों के सामने अपनी सम्पन्नता के वर्णन के ही समय दिवालिये और दरिद्र बहनोई का दरवाजे में दिखायी दे जाना दकुभाई को क्रोधोन्मत्त करने के लिए काफी था। सुलगती आँखों से उसने ओतमचन्द की ओर देखा और कटखने कुत्ते की तरह भौंक उठा :

"समय-कु-समय भी देखते हो या बांधा सत्तू और चले आये।"

ओतमचन्द वहाँ दूध भरे प्यालो और नाश्ते की मनुहारों को देख-कर पहले ही सकपका गया था। अब जो दकुभाई को भौंकते सुना तो बेचारे की सिट्टी गुम हो गयी। उसकी थकी हुई आँखों के सामने लाल, पीले और नीले, तीनों ही मूल रंगो की मिलावट होने लगी।

दकुभाई ताना तो मार गया, लेकिन दूसरे ही क्षण उसे खयाल आया कि होने वाले समधियों के समक्ष ऐसा उद्दण्डतापूर्ण आचरण कुलीनता का दिवाला ही माना जायेगा। बहनोई ने केवल पैसे-टकों का दिवाला निकाला है, मैं सज्जनता का दिवालिया करार दिया जाऊँगा। इस विचार के आते ही उसने बिगड़ी बाजी को सुधारने के इरादे से ओतमचन्द से कहा :

"ओसारे में सुस्ता लो थोड़ी देर !"

ओतमचन्द दीवानखाने के दरवाज़े से लौट पड़ा और थका-मांदा ओसारे में आकर बैठते हुए मन-ही-मन बोला : "बगैर पैसे मिलने वाली चीज एक सुस्ताना ही तो है।"

दीवानखाने के अन्दर का दृश्य देखकर ओतमचन्द इस तरह सकपका गया था कि वह अपने समधी कपूर सेठ को देखकर भी पहचान न सका, लेकिन कपूर सेठ ने उसे पहली ही निगाह में पहचान लिया था। उन्होंने फौरन मनसुखभाई के कान में फुसफुसाकर कहा :

"ये·····ये थे हमारी चम्पा के जेठ·····नरोत्तम के बड़े भाई !"

सुनकर नकचढ़े मनसुखलाल ने मुँह बिचका दिया।

दकुभाई पहले ही घबरा रहा था, इससे उसकी घबराहट और बढ़ गयी। उसने प्रश्नसूचक निगाहों से कपूर सेठ की ओर देखा।

"बनिया बेचारा बड़ी मुसीबत में फंस गया।"

"जो खुद होकर मुसीबत को न्यौता दे उसका कोई क्या करे ?" दकुभाई के अपराधी मस्तिष्क को जो सहसा सूझ गया, उसने व्यक्त कर दिया और तब बोला : 'हैसियत को देखे-समझे बिना बढ़-बढ़कर हाथ मारने वाले की आखिर यही दशा होती है। आज तो सभी लखपति बनना चाहते हैं; लेकिन रुपया राह में तो पड़ा नहीं है ! आपकी आँखों के सामने हमीं जाने कितनी मुसीबतों को माथे ओढकर मोलमीन गये तब कहीं आज का यह दिन देखना नसीब हुआ है।"

दकुभाई को यों आत्म प्रशंसा करते देख मनसुखलाल आश्चर्य से उसकी ओर देखता रह गया।

उधर ओसारे में बैठा ओतमचन्द अपने इस घोर अपमान के लिए साले को नहीं पत्नी को दोष दे रहा था; वह दकुभाई को नहीं, लाडकोर को मन-ही-मन कोस रहा था, उसी पर अपना गुस्सा उतार रहा था।

आज बालू की सगाई की खुशी में लपसी और पकौड़ी की दावत का आयोजन किया जा रहा था। रसोई घर में समरथ ने चूल्हे पर कड़ाही रखी और पकौड़ी तलने का तेल ओसारे वाले टाँके में से ले आने के लिए हाथ में खाली मर्तबान लिये बाहर आयी। ओसारे में उल्लू-जैसा चेहरा बनाये शून्यमनस्क बैठे ओतमचन्द को पहचानते ही पहले तो समरथ बहू सकपका गयी, फिर हमेशा की आदत के कारण ननदोई की उपस्थिति में फौरन हाथ-भर का लम्बा घूँघट अपने चेहरे

पर खींच लिया। इसके बाद ही वह बदन सिकोड़े लजाती-शरमाती तेल के टाँके की तरफ गयी।

समरथ ने टाँके पर ढकी पत्थर की भारी सिल को एक ओर खिसकाया और जमीन में कमर तक गड़ी हुई तेल की टांकी में से मर्तबान भर लिया। एक समय के अधिकारी-जैसे ननदोई की उपस्थिति में समरथ को इस समय इतना सकोच तो हुआ ही कि उससे टाँके का मुँह बन्द नही किया गया और वह फिर लजाती-शरमाती रसोई घर में भाग गयी। उसने मन में सोचा : 'पकाने-खिलाने के काम से निपट कर इत्मीनान से टांके को ढक दूँगी।"

ओतमचन्द ओसारे में अकेला बैठा अपने जीवन के उतार-चढ़ाव पर विचार कर रहा था कि बालू बाजार से लौट आया।

बालू के दोनों हाथों में एक-एक थैली थी। एक थैली उसने सीधे रसोई घर की चौखट पर औंधी कर दी। उसमें से केले, भटे, तोरई आदि सब्जियों का ढेर लग गया। दूसरे हाथ की थैली कुछ भारी थी, जिसका पता बालू के मुँह की खिंची हुई रेखाओं से लग रहा था।

इधर रसोई घर और उधर दीवानखाने में से एक साथ बालू को पुकारती हुई समरथ और दकुभाई की आवाजें ओतमचन्द को सुनायी दीं।

समरथ बेटे को फटकार रही थी : "मेरी कड़ाही का सारा तेल जल गया तब कहीं तू साग-सब्जी लेकर आया। अब मैं कब तो सब्जी समारूँगी और कब पकौड़े उतारूँगी।"

दकुभाई बालू को पुकार कर कह रहा था : तुलजा गौर से कह दिया है आने के लिए ?"

"हां; उसने कहा है, आता हूँ" बालू ने जवाब दिया।

"उसे साफ-साफ कह दे कि मेरे घर 'आता हूँ।' कहने से नहीं चलेगा।" दकुभाई ने नादिरशाही फरमान सुनाया : "जाकर कह दे तुलजा से कि आना हो और दक्षिणा लेनी हो तो कंकावटी (कुंकुम

पात्र) सहित फौरन हाजिर हो जाये·····यह घर बिरादरी के फड़तूस घरों में नही है ······जा जल्दी, खड़े दम जा और तुलजा को अपने साथ ही लिवा ला !"

दकुभाई के शक्की दिमाग में यह सन्देह बैठ गया कि होने वाले समधियों के समक्ष बहनोई की दरिद्रता और अपनी उद्दण्डता का जो प्रदर्शन दुर्भाग्य से हो गया है उसके कारण कहीं ये लोग बालू के साथ रिश्ता करने का अपना निर्णय बदल न दें ! 'अच्छे काम में हजार विघ्न' की बात सोचकर, इस समय बिन बुलाये ही सहसा आकर विघ्न डालने के लिए बहनोई पर चुपचाप दांत पीसते हुए दकुभाई ने इस शुभ कार्य को जल्दी-से-जल्दी निबंटा लेने का फैसला कर लिया था।

बालू भी युवकोचित उमंग के कारण अपनी सगाई रचाने के लिए इतना उतावला हो रहा था, कि पिता का आदेश मिलते ही दूसरे हाथ वाली थैली को सन्दूक में रखने के लिए रुकने के बजाये उसे टांके की पाल पर पटक उलटे पाँवों दौड़ता हुआ तनुजा गौर को बुला लाने के लिए चला गया।

× × ×

दीवानखाने में बैठे कपूर सेठ ओतमचन्द के कुशल समाचार पूछने के लिए ओसारे में जाने को बड़ी देर से अकुला रहे थे। पैनी नजर वाले मकनजी ने उनकी इस अकुलाहट को ताड़ लिया था और इसलिए उन्हें वहाँ से हिलने नहीं दे रहा था—अपना सारा कौशल लगाकर उसने उन्हें दीवानखाने में ही बिठाये रखा। मुनीम होकर भी उसने जो विश्वासघात किया था उसकी झेंप के कारण कमरे से बाहर आकर अपने पुराने मालिक को मुँह दिखाने की उसकी हिम्मत तो हो कैसे सकती थी। फिर उसे यह डर भी सता रहा था कि यदि कपूर सेठ बाहर चला गया तो ओतमचन्द उसके कान भर देगा और तब सारे किये कराये पर पानी फिर जायेगा, इसलिए मकनजी नाश्ते की तश्तरियाँ

लगातार आगे करता हुआ मेहमानों के हाथ पकड़-पकड़कर और उन्हें मीठी-मीठी सौगन्धें देकर अपनी जगह से उठने नहीं दे रहा था।

दकुभाई की व्यग्रता प्रतिक्षण बढ़ती जाती थी। ग्रहण के सांप की तरह बिना बुलाये ही आ धमके बहनोई को ससम्मान कैसे विदा किया जाये इसका कोई तरीका उसे खोजे नहीं मिल रहा था।

समरथ ने रसोई घर में ओसामण* को छौंका और कड़ाही के तेल में छन-छन की आवाज़ के साथ पकौड़ियां निकालने लगी। रसोई घर से आती इन आवाज़ों और सुगन्धियों से ओसारे में बैठा बुभुक्षित ओतमचन्द इस कदर परेशान हो उठा मानों एक साथ हजार-हजार चींटियों ने हमला बोलकर काटना शुरू कर दिया हो! उस अपमानित और उपेक्षित आदमी के लिए अब वहां एक क्षण भी रुके रहना असह्य हो गया। अपने चोट खाये स्वाभिमान के घाव को हृदय में ही सहेजे वह चुपचाप खड़ा हो गया।

घर में कोई जान भी न पाया और वह फाटक के बाहर निकल गया।

ईश्वरिया गांव का कोई व्यक्ति पहचान न ले, इस डर से ओतमचन्द लुकता-छिपता तेज़ी से गांव के बाहर हो गया।

गांव के सदर फाटक की ड्योढ़ी में खटिया डाले दो चौकीदार बैठे थे। उन्होंने इस फटे हाल आदमी को उठाईगिरा समझा और जब तक वह आंखों से ओझल नहीं हो गया, उसे सन्देह भरी निगाहों से देखते रहे।

ईश्वरिया की सीमा पार हो जाने के बाद ही ओतमचन्द के जी में जी आया, उसने छुटकारे की सांस ली और वाघणिया के रास्ते चल पड़ा।

× × ×

दकुभाई दीवानखाने में बैठे तुलजा शंकर गौर के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे कि सहसा दो बिल्लियां बाहर से दौड़ी आयीं और

---

*दाल के पानी से बनाया जाने वाला एक खाद्य पदार्थ।—अनु०

औसारे में जाकर गुर्राने और लड़ने लगीं। 'म्याऊँ-म्याऊँ' करते हुए उन्होने ऐसी धमाचौकड़ी मचायी कि धमाके से किसी चीज़ के ज़ोर से गिरने की आवाज़ सुनाई दी। मेहमानों के लिए बर्मी तश्तरी में सुपारी काटता हुआ दकुभाई इस आवाज़ से चौक पड़ा और उसने चिल्लाकर पत्नी से पूछा :

"यह क्या गिरा ?"

"मुई बिल्लियाँ लड़ रही हैं।" पकोड़ियाँ निकालने में व्यस्त समरथ ने रसोई घर के अन्दर से ही जवाब देकर छुट्टी पाली।

"जजमान की जय कल्याण !" तुलजाशकर गौर ने ठेठ गली के मुहाने से ही स्वमुख द्वारा अपने आगमन की घोषणा की।

आखिर पुरोहितजी महाराज पधार ही गये, इस विचार से दकुभाई ने परम शान्ति और आश्वस्ति का अनुभव किया।

तुलजा गौर ने प्रवेश कर कहा : "फरमाइये सेठजी !"

× × ×

तीसरा पहर होते-होते ओतमचन्द ने वाघणिया का आधा रास्ता तय कर लिया था।

रास्ते-भर उसके मन में एक ही प्रश्न घुमड़ता रहा : 'मैं यहाँ आया ही क्यों ? ऐसे एहसानफरामोश के यहाँ भेजने की कुबुद्धि लाडकोर को उपजी कैसे ?"

दकुभाई के दीवानखाने में मेहमानों को आग्रह पूर्वक पिलाये जा रहे मसालेवाले दूध की सौंधी सुगन्ध अब तक ओतमचन्द के दिमाग से जा चुकी थी और जोरों की भूख लग आयी थी। उसे सहसा वह भुना आटा याद हो आया, जो लाडकोर ने प्रेम पूर्वक उसके साथ बाँध दिया था।

नदी का किनारा आते ही, पेड़ की छाया देखकर, ओतमचन्द ने आटे की पोटली खोली। दकुभाई के दीवानखाने के दृश्य पर दार्शनिक की तरह हँसता हुआ वह नदी से पानी का लोटा भर लाया और गुड़ की डली को गीला करने के लिए उसके अन्दर डाल दिया।

नदी का यह बहाव तीन गाँवों के तिराहे पर था। यहाँ से एक रास्ता मेंगणी जाता था। उत्तर की ओर का रास्ता ईश्वरिया और दक्षिण वाला वाघणिया की ओर जाता था। इस समय चारो दिशाएँ निर्जन थी। कुछ फासले पर घास के एक मैदान में थोड़े से पशु चर रहे थे। मेंगणी वाले रास्ते की ओर निगाहें पड़ते ही ओतमचन्द को अपने समधी की याद आयी, नरोत्तम याद आया और अपने घर की रानी बहू बनने वाली चम्पा भी याद आयी। साथ ही उसके मन में यह विचित्र सा सवाल भी उठा कि मेरी आज की मुफलिसी में चम्पा मेरे घर का उजाला बन भी सकेगी ? लेकिन अपने इस प्रश्न का कोई सन्तोषजनक उत्तर उसे अपनी अन्तरात्मा से नहीं मिला।

लौटे के पानी में गुड़ की डली गल गयी थी। ओतमचन्द ने वह मीठा पानी साथ लाये भुने आटे में डालकर गोला बनाया और इमली की घनी छाया में बैठकर खाने जा ही रहा था कि पीछे से किसी ने उसका गला दबोच लिया।

मुड़ा तो ईश्वरिया के वे दोनों चौकीदार, जो गाँव के प्रवेशद्वार में खटिया डाले पड़े थे, सिर पर सवार दिखायी दिये! दोनों ही घोड़ों पर चढ़कर आये थे। ओतमचन्द स्थिति को समझने का प्रयत्न कर ही रहा था कि एक चौकीदार ने उसे जोर का धौल जमाते हुए कहा !

"जमाने का चोर ! उचक्का कहीं का ! दूसरों के गाँव में जाकर ऐसे गोरखधन्धे करता है, क्यों बे ?"

"बात क्या है भाई साहब ?" ओतमचन्द ने पूछा : "मेरा कुसूर क्या है ?"

"असूर-कुसूर की दुम साले ! तेरा बनिया पन हमारे आगे नहीं चलेगा !" चौकीदार ने उसे घुड़का : सीधे से रुपये गिन दे !"

"रुपये ? कौन से रुपये ? कैसे रुपए ?"

"साहूकार की दुम बन रहा है पाजी, बदमाश कहीं का !" एक चौकीदार ने ओतमचन्द की बगल में ठूँसा मारते हुए कहा ! "दकुभाई के ओसारे में से थैली में रखे रुपये लेकर………"

"नहीं भैयाजी ! किसी ग्रौर के बदले ग्राप मुझे........."

"अबे, चुप भी रह, उठाई गिरे ! हमी को उलटी पट्टी पढ़ा रहा है ! हमारा गुरू बन रहा है ?" अब दूसरे चौकीदार ने भी गालियों की बौछार के साथ उसे पीटना शुरू कर दिया था।

"ज़रूर गलत फहमी हुई है !" ओतमचन्द ने अपना बचाव करते हुए कहा : "किसी और का गुनाह मेरे सिर........."

"गलत फहमी कैसी ?" चौकीदार ने कहा : "दकुभाई ने जो निशानियाँ बतायी सभी तो मौजूद हैं—चौमासे की घास-कास-जैसी यह बढ़ी हुई डाढ़ी, बिन घुली गंजी (गाढ़े) का यह कडिया ग्रौर बगसरा* की यह पिछेवड़ी (मोटी चादर)। गाँव से तुझे निकलते देखा तभी हमें शक हो गया था कि जरूर किसी के यहाँ नकब लगा कर भाग रहा है। और इतने में तो दकु सेठ घबराये हुए दौड़े भी ग्राये कि एक बनिया दिन-दहाड़े घर के अन्दर रुपये की थैली लेकर भागा है........."

"वह मैं नहीं कोई ग्रौर होगा।"

"तेरे ये छक्के-पंजे इस डण्डे के आगे नहीं चलेंगे बेटा !" चौकीदार ने डण्डा हिलाते हुए कहा : "सीधे से थैली दे देगा तो भला आदमी समझकर पुलिस के हवाले नहीं करेंगे।"

"थैली कैसी ?"

"बेटा अभी तक दूध का धोया बन रहा है ! सन्तई का ढोंग किये ही जा रहा है। यह ऐसे नहीं मानेगा।" ग्रौर चौकीदार ने ओतमचन्द की पीठ में चार-छह डण्डे ज़ोर-ज़ोर से जमा दिये। दूसरे चौकीदार ने घूँसों और लातों से मारना शुरू किया। एक लात जोर से पेड़ू पर पड़ा तो भूखा और थका हुआ ओतमचन्द चीख मार उठा।

"बालूभाई बेचारा तुझे भला आदमी समझकर टाँके की पाल पर रुपयों की थैली रखकर अपने काम से चला गया और तूने उसे बाप का माल समझकर तिड़ी कर लिया, क्यों ?"

---

* सौराष्ट्र में बगसरा नामक स्थान, जहाँ की हाथ की बनी चादरें प्रसिद्ध हैं। —अनु०

"मैंने छुआ भी हो तो मगे बेटे की सौगन्ध !" ओतमचन्द ने काँपते हुए लड़खड़ाती आवाज़ में कहा । उसे बड़ी मनौतियाँ के बाद जन्मे हुए बटुक की याद आ गयी । वह मन-ही-मन बेटे की कुशलता के लिए प्रार्थना करने लगा ।

"सगे बेटे की सौगन्ध खा रहा है ससुर ! देखो तो बनिया हमीं को पाठ पढ़ा रहा है ।" चौकीदार ने गुस्सा होकर लोंगी लाठी उसकी पीठ में जमा दी ।

इस बार ओतमचन्द के मुँह से चीख भी न निकल सकी । पुत-लियाँ उलट गयी और वह गिर पडा ।

चौकीदार अब भी गालियाँ देते और पिटाई करते हुए पूछ रहे थे :

"नदी में कहाँ गाड़ कर रखी है थैली ? बता नहीं तो चीरकर नमक भर दूँगा ।"

चौकीदार यह समझकर कि आदमी आँखें मूँदे ढोंगे कर रहा हैं और ज़ोर से मारते हुए पूछने लगे :

"माल का पता बतादे, नहीं तो जिन्दा जमीन में गाड़ देंगे ।" वे साम, दाम, दंड, भेद — सभी उपायों का अवलम्बन कर रहे थे ।

"रुपए जहाँ गाड़े हैं वह ठिकाना बतादे, हम ढूँढ़ लेंगे ।"

"तुझे छोड़ देंगे ।"

"तेरी इज्जत बच जायेगी ।"

"कहाँ छुपाये हैं जल्दी बता !"

ओतमचन्द एक भी शब्द नहीं सुन रहा था । वह इमली के तने के पास निःस्पन्द पड़ा था ।

× × ×

पिटाई करते-करते जब चौकीदारों को यह खयाल आया कि यह जवाब क्यों नहीं दे रहा, बात क्या है, तब तक काफी देर हो चुकी थी; ओतमचन्द जरा भी हिल-डुल नहीं रहा था ।

चौकीदार घबरा गये । इस डर से कि अपराधी की इस बुरी तरह पिटाई करने के लिए कहीं हम ही न धर लिये जायें, वे लपक कर घोड़ों पर सवार हुए और चुपचाप गांव की ओर भाग गये ।

१६

ऊँची जाति वाला

डूबते सूरज की अन्तिम किरणें, मेंगणी गाँव में, एथल अहीर के बाड़े मे उतरी हुई थीं; तभी द्वार पर आवाज़ सुनायी दी : "हीरी काकी !"

"कौन ? चम्पा ?"

"हाँ !"

"आ बेटी, आ !" कहते हुए हीरबाई ने किवाड़ खोला।

दरवाज़े में चम्पा खड़ी थी। वह हमेशा की तरह दूध लेने के लिए आयी थी। उसके एक हाथ में माँज-धोकर चमकाया हुआ लोटा सन्ध्या की सुनहरी किरणों में जगमगा रहा था। लेकिन चम्पा के दमकते हुए चेहरे के आगे इस लोटे की चमक फीकी पड़ रही थी। रोज की परिचित हीरबाई भी चम्पा के दिन-प्रति दिन अधिकाधिक प्रफुल्लित होते जाते चेहरे को आज टक लगाये देखती रह गयी।

"अभी जानवर जंगल से लौटे नहीं ?" सारे बाड़े को खाली पाकर चम्पा ने पूछा।

"रास्ते में होंगे। बस आये ही समझो।" यह कह कर हीरबाई ने चम्पा को अपने पास खटिया पर बिठा लिया।

फिर हीरबाई ने इस युवती की निखरती देहयष्टि को पैनी निगाहों से देखा और स्त्री सुलभ कुतूहल से कहा :

"क्योंरी, तेरी देही तो बहुत पनपती जा रही है ! लगता है, विवाह के बाद खड़ी और बेंड़ी दोनों ही तरफ बढ़ने लगेगी।"

चम्पा सुनकर नारी की उपस्थिति में भी लाज से लाल हो गयी। उसने विषयान्तर करते हुए पूछा :

"एथल काका को आज इतनी देर क्यों हो गयी ?"

कसीदा काढ़ रही हीरबाई ने कपड़े में कांच का टुकड़ा टाँकते हुए यन्त्रवत् जवाब दिया :

"ढोर इधर-उधर चले गये होंगे, सो उन्हें बटोरते होंगे ।"

कांच—जैसे चम-चमाते लोटे में चम्पा अपना गोरा मुँह देखने लगी।

हीर बाई ने फिर चुटकी ली :

"यों मुखड़ा क्या निरखे है री तू तो बिन निरखे ही सुन्दर लगे है। तेरे-जैसी ऊँच जात को दरपन की क्या दरकार ?"

"ऊँच जात तो हूँ काकी, पर तुमसे हेठी ।" अब चुटकी लेने की बारी चम्पा की थी वह अहीरिन की सुडौल, गोरी देह को प्रशसात्मक दृष्टि से देख-देखकर मुस्कराने लगी !

"हम ठहरे छोटे लोग······सारा दिन मेहनत मजूरी किया करते हैं······ढोर-डंगर की सानी-पानी, गोबर बटोरना, कन्डे पाथना······"

हीरबाई ने बड़ी ही विनम्रता से अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा : "और तू कल विवाह होकर वाघणिया की दु-मंजिला हवेली के बारजे में जा बैठेगी।"

अहीरिन ने आशा तो यही की थी कि चम्पा इस वाक्य को सुनकर मारे आनन्द के उमंग उठेगी, लेकिन परिणाम हुआ बिलकुल उलटा।

विवाह, वाघणिया और दु-मंजिला हवेली का बारजा आदि सुनकर चम्पा ने बर्फ-सी ठण्डी और बोझिल साँस ली।

चतुर अहीरिन की पैनी निगाहों से चम्पा का यह भाव-परिवर्तन छिपा न रहा। उसने पूछा :

"तेरा ये चाँद-सा चेहरा लटक क्यों गया री ?"

चम्पा उत्तर न दे सकी; उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये।

"हाय राम ! तेरी छाती इत्ती कच्ची है, यह तो मुझे आज ही

मालूम हुआ। रोती क्यूँ है री ?" वत्सल माता की तरह हीरबाई ने चम्पा को अपनी गोद में खींच लिया और छाती से लगाती हुई बोली : "अभी से ऐसा क्या दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है जो यूँ टेसुवे बहा रही है ?"

हीरबाई की स्नेहभरी गोद में चम्पा के सन्तप्त हृदय को बड़ी सान्त्वना मिली। हृदय की कथा व्यक्त करने के लिए उसे एक सहानुभूति प्रवण श्रोता मिल गया। वाघणिया की सुनी-सुनायी जो बातें उसे मालूम थी वे सब उसने हीरबाई को बता दीं। भावी पति को वाघणिया छोड़ कर शहर जाना पड़ा है, और शहर में वह किसी तरह अपना गुजर-बसर कर रहा है—शहर से लौटने वाले लोगों के मुँह से सुनी यह बात भी व्यथित हृदय चम्पा ने उस अहीरिन को बता दी।

"अरी पगली ! इत्ती जरासी बात के लिए इत्ता भारी दुःख तूने अपने पल्ले बाँध लिया ?" हीरबाई हँस पड़ी और चम्पा को दिलासा देती हुई बोली : "सुख-दुःख तो चाँद-सूरज की जोड़ी की तरह आते-जाते रहते हैं। इसमें ऐसी क्या बात है ? और दुःख के समय हिम्मत हार जाये, वह इन्सान कैसा ? आदमी को कभी हिम्मत नहीं हारना चाहिए। और देख आदमी का घाटा नहीं होना चाहिए। दूसरे घाटे तो फिर भी सहे जा सकते हैं, आदमी का घाटा नहीं सहा जाता। आदमी भला-चंगा रहे तो बाकी सब दुःखों को सहा जा सकता है ! क्यों जी को हलका करती है री। राम करे, तू और तेरा होने वाला मरद भले-चंगे रहें और हँसी-खुशी अपने दिन बितायें। बाकी पैसे का क्या ? पैसा तो आदमी के हाथ का मैल है। आदमी खुद कमाता है और गँवाता भी है। पैसे की कोई कीमत नहीं। पैसे को तो कुत्ता भी नहीं सूँघता। कीमत आदमी की है और सच्ची कीमत तो बेटी नेकी की है !"

और फिर चम्पा को खुश करने के इरादे से हीरबाई ने बड़ी उमंग से पूछा :

"तेरा विवाह कब हो रहा है री, यह तो बता जल्दी।"

मकन जी मुनीम एक दिन भोजन के समय आ धमका था और पिता जी को चक्कर में डाल गया था—यह बात चम्पा को याद हो आयी और उसके जी में आया कि कह दे, विवाह की बात तो काकी, अभी गड़बडा गयी है। लेकिन ऐसा असगुन अपने ही मुँह से निकालने को उसका मन तत्पर न हुआ। उसने हीरबाई के मूल प्रश्न को टालते हुए सहज भाव से कह दिया :

"बापूजी का विचार मेरा और जसी का विवाह एक साथ करने का है।"

"लेकिन जसी का रिश्ता तो अभी………"

"बापूजी आज ही करने के लिए गये हैं।"

"कहाँ ? किस गाँव ?"

"ईश्वरिया !" चम्पा ने बताया।

"किसके यहाँ !" कुतूहल से प्रेरित हीरबाई पूछने का लोभ संवरण न कर सकी। ईश्वरिया में उसके कई सगे-सम्बन्धी रहते थे इसलिए वह उस गाँव के प्रति गहरी आत्मीयता का अनुभव करती थी।

"दकुभाई सेठ का नाम सुना है ?"

"हाँ. वही तो नहीं जो परदेश हो आया है ?"

"हाँ-हाँ, वही ! तुम जरूर जानती होगी।"

"दकुसेठ को कौन नहीं जानता !" हीरबाई ने व्यंग्य-भरे स्वर में कहा। लेकिन दूसरे ही क्षण यह खयाल हो आया कि चम्पा को शायद यह व्यंग्य अच्छा न लगे, इसलिए अगला वाक्य उसने बहुत सहज भाव से कहा ! "सुना है परदेश से रुपयों की गाड़ी भर लाया है !"

"हाँ ! उनके बालू के साथ जसी का रिश्ता……"

"क्या ? बालू के साथ ? दकुभाई के लड़के बालू के साथ जसी का रिश्ता ?" चम्पा की बात बीच में ही काटकर हीरबाई ने अपना आश्चर्य व्यक्त किया।

"हाँ, क्यों ?" चम्पा ने और भी विस्मित होकर पूछा।

"क्या दकुसेठ के लड़के के साथ हमारी जसी बहिन की सगाई होगी ?"

"होगी नहीं, हो चुकी होगी।" चम्पा ने कहा : "बापूजी और मनसुख मामा आज सवेरे ही ईश्वरिया गये है और दुपहर मे तो सगाई की रसम हो भी गयी होगी।"

"फिर तो सब खत्म हो गया।"

"ऐसा क्यों कह रही हो ?" चम्पा ने चिन्तातुर स्वर में पूछा : "तुम दकुसेठ के लडके को जानती हो क्या ?"

"मैं तो नहीं जानती, "हीरबाई ने कहा !" लेकिन हमारे सभी रिश्तेदार उस लड़के को बहुत, अच्छी तरह जानते है।"

"लड़के में कोई ऐब है ?"

"बड़े घर के बेटे में ऐब तो क्या होगा ! लेकिन......लेकिन...... जाने दो, कुछ नहीं। जैसे हमारी जसी बहिन के नसीब........."

"सच-सच बताओ, हीरी काकी।" चम्पा ने और भी चिन्तातुर होकर पूछा :" "मुझे भी आज सबेरे से, जाने क्यों, ऐसा लग रहा है कि बापूजी ने जसी के लिए अच्छा घर-वर नही ढूँढ़ा।"

"सच-झूठ मैं क्या जानूँ, आँखों से देखने तो गयी नहीं।" हीरबाई ने कहा : 'लेकिन आखातीज (अक्षय तृतीया) पर ईश्वरिया गयी थी तो उड़ती बात सुनी........"

"क्या ?"

"कहते हैं कि दकुसेठ के लड़के का चाल-चलन अच्छा नहीं है।"

"सच ?"

"कान की कुसूरवार जरूर हूँ, आँखों से कुछ नही देखा; पर सुना है कि उस लफंगे ने हमारी जाति की एक लड़की को छेड़ा......वह मुँह अँधेरे बन्दी का दूध देने गयी तो उस छैले ने बेजा हरकत......"

"क्या कहती हो ?" चम्पा ने सन्नाटे में आकर कहा।

"सुनी हुई बात है......मैंने देखा नहीं। गाँव के गपोड़े झूठ भी

हो सकते हैं ।" चतुर हीरबाई ने बड़ी सफाई से अपनी बात के अन्दाज को बदल दिया ।

चम्पा व्यथित हो उठी : "हाय ! हाय !! कुछ पहले मालूम हो जाती तो बापूजी के कान पर बात डाल देती ! कुछ तो फर्क पड़ता ! लेकिन मकनजी मुनीम और मोलमीन की कमाई की बातें सुनकर सब अन्धे हो गये.........मनसुख मामा जैसे शहर के रहने वाले भी दकुसेठ के ठाठ-बाट पर मोहित हो गये......बेचारी जसी की तकदीर में जाने क्या दुःख लिखे हैं ।"

अब हीरबाई पछता रही थी कि कहाँ बातों में बेचारी चम्पा को उलझन में डाल दिया यह खयाल आते ही उसने फौरन बात बदल दी :

"अरे ! अँधेरा होने आया और अभी तक वे चौपायों को लेकर लौटे नहीं ? कहीं नदी किनारे शेर तो नहीं निकल आया ?"

"सुना है कि शेर आजकल हमारी ओर बहुत परच गया है...... क्यों......काकी सच है ?" चम्पा ने पूछा ।

"हाँ, तिमुहानी पर बकरों या खरहों को उठा ले जाता है और रोज नदी में पानी पीने आता है ।"

"लेकिन एथल काका की गाय-भैंस पर गिरने की ताब उस शेर में है नहीं ।" चम्पा ने हँसकर कहा : "एथल काका की लाठी से डरता हैं—'एक ही वार में उसका कचूमर जो निकल जायेगा ।"

"लगता है आज फिर उसने कोई शिकार मारा है ।" हीरबाई ने कहा : "मुएँ के मुँह खून जो लग गया है ! चार दिन पहले एक बाछी को दबोच कर खा गया था । एकदम निडर हो गया है और रोज घात लगाये रहता है; किसी भी जानवर को सूना नहीं छोड़ा जा सकता ।"

× × ×

हीरबाई अपने पति और पशुओं के बारे में चिन्ता कर ही रही थी कि गाँव के गोंहड़े खेलने के लिए गया हुआ बीजल लौट आया और बोला :

"अम्मां, धन (गायों का समूह) आ गया·········जल्दी से खटिया बिछाओ, खटिया।"

"क्यों, खटिया बिछाने की क्या जरूरत पड़ गयी?"

"बापू की पीठ पर बोझा है। मुझसे बोले कि दौड़ा जा और खटिया बिछवा।"

"पता नहीं क्या हुआ और कौन है?" चिन्ता भरे स्वर में कहती हुई हीरबाई कमरे में गयी और जल्दी से खटिया डालकर उस पर सफेद कम्बल बिछा दिया।

चम्पा चुपचाप प्रतीक्षा करती रही।

बाड़े के खुले दरवाज़े की राह एक दूसरे को धकियाते हुए ढोर तेजी से अन्दर घुस आये।

उनके पीछे पीठ पर चादर की झोली के वजन से दुहरे हो रहे एथल ने प्रवेश किया।

अहीरिन चुपचाप आँखों के इशारे से पति को कमरे के अन्दर ले गयी।

पीठ पर लदे बोझ के कारण थके हुए एथल ने खटिया पर चादर की झोली की गाँठ खोलते और लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए पत्नी को आदेश दिया :

"चूल्हे में जल्दी से आग जलाओ, आग और छप्पर से दो-तीन खपड़े भी उतार लो जल्दी—सिकाई करना होगी।"

"क्यों, बात क्या है?" हीरबाई ने घबराये हुए स्वर में पूछा।

"यह देखो।" खटिया पर एक बेहोश आदमी को लिटाते हुए एथल ने कहा।

"कौन है यह?" देखकर हीरबाई काँप उठी।

"मैं ही कहाँ पहचानता हूँ?"

"कहाँ से ले आये?"

"नदी किनारे से।" एथल ने कहा।

यह सुना तो चम्पा की जिज्ञासा बढ़ी और वह दरवाज़े की चौखट पर आ खड़ी हुई।

"लेकिन यह तो बोलता-चालता कुछ भी नहीं?" हीरबाई ने पूछा।

"इसी तरह चुपचाप पड़ा था," एथल ने कहा : "मैं पहाड़ी से ढोर लेकर उतरा और नदी पार करने जा ही रहा था कि इमली के नीचे एक आदमी सोता हुआ दिखायी दिया। पहले तो मैंने सोचा कि कोई थका मांदा मुसाफिर सुस्ता रहा होगा। और मैं आगे बढ गया; फिर खयाल आया कि शाम के समय तो कोई मुसाफिर इस तरह लेटा नही रहता। मैंने पास जाकर देखा तो लगा कि सो नही रहा है। मैंने आवाज़ें दीं तो बोला नहीं। मुझे शक हुआ·········"

"फिर?" हीरबाई ने साँस रोककर पूछा।

चम्पा की जिज्ञासा कुछ और बढ़ी, वह कुछ और करीब आ गयी।

"फिर तो मेरा मन न माना। मैंने इसे हिलाया तो भी कोई जवाब न मिला। अब तो मुझे चिन्ता हुई। हाथ-पाँव ठण्डे और हिलाने-डुलाने पर भी नहीं बोलता तो लगा कि शायद मर गया है! लेकिन सिर पर हाथ रखा तो वहाँ कुछ गरमी थी और नाक पर अँगुली रखी तो धीमी साँस चल रही थी, तो लगा कि अभी जिन्दा है·········"

"कहीं भूत-प्रेत की चपेट मे तो नहीं आ गया?" हीरबाई ने अपना मन्तव्य प्रकट किया।

"पहले तो मुझे भी ऐसा ही वहम हुआ। लेकिन जब इसकी देह को देखा तो पीठ पर लाठी की मार के नीले निशान दिखायी दिये। समझ गया कि किसी ने बुरी तरह मार-पीटकर यहाँ डाल दिया है, प्रेत बाधा का कोई डर नहीं। लेकिन उस भयावनी जगह इस अनजान आदमी को अकेला भाग्य भरोसे छोड़ आने का मेरा जी न हुआ। सोचा कि वह कुत्ता रोज रात में भेड़-बकरी को मारकर यहाँ पानी पीने आता है, इस गरीब को देखते ही चट कर जायेगा! फिर तो मैंने ज्यादा कुछ सोचा-विचारा नहीं, भगवान का नाम लेकर चादर की झोली में डाला और इसे अपने साथ लेता आया।"

"ले आये, बहुत अच्छा किया।" हीरबाई ने कहा : "लगता तो है कोई ऊँची जात का।" और फिर अपने पुत्र को हुक्म दिया : "बीजल बेटा, छप्पर पर चढ़ जाओ और दो-चार साबूत खपड़े उतार लाओ………" और तब चूल्हे की ओर जाते हुए बोली : "आग जलाकर सिकाई करती हूँ ताकि अन्धी मार के दर्द में कुछ राहत हो………"

"हाँ, लगता तो है कोई ऊँची जात का ही; लेकिन गले में जनेऊ नही है और तिलक-छापे भी नहीं किया हुआ है, इसलिए बाँमन नहीं हो सकता।" एथल ने कहा : "शायद बनिया-बेपारी हो ।"

"कौन है एथल काका ?" कहती हुई चम्पा खटिया के सामने आ खड़ी हुई और बेहोश पड़े आदमी का चेहरा देखकर सन्न रह गयी।

दूसरे ही क्षण उसका हाथ अपने-आप सिर तक उठा, उसने फुर्ती से ओढ़नी का पल्ला चेहरे पर खींचकर घूँघट काढ़ लिया।

१७

यह तो मेरे जेठ हैं !

"यह तो मेरे जेठ हैं—मेरे सगे जेठ।" खटिया की पाटी पर बैठी, बेहोश आदमी के तलुओं पर गाढ़ा लेप करती हुई चम्पा ने हीरबाई से कहा : "यह तो वाघणिया वाले ओतमचन्द सेठ हैं।"

"सच ?"

"हाँ। मैं वाघणिया गयी थी तो इन्हें देखा था।"

एथल बाड़े में ढोरों को बाँधने चला गया था। यहाँ अन्दर ओतमचन्द की सेवा-शुश्रूषा में लगी दोनों औरतें बातें कर रही थीं।

चम्पा ने चतुराई से दूध का लोटा बीजल के साथ घर भिजवा दिया था और अपनी माँ के नाम यह सन्देश भी कि मैं कुछ देर बाद आऊँगी, जिससे सन्तोकबा चिन्ता न करें।

"ये बेचारे नदी-किनारे कैसे पहुँच गये ?" हीरबाई ने जानना चाहा।

"भगवान जाने।" चम्पा ने कहा : "शायद तगादा-वसूली के लिए निकले होंगे।"

"और किसी चोर या बटमार ने लूट लिया ! और तो भला इस तरह कौन मारे-पीटेगा ?

"भगवान जाने।"

"तेरी अम्माँ को खबर करना होगी न ?" हीरबाई ने कहा।

"खबर क्या करना, इन्हें खटिया सहित अपने घर ही ले जाऊँगी।" चम्पा ने कहा : "लेकिन जब तक होश में नहीं आते, यहाँ से हटने को मेरा जी नहीं करता।"

गरमागरम लेप और खपड़ों की गरम सिकाई के दुहरे असर तले ओतमचन्द के अकड़े हुए शरीर में चेतना का संचार होने लगा। उसने हाथ हिलाया और पाँव सिकोड़ा तो हीरबाई के चिन्ताग्रस्त चेहरे पर आशा की लाली दौड़ गयी। बोली : "अब सब ठीक हो जायेगा।"

ओतमचन्द के कसकर भिचे हुए दाँत भी अब खुल गये और वह ओठों पर जबान फेरने लगा।

"अब तो मींची हुई बत्तीसी भी खुलगयी !" हीरबाई ने प्रसन्न होकर कहा : "ओठ पर जबान फेर रहे हैं; गला सूख रहा होगा। बेटी, उठकर पानी पिला दे।"

चम्पा खटिया से उठकर पनिहारे की ओर चली तो हीरबाई ने कहा : "मटकी का पानी मत ले आना।"

"क्यों ?" चम्पा ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा।

"आयर (अहीर) की मटकी का पानी पिला कर ऊँच जात को भ्रष्ट नहीं किया जाता।"

"रहने भी दो !" चम्पा ने हँसते हुए कहा : "चुल्लू-भर पानी पेट में जाने से कोई यों भ्रष्ट हो जाता है ?"

"ना बिटिया, मुझ से ऐसा अधरम न होगा। जानते बूझते कौन पाप में पड़े ? सभी को अपना अपना धरम प्यारा होता है।" यह कहकर हीरबाई ने सुझाव दिया : "वह मँजी हुई छोटी-सी लुटिया उठाले और कोठी * का शुद्ध पानी भर कर ले आ।"

ओतमचन्द ने फिर ओठों पर जबान फेरी।

---

*ताँबे, पीतल अथवा लोहे का लम्बा, गोलाकार बरतन जो पानी, तेल आदि तरल पदार्थ रखने को काम आता है। —अनु०

"जल्दी से लुटिया भर कर ले आ बेटी !" हीरबाई ने फिर आदेश दिया।

ओतमचन्द की आंखे अभी भी बन्द थी, फिर भी चम्पा को अपने श्वसुर पक्ष के बुजुर्ग के सामने बैठते बहुत संकोच हुआ। लेकिन आवश्यक कर्तव्य समझ कर बहुत ही सकुचाते हुए वह अपने आदरणीय जेठ के मुँह में एक-एक पली पानी डालने लगी।

घुट्टुर-घुट्टुर आवाज़ के साथ ओतमचन्द पानी के घूँट गले के नीचे उतारने लगा। वह हर घूँट पर परम तृप्ति का अनुभव कर रहा था।

लुटिया का पानी खत्म हो गया तो चम्पा ने हाथ रोक दिया; मगर ओतमचन्द का मुँह फिर भी खुला ही रहा, उसकी प्यास अभी मिटी नहीं थी।

"एक लुटिया और भर ला, बेटी ! इनका गला अभी पूरी तरह तर नहीं हुआ है।" हीरबाई ने कहा : "बेचारे जाने कब से नदी किनारे प्यासे पड़े थे।"

चम्पा फिर सिरहाने बैठ कर ओतमचन्द के तृषार्त मुँह में पानी डालने लगी। प्रत्येक घूँट के साथ उसका प्यासा कँठ ऐसी तृप्ति का अनुभव करने लगा मानों युगों से पानी न मिला हो। धीरे-धीरे उसके निश्चेष्ट शरीर में स्फूर्ति का संचार होने लगा।

थोड़ी देर बाद ओतमचन्द ने आँखें खोलीं।

चम्पा ने फुर्ती से माथे पर का पल्ला कपाल पर खींच लिया।

हीरबाई ने प्रसन्न होकर पति को पुकारा : "एजी, सुनते हो; घर में तो आओ, जरा जल्दी।"

एथल के कमरे में आने के बाद हीरबाई ने कहा : "देखो, इन्होंने आँखें खोल दीं।"

नन्हा वीजल भी अन्दर दौड़ा आया और सब ओतमचन्द की खाट को घेर कर खड़े हो गये।

ओतमचन्द आँखें फाड़े इस अपरिचित वातावरण और इन अपरिचित लोगों को देखने लगा।

एथल आनन्द से उमगता हुआ ओतमचन्द के सिरहाने के पास आकर खड़ा हो गया।

× × ×

ओतमचन्द थोड़ी देर तक एथल के चेहरे की ओर टक लगाये देखता रहा। उसने पहचानने की बहुत कोशिश की, लेकिन जब वह चेहरा सर्वथा अपरिचित लगा तो उसने पूछा : "तुम कौन हो ?"

"आप मुझे नहीं पहचानते, सेठ जी ! पहचानेंगे भी कहाँ से ? मेरा नाम एथल है। ढोरों को लेकर गाँव की ओर आ रहा था तो तिराहे पर, नदी के किनारे, इमली की छाया में आपको पड़ा पाया। नाक पर अँगुली रख कर देखा तो साँस का ठीक-ठीक पता नहीं चला, लेकिन माथा कुछ गरम था तो समझ गया कि जान अभी बाकी है। जंगल में इन दिनों शेर का उत्पात बहुत बढ़ गया है। रोज रात में नदी पर पानी पीने आता है। आपको रात में वहां अकेला कैसे छोड़ा जाता।" एथल एक साँस में इतना सब कह गया और फिर बोला : "मैं तो आपको भगवान का नाम लेकर और झोली में डालकर घर ले आया।"

"भला हो तुम्हारा, भाई।" ओतमचन्द ने क्षीण स्वर में कहा। नदी किनारे की घटना याद आते ही यहाँ के सुरक्षित वातावरण में भी वह बेचारा मारे डर के काँप उठा। लेकिन यह खयाल आते ही कि अब वह भयमुक्त है उसने अपरिचित आदमी का एहसान मानते हुए कहा :

"तुमने मेरी जान बचा ली।"

"मैंने तो वही किया जो मुझे करना चाहिए था।" एथल ने जवाब दिया : "आदमी-जैसे आदमी को शेर के मुँह में तो छोड़ा नही जा सकता।"

"यह कौन-सा गाँव है ?" ओतमचन्द ने पूछा : "ईश्वरिया तो नहीं है न ?"

सुना तो एथल ने थोड़ा हँसकर कहा :

"ईश्वरिया तो पच्छिम में रह गया। लेकिन आप बेहोश थे इसलिए पता भी कैसे चलता ? यह तो मेंगणी है, मेंगणी।"

"मेंगणी ?" ओतमचन्द की छाती धड़क उठी।

"हाँ सेठजी, मेंगणी—आप के समधी का गांव।" हीरबाई ने जवाब दिया।

"अच्छा। लेकिन आपको यह पता कैसे चला कि यह मेरे समधी का गांव है ?"

"यह खड़ी है तुम्हारे छोटे भाई की होने वाली दुलहिन—चम्पा। इसने आपको पहचान लिया।" हीरबाई ने अपनी बगल में खड़ी चम्पा की ओर इशारा किया।

चम्पा और भी सकुचा गयी; उसने घूँघट को और नीचे खींच लिया।

ओतमचन्द के दिल को यह दूसरी चोट लगी। एक क्षण उसके मन में आया, हे भगवान, यह तूने मुझे कहाँ ला पटका ? ईश्वरिया के कुएँ से निकाल कर यहाँ मेंगणी की खाई में गिरा दिया !

"कपूर सेठ का और हमारा बहुत अच्छा घरोपा है।" एथल कह रहा था।

"चम्पा रोज हमारे यहाँ दूध लेने आती है।" हीरबाई सोत्साह कहे जा रही थी : "आपको जैसे ही खटिया पर सुलाया चम्पा ने फौरन पहचान लिया कि अरे, ये तो मेरे जेठ हैं और इनकी खटिया को तो मेरे घर ले जाना पड़ेगा।"

"नहीं······नहीं······" ओतमचन्द ने फौरन इनकार कर दिया और फिर एकदम चुप हो गया।

सुनकर सब को आश्चर्य हुआ। यह आदमी अपने समधी के यहाँ जाने से इनकार क्यों कर रहा है ? चम्पा मन-ही-मन तर्क-वितर्क करने

लगी कि ये हमारे घर आना क्यों नही चाहते ? किसी वजह से इन्हें बुरा तो नही लग गया ?

ओतमचन्द के इनकार करने का कारण जानने को सभी उत्सुक थे, लेकिन वह अपना मुँह बन्द किये बिलकुल चुपचाप पड़ा था। उसे मन-ही-मन यह डर सता रहा था कि अपनी वर्तमान नाजुक और लज्जाजनक स्थिति की जानकारी यदि समधी—पक्ष को हो गयी तो लोगों से बात छिपी न रहेगी और मेरी इज्जत-आबरु मिट्टी में मिल जायेगी ! इसलिए उसने धड़कते दिल से पूछा :

"क्या कपूर सेठ को यह मालूम है कि मैं आप के घर में पड़ा हूँ ?"

"नहीं। लेकिन चम्पा अभी जाकर बता देगी।" हीरबाई ने कहा : "आपके होश में आने का ही रास्ता देख रही थी।"

"नहीं, बताने की जरूरत नहीं।" घूंघट निकालकर समीप खड़ी चम्पा को इंगित कर ओतमचन्द ने कहा : "यही समझो कि मैं मेगणी मे आया ही नही।"

फिर सबको आश्चर्य हुआ।

"आप ऐसा क्यों कह रहे हैं सेठजी ?" एथल ने पूछा : "कपूर सेठ को जब पता चलेगा कि आप हमारे यहां हैं और हमने उन्हें बताया नही तो क्या उन्हे बुरा नहीं लगेगा ? न बताना तो हमारी गलती होगी।"

"इसीलिए तो कह रहा हूँ कि कपूर सेठ को पता चलने ही न दिया जाये।" ओतमचन्द ने कहा : "मुझे जल्दी-से-जल्दी वाघणिया पहुँचना है; और कपूर सेठ को पता चल गया तो वे मुझे यहाँ से हफ्ते दस दिन तक हिलने न देंगे। मेरे प्यारे समधीजी पाहुनाचार में लग जायेंगे और मैं जा न सकूंगा।"

ओतमचन्द की यह दलील किसी के गले नहीं उतरी। हीरबाई ने कहा !

"चम्पा घर जा रही है और थोड़ी ही देर बाद कपूर सेठ धोती का पल्ला कमर में खोसते हुए यहां आ जायेंगे।"

"इससे कह दीजिये कि घर जाकर मेरे नाम का एक अक्षर तक न बोले ।"

"ऐसा भी कहीं हो सकता है सेठजी ? आप मेंगणी में आयें और चम्पा अपने माँ-बाप को ही न बताये, यह कैसे मुमकिन है ? यह तो अच्छी बात नहीं ।"

"बताना भी अच्छी बात न होगी ।" ओतमचन्द ने जोर देकर कहा । "इसे अपने सबसे प्यारे की सौगन्ध देकर कह दीजिये कि घर में किसी को मेरे यहां होने की बात न बताए·········"

"तब तो हम गुनाह में आ जायेंगे और कपूर बापा हमीं को बुरा कहेंगे ।" एथल ने आशंका प्रकट की : "जनम-भर के लिए उनका उलहना हमारे सिर रह जायेगा ।"

"मैं उन्हें समझा दूंगा", ओतमचन्द ने एथल को आश्वस्त करते हुए कहा : "आप फिक्र न करें । वाघणिया जाकर अच्छा होने के बाद यहाँ आकर उनसे मिल लूंगा । लेकिन मेरे मेंगणी में होने की बात आप मेहरबानी करके किसी को बताइये मत ।"

"घूंघट में शरम के मारे चम्पा बेचारी कुछ बोल नहीं पा रही है," हीरबाई ने कहा : "मगर मन में दुःखी हो रही है और आँखो से तो वो देखो, आँसू भी बह चले !"

"दुःखी मत हो बेटी !" ओतमचन्द ने समझाते हुए कहा : "मै वाघणिया दरबार (जागीरदार) की ओर से उनका भाग तौलने और लगान वसूली के लिए निकला था । रास्ते में बटमारों ने मारा-पीटा और लूट लिया······उन्होंने बुरी तरह पीटा और अन्दरूनी चोटें भी काफी लगीं; मगर तेरे—जैसी सती का पुण्य आगे आया और मेरे प्राण बच गये; इसे भगवान की कृपा ही समझो । लेकिन अब इतना ध्यान रखना कि इस बात की किसी को भनक भी न पड़े । मेरी इज्जत प्यारी हो तो जबान पर ताला लगा लेना । यही समझ लेना कि मैंने मेंगणी में पाँव ही नहीं रखा······"

'सेठजी, चम्पा कहती है कि आप फिकर न करें, किसी को इस बात का पता न चलेगा ।" दूर खड़ी हीरबाई ने चम्पा का जवाब कह सुनाया ।

"जीती रहो बेटी ! तेरे जेठ की इज्जत इस समय तेरे हाथ मे है ।"

हीरबाई चम्पा के घूंघट से कान लगाकर उसकी बात सुनती और दुभाषिये की तरह उसका सार ओतमचन्द को बताती जाती थी ।

"कहती है कि ससुराल की इज्जत मुझे आप से भी ज्यादा प्यारी है ।"

"भले घर की बेटी इसी को कहते हैं.........."

"कहती है कि आपका वचन टालूंगी नहीं......घर में किसी को इस बात की गन्ध भी नहीं लगने दूंगी कि मेरे जेठ गाँव मे आये थे......"

"वाह बेटी, वाह ! समझदारी इसी का नाम है !" चम्पा द्वारा कहलाये हुए उत्तरों को सुनकर ओतमचन्द ने अपना सन्तोष व्यक्त किया ।

"चम्पा पूछती है कि जेठजी की इजाजत हो तो अब मैं घर जाऊँ..... " हीरबाई ने कहा ।

"जाओ बेटी, खुशी से जाओ ।" ओतमचन्द ने अनुमति देते हुए कहा ।

और मन में उभरती अनेक शंकाओं के साथ चम्पा घर की ओर चल दी ।

रास्ते में उसकी शंकाएं और भी गहरी होती गयीं । जेठजी यहाँ आने की बात को इतना गुप्त क्यों रखना चाहते हैं ? चम्पा को यह प्रश्न रह-रह कर परेशान करता रहा । शंकित और व्यथित हृदय से जब उसने दरवाजे की चौखट मे पाँव रखा तो ओसारे में बोले गये ये शब्द उसके कानों में पड़े :

"ओतमचन्द के सिवा और कोई नहीं......"

"आवारा, भिखारी ....."

"चोरों का सरदार......"

मनसुख मामा का शहराती उच्चारण चम्पा ने फौरन पहचान लिया और समझ गयी कि पिताजी ईश्वरिया से 'सगुन' करके लौट आये हैं ।

हिंडोले पर झूलते हुए कपूर सेठ कह रहे थे :

"तुम मेरी मानोगे नहीं मनसुखलाल, लेकिन मेरा मन तो यही कहता है कि ओतमचन्द सेठ—जैसा अमीर आदमी ऐसा काम कभी नहीं करेगा ।"

चम्पा ने दोनों की बातें सुनी और चुपचाप सीधे रसोईघर मे चली गयी ।

"चूल्हे पर क्या चढ़ाया है ?" चम्पा ने जसी से पूछा ।

"लपसी का अदहन ।" हर्ष विभोर जसी ने जवाब दिया ।

"समझ गयी ! बापूजी आज मेरी बहिना की सगाई जो कर आये हैं ।"

स्वीकृति में जसी के चेहरे पर गर्वभरी मुस्कराहट फैलती चली गयी ।

"ओतमचन्द और अमीर ? यह आप क्या कह रहे हैं ? रहा होगा । अमीर किसी दिन ! आज तो बुरे हाल हो रहे हैं ।" ओसारे में से मनसुख लाल की आवाज सुनायी दे रही थी : 'सोना देखकर तो बडे-बड़े ऋषि-मुनियों का मन भी डोल जाता है······फिर उसके जैसा मुफलिस रुपयों की थैली सूनी पाकर कब छोड़ने लगा—पार कर दी होगी जरूर !"

"कौन जाने, लेकिन यह बात मेरे गले उतरती नहीं ।" कपूर सेठ ने कहा ।

सन्तोकबा अपनी आदत के अनुसार दरवाजे की चौखट में बैठी इस रहस्य को समझने सुलझाने की कोशिश कर रही थीं ।

जसी जल्दी-जल्दी लपसी पकाने में लगी थी और चम्पा उद्विग्नता-पूर्वक इस संवाद को सुन रही थी :

"फिर आप ही बताइये, बालू ने जिस थैली को टाँके की पाल पर रखा था। वह इतनी-सी देर मे कहाँ चली गयी ?" मनसुखलाल ने हंसते-हसते पूछा : 'क्या उसके पाँव निकल आये थे ?"

"राम जाने ! यह तो ऐसा कौतुक हुआ जैसे हवा से दरवाज़ा बन्द हो जाये। लेकिन आँखों से देखे बिना किसी पर दोष लगाना अच्छा नही ।"

"लेकिन इस बीच ओतमचन्द के सिवा दूसरा तो कोई ओसारे मे गया नही था। क्या सीताजी की तरह थैली धरती में समा गयी ?" मनसुखलाल फिर हस दिया।

चम्पा और भी चिन्तित होकर सुनने लगी।

"जो कभी लाखों का हेर फेर किया करता था वह आदमी सौ-दो-सौ रुपल्ली के लिए अपनी नीयत बिगाडेगा ?" कपूर सेठ अब भी ओतमचन्द को अपराधी मानने के लिए तैयार नही थे।

"अच्छा तो वह ओसारे में से अकस्मात् चला क्यों गया ? अगर, उसके मन में पाप नहीं था तो वह किसी को बताये बिना वहाँ से गया क्यों ?"

"यह बात तुम्हारी सच है।" कपूर सेठ ने स्वीकार किया : "मुझे भी यह बात जरा शंका पैदा करने वाली लगती है।"

"अब आया आपकी समझ में।" मनसुख भाई ने ऊँची आवाज़ में कहा : "इस सन्देह के कारण ही तो दकु सेठ ने चौकीदारों को उसके पीछे दौड़ाया। नदी किनारे उन्होंने ओतमचन्द को जा पकड़ा, लेकिन नदी में उसने थैली को जाने कहां छिपा दिया था।"

अब चम्पा को हीरबाई के यहाँ सुनी हुई बातो का सिलसिला बैठता दिखाई दिया।

जसी ने चम्पा से हसते हुए कहा : "तेरे जेठ की बात हो रही है।"

"जानती हूँ।" कहकर चम्पा चुप हो गयी और पटरे पर से बरतन उतारने लगी।

बाहर से मनसुख भाई की आवाज़ सुनायी दी :

"इसीलिए तो कहता हूँ कि अब ओतमचन्द की पुरानी सम्पन्नता का मोह छोड़ो और चम्पा के लिए दूसरा अच्छा घर-वर ढूँढ़ो।"

रसोई घर से खननन की आवाज़ बाहर सुनायी दी।

"क्योंरी, क्या हुआ ?" सन्तोकबा ने चिल्लाकर पूछा।

"कुछ नहीं, कुछ भी नहीं।" जसी ने जवाब दिया : "बहिन के हाथ से थाली गिर गयी।"

"थोड़ा ध्यान देकर काम करना चाहिए न !" सन्तोकबा ने टीका की : "काँसे की थाली को तड़कते क्या देर लगती है ? और कांसा तो आजकल सोने से भी महंगा हो गया है।"

बहिन को डांट पड़ते देख जसी बहुत खुश हुई। उसने चम्पा की ओर कुछ इस तरह देखा मानों कह रही हो, 'क्यो, कैसी रही ?'

चम्पा ने आंखें झुकालीं।

मनसुख भाई ने जो प्रश्न छेड़ा था उसकी पेचीदगी को देखते हुए उन्हें अपनी आवाज़ को भी बहुत धीमा कर देना पड़ा। कपूर सेठ भी गम्भीर हो गये और कनफुसकियों में ही बातें करने लगे। चम्पा अपने भविष्य के बारे में दोनों बुजुर्गों द्वारा की जा रही कनबतियों को साफ-साफ सुन नहीं पा रही थी। लेकिन वह इतना जरूर जान गयी कि मनसुख मामा का प्रस्ताव अम्मां और बापूजी के गले उतर नहीं रहा है और वे उसका तीव्र विरोध कर रहे हैं।

अब चम्पा की समझ में यह बात भी आ गयी कि ओतमचन्द ने अपने यहाँ आने की बात को गुप्त रखने का इतना आग्रह क्यो किया। सगाई टूट सकती है, यह आशका तो उन्हें नहीं हो गयी थी ?

और चम्पा खुद ही सन्देह के चक्रव्यूह मे फंस गयी।

१८

विपदाओं में जो डिगे नहीं

ओतमचन्द थोड़ा स्वस्थ होकर एथल और हीरबाई के साथ सुख-दु:ख की बातें कर रहा था कि चम्पा दरवाज़े में आ खड़ी हुई। वह अपने एक हाथ में थाली लिये हुए थी, जिस पर साड़ी का पल्ला ढँका था।

हीरबाई ने जब देखा कि चम्पा ओतमचन्द के सामने अन्दर आते हिचकिचा रही है तो वही उठकर बाहर उसके पास ओसारे में चली आयी।

"अरे, चम्पा, तो आपके लिए थाली परोस लायी है ;" हीरबाई ने सोत्साह ऊँची आवाज़ में कहा।

"धीरे, धीरे, हीरी काकी !" चम्पा ने अत्यन्त धीमे स्वर में हीर-बाई को बरजा : "घर से छिपकर चुपचाप आयी हूँ। किसी को पता नहीं चलना चाहिए·····नहीं; मेहमान को भी नहीं; किसी को कानों कान पता नहीं चलना चाहिए·····घर में होली सुलग ही रही है, इससे लपटें और भड़क उठेंगी······"

"ऐसा क्या हुआ है री ?" हीरबाई ने चिन्ता भरे स्वर में पूछा।

"सब-कुछ फिर इत्मीनान से बता दूँगी।" चम्पा ने दु:ख भरी लम्बी साँस लेकर कहा : "मुझ अभागिन की किस्मत ही खोटी है तो कोई क्या करे ?"

इतने से तो हीरबाई बहुत-कुछ समझ गयी। शाम को जो बातचीत

हुई थी उसका सन्दर्भ भी मिल गया। वह यह भी देख सकी कि चम्पा का हृदय रो रहा है। उसका वह क्रन्दन मूक होने के कारण अधिक कातर और करुण लग रहा था।

"उनकी तबीयत अब कैसी है?" चम्पा ने पूछा।

"दुष्टों ने बहुत मारा और अन्धी चोटें भी बहुत लगी इसलिए हाथ-पाँव अभी तक सीधे नही हो पाये है। सारा बदन दर्द के कारण टूट रहा है।" हीरबाई ने बताया: "फिर से लेप लगाकर हाथ-पाँव सेकने होगे।" और फिर सकुचाते हुए कहा: "तुझे फुर्सत हो तो सिल-पर यह लेप पीसना है, पीस देगी?"

"हाँ-हाँ, क्यो न पीस दूँगी?" चम्पा ने खुशी खुशी कहा: "घर जाकर भी मुझे कौन हुण्डी सिकारना है? लाओ दा; अभी पीसे देती हूँ।"

चम्पा ओसारे मे सिल पर लेप का मसाला पीस रही थी और इधर खटिया में बैठा ओतमचन्द अपने सामने रखी हुई भोजन की थाली को बड़े चाव से देख रहा था। हीरबाई ने उसे बता दिया कि चम्पा अपने घर वालों से छिपाकर भोजन की इस थाली को यहाँ लायी है। इसलिए ओतमचन्द के मन वह देवता के नैवेद्य से भी अधिक मूल्यवान हो गया था।

भोजन करते हुए ओतमचन्द ने वाघणिया जाने की बात छेड़ी तो एथल ने कहा: "चलने फिरने लायक तो हो नहीं, वाघणिया जाओगे कैसे?"

"किसी तरह धीरे-धीरे पहुँच ही जाऊँगा।"

"मैं अपनी गाड़ी में पहुँचा दूँगा; लेकिन अगर दो दिन बाद ही जायेंगे तो क्या बिगड़ जायेगा?" एथल ने कहा।

"घर सब रास्ता देख रहे होगे; न जाने से उन्हें चिन्ता होगी।"

"कल सवेरे ही किसी गाड़ी वाले के हाथ वाघणिया खबर करवा दूँगा कि सेठजी का रास्ता मत देखना और फिक्र भी मत करना, दो-चार दिन के बाद आयेंगे ......"

"ना भैया, वहां कोई खबर मत भेजना।" ओतमचन्द ने कहा ! सब बेकार फिकर करेंगे। उन्हें मालूम तो है ही कि दरबार का भाग तोलने-वसूलने के लिए गया हूँ, दो-चार दिन की देरअबेर हो भी सकती है।"

ओतमचन्द अपने घर वालों को भी इस दुःखद घटना की जानकारी होने नहीं देना चाहता, यह जानकर ओसारे में बैठी चम्पा को और भी आश्चर्य हुआ। मनसुख मामा चोरी की जो बात कह रहे थे, कही वह सच तो नही है ? दकु सेठ के ओसारे में से क्या ओतमचन्द जेठ सच ही रुपये की थैली चुरा लाये हैं ? इनके मेंगणी में आने की बात मैं घर मे किसी को न बताऊँ। इसके लिए सौगन्ध—सबसे प्यारे व्यक्ति की सौगन्ध धराने के पीछे रहस्य क्या है ?

और 'सबसे प्यारे व्यक्ति' शब्दों के साथ ही चम्पा के कल्पना चक्षुओं के समक्ष प्रियतम की-नरोत्तम-की मूर्ति खड़ी हो गयी। इस समय कहाँ होंगे ? किस हालत में होंगे ? सुखी हैं या दुःखी ? मैं उनकी याद में रात-रात भर जागती और तड़पती रहती हूँ, क्या वे भी मेरी याद में इसी तरह तड़पते होंगे ?

इधर, घर वालों से छिपाकर खाना लाने वाली चम्पा के बारे में ओतमचन्द मन ही-मन सोच रहा था : ऐसी समझदार और सुलक्षणा बहूरानी मेरे घर का उजाला बनेगी ? नरोत्तम को ऐसी सर्वगुण सम्पन्न कुलीन वधू का पति बनने का सौभाग्य प्राप्त होगा ?

भोजन समाप्त होने पर हीरबाई ने ओतमचन्द से कहा :

"भैया, तुम्हारे फिर से लेप लगाकर अच्छी तरह सिकाई कर दू तो सबेरे तक देही फूल-जैसी हलकी हो जायगी।"

थोड़ी-सी देर के परिचय में हीरबाई ने आगन्तुक को बड़ी आत्मीयता से 'भैया' कहकर पुकारना शुरू कर दिया था।

"बहिना, मैंने तो तुम्हें मुसीबत में डाल दिया।" ओतमचन्द ने भी उतनी ही आत्मीयता से जवाब दिया।

"इसमें मुसीबत कैसी भैया ? आदमी आदमी का काम न करे तो और कौन करे ? आदमी ही आदमी के काम आता है।"

ओसारे में बैठी चम्पा बड़े चाव से 'भाई-बहिन' का संवाद सुन रही थी।

"तुमने तो मुझे नयी जिन्दगी दी है, बहिन! नदी किनारे पड़ा रह जाता तो शेर जरूर खा जाता।"

"जिन्दगी देने वाला तो वह ऊपर बैठा है, हजार हाथों वाला। उसके आगे हमारी क्या विसात ?"

"तुम्हारे इस उपकार का बदला मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।"

"उपकार कैसा भैया ? आदमी आदमी के काम न आये तो किसके काम आये ?" हीरबाई ने एक बार फिर उसी सीधे-सादे सत्य का उच्चारण किया।

"लेकिन मैं तुम्हारे किस दिन काम आऊँगा ?"

"अपने समय पर तुम भी काम आओगे। आदमी का किया हुआ काम कभी अकारथ नहीं जाता, समझे भैया !"

"लेकिन कहाँ मेरा वाघणिया और कहा तुम्हारी मेंगणी !" ओतमचन्द ने कहा : "पता नहीं, फिर कब मिलना हो !"

"आपस में स्नेह-प्रेम हो तो मिलना-जुलना भी हो ही जाता है भैया !" हीरबाई ने कहा : "सच्चा प्रेम हो तो आदमी हजार कोस से भी मिलने चला आता है।"

इन नीच कहे जाने वाले अहीरों के निर्व्याज स्नेह ने ओतमचन्द को अभिभूत कर दिया—वह स्नेह की उस शीतल सरिता में मौन, मुग्ध आप्लावित होता रहा।

× × ×

थोड़ी देर बाद हीरबाई बोली : "और तो मुझे सब बात का सुख है, मगर एक दुःख मन में खटका करता था........"

"वह क्या ?"

"मेरे मायके में कोई नहीं है। नैहर का रास्ता ही बन्द हो गया।

मेरा माँ का जाया सगा भाई नहीं है, इसलिए आज से तुम्ही को धरम का भाई मानती हूँ।"

"बड़ी खुशी से बहिन, बड़ी खुशी से।" ओतमचन्द ने स्नेह भरे स्वर में कहा।

अपनी बात कहकर हीरबाई गद्गद हो गयी थी। थोड़ी देर चुप रहने के बाद बोली : "मेरे एक भाई था, बिलकुल जवान। पिछले साल मरी उसे खा गयी—प्लेग में जाता रहा। उसकी शकल-सूरत तुम से मिलती-जुलती थी। तुम्हें देखती हूँ और मुझे उसकी याद आ जाती है। इसलिए मैंने आज से तुम्हें अपना धरम का भाई माना......"

'बड़ी खुशी से बहिना, बड़ी खुशी से।"

अब एथल बोला :

"तुम्हें यों एकाएक हमारे घर भेजने मे ऊपर वाले का कोई हेतु जरूर है। आदमी की आदमी से भेंट यों ही नही होती—उसमें ऊपर वाले की कोई-न-कोई मन्शा जरूर होती है।"

"भगवान ने ही तुम्हें भेजा है, भैया, जिससे मेरे-जैसी बिना भाई वाली को धरम का भाई मिल जाये।" हीरबाई ने कहा।

"ईश्वर की लीला तो अगम और अपरम्पार है, बहिना। उसको मुझे जिन्दा रखना मजूर होगा, इसलिए तुमसे भेंट करा दी।" ओतमचन्द ने कृतज्ञतापूर्वक कहा : "नही तो, इस अंधेरी रात में नदी के किनारे पड़ा होता और राम जाने, क्या दुर्गत होती! तुम्हारा तो मैं जनम-जनम तक एहसानमन्द रहूँगा। जितना भी उपकार मानूँ थोड़ा ही है।"

"उपकार मानो परमेसुर का भैया।" हीरबाई ने कहा : "सब करने-धरने वाला तो वह ऊपर का करतार है। उसके हुकुम के बिना पेड़ की पत्ती भी नही हिलती, हम काले सिर वाले मानवों की क्या मजाल? हम तो बेकार ही घमण्ड करते हैं कि यह मैंने किया, वह मैंने किया........"

"हीरी काकी !" बाहर से धीमी आवाज़ सुनायी दी और हीरबाई उठकर ओसारे में आ गयी ।

चम्पा ने सिलपर पीस कर लेप तैयार कर दिया था ।

"अब मैं जाऊँ ?" चम्पा ने घर लौटने की अनुमति माँगते हुए कहा : "देर हो जायगी तो अम्माँ नाराज़ होंगी ।"

"हाँ बेटी, अब तू जा । कोई नाराज़ हो ऐसा काम नही करना चाहिए ।" हीरबाई ने उसे इजाजत देते हुए कहा ।

"कोई काम-काज हो तो बीजल के हाथ खबर करवा देना ।" चम्पा ने जाते-जाते कहा ! "सवेरे जल्दी एक चक्कर लगा जाऊँगी ।"

देर हो गयी थी, इसलिए चम्पा तेजी से कदम रखती हुई घर की ओर चल दी । उसने यहाँ आने की बात किसी को बतलायी नही थी, इसलिए आशंकित हो रही थी कि अम्मां नाराज़ होंगी ।

रात में काम-काज से छुट्टी पाकर ओसारे मे मिट्टी का दीया रख अहीर दम्पती पुनः ओतमचन्द से बातें करने बैठ गये । नन्हा बीजल बाहर बाड़े के प्रशस्त आँगन में खेल रहा था । कभी वह बंसी बजाता और कभी लकड़ी के घोड़े पर सवारी करने लगता ।

ओतमचन्द बड़े कौतूहल से बीजल के खेल और खिलौनों को देख रहा था । थोड़ी देर के बाद उसने बच्चे को अपने पास बुलाया :

"बीजल" !

लेकिन बसी में मग्न बीजल ने जैसे सुना ही नहीं । तब ओतमचन्द ने दुबारा और भी स्नेह से पुकारा :

"बीजल !"

जब बीजल फिर भी नहीं आया तो हीरबाई ने ऊँची आवाज़ में पुकार कर बेटे का ध्यान आकर्षित किया ।

"बेटा बीजल, मामाजी बुला रहे हैं, यहाँ आओ !"

हीरबाई ने 'मामा' शब्द का उच्चारण इतनी मधुरता और स्नेह

पूर्वक किया था कि ओतमचन्द धन्य हो गया। उसने बीजल को इतने स्नेह से अपनी गोद में बिठा लिया मानों सगा भानजा हो। फिर उसके सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरते हुए पूछा :

"बीजल, मुझे अपने खिलौने दिखाओगे बेटा ?"

"न, नही दिखाता।" बीजल ने कहा।

"मामाजी से ऐसा नही कहते, बेटे !" इस बार एथल ने ओतम-के लिए 'मामा' शब्द का प्रयोग किया।

"मुझे दिखा तो सही तेरे खिलौने।" ओतमचन्द ने बीजल को फुसलाना शुरू किया।

लेकिन अपने खिलौनों का अमूल्य भंडार लुट जाने के डर से बीजल बराबर इनकार करता रहा।

अन्त में ओतमचन्द और माता-पिता द्वारा खूब फुसलाये पटाये और लालच दिये जाने के बाद वह बच्चा अपने खिलौनों का खजाना दिखाने के लिए तैयार हुआ।

× × ×

मिट्टी के कुठले में भरकर रखे हुए तरह-तरह के रंगीन खिलौनों को देखकर ओतमचन्द बहुत प्रसन्न हुआ। यह सारी तरकीब उसने अपने पुत्र बटुक के लिए दो चार खिलौने ले जाने के इरादे से की थी। वह जानता था कि वाघणिया लौटने पर घर के दरवाज़े में पाँव रखते ही सबसे पहले बटुक खिलौने मांगेगा। उसकी इस माँग को पूरा करने का प्रयत्न ओतमचन्द ने अभी से कर दिया था।

"बीजल, हमारे घर पर तेरे ही जितना बड़ा एक मुन्ना है। उसका नाम बटुक है।"

"भगवान उसे सौ बरस की उमर दें।" हीरबाई ने सच्चे अन्तःकरण से आशीर्वाद दिया।

"बटुक के लिए अपने दो-एक खिलौने देगा मुझे ?" बीजल को अच्छी तरह बहला फुसला कर ओतमचन्द ने पूछा।

बीजल विरोध मे जोर से चीख उठा। फुटपाथ पर अपनी दुकान फैलाये फेरी वाला पुलिस के आने की खबर पाकर जिस फुर्ती से सामान बटोरता है, बीजल ने भी उसी फुर्ती से खिलौनो को बटोर कर कुठले मे डालना शुरू कर दिया। वह डरा कि कही उसका अमूल्य खजाना लुट न जाये। हीरबाई ने उसे रोका और समझाते हुए कहा।

"मामाजी के मुन्ने के लिए खिलौना देने से इनकार नही किया जाता, बेटे।"

ओतमचन्द ने कहा: "तू बटुक के लिए बंसी देगा तो बटुक भी तेरे लिए हाथी भेजेगा।"

अदला-बदली का यह सौदा बीजल ने स्वीकार कर लिया दूर के गांव में रहने वाले एक अनजाने और अनदेखे भाई के लिए उसने खिलौनों में से एक बंसी निकाल कर दे दी।

पुत्र की इस उदारता का हीरबाई ने पूरा-पूरा फायदा उठाया और खूब बहला-फुसलाकर बटुक के लिए चार-पांच खिलौने और देने को उसे राजी कर लिया।

"मैं भी तेरे लिए वहाँ से बहुत से खिलौने भेजूंगा, हाँ बेटा।" ओतमचन्द ने बहुत खुश होकर बीजल को आश्वासन दिया।

इस घटना को आधार बनाकर हीरबाई ने ओतमचन्द से उसके घर-द्वार और बाल-बच्चों के बारे में पूछना शुरू किया और जल्दी ही दोनों परिवार एक-दूसरे के इतना निकट आगये मानों बरसों पुरानी पहचान हो।

अन्त में इस आत्मीयता से प्रेरित होकर हीरबाई ने कहा: "भैया, कुछ कहना चाहती हूँ।"

"बेझिझक कहो बहिन।"

"अगले साल आखातीज के दिन तुम्हारे इस बीजल की शादी होगी........"

"इतने छोटे बच्चे की शादी होगी?"

"बीजल तो बहुत बड़ा हो गया है। हम आयरों में तो पलनों में शादी होती है और दुलहा-दुलहिन को गोद मे लेकर भाँवरे पड़ती हैं।" हीरबाई ने बताया : "मेरे भाई की गमी हो जाने से बीजल का विवाह आगे बढता गया। लेकिन आती साल तो इसकी बारात चढानी ही होगी।"

"यह तो बड़ी खुशी की बात है, बहिन।"

"सिरफ मुंह से कह देने की खुशी मुझे नही चाहिए।" हीरबाई ने कुछ दुलरा कर कहा : "सच्ची खुशी मुझे तभी होगी जब तुम खुद शादी मे आओ; और तभी मैं तुम्हें सच्चा भाई समझूंगी।"

"बड़ी खुशी से आऊँगा बहिन, जरूर आऊँगा।"

"सच ?"

"हाँ बिलकुल सच ?"

"और मेरी भौजी को भी साथ लाओगे ?"

"हाँ, तुम्हारी भौजाई को भी साथ लाऊँगा; और बोलो ?" ओतमचन्द ने उमंगित होकर वचन दिया।

अब हीरबाई ने साहस करके अन्तिम माँग भी पेश कर दी :

"और साथ ही बीजल के विवाह का मामेरा (भात) भी लाओगे?"

"हाँ, मामेरा भी लाऊँगा।" ओतमचन्द ने पक्का वादा करके हीरबाई को आश्वस्त किया : "मैंने तुम्हें अपनी धर्म बहिन माना है, इसीलिए भानजे की शादी का मामेरा तो बिना कहे ही करना पड़ेगा। वह मेरा फर्ज है।"

हीरबाई की प्रसन्नता का पार न था। उसने यह तो सपने में भी नही सोचा था कि बीजल के मामेरे का विचार यों बातों-ही-बातों में वास्तविक बन जायेगा। उसने आनन्द से उमगते हुए कहा :

"एक हरा नारियल और साड़ी ही लेकर आजाओगे तो मैं समझ लूंगी कि मेरा भाई पूरा मामेरा ले आया।"

"फिक्र मत करो, बहिन ! तुमने मुझे नयी जिन्दगी दी तो क्या मै

गरीब आदमी अपनी हैसियत के माफिक मामेरा भी नहीं करूँगा ?"

"जीते रहो मेरे वीरा, सौ बरस की उमर पाओ।" बहिन ने अन्तर्मन से आशीर्वाद दिया : "तुम्हारा धन-धान्य बढ़े, खूब फूलो-फलो, किसी बात की कमी न रहे और सब तरह से सुखी होवो ।"

× × ×

इस स्नेह भरे परिवार में ओतमचन्द ने जो सुख अनुभव किया उससे वह अपनी शारीरिक पीड़ा को मानो भूल गया ।

काफी रात गये तक वे लोग सुख-दु.ख की बातें करते रहे ।

एथल बाजार मे जाकर, बड़े सवेरे कपास भर कर अमरगढ़ स्टेशन जाने वाले एक गाड़ीवान से ओतमचन्द को अमरगढ़ स्टेशन तक उसकी बैलगाड़ी में पहुँचाने का बन्दोबस्त कर आया । उस प्रबन्ध के अनुसार, रात मे देर से सोये ओतमचन्द की दो-तीन झपकियाँ ही लग पायी थीं कि गाड़ीवान ने गली मे से आवाज लगायी :

"एथल भाई ! मेहमान को तैयार करो । मैं माल भर कर अभी आया ।"

हीरबाई ने फौरन मेहमान का हाथ-मुँह धुलाया, छीके से दही की मटकी उतारी और कुठले मे से रोटियाँ निकाली ।

ओतमचन्द को नाश्ता परोसकर हीरबाई ओसारे में गयी तो वहाँ दरवाज़े में उषा काल के प्रफुल्लित चम्पकफूल-जैसी खिली हुई चम्पा हाथ में दूध का लोटा लिये खड़ी थी ।

हीरबाई को आश्चर्य हुआ । पूछा :

"आज इतने जल्दी, भिनसारे ही ?"

"दूध लेने आयी हूँ ।" चम्पा ने कहा ।

"लेकिन दूध तो मैंने अभी दुहा नही है········"

"तो अब जल्दी से दुह दो ।" चम्पा ने हुक्म सुना दिया ।

"क्यों भला ? क्या द्वारे बारात आ लगी है जो इतनी जल्दी मचा रही है ?"

"बारात भी आयगी जिसकी आना होगी, "चम्पा ने कहा : "लेकिन आज तो मनसुख मामा राजकोट जा रहे हैं, इसलिए इतने जल्दी दूध के लिए आना पड़ा ।"

"मूरख, तुझ में अकल भी है या बेचखायी ? आन गाँव जाते समय दूध पिलाया जाता है कहीं ?" हीरबाई ने कठोर स्वर में कहा ! "दूध तो बुरा सगुन............"

"लेकिन मामा दूध नहीं पीते; चा पीते हैं ।"

"क्या कहा ? क्या पीते हैं ?"

"चा.........चा.........चम्पा ने हँसकर कहा ! "शहर में आजकल नयी तरह का पीना (पेय) चला है । मामा साहब लोगों की पेढ़ी में काम करते हैं न, इसलिए चा पीते हैं ।"

इस नये पेय से बिलकुल अनभिज्ञ हीरबाई यह विचित्र नाम सुनकर सकते में आ गयी । कुछ देर चिन्ता मग्न सोचती रही; फिर पूछा :

"चा पीने से क्या धरम नही चला जाता ?"

"नहीं तो ।" चम्पा फिर हँस दी : "मामा तो पानी की तरह चा पीते है । शहर में तो अब सभी सेठों के घर नाश्ते के समय चा ही पी जाती है ।"

"तू जाने तेरी चा जाने ! मैं तो इतना जानती हूँ कि कही जाते समय दूध असगुन माना जाता है ।"

"पर मामा तो गाँव में रहते नहीं हैं और शहर में रहने-वालों को सगुन-असगुन लगते नही......."

"तो खड़ी रह कुछ देर ।" हीरबाई ने कहा : "पहले मैं हमारे मेहमान को गाड़ी में बिठा दूँ, फिर तेरे मेहमान के लिए दूध दुह दूँगी ।" और तब बात को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा : "तेरे जेठ आज वाघणिया जा रहे हैं, समझी ?"

ओतमचन्द का उल्लेख होने पर आज पहली बार चम्पा का मुँह उतर गया। 'तेरे जेठ' शब्दों ने इस युवती के सन्तप्त हृदय की व्यथा को और बढ़ा दिया। पिछली रात घर मे लम्बे विचार-विमर्श के उपरान्त जो निर्णय लिया गया था उसकी याद आते ही चम्पा अपने-आपसे पूछ उठी—क्या अब भी इन्हें मेरा जेठ माना जा सकता है ?"

लौकिक व्यवहार की दृष्टि से अब चम्पा का इस अतिथि से कोई रिश्ता नही रह गया था; परन्तु प्रेम का नाता तो इतनी आसानी मे टूटा नही करता। पिछली रात एथल ने ओतमचन्द को बैलगाड़ी से भेजने का जो प्रबन्ध किया था वह सतर्क चम्पा की चौकन्नी निगाहों से छिपा न रहा। इसीलिए तो और प्रेम के नाते को सर्वोपरि मानकर, वह दूध लेने के बहाने अपने बुजुर्ग को विदा करने के लिए सबेरे-सवेरे यहाँ चली आयी थी।

"क्या सोचने लग गयी री ?" हीरबाई ने स्नेहपूर्वक पूछा।

"कुछ नही काकी, कुछ भी नही।" और चम्पा ने अपनी आदत के अनुसार बात को टाल दिया।

"तू जरूर मुझसे कुछ छुपा रही है।" हीरबाई ने आग्रह किया।

"नहीं काकी, आपसे मैने कुछ भी छिपाया है ?"

चम्पा का बोलना खत्म भी नहीं हुआ था कि ओतमचन्द बाहर ओसारे में निकल आया। वह लज्जालु युवती कपाल तक पल्ला खींचकर फौरन एक ओर खड़ी हो गयी।

इस मौन अभिनय से ओतमचन्द बहुत-कुछ समझ गया।

गली में गाड़ी खड़खड़ाती हुई आ पहुँची और तुरत ही गाड़ीवान की आवाज़ सुनायी दी :

"एथल भाई, जल्दी करो।"

ओतमचन्द जल्दी जल्दी तैयार होने लगा।

हीरबाई ने गुड़-पपड़ी का पाथेय एक डिब्बे में रखकर साथ बाँध दिया।

आधे घूँघट की ओट से चम्पा सारी कार्रवाई को सतर्क दृष्टि से देख रही थी। उसकी अन्तर्व्यथा से परिचित ओतमचन्द का संवेदनशील हृदय युवती की मनोव्यथा का अनुभव कर रहा था। दोनों चुप थे—एक को चुपचाप, बिना कुछ बोले, विदा लेना थी और दूसरे को बिना कुछ बोले मौन विदा देना थी।

भारी हृदय और थके पाँवों से ओतमचन्द दरवाज़े की ओर बढा तो चम्पा ने साहस बटोर कर विदा होते हुए बुजुर्ग को घुटनों के बल बैठकर प्रणाम किया।

ओतमचन्द के बढ़ते हुए कदम रुक गये। कई तरह के मिले-जुले भावों से उसका हृदय इस तरह आलोड़ित हो उठा कि सहसा समझ मे नहीं आया कि क्या कहकर वह आशीर्वाद दे। अन्त में गद्‌गद स्वर से केवल इतना कह सका :

"सुखी रहो, बेटी !"

आशीर्वाद में सहृदयता और सच्चाई की ध्वनि पाकर चम्पा कृत-कृत्य हो गयी। खड़े होकर उसने हीरबाई से कहा :

"हीरी काकी, जेठजी से कह दो कि चम्पा का दाना-पानी उन्हीं के घर का लिखा है........."

अपने अन्तर की आवाज़ को जब मनुष्य दूसरों की वाणी में अक्षरशः सुनता है और उसे जैसा सुखद आश्चर्य होता है ठीक वही आश्चर्य इस समय ओतमचन्द को हुआ। कृतज्ञ स्वर में बोला :

"जैसा लिखा हो बेटी, और पिछले जनम का जैसा लेना-देना हो... .....बाकी, अभी तो हमारे घर पर चारों ओर से मुसीबतें ही टूट पड़ी हैं।"

"हीरी काकी, आप तो कह दीजिये कि मेरे नसीब में तो वाघणिया का एक ही घर लिखा है........."

"मुझे भी ऐसा ही लगता है, बेटी ! मेरा अन्दर वाला मुझे कहता रहता है कि ऐसा ही होगा, इसमें मीन-मेख न होगी........."

"नहीं ही होगी........" चम्पा ने घूँघट की ओट से हिम्मत के साथ जवाब दिया।

"वाह बेटी, वाह ! धन्य है तू !" ओतमचन्द ने पुलकित होकर कहा : "समय-कुसमय तो उमडने और बिखरने वाले बादलों की तरह है, उसका अफसोस क्या करना ! आदमी वह है जो विपदाओं में डिगता नहीं, मुसीबतों में टूटता नहीं, बुरे दिनों की मार मे हिम्मत नही हारता।"

और फिर धन्य-धन्य हो रहा ओतमचन्द जाते-जाते यह अन्तिम वाक्य कह गया :

"तेरे-जैसी लक्ष्मी हम गरीबों के घर का उजाला होगी.........."

श्वसुर-गृह के सिर मौर बुजुर्ग को इस तरह मन-ही-मन वचन देकर चम्पा भी धन्य-धन्य हो गयी।

ओतमचन्द गाड़ी में सवार हुआ तो बड़ा हलका अनुभव कर रहा था। पिछले तीन-चार दिनों की मन्त्रणाओं के इतने मधुर समापन ने उसके तन-मन की समस्त वेदनाओं और क्लान्ति को हर लिया था। वह श्रद्धालु जीव शाश्वत 'शुभ' में अपनी आस्था को अचल रूप से आरोपित कर अमरगढ़ के रास्ते पर आगे बढ़ गया।

१९

मेरा दकुभाई

"अम्मा, बापूजी आ गये ! ....बापूजी आ गये !"

पिछले तीन दिनों से, बिना पलक झपकाये, पिता की प्रतीक्षा में रत बटुक ने जैसे ही ओतमचन्द को गली के नुक्कड़ पर आते देखा फौरन यह समाचार अपनी माँ को सुनाने के लिए घर में दौड़ा गया ।

"आ गये, खुशी की बात है, बड़ी खुशी की बात है ।" लाडकोर भी पति के लौट आने की इतनी ही उत्कटता से प्रतीक्षा कर रही थी । यह समाचार पुत्र से सुनकर उसे भी अधिक खुशी हुई । लेकिन अपनी खुशी को वह पुत्र की तरह बचकाने ढंग से व्यक्त नहीं कर सकती थी और न ऐसा करना उचित ही था । उसने मन में उमड़ते आनन्द को मन मे ही रख लिया ।

साँढनी (ऊँटनी) पर सवार सन्देशवाहक महत्त्वपूर्ण समाचार को यथास्थान पहुँचाकर जिस फुर्ती से लौट जाता है कुछ उसी ढग से बटुक पिता के आगमन की खबर माँ को देकर फौरन गली मे दौड़ा आया और अब दरवाजे के नज़दीक पहुँच रहे पिता के पाँवों से लिपट गया ।

"लाओ मेरे खिलौने !......कहाँ है मेरे खिलौने ?"

पिता के घर में पाँव रखने के पहले ही बटुक ने इन सवालों की झड़ी लगा कर ओतमचन्द की नाक में दम कर दिया ।

ओतमचन्द नासमझ और उतावले बच्चे को 'अरे, धीरज धर, ठहर जरा' कहता हुआ धीरज बंधाता जा रहा था ।

लाडकोर अगवानी के लिए दरवाजे में आ खड़ी हुई थी, इसलिए घर के सामने आते ही ओतमचन्द की उससे निगाहें मिल गयीं ।

प्रेम मूर्ति लाडकोर ने प्यार भरी मधुर मुस्कान के द्वारा पति का स्वागत किया; ओतमचन्द ने उतनी ही प्रेम मधुर मुस्कान के द्वारा उसे स्वीकार किया ।

अमरगढ़ स्टेशन से वाघणिया तक ओतमचन्द पैदल चलकर आया था । घर के अन्दर पहुँच कर उसने गठरी नीचे उतार कर कन्धों का बोझ हलका किया ।

लाडकोर उस गठरी की ओर अर्थ सूचक दृष्टि से देखती हुई मन-ही-मन कल्पना करने लगी कि दकु भाई के यहाँ से गठरी मे क्या आया होगा ?

"यहाँ मत रखो अन्दर ले चलो ।" लाडकोर ने पति को बरजा । दकु भाई के घर से लायी गयी 'जोखिम' को यों ओसारे मे रखना उसे सुरक्षित नही लगा ।

पत्नी के इस इशारे का असली मतलब समझते ओतमचन्द को देर न लगी । दुनिया के ऊँच-नीच से गुजरे और सांसारिक सुख-दुःख को घोलकर पिये हुए वीतराग दार्शनिक की तरह ओतमचन्द को मन-ही-मन हँसी आ गयी । लेकिन उसने अन्तर का भाव मुँह पर झलकने नही दिया । इस डर से कि पत्नी के झूठे सपने मेरे आने के साथ ही कहीं टूट न जायें उसने पत्नी की आज्ञा को शिरसा स्वीकार कर फरमाबरदार नौकर की तरह उस गठरी को ओसारे मे से उठा लिया और जाकर अन्दर के कमरे में पटारे* के ऊपर रख आया ।

पत्नी ने पनिहारे से पानी का लोटा भर कर दिया और ओतमचन्द ओसारे की कोर पर बैठकर हाथ-मुँह धोने लगा । इस बीच लाडकोर फुर्ती से अन्दर के कमरे में गयी, कमर से लटकते चाबियों के गुच्छे से पटारा खोला और मन-ही-मन 'जर-जोखिम को तो सभाल कर रखना

---

* लकड़ी का बहुत बड़ा सन्दूक, जिसमें सौराष्ट्र-निवासी अपने कीमती गहने, कपड़े, बरतन यहाँ तक कि बिस्तर और दूसरी कई चीजें सुरक्षा के लिए रखते हैं । —अनु०

भला' कहते हुए उस गठरी को पटारे के सबसे नीचे वाले हिस्से मे रख दिया ।

वाघणिया के ही एक होशियार बढ़ई ने उस तिजोरीनुमा मजबूत पटारे को बनाया था । गठरी को पटारे की पैंदी में रखने के लिए लाडकोर को पटारे के अन्दर काफी झुकना पड़ा था । गठरी को उठाकर रखते समय लाडकोर के मन में विचार आया, 'ज्यादा भारी तो लगता नहीं है', लेकिन दूसरे ही क्षण असीम आशावदिता ने उसे आश्वस्त कर दिया, 'सिक्कों के बदले नोट दिये होंगे और शायद उन्होने अंगरखे या अण्टी में रखे होंगे ।'

"लाओ मेरे खिलौने ।" ओतमचन्द हाथ-मुँह धोकर और अलगनी पर से गमछा उठाकर गीला मुँह पोंछ ही रहा था कि बटुक ने फिर अपना पठानी तकाज़ा शुरू कर दिया ।

पुत्र के इस बाल सुलभ तकाजे से पिता को एक प्रकार का आनन्द प्राप्त हो रहा था और अधिकाधिक आनन्द की उपलब्धि के ही लिए वह लाये हुए खिलौने उसे देने मे जान-बूझकर देर कर रहा था । लेकिन लाडकोर को इस समय पुत्र का यह बालोचित तकाजा अच्छा नही लगा । उसने उसे घुड़क दिया :

"थके-माँदे आये हैं, थोड़ा सुस्ता तो लेने दे ! खिलौनों की रट लगाकर तू तो इनकी जान खा गया ।"

"अरे रे, ऐसे तीखे बोल क्यों बोलती हो, भली मानस !" ओतमचन्द ने पत्नी को बरजते हुए कहा : "मैं भी बटुक जितना बड़ा था तो अपने पिताजी को इसी तरह तंग किया करता था । यह जान खाना थोड़े ही हुआ ! और बच्चे तो आखिर बच्चे ही हैं । मा-बाप के सामने यह सब नही करेंगे तो किसके सामने करेंगे ?"

यह कह कर ओतमचन्द अन्दर के कमरे की ओर जाते हुए बोला :

"लाओ गठरी खोलकर बच्चे का तकाज़ा पूरा करूँ ।"

"गठरी तो मैने संभाल कर रख दी है ।" लाडकोर ने कहा ।

"कहाँ ?"

"धीरे बोलो, धीरे !" पति से यह कह कर लाडकोर ने बहुत ही धीरे से ओतमचन्द के कान में कहा : "पटारे में।"

और कोई समय होता तो ओतमचन्द सुनते ही खिलखिला कर हंस पडता। लेकिन आज की नाजुक परिस्थिति में वह पत्नी को इतनी जल्दी आघात पहुँचाना नहीं चाहता था। उसने गम्भीरता के साथ चाभियों का गुच्छा लाडकोर से ले लिया और अन्दर जाकर गठरी में से चुपचाप 'माल' निकाल लाया।

"यह ले पी-पी !" वीजल की दी हुई बंसी बटुक के हाथ मे देते हुए ओतमचन्द ने कहा।

बंसी में फूंक मारते ही बटुक उसकी आवाज़ सुनकर नाच उठा।

"बंसी किसने भेजी बेटा, बता तो ?" लाडकोर अपने मैके से आयी हुई इस अनमोल भेंट के प्रेषक का नाम पुत्र के मन में पक्का कर देना चाहती थी।

लेकिन वह खिलांदड़ा लड़का नयी मिली बाँसुरी बजाने में इतना मगन हो रहा था कि माँ की इस बात को उसने सुनकर भी नहीं सुना।

"बाँसरी किसने भेजी बेटा, बता तो ?" और माँ ने जैसे तय कर लिया था कि वह पुत्र के मुँह से बंसी भेजने वाले का नाम सुन कर ही रहेगी।

इस बार भी जब बटुक ने बंसी की सौगात भेजने वाले का ऋण स्वीकार करने की चिन्ता न की तो ओतमचन्द को ही उसे यह सुझाना पड़ा :

"कह दे बेटा कि मामा के लड़के बालू भाई ने बाँसुरी भेजी……"

"मामा के बालू भाई ने भेजी……" पिता की सिखायी हुई तोता रटन्त को जब पुत्र ने यन्त्रवत् दुहरा दिया तो माता की खुशी का पार न रहा।

लेकिन लाडकोर को एक ही बार सुन कर सन्तोष नहीं हुआ। बंसी की धुन में मस्त बेटे के मुँह से उसने बार-बार और जबरदस्ती इन वाक्यों को कहलवाया :

"मामा ने बाँसुरी भेजी········"

"मामा ने खिलौने भेजे ·····"

और पुत्र के मुँह से निकले हर वाक्य के अन्त में माता 'मेरा दकु भाई !' 'मेरा दकु भाई !' कहकर अपने भाई की उदारता के प्रति धन्य होती रही; और साथ ही इस विचार से प्रसन्न भी कि खिलौने के साथ उस उदार हृदय भाई ने नकद पैसा भी जाने कितना भेजा है ! पटारे में छिपाकर रखी हुई वह गठरी तो रात में, गली में स्याहा पड़ जाने के बाद ही खोली जा सकेगी और तभी पता चलेगा। अभी तो वह केवल मीठी कल्पनाओं का ही आनन्द ले सकती थी और ले रही थी।

× × ×

खिलौना प्रकरण समाप्त हो जाने के बाद ही लाडकोर को पति से बातें करने का अवकाश मिला। दुपहर को पति के लिए रसोई-घर में थाली परोसते हुए उसने कहा :

"आपने तो ईश्वरिया में बहुत दिन लगा दिये !"

प्रत्युत्तर में ओतमचन्द एक व्यंग्य भरी हँसी हँस कर रह गया।

"मैं रोज़ सबेरे दाल-भात चढ़ाने से पहले आपका रास्ता देखा करती। बटुक तो ठेठ गाँव के गोहड़े जा खड़ा होता और आखिर मे थक कर लौट आता।"

"मुझे भी लगता था कि तुम लोग मेरा रास्ता देख रहे होंगे।" ओतमचन्द ने अब बोलना जरूरी समझा : "लेकिन तुम्हारा दकुभाई मुझे आने ही नहीं देता था।"

"मेरा दकुभाई !" लाडकोर ने बड़े गर्व के साथ कहा।

"रोज़ सबेरे उठकर वाघणिया लौटने की तैयारी करता और दकु भाई सौगन्ध देकर रोक लेते····· "

"मेरा दकु भाई।"

"कल सबेरे तो मैं सचमुच कन्धे पर चादर डालकर निकल पड़ा,

लेकिन दकु भाई दरवाजा रोक कर खडे हो गये और बोले कि जाने वाले को जो सबसे प्यारा उसकी सौगन्ध ।"

"मेरा दकु भाई ।"

"लगे मनुहार करने कि आये हो तो आठेक दिन तो रहो ।"

"मेरा दकुभाई !" पति के हर वाक्य के अन्त में पत्नी दकुभाई का प्रशस्ति वाचन कर रही थी ।

"आज भी सबेरे चलने को हुआ तो दकु भाई दरवाज़ा रोक कर खड़े हो गये......"

"मेरा दकु भाई पाहुनाचार और व्यवहार निभाने में किसी से कम नही है ।"

"लेकिन मैंने जोर देकर कहा कि आज तो जाना ही होगा तो दकु भाई बेचारे दुःखी हो गये । जब लाचार हो गये तभी मुझे विदा किया और वह भी बे-मन से ......साथ में गुड़ पपड़ी और तिल-मुट्ठी की यह मिठाई भी आग्रह पूर्वक रख दी ।" मेंगणी से अहीरिन ने जो खाद्य पदार्थ साथ दिये थे लाडकोर ने उन्हें भी थाली में परोस दिया था ।

"मेरा दकु भाई ।" पति के हर वाक्य पर पत्नी की भ्रातृ-स्तुति बढ़ती जाती थी : "भौजाई ठहरी पराये घर की लड़की, बुरी हो सकती है, मगर भाई तो मेरा सगा, सहोदर, माँ का जाया है, वह बहिन-भानजों को कैसे भूल सकता है......"

"रहने दो, रहने दो, बस करो ।" पति के इन शब्दों को सुन कर लाडकोर चौंक पड़ी । ये किस बारे में बस करने को कह रहे है—दकुभाई के गुण-गान के बारे में तो नहीं ? लाडकोर अभी सोच ही रही थी कि ओतमचन्द ने स्पष्टीकरण किया : "अब और रोटी नहीं खा सकता, बस करो......"

"वाह, इतने में ही पेट भर गया ?" लाडकोर ने पूछा ।

"हाँ, अब और नहीं चल सकता ।"

"अभी आपने खाया ही क्या है ? और फिर आज तो इतना पैदल चल कर आये हैं, खूब कड़ाके की भूख लगना चाहिये, उसके बदले...."

"आज तो बिलकुल ही भूख नहीं लगी, केवल बैठने के खातिर बैठ गया······"

"क्या बात है, भूख क्यों नहीं लगी ?" पत्नी ने प्रेम भरे स्वर में जिरह शुरू की।

"दकु भाई ने इतना माल-ताल खिलाया है और वह भी ठूँस-ठूँस कर कि अपनी तो खाने-पीने की पूरी महीने की छुट्टी समझो······"

ओतमचन्द ने यह बात हँस कर और हँसी में ही कही थी, परन्तु भोली लाडकोर ने उसे गम्भीरता से लेकर सच मान लिया। और भाई की उस बहिन ने फिर बिरुदावली गाना शुरू किया :

"मेरा दकु भाई ! स्वागत सत्कार में वह किसी से पीछे रहने वाला नहीं है।"

"और स्वागत सत्कार भी कैसा ? बड़े-बड़े राजे-रजवाड़ों में भी देखने को न मिलेगा !" ओतमचन्द ने विस्तार में बताना शुरू किया : "एक समय पूरन पोली तो दूसरे समय पक्वान्न······एक दिन खीर तो दूसरे दिन बसौंधी ·······एक बार·········"

"मेरा दकु भाई। मैं कहती न थी कि कैसा भी क्यों न हो आखिर तो मेरा सगा भाई है ! आप ईश्वरिया जाते बेकार ही हिचकिचा रहे थे।"

"ईश्वरिया में तो दकुभाई ने रियासत ही खड़ी कर दी है। उनके घर की शान-शौकत के आगे अच्छे-अच्छे राजाओं के महल और दीवान खाने भी पानी भरते हैं ! वाह, क्या ठाठ से घर सजाया है······"

"मेरा दकु भाई ! मोलमीन जाने से उसके दिन फिरे तो देखो सब बातों का कैसा सुख हो गया !"

दकु भाई की तारीफ सुन-सुन कर लाडकोर फूली नहीं समा रही थी। ओतमचन्द ने और पुल बाँधे :

"और दकु भाई के घर के साज-सामान का मैं क्या बयान करूँ ! यों समझो कि बड़े लाट साहब के बंगले में भी न होगा······"

"सच्ची ?"

"हाँ ! मोलमीन से गाड़ियों माल लाये हैं... ...कमाल की कारीगरी है !......देख कर अक्ल हैरान रह जाती है !......क्या देखें और क्या न देखें ?......किसी चीज़ पर आँखें ठहर नहीं पातीं ।"

"मेरा दकु भाई ! भगवान ने उसकी सुन ली और अच्छे दिन आये ।..... हमारे यहाँ पड़ा रहता तो उमर-भर गुमाश्ते से मुनीम न बन पाता बेचारा !"

"मैं तो इतने दिन, यों समझो कि ईश्वरिया के बदले सातवें स्वर्ग में ही पहुँच गया था ।" ओतमचन्द ने श्लेष में कहा और फिर बोला : "सच तो यह है कि दकु भाई के घर-जैसी सुख-सुविधा और वहाँ का ठाठ-बाट स्वर्ग में भी न होगा ।"

"कहाँ से होने लगा ! दकु भाई ने कितनी तकलीफ़े उठायी हैं तब आज का दिन और ठाट-बाट देखने को मिला है ।"

"लेकिन एक बात कहनी पड़ेगी—इतनी धन-सम्पदा पाकर भी दकु भाई को घमण्ड तो जैसे छू भी नहीं गया !" ओतमचन्द ने अपने से ही यह बिन माँगा प्रमाण पत्र दे दिया ।

"इन्सानियत और कहते किसे हैं ?" लाडकोर ने समर्थन किया : "आम और बबूल में इतना ही तो फर्क है—बबूल हमेशा ऊँचा और ऊँचा उठता जाता है; और आम में जैसे-जैसे फल आते है वह नीचा और नीचा झुकता जाता है ।"

"मैं भी यही कह रहा था कि दकु भाई ने ऐसा स्वागत-सत्कार और पाहुनाचार किया कि मैं सब-कुछ भूल गया ।"

"मुझे भी ?" लाडकोर ने कटाक्षपूर्वक हँसते हुए पूछा ।

सुनकर ओतमचन्द को भी हंसी आ गयी । प्रौढ़ दम्पत्ति की दो जोड़ा आँखें नैन-सैन की क्रीड़ा में रत हो गयीं, लेकिन दूसरे ही क्षण दोनों की निगाहें अपने पुत्र पर जा टिकीं ।

"सभी कुछ भूल गया था; लेकिन बटुक की याद आ गयीं और मैं लौट आया ।" ओतमचन्द ने बातचीत खत्म करते हुए कहा ; "बाकी,

दकुभाई की आवभगत से यहाँ गले तक पेट भर गया है और अब छह महीनों तक अपने राम को तो भूख लगने की नहीं !"

"ओह मेरा दकुभाई !" लाडकोर ने अन्तिम बार अपने प्यारे भाई का प्रशस्ति-वाचन किया ।

× × × ×

पकाने-खाने और चौके-चूल्हे मे निबटने के बाद लाडकोर शाम होने का इन्तज़ार करने लगी । दकुभाई के यहां से जो नकद रुपये आये थे उसका पता तो अब रात मे ही चल सकता था । ओतमचन्द खा-पीकर सीधा दुकान चला गया था । अब तो यह प्रतीक्षा की जा रही थी कि कब शाम हो और कब पति ब्यालू के लिए घर लौटे ।

लाडकोर को आज का दिन सबसे लम्बा लग रहा था—किसी तरह शाम हो ही नहीं रही थी । एक बार तो मन में आया कि पति का रास्ता देखे बिना ही खुद पटारे में की गठरी खोलकर देखले कि वहां से कितना रुपया बांध लाये हैं ! लेकिन दाम्पत्य के कुछ अलिखित विधि विधान ने उसके इस कुतूहल पर अंकुश लगा दिया । "कोई बात नहीं; थोडी देर रास्ता देख ही लूंगी तो क्या बिगड़ जायेगा ?"—यह सोचकर उसने पति की प्रतीक्षा करना ही ठीक समझा ।

आखिर रात हुई !

पति के पाँव दबाते समय ही सुख-दु.ख की बातें करने की लाडकोर की आदत थी । आज भी हमेशा की तरह पति के पांव दबाते हुए, बातचीत के दौरान उसने ओतमचन्द से अनुमति मॉगी :

"पटारा खोलूं ?"

सुनकर ओतमचन्द कांप उठा । दुपहर से अभी तक जिस रहस्य को इतने प्रयत्न से छिपाये रखा था वह अब प्रकट हो जायेगा ! और सारी बातों मे तो पत्नी को मीठा भुलावा देने में वह पूरी तरह सफल हुआ था, लेकिन गठरी के बारे में उसे अब अधिक समय तक भुलावे में रखना मुश्किल ही था ।

वह पटारा खोलने के पत्नी के औपचारिक प्रश्न का कोई जवाब

न दे सका। लाडकोर ने उसके मौन को ही अनुमति समझा और वह पटारा खोलने के लिए उठ गयी !

पटारे में थोड़ी देर तक इधर से-उधर हाथ चलाते रहने के बाद लाडकोर बोल उठी :

"गठरी तो किसी ने खोल डाली है।"

"मैंने ही खोली है।" ओतमचन्द ने जवाब दिया।

"ओह, अब समझी !" लाडकोर हसती हुई लौट आयी और बोली : "मुझे छकाने के ही लिए तुमने यह सब किया है क्यो ?"

ओतमचन्द ने मन-ही-मन कहा, 'हाँ, तुम्हें छकाने, बल्कि धोखा देने के ही लिए तो यह सब लीला करनी पड़ी है मुझे।'

"गठरी मे क्या था, अब जल्दी से बता तो दो !"

"कुछ भी नहीं।" ओतमचन्द ने पहली ही बार सच-सच कहा।"

"कुछ नही कैसे ? मैंने अपने हाथों गठरी को पटारे में रखा था और इस समय तो केवल बांधने वाला कपड़ा ही पड़ा है और सो भी खुला हुआ।"

"गठरी में केवल खिलौने और मिठाई थी।"

"और कुछ नहीं था ?"

'नही, और कुछ नहीं था।"

सुनकर लाडकोर सन्न रह गयी। लेकिन उसकी प्रचण्ड आशा इतनी आसानी से हार मानने वाली नहीं थी। बोली :

"हां, मैं समझ गयी ! रुपया सब अंगरखे की जेब में रख लिया होगा, क्यों सच है न ?"

"नहीं, अंगरखे की जेबें भी खाली हैं।" ओतमचन्द ने जवाब दिया।

'मेरे दकुभाई ने क्या कुछ भी नही दिया ?" लाडकोर ने सांस रोककर पूछा।

"दकुभाई बेचारे ने तो बहुत कुछ दिया था........"ओतमचन्द ने फिर झूठ का सहारा लिया।

'दिया था तो गया कहा ?" लाडकोर ने पूछा।

"हमारी किस्मत मे नही था।"

"मतलब ? क्या हुआ, ठीक से समझाकर कहो।"

"बात यह हुई कि ईश्वरिया से तो दकुभाई ने इतना दिया कि हमारी सारी मुसीबतें हल हो जाती, मगर………"

"मगर क्या हुआ ? जल्दी बताओ; मेरा तो जी घबराने लगा है।"

"मगर उस गाँव मे चोर-उचक्को की आबादी ज्यादा होने से किसी भेदिये जानकार को शायद टोह लग गयी ……."

"हाँ, ईश्वरिया के आयर (अहीर) मुए साक्षात् जम के दूत हैं………दिन दहाड़े जान ले लेते हैं ……"

"उन्हीं में से किसी भेदिये जानकार को जर जोखिम की मनक पड़ गयी होगी।" ओतमचन्द ने पत्नी को समझाते हुए कहा : "मैं रुपयों की थैली लेकर वाघणिया आने के लिए निकला और रास्ते में नदी किनारे थोड़ा-सा सुस्ताने को बैठा हीं था कि किसी ने पीछे से आकर मेरी गरदन पकड़ ली………"

"सत्यानाश हो जाये उस मुए का………"

"गरदन पकड़ कर बोला, जो भी माल-मता है रख दे निकाल कर………'

"हाय ! हाय ! फिर क्या हुआ ?"

"उसने धौल-धप्पे भी जमाये………लेकिन क्या मैं बटुक जैसा छोटा बच्चा हूँ कि डर कर रुपये उन्हें सौंप देता ?"

"हाँ, कैसे सौंप देते !"

"मैं बराबर इनकार करता रहा कि मेरे पास कुछ नहीं है…लेकिन भेदिये को पक्का शक हो गया था इसलिए वह डण्डा खीचकर लगा मुझे पीटने ……."

"राच्छस ! हत्यारा !! मुआ मर जाये !!!" लाडकोर ने लुटेरे को गालियां सुनाकर पति से पूछा : "सच, तुमको डण्डे से मारा ?"

"विश्वास न आता हो तो यह देखो मेरी पीठ—मार के नीले

निशान दिखायी देते हैं न ?" आंतमचन्द ने पीठ उसकी ओर करके लाठी-प्रहार के निशान दिखाये।

मीठे तेल के मिट्टी के दीये के मन्द उजाले में पति की पीठ पर मार के उभरे हुए टेढ़े-तिरछे नीले निशान और खरोच देखकर लाडकोर के मुँह से चीख निकल गयी :

"हाय, हाय ! मुए जमदूत ने बहुत बेदर्दी से मारा है ! सारी पीठ उधेड़कर रख दी कसाई ने। सत्यानाश हो जाये उसका !"

"बेभाव की मार खाकर मैं तो बेहोश होकर गिर पड़ा और वह जबर पैसा-टका छीन, मुझे हाथ-पैर से हलका कर चलता बना......"

सुनकर लाडकोर स्तब्ध रह गयी। फिर पति का सर्वस्व लूटने वाले अदृश्य शत्रु को सम्बोधित कर धीरे-धीरे सरापने लगी :

"पापी अन्धा हो जाये ...... कोढ़ फूटे हत्यारे के.........बदन मे कीड़े पड़ें.........हमारा निवाला छीनने वाले का जड़ोमूल से सत्यानाश हो जाये.........नरक में भीः ठौर न मिले राच्छस को !"

'बेचारे को अब गालियाँ देकर बेकार अपने सिर पाप क्यों चढ़ाती हो ?"

"गालियाँ न दूँ तो क्या गोपीचन्दन चढ़ाऊं ? राम करे, उस हत्यारे की सातों पीढ़ी नरक मे जाएं।"

"दाने-दाने पर खाने वाले का नाम लिखा होता है। दकुभाई ने जो दिया वह हमारे भाग्य का न होगा, उस भेदिये की ही तकदीर में लिखा होगा, वह ले गया—यही समझकर सन्तोष करो।" पति ने लाडकोर को दिलासा दिया।

लेकिन लाडकोर का सन्ताप इस तरह के वाक्यो से मिट नहीं सकता था। वह अफसोस करती रही :

"हे भगवान !.........तुम्हारा जाना बेकार हो गया.........उस ब्राह्मण की तरह हमारे हाथ मे तो वही तीन-के-तीन कटोरे रहे......"

"इसीलिए तो मैं कह रहा था कि परायी आशा करना बेकार है। दूसरों का दिया कितने दिन चलता है और दूसरो के अलाव पर तापना

कितनी देर ठण्ड उड़ाता है ?" ओतमचन्द ने पत्नी को दिलासा देने के लिए फिर उन्हीं सूत्रों का सहारा लिया जिन्हें ईश्वरिया जाने से पहले उसने दलील के रूप में पेश किया था।" इस संसार-सागर में तो सभी को अपने-अपने तुम्बों के ही सहारे तैरना होता है......समझी न?"

लेकिन ओतमचन्द ने जितनी आसानी से दकुमाई द्वारा किये गये अपमान को सह लिया था, लाडकोर उतनी आसानी से इस कपोल कल्पित वर्णन का आघात न सह सकी। सारी रात और सवेरा होने तक उसका व्यथित हृदय तीव्र वेदना से कसकता और पीड़ित होता रहा। नदी किनारे ढोर की तरह पिटाई हुई थी ओतमचन्द की, लेकिन पीड़ा हो रही थी लाडकोर को; चोट के नीले निशान उभरे हुए थे ओतमचन्द की पीठ पर, लेकिन उसकी कसक उठ रही थी लाडकोर के कलेजे में !

उसने पति से पूछा : "पीठ की सिकाई कर दूं ?"

"नहीं ! ऐसी कहां लगी है कि सिकाई करना पड़े !" ओतमचन्द ने बात हंसी में उड़ादी।

"तुम भी कैसे चुप्पे हो कि सवेरे के आये और मुझे अभी तक नही बताया !"

"बता देता तो तुम नाहक बैठी अपना जी जलाया करती !"

लेकिन पत्नी का जी तो फिर भी जलता ही रहा और वह जलन उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। वह सारी रात बेचैनी से बिताने के बाद दूसरे दिन सवेरे मेंगणी से कपूर सेठ का जो पत्र आया वह अनेक रातों की वेचैनी और जी की जलन का कारण हो गया।

उस पत्र में कपूर सेठ ने नरोत्तम के साथ चम्पा की सगाई को बाकायदा रद्द करने के पक्के समाचार लिखे थे।

२०

कामदार नहीं, कंघीवाला

"मोटे, ज़रा-सी बात के लिए इतना परेशान क्यों हो रहा है? हिम्मत से काम ले, हिम्मत से……यह तो ऐसे ही चलता है……दुनिया और कहते किसे हैं!…………कभी सुख, कभी दुःख और फिर सुख आता है। समझा पगले? दिल को कड़ा करना भी आना चाहिए, मेरे भाई!"

सारा दिन काम करने के बाद नरोत्तम रात में कीला की कोठरी पर आया तो उसे वाघणिया से बड़े भाई का पत्र मिला। सगाई टूटने के समाचार पढ़कर नरोत्तम हताश हो गया तो कीलाभाई उसे हिम्मत बँधाने लगा।

"मोटे, यों मुर्दार की तरह ढीला-ढाला क्या बैठा है?" घनिष्ठता हो जाने के बाद से कीला उम्र में छोटे इस साथी को दुलार से 'मोटा (बड़ा)' कहकर पुकारने लगा था।

लगातार दिलासा देते रहने पर भी जब नरोत्तम मुँह लटकाये चुप्पा बना रहा तो कीला भाई ने अपनी आदत के अनुसार लगती-चुभती बातें कहना शुरू कर दिया:

"अबे, तू मर्द है या औरत? यों राँड की तरह सिर पर हाथ देकर क्या बैठ गया? औरत से शादी करना ऐसी कौन बड़ी बात है! कल सवेरे तेरी सगाई और शादी दोनों करवा दूँगा……" यह कहकर कीला ने अपनी आदत के अनुसार आप अपनी तारीफ के पुल

बांधना शुरू किया : "मुझे नहीं जानता ? कौन हूँ मैं ? मैं, कीला कंघी वाला।"

लेकिन 'कघी वाले' की यह विरुदावली भी जब सन्तप्त नरोत्तम को सान्त्वना न दे सकी तो कीला ने एक दूसरा ही नुस्खा आजमाने का विचार किया।

दूसरे दिन सवेरे कीला ने रोज से बहुत जल्दी उठकर चूल्हा जला दिया तो नरोत्तम को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने इतने जल्दी उठने का कारण पूछा तो कीला ने संक्षिप्त-सा उत्तर दे दिया :

"आज हम उपासरे* जायँगे।"

"उपासरे ?" नरोत्तम को और भी आश्चर्य हुआ। इतने दिन कोठरी में साथ रहते हो गये थे, लेकिन कीला ने पहले कभी उपासरे का नाम नही लिया था।

"क्यों, धर्मस्थान में जाने में तुझे कोई एतराज है ?" कीला ने पूछा।

"नही तो, मुझे क्या एतराज हो सकता है ?"

"तब ठीक है। धर्म के दो शब्द कानों में पड़ेंगे तो काया का उद्धार हो ज़ायेगा।"

"हो ही जाने दो तब तो।" नरोत्तम ने लापरवाही से कहा।

"उपासरे में बालब्रह्मचारिणी मीठीबाई स्वामी बिराजती हैं…राजकोट के धन्य भाग कि इस चौमासे (चातुर्मास) में यहाँ इतनी बडी आर्या पधारीं। उनके तो दर्शन ही हमारे-जैसे अधर्मों को तारने वाले है।" कीला साध्वीजी का गुणगान नरोत्तम से अधिक अपने को ही सुना रहा था : "रोज सवेरे बखाण† बैठते हैं………और कैवल्य ज्ञानी मीठीबाई स्वामी के मुँह से मानों अमृत बरसने लगता है। ऐसी देववाणी सुनने के लिए दूर-दूर से श्रावक श्राविकाएँ‡ आते हैं।

---

* उपाश्रय अथवा चैत्य, जहाँ जैन साधु और साध्वियाँ रहते तथा प्रवचन भी करते है।

† व्याख्यान या प्रवचन, जो जैन साधु-साध्वियाँ करते हैं।

‡ जैन धर्मानुयायी स्त्री-पुरुष। —अनु०

इस गुणगान के प्रति नरोत्तम उदासीन ही रहा, लेकिन कीला का उत्साह जरा भी कम न हुआ, उसने अपना सम्भाषण जारी रखा :

"बहुत कम उम्र होते हुए भी आर्या कितने कठिन परिषह* का पालन करती हैं। संसार का परित्याग कर स्वयं तर गयी और अब हमारे-जैसे संसारी जीवों को तार रही है...... ..मीठीबाई जरूर पिछले जनम की पुण्यात्मा रहीं होंगी, नही तो इस उम्र मे, जो सांसारिक सुखोपभोग की उम्र है, यों पचमुष्टि लोच‡ करके साध्वी बन सकती थीं भला ?"

कीला के इस तरह के सम्बद्ध और असम्बद्ध आत्म-सम्भाषणों का नरोत्तम इतना अभ्यस्त हो चुका था कि उसने इस साध्वी प्रकरण से सम्बन्धित प्रलाप की ओर विशेष ध्यान देना जरूरी नहीं समझा, केवल कुतूहल पूर्वक चुपचाप सुनता रहा।

"मोटे, जल्दी से तैयार हो जा। बखाण में ठीक समय पर हम लोगों को पहुँच जाना चाहिए ......आठ बजे तक तो पूरा उपासरा श्रावक-श्राविकाओं से खचाखच भर जाता है। बड़े-बड़े अफसर, सेठ-साहूकार और राजे-महाराजे तक बखाण में आते हैं, इसलिए देर से पहुँचने वालों को खड़े रहने की भी जगह नहीं मिलती।"

"सच ?" नरोत्तम ने पहली बार दिलचस्पी जाहिर की।

"चीखलिया के ठाकुर हाथीया वाले महाराज शुरू से आखिर तक हाजिर रहते हैं। मीठीबाई स्वामी की अमृत-वाणी अभी सुनी नहीं है, इसलिए तुझे इतना अचरज हो रहा है। यों समझ ले कि समोसरण* में स्वयं वीर प्रभु देशना (उपदेश) दे रहे हैं। इस पंचम-काल‡ में ऐसी पुण्यात्मा के दर्शन-मात्र से सारे पातक धुल जाते हैं।"

---

* परिषह—स्वाभाविक और प्रकृत कायिक और मानसिक कष्टों को स्वेच्छा से तप के रूप में सहन करना। जैन धर्माचरण में कुल २२ परिषह कहे गये हैं : क्षुधा परिषह, तृषा परिषह, नग्नता परिषह आदि।

‡ सिर के केशों का लुंचन करके दीक्षा लेना।

दोनों दोस्त कोठरी से निकलकर जब तक उपाश्रय नहीं पहुँच गये कीला का मुँह बन्द नहीं हुआ। वह रास्ते-भर मीठीबाई स्वामी का प्रशस्ति-गान करता रहा।

"मीठीबाई को तो बचपन मे ही खारे समुद्र जैसे इस संसार की निस्सारता समझ मे आ गयी थी ... पिता के घर के सुख-चैन और धन-सम्पदा से मुँह मोड़ उन्होने साध्वी जीवन का कठोर व्रत अंगीकार कर लिया ... .चतुर्थ काल* की कोई सत्कर्मी आत्मा रही होगी जिसने इस अवनति काल* में कर्मो के क्षय के लिए संसार का परित्याग कर दिया........"

राजकोट के राजमार्ग पर कीला इतने जोर-जोर से बक-बक करता जाता था, कि नरोत्तम को थोड़ा क्षोभ होने लगा था। अब उसे साध्वी की बातें सुनकर कुतूहल के बदले भय होने लगा था। कीला भाई मुझे वहाँ क्यों ले जा रहा है? क्या ससार की असारता समझाकर मुझे भी साधु जीवन की दीक्षा दिलाना तो नहीं चाहता?

रास्ते में कीला को कई परिचित मिलते जा रहे थे। बातूनी कीला सभी से ऊँची आवाज मे बतियाता जाता था! "क्यों अदा, मजे मे तो हो?" "कैसे हो काका? इस समय किधर?" कीला किसी से

---

* समवशरण-उपदेष्टा तीर्थङ्करों के धर्मोपदेश की सभा जिसमें सभी को समान रूप स शरण (या स्थान) मिलती है।

‡ जैन आगमों के अनुसार काल-विभाजन जो मुख्यत: उन्नति अथवा उत्सर्पिणी और अवनति अथवा अवसर्पिणी नामक दो खण्डों मे विभक्त है। प्रत्येक के छह् काल होते है। अवनति काल में क्रम से (१) सुषमा-सुषमा (२) सुषमा (३) सुषमा-दुषमा (४) दुषमा-सुषमा (५) दुषमा और, (६) दुषमा-दुषमा ये छह् काल हैं। इस हिसाब से चतुर्थ काल दुषमा-सुषमा यानी जिसमें मुक्ति प्राप्त की जा सके और पंचम काल दुषमा यानी बुरा समय है। वर्तमान काल पचमकाल है।

—अनु०

'राम-राम' तो किसी से 'जैसीकरसन' कहता और फिर नरोत्तम के कान मे जय श्रीकृष्ण' के अपभ्रंश 'जेठी खतरन' का उच्चारण कर उसे बताता : 'हमारे गाँव के नभा रगरेज की औरत जेठी खतरन को इस समय सबेरे-सवेरे याद करना पड़ रहा है, मजबूरी है !' इसी तरह किसी परिचित मुसलमान से 'मलामालेकु' कहकर नरोत्तम के कान मे 'मारसालेकू' कहता हुआ खिलखिला उठता था ।

एक परिचित पान वाले पर कीला ने फब्ती कसी : "अबे ओ ! सवेरे-सबेरे अपना कुब्जा-जैसा टेढ़ा मुँह क्यों दिखा रहा है ? क्या मेरा सारा ही दिन बिगाड़ने का इरादा है ?"

एक ठेले वाले ने, जिसका कीला से हंसी-मजाक का रिश्ता था, मजाक में पूछा :

"क्यो उस्ताद, सवेरे-सबेरे क्या बेचने निकले हो ?"

"अपने-आपको ही बेचने निकला हूँ, लेकिन कोई खरीददार मिलता नही । इस कीला की काया साढ़े तीन मन की है, मगर कोई साढ़े तीन पैसे मे भी पूछने वाला नहीं ।"

प्रश्नकर्त्ता का मुँह बन्द कर कीला ने नरोत्तम से गम्भीरता-पूर्वक कहा :

"यह भी कितनी अजीब बात है मोटे, कि हर जानवर का पैसा उठता है, केवल आदमी का पैसा नहीं उठता । मीठी बाई स्वामी अपने व्याख्यान में कहती हैं, लेकिन मैं तो आंखों से देख रहा हूँ कि आदमी-जैसा सस्ता जानवर कोई नही ।"

कीला की इस आघातजनक दार्शनिकता को पचाने की स्थिति में नरोत्तम था नही, इसलिए चुप सुनता रहा ।

कीला ने अपने कथन को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण का सहारा लिया :

"मोटे, लगता है कि तू अभी समझा नही । बकरों और पंड़वो के पाँच-दस रुपये मिल जाते है; हाथी जिन्दा तो लाख का और मर गया

तो सवा लाख का, लेकिन आदमी की कीमत कानी-कौडी भी नहीं उप-जती । मरने के साथ ही तुरन्त उसकी राख हो जाती है…… …"

और दूसरे ही क्षण कीला अर्थशास्त्र से एकदम वैराग्य शास्त्र पर आ गया :

"मोटे, हम कितना ही मोह-ममत्व करें, अभिमान-अहंकार करें, मगर 'यह काया तो काँच का टुकड़ा चोट लगे टूटि जाना है……' मीठी बाई स्वामी उदाहरण देंगी तब तेरी समझ मे आयगा कि हाड-चाम के इस पिंजरे से अधिक मोह करना अच्छा नहीं ।"

नरोत्तम घबरा उठा कि कहीं कीला भाई मुझे अभी ही भभूत न रमवा दे !

आज नरोत्तम को कीला की मन:स्थिति बड़ी विचित्र और रहस्या-त्मक लग रही थी । विरक्ति और अनासक्ति की बातों की ओट में उसके मन में कौन-से विचार उमड़-घुमड़ रहे थे, यह पता लगाना मुश्किल था । रास्ते में मिलने वाले परिचितों से टिठोली कर कीला सहसा खिलखिला उठता था, लेकिन उस समय भी उसकी आँखो मे गहन विषाद बराबर लहरा रहा होता था । बाहर से प्रसन्न और लापरवाह दिखायी देने वाले इस व्यक्ति के अन्तरतम मे ऐसी कौन-सी वेदना बैठी हुई थी ? उसकी उन्मुक्त हँसी के पीछे आंसुओं की कौन-सी विषाद-कथा छिपी हुई थी ? या रुदन और हास्य उसके जीवन का ताना-बाना ही हो गये थे ?…… इतने दिन लगातार साथ रहने के बाद भी नरोत्तम को इस समय अपना यह साथी सर्वथा अपरिचित लग रहा था ।

× × ×

दोनों दोस्तों ने उपाश्रय पहुँचने की जल्दी तो बहुत की, लेकिन देर हो ही गयी । इतने सबेरे भी व्याख्यान-गृह श्रोताओं से खचाखच भर गया था । प्रवेश द्वार के पास जूतों का खासा ढेर लग गया था । यह देखकर कीला ने नरोत्तम से कहा :

"अपने भाग्य में तो जूते ही लिखे हैं !"

इस बात पर सन्तप्त नरोत्तम को खिन्न हँसी-हँसते देख कीला ने अपने कथन को एक नया ही अर्थ दे दिया :

'इतनी बड़ी बिरादरी के जूते भी किसके भाग्य में ! ऐसे जूतों की धूल ही माथे चढा लें तो पवित्र हो जायें, समझ गया मोटे ?"

और इस चुभते व्यंग्य के बाद, नगे पांव खड़ा कीला, जूतों के उस ढेर की ओर देखता हुआ दार्शनिक की तरह मुस्कराता रहा ।

"इनमे मीठी बाई स्वामी कौन हैं ?" नरोत्तम ने पूछा ।

"पहचाना नही ? देख, वे, जो सबसे आगे, चौकी पर बैठी पोथी बाँच रही हैं न, वे ही हैं—उनके आस-पास दूसरी आचार्या बैठी है ।" और कीला फिर उस साध्वी का गुण-गान करने लगा . "दूसरी आचार्या जैसी भी हों—संसार त्यागी साधु-साध्वी तो हमारे प्रणम्य ही है—लेकिन मीठी बाई स्वामी के मुकाबले कोई नही । देखता नहीं, धर्म की बात कहती हैं तो मुँह से फूल झड़ते हैं, फूल !"

नरोत्तम ने आँखें फाड़ कर देखा तो फूल के बदले सामने पीठ किये श्रोताओं के बड़े-बड़े पग्गड़ दिखायी दे रहे थे ।

"सबसे आगे, व्यास पीठ के पाये के पास बैठे हैं हाथिया वाले ठाकुर......" कीला पैनी नजरों से देखता हुआ उपस्थित श्रोताओ का परिचय देने लगा : "उनकी बगल में बैठे हैं विक्रमगढ़ के कारभारी...... इस ओर पीठड़िया के दीवान.........उस ओर की पाँत में पेंच वाली चकरी पगड़ी बाँधे नगर सेठ मोतीशा......और बड़ी पगड़ियों वाला यह सारा समुदाय महाजन पंच है........."

नरोत्तम ने सम्भ्रमपूर्वक उस सारे समुदाय को देखा ।

कीला ने मानों उस भोले युवक की सम्मान भावना को चोट पहुँचाने के ही इरादे से आगे कहा :

"यहा उपासरे में ये सब बड़े-बड़े लोग बगुले के पंख-जैसी साफ-सफेद पगड़ियाँ बाँधे क्यों न बैठे रहें, मैं एक-एक की असलियत से खूब वाकिफ़ हूँ । इनकी पगड़ियाँ जितनी उजली मन उतने ही मैले है..... ...जिसकी पगड़ी में जितने बल और पेंच उसके पेट मे उतने ही छल और प्रपंच समझ ले, मोटे !"

आज कीला की एक भी बात नरोत्तम की समझ में नहीं आ रही थी। अभी थोड़ी देर पहले महाजन पंच की जूतियों की धूल से पवित्र होने की बात कह रहा था और अब उनके मन के मैल और पेट के छल परपंच की बात करने लगा। नरोत्तम समझ नहीं पा रहा था कि कीला जो कुछ कह रहा है गम्भीरता से कह रहा है या उसका समग्र जीवन और आचरण वर्तमान समाज पर एक तीखा व्यंग्य है ?

व्याख्यान सुनने के लिए आयी हुई बहु-संख्यक महिलाओं के कान भले ही साध्वीजी की ओर लगे हों उन सबकी आँखें इस समय कीला को ही देख रही थीं; इससे वह अकुलाकर बोल उठा :

"यह कैसी मुसीबत है !"

"क्यों, क्या हुआ ?" नरोत्तम ने चौंक कर पूछा।

"ये साड़ीवालियाँ सब-की-सब मुझी को आँखें फाड़े देख रही हैं। सबकी कलाइयों में मेरी ही पहनायी हुई चूड़ियाँ हैं। जमाना बदला तो औरतों ने पुराने ढग के भारी-भरकम चूड़े उतार कर मेरे हाथ से नये फैशन की चूड़ियाँ पहन लीं। इसीलिए तो सब इस कंघीवाले को पहचानती हैं........."

'क्यों न पहचानेंगी ! तुमने घर-घर घूम कर कंघियाँ भी तो बेची हैं।"

"पहचानती हैं सो ठीक है; लेकिन यहाँ धर्म स्थान में साध्वीजी के दर्शन करने के बदले यों बेशर्मी से मुझे ही दीदे फाड़ कर क्यों देख रही हैं !"

"तुम भी साधु-जैसे ही हो।" नरोत्तम ने मजाक किया।

"अबे, मैं साधु से सवाया हूँ। लेकिन संसार में रहता हूँ और मूंड मुड़ाकर भेख धारण नहीं किया इसलिए कोई खजूहा कुत्ता भी मुझे प्रणाम करने नहीं आता और ऐसी आचार्या की सभी वन्दना करने दौड़े जाते हैं।"

"तुम कीला भाई, ऐसे चतुर हो कि अपना मूंड मुड़ाने के बदले दूसरों को ही मूड़ लो !" नरोत्तम ने हंसते हुए धीरे से कहा : "मैं तो

डर रहा हूँ कि कहीं मेरा सिर मुड़ाकर संन्यासी बनाने के ही लिए मुझे इस उपासरे में खींच नहीं लाये हो !"

"नहीं तो।" कीला ने स्नेहपूर्वक कहा : "तेरी तो मुझे अभी शादी ब्याह सभी कुछ करना है·········देखना तो सही मोटे, इतने धूमधाम से तेरी शादी रचाऊँगा कि दुनिया देखती रह जायेगी ! तूने मुझे अभी पूरी तरह पहचाना नहीं·····मैं कौन ? मालूम है—कीला कंघी वाला !"

× × ×

"कहो कामदार ! आ गये ?" सफेद मूछों वाले एक बूढ़े ने कीला का कन्धा हिलाते हुए कहा।

नरोत्तम को आश्चर्य हुआ। कहना चाहिये कि एक साथ दुहरा आश्चर्य हुआ। एक तो उस विलक्षण चेहरे-मोहरे वाले बूढ़े को देखकर; और दूसरे, कंघी वाला के बदले 'कामदार' सम्बोधन का प्रयोग किये जाने पर ।

"न, न, न ! ऐसा मत कहो।" कीला ने उस बूढ़े को कुछ कठोरता के साथ कहा : "खबरदार, मुझे कीला कहा तो ! कंघी वाला कहो, कंघी वाला।"

"कंघी बेची तो क्या कामदार नहीं रहे ?" बूढ़ा मन्द-मन्द मुस्कराता हुआ बोला : "बाप दादों की सात पीढ़ियों से चली आती पदवी क्या यों एकदम भुलायी जा सकती है ?"

"न भूले तब भी मुझे तो भुलाना है।" कीला ने जवाब दिया : "सारी दुनिया मुझे कंघी वाला कह कर ही पुकारती है।"

"लेकिन मैं तो तुम्हें कामदार ही कहूँगा।" बूढ़े ने जिद की।

"अच्छी बात है, कहो; लेकिन यहाँ उपासरे में नहीं, कीला की कोठरी पर आकर कहो, फिर कोई एतराज नहीं।"

"तुम्हारी कोठरी पर भी आना ही होगा—कुछ ऐसा ही काम आ पड़ा है।"

"कोठरी नहीं, कीला का आनन्दाश्रम कहो !"

"अच्छा भई, आनन्दाश्रम ही सही : तुम्हारे आनन्दाश्रम मे मुझे आना ही होगा । कुछ ऐसी ही बात हो गयी है, तुम्हारी सलाह चाहिये··· बोलो, कब आऊँ ?"

"कीला का आनन्दाश्रम आठों पहर खुला रहता है—वहाँ के दरवाजे कभी बन्द नहीं होते ।" और कीला अपनी आदत के अनुसार खिलखिला कर हँस पड़ा ।

उसकी इस मुक्त हँसी ने उपासरे के गम्भीर-उदास वातावरण में खलल पैदा कर दिया । एक श्रावक, जो कुछ ज्यादा ही भक्त और भावुक था, जब्त न कर सका । उसने कीला को टोका :

"महासतीजी का बखाण सुनने के लिए आये हो या ही-ही खी-खी करने के लिए ? मन को दो घड़ी शान्त रख कर धरम की बात सुनलो तो आत्मा का उद्धार हो जाये ।"

सुनकर कीला पहले तो चुप हो गया । लेकिन फिर लगा भुनभुनाने : "हमारा तो कभी से उद्धार हो गया, भगवान के घर से ही अपना उद्धार करवा कर आये हैं ·····इस दुनिया में हम तो जाकड़ माल की तरह है······कोई खरीदार नही मिला तो बेचने की शर्त पर रखे हुए माल की तरह फिर असली मालिक के घर पहुँच जायेंगे·········धर्म की बात और उपदेश तुम्हीं जी भर कर सुनो । हमने जन्म लेकर कोई पाप ही नहीं किया, फिर धर्म करने की क्या जरूरत ? तुम बड़े धर्मात्मा और धर्म के सहारे बने हो तो हमारी ओर से जाओ स्वर्ग में, हमें कोई एतराज नहीं ।"

कीला की यह भुन-भुनाहट नरोत्तम सुनता रहा और उसकी परेशानी बढ़ती गयी ।

मीठी बाई स्वामी का प्रवचन-प्रवाह अजस्र रूप से चल रहा था । श्रोतागण भक्ति भाव से उनके वचनामृत का पान कर रहे थे । बातूनी कीला भी अन्त में चुप होकर किसी अद्‌भुत प्रेरणा से मीठी बाई स्वामी के चेहरे की ओर देखने लगा और तल्लीन हो गया ।

२१

मूक वेदना की मुस्कराहट

थोड़ी देर में कीला का मुँह जब एकबारगी ही बन्द हो गया तो नरोत्तम को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अपने साथी के चेहरे की ओर देखा तो उसका विस्मय और भी बढ़ गया। कीला चुप ही नहीं था उसके हँसमुख, लापरवाह चेहरे पर गजब की उदासी छा गयी थी। उसकी दृष्टि सैंकड़ों श्रोताओं के सिरों पर होती हुई साध्वी जी पर केन्द्रित हो गयी थी। उसकी उस निर्निमेष दृष्टि में कौन-सा भाव था?—अनुकम्पा, उपेक्षा, ईर्ष्या या उपालम्भ? उस दृष्टि को समझ पाना नरोत्तम-जैसे अनुभवहीन आदमी के बस की बात नहीं थी।

व्याख्यान समाप्त हुआ। श्रोतागण बिखरने लगे। लेकिन कीला अपनी जगह जमा बैठा रहा। व्यास-पीठ की ओर उसकी दृष्टि वैसी ही लगी रही।

नरोत्तम अत्यधिक आश्चर्य से थोड़ी देर कीला की ओर ताकता रहा, आखिर जब उसकी धीरज खूट गयी तो अपने साथी को विचार-तन्द्रा से जगाते हुए बोला :

'कीला भाई, चलो, अब घर चल।"

"महासती की वन्दना किये बिना ही?" समाधि से चौंककर कीला ने संक्षिप्त उत्तर दिया और फिर चुप हो गया।

उपाश्रय लगभग पूरा खाली हो गया और साध्वी जी के पास केवल दो-चार श्रद्धालु श्रावक-श्राविकायें खड़े रह गये तो कीला धीमी गति से आगे बढ़ा। 'यहाँ तक आ गये हैं और वन्दना किये बिना लौट जायेंगे

तो क्या पाप नहीं लगेगा ?' यों कहकर उसने नरोत्तम को भी अपने साथ ले लिया।

नरोत्तम इतना तो समझ ही गया कि कीला भाई उत्साह से आगे बढ़ रहे हैं, परन्तु साध्वीजी के सम्मुख जाते हुए संकोच हो रहा है, मानों पाँव काँप रहे हों।

कीला सीधे व्यास पीठ तक पहुँचने के बदले अधबीच ही दीवाल की ओट लेकर जब ठिठक गया तो नरोत्तम को फिर आश्चर्य हुआ।

"क्यों, वन्दना करने नहीं चलोगे क्या ?" उसने पूछा।

"धीरे बोलो, जरा धीरे !" कीला ने कुछ पग्गड़ धारी गृहस्थों की ओर इशारा करते हुए कहा : "पहले इन सभी धर्मधुरीणों को यहाँ से निकल जाने दे। बेचारों को हम से पहले मोक्ष पा जाने की जल्दी पड़ी है, इसलिए दो-दो चार-चार बार वन्दना कर रहे हैं।" और फिर अपनी आदत के अनुसार व्यंग्य कसा : "दगाबाज दूने नवें चीता, चोर, कमान !"

काफी देर तक चुप रहने के बाद कीला ने जो यह व्यंग्य का चाबुक फटकारा तो नरोत्तम के मन-प्राण किलक उठे। अब कीला अपने असली रंग में आ गया था।

जब धर्म के धुरीण चले गये तो महासती ने स्वयं ही कीला का स्वागत करते हुए कहा :

"आओ कामदार, आओ ! इतनी दूर क्यों खड़े हो ?"

"कामदार नहीं, कंघी वाला कहिये, महासतीजी !"

"कहा जायेगा मुझसे ? जबान से बोल भी पाऊँगी ?" मीठीबाई ने बड़े ही मधुर स्वर में कहा।

"लेकिन अब तो मुझे सारी दुनिया कंघी वाले के नाम से ही जानती है। गाँव के किसी नासमझ बच्चे से भी पूछिये कि मेरा नाम क्या है तो कहेगा, कंघी वाला।"

"मैं क्या नन्हीं नासमझ बच्ची हूँ जो असली नाम और सच्ची बात न समझूँ ?"

"समझने वाले समझते हैं, लेकिन आपने तो इस संसार को त्याग दिया, भवसागर पार कर चुकीं·······अब हम संसारी लोगों की याद आपके किस काम की ?" कीला ने करुणार्द्र स्वर में कहा ।

"संसार हमे छोड़ना पड़ा संयोग के कारण ।" महासती ने जवाब दिया : "लेकिन यादों को भुलाना क्या इतना आसान है, कामदार ?"

"आप ठहरीं सत्कर्मी जीव, इसलिए माया-मोह के बन्धनों को काट सकी और कर्मों का क्षय करके आवागमन के चक्र से छूट गयीं·········"

"सब भाग्य का खेल है !" "मीठीबाई ने लम्बी सांस लेकर कहा : "किसे पता था कि हम लोगो मे ऐसा वियोग होगा ?"

सुनकर कीला का हृदय व्यथित हो गया । आचार्य के प्रति पूज्य भाव व्यक्त करने के लिए वह झुककर वन्दना करने लगा ।

"अरे, अरे, कामदार ! यह क्या कर रहे हो ! वन्दना तो मुझे तुम्हारी करना चाहिए । मीठीबाई बोलीं ।

"मुझे कांटों में मत घसीटिये महासतीजी !" कीला ने कम्पित स्वर में कहा ।

और दोनों चुप हो गए । दोनों के विक्षुब्ध चित्त में विचारों का जो तुमुल संघर्ष आरम्भ हो गया था उसे अव्यक्त रखकर ही उसकी पवित्रता की रक्षा की जा सकती थी ।

मौन जब असह्य हो गया तब मीठी ने ही पूछा : "यह भाई कौन हैं ?"

"मेरा नया साथी है । इसका नाम नरोत्तम···· "

कीला अपने साथी का पूरा परिचय देता उसके पहले तो बाहर के कुछ श्रद्धालु भक्त दर्शनों के लिए आ गये इसलिए दोनो वहाँ से चुपचाप विदा लेकर चल दिये ।

× × ×

"मोटे, देखे जिन्दगी के खेल !" रास्ते में कीला ने नरोत्तम का कन्धा झकझोरते हुए कहा ! "इसे कहते हैं भाग्य की लीला !"

लेकिन भाग्य के खेल या लीला की बात नरोत्तम की कुछ समझ में नहीं आयी इसलिए वह चुप ही रहा, तो कीला ने मानों अपने-आपसे कहा : "भाग्य की गति का किसी को पता नहीं चलता।"

भाग्य की गति की गहन दार्शनिकता भी नरोत्तम की समझ मे नहीं आयी। वह आज सवेरे से ही गहरे अचरज में गोते खा रहा था। अब कीला के मुँह से ऐसी गूढ़ बातें सुनी तो उसका आश्चर्य और बढ़ गया।

"जिन मीठीबाई स्वामी को तू अभी देख आया है, मोटे !" कीला ने अन्त में बम के धड़ाके की तरह विस्फोट किया : "उनकी सगाई पहले पहल मेरे साथ हुई थी।"

"अच्छा ?" नरोत्तम सुनकर स्तम्भित हो गया। साँस रोक कर पूछा : "फिर ? फिर क्या हुआ ?"

"फिर हम दोनों के आगे आ खड़े हुए ...."

"कौन ? माँ-बाप ? बुजुर्ग ?"

"नहीं रे, नहीं ! माँ-बाप बेचारे क्यों आते ? आये हमारे बाधक कर्म।"

नरोत्तम को यह उचित नहीं लगा कि कीलाभाई अपने जीवन के ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न की यों भरे बाजार में चर्चा करें, इसलिए उसने आगे कुछ भी नहीं पूछा। लेकिन किसी विशेष प्रयोजन से आज अपनी जीवन-कथा सुनाने के लिए कृतसंकल्प कीला ने साथी के प्रश्नों की प्रतीक्षा न की।

"हम दोनों का मिलन भाग्य को मंजूर नहीं था, और क्या ?" कीला ने कहना शुरू किया : "नहीं तो क्या हमेशा के लिए यों अलग हो जाना पड़ता ? मीठीबाई के साथ मेरी मंगनी बिलकुल बचपन में ही हो गयी थी। मैं पाठशाला जाने भी नहीं लगा था कि मेरा तिलक हो गया था। लेकिन भाग्य में तो कुछ और ही लिखा था। मैं बड़ा हुआ, विवाह का समय आया और मुझे संगीन बीमारी हो गयी।"

"बीमारी तुमको; और वह भी संगीन बीमारी ?"

"हाँ, बीमारी क्या थी, यह अभी तक किसी को पता न चला।

लेकिन क्षयरोग-जैसा कुछ हो गया था और शरीर दिनों दिन "छीजने लगा था।"

"ऐसे हट्टे-कट्टे शरीर में क्षय तो क्या ही हुआ होगा?' नरोत्तम ने कीला के मोटे-तगड़े शरीर को एक निगाह देखते हुए कहा।

"ताज्जुब मुझे भी हुआ था। और ताज्जुब वैद्यों को भी कम न हुआ। इसीलिए तो मैंने कहा कि बीमारी क्या थी, यह किसी को मालूम न हो सका। लेकिन बीमारी जरूर संगीन थी। दिन-दिन शरीर दुबला होता गया, मानों सिलपर दवाई घिसी जा रही हो! दुहरा बदन छीजते-छीजते सीक-जैसा रह गया। सब चिन्ता करने लगे। बीमारी बढ़ती गयी और शादी की बात टलती गयी। मेरे ससुर बेचारे बहुत चिन्तित हो उठे। अगले साल जमाई-राज अच्छे हो जायेंगे और तब शादी कर देंगे—यों करते-करते और रास्ता देखते-देखते पूरे तीन साल बीत गये।

"लेकिन फिर भी आराम न हुआ तो सभी सगे-सम्बन्धियों की चिन्ता बहुत बढ़ गयी। वैद्य-हकीमो ने तो मेरे बिस्तर से उठने की आशा ही छोड़ दी। ससुर को विश्वास हो गया कि मैं बचूँगा नहीं और अपनी लड़की की शादी उन्हें कहीं और करनी पड़ेगी। लेकिन मेरी बीमारी वैसी-की-वैसी रही—न तो बढ़ी और न कम ही हुई। जब पड़े-पड़े कई दिन हो गये तो सभी तंग आ गये और सोचने लगे कि अब इसका इस पार या उस पार कोई-न-कोई निपटारा हो ही जाना चाहिए। मेरे जीने की आशा तो सब पहले ही छोड़ चुके थे, इसलिए अब वे मेरी मौत का इन्तजार करने लगे।"

यह कहकर कीला ने एक जोरदार ठहाका लगाया। नरोत्तम ने देखा तो उसे कीला की आँखों मे एक अमानुषी तेज दिखायी दिया। उसने कहा:

"लेकिन तुम तो जिन्दा हो!"

"मैं जिन्दा रह गया, मरा नहीं, इसी कारण तो यह सारी रामायण हुई।" कीला ने बात आगे चलाई: "मेरे पिता ने यह सोच-

कर कि अब मैं ज्यादा दिन जिऊँगा नहीं, मेरे ससुर को कहलवा दिया कि तुम अपनी कन्या के लिए दूसरा ठिकाना ढूँढ़ लो। उन दिनों मेरे पिता तीन रियासतो के कामदार थे, इसलिए घर की हालत बहुत अच्छी थी। ऐसे सम्पन्न और प्रतिष्ठित घर से सम्बन्ध तोड़ना मेरे ससुर को अच्छा नहीं लग रहा था। मीठी बाई ने सुना तो सिर ही पीट लिया। लेकिन जब भाग्य ही प्रतिकूल हो तो कोई क्या करे? अन्त में, काफी रास्ता देखने के बाद, मीठी बाई को मजबूर होकर दूसरी जगह सगाई करनी पड़ी। सौभाग्य से उनके पिता को हमारे खानदान जैसा ही सम्पन्न और प्रतिष्ठित दूसरा परिवार मिल गया और वहाँ बात पक्की हो गयी।"

"फिर?" सगाई की बात निकली तो नरोत्तम की कीला के प्रेम-प्रकरण के प्रति जिज्ञासा तीव्र हो गयी और उसने दिलचस्पी के साथ पूछा।

"माता-पिता ने दूसरी जगह सगाई कर दी, लेकिन मीठीबाई खुश न हो सकीं। और मैं मौत के मुँह में पड़ा था, इसलिए बेचारी करती भी क्या? मेरे दिन गिने जा रहे थे—क्या पता कब मर जाऊँ? मरणासन्न व्यक्ति से तो उमंगों भरी किसी लड़की की शादी की नहीं जा सकती! सांसारिक रीति के अनुसार मीठीबाई के लिए दूसरी जगह शादी किये बिना कोई चारा भी नहीं था! माँ-बाप ने शुभ मुहूर्त देखकर शादी की तिथि तय कर दी। शादी को सिर्फ तीन दिन रह गये तब......"

कीला सहसा चुप हो गया तो नरोत्तम ने बड़ी व्यग्रता से पूछा: "क्या हुआ? शादी मे कोई विघ्न आ पड़ा क्या?"

"मैं तुझे बता ही चुका हूँ कि मीठीबाई के भाग्य में ससार का सुख लिखा नहीं था! तुझे तो क्या ही याद होगा, लेकिन काठियावाड़ मे उन दिनों गांव-गाँव महामारी फैली हुई थी, लोग पटापट मर रहे थे। कहते हैं कि शव को श्मशान पहुँचाने वालों के कपड़े सूखने ही नहीं पाते थे, इस तेजी से घर-घर आदमी मौत के मुँह में समा रहे

थे : एक लाश को जलाकर लौटते तो दूसरी तीसरी लाशें तैयार मिलतीं। उस महामारी की चपेट में बेचारी मीठीबाई का मंगेतर भी आ गया और चल बसा। शादी को सिर्फ तीन दिन रह गये थे और यह विघ्न आ पड़ा। हल्दी भी चढ़ चुकी थी और जवान दुल्हा यों पानी के बुलबुले की तरह खत्म हो गया। मीठीबाई की शादी का बंधा-बंधाया मण्डप तोड़ देना पड़ा......"

"ओह ! बेचारी के भाग्य ही फूटे थे !" यह कहकर नरोत्तम ने आगे पूछा : "फिर क्या हुआ ?"

"मीठीबाई के कलेजे में दूसरी बार चोट लगी। इस चोट से संसार तित्ता जहर हो गया। ऐसी विपदा मे आदमी का मन वैरागी हो ही जाता है। भाग्य की विडम्बना देखो कि मौत के मुंह में पड़ा हुआ मैं तो नहीं मरा और जिसके नाखून मे भी रोग नही था वह भला-चंगा आदमी चल बसा ! इससे मीठीबाई ने यह निष्कर्ष निकाला कि वैवाहिक सुख अपने भाग्य मे लिखा नही है और इस माँग में सिन्दूर भरा नहीं जाना है। फिर किस्मत का यह मज़ाक भी देखो कि मौत के मुंह में पहुँचा हुआ मैं, जिसकी सब लोगों ने आशा छोड़ रखी थी, न केवल बच गया, लेकिन अच्छा भी होने लगा। वाहरे कुदरत, तेरी बलिहारी ! कहां तो नामी वैद्यों ने हाथ टेक दिये थे और कहाँ मैं चंगा होने लगा। एक महीने के अन्दर तो मैं बिस्तरे से उठ खड़ा हुआ और घर में धीरे-धीरे चलने-फिरने भी लगा।"

"फिर मीठीबाई का क्या हुआ ?" अब नरोत्तम की जिज्ञासा चरम सीमा पर पहुँच गयी थी।

"बेचारी मीठीबाई के दुःख की सीमा न थी। घर-घर बातें होने लगीं कि जिसको मींढल[1] बंध गया था वह दुल्हा तो मर गया और

[1] गुजरात, काठियावाड़, मालवा और राजस्थान में भी दुल्हे की दाहिनी कलाई में मींढल नाम का एक फल बारात चढ़ने के पांच सात दिन पहले बांधा, और शादी होने पर समारोहपूर्वक छोड़ा जाता है।

जो मौत के मुँह में पड़ा था वह बच गया। मीठीबाई सुनतीं और कलेजा टूक-टूक हो जाता। मन मे यह शूल खटकने लगा कि कामदार के खानदान से छोड़कर दूसरी जगह सगाई की उसकी किस्मत ने यह सजा दी ! ससार से उनका मन विरक्त हो गया और दीक्षा लेकर वे साध्वी बन गयी। और हाथ में रजोहरण* ले लिया। समझा मोटे, कुदरत आदमी को कैसे खेल खिलाती है, यह उसका एक उदाहरण है !"

लेकिन कीला के इस 'मोटे' के मुंह से एक शब्द भी न निकल सका।

"समझा मोटे, इसे कहते हैं, पूरबले जनम का लेना-देना।"

लेकिन 'मोटा' इस कहानी को सुनकर कुछ इतना अधिक समझ गया था कि किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी करने की ताब उसमे रह नहीं गयी थी।

"समझा मोटे, इसे कहते हैं ऋणानुबन्ध ! इसका नाम है भाग्य की लीला ! भगवान मनुष्य को इस भवाटवी में इसी प्रकार घुमाता है, चक्कर देता और नचाता है ! समझा मोटे !" कीला ने आप बीती मे से ये निष्कर्ष निकालकर नरोत्तम को सुनाये।

कीला ने तो आप बीती ही सुनायी थी, लेकिन नरोत्तम को पर बीती में आपबीती की अनुभूति हो रही थी। वर्णन तो कीला ने अपने भोगे हुए का किया था, परन्तु उसकी वेदना नरोत्तम के चेहरे पर अंकित हो रही थी। मानव-जीवन की इस विचित्र घटना को सुनकर वह विचारों मे ऐसा डूबा कि एक शब्द भी बोलने का होश उसे नही रहा।

---

*स्थानकवासी जैन साधु और साध्वियां धूल, चीटियाँ और सूक्ष्म कीटाणु हटाने के लिए सूती धागों की बनी मुलायम झाड़ू—जैसा एक उपकरण हमेशा अपने साथ रखते हैं, जिसे 'रजोहरण' कहते हैं।

कहीं नरोत्तम इन बातों को सुनकर हौलदिल न हो जाये, इस अन्देशे से कीला ने बातों का रुख बदलते हुए कहा :

"समझा मोटे ! सगाई टूट गयी तो टूट गयी; भाग्य में लिखा होगा तो फिर जुड़ जायेगी, नहीं तो विसमिल्लाह ! लेकिन यों हाथ-पाँव ढीले करने से तो जिन्दगी ही हार जायेगा। गीला पापड़ बन कर जिन्दगी की आपदाओं से कोई जूझ भी सका है ?" कीला घूम-फिर कर पुनः मूल विषय पर आ गया तो नरोत्तम को आश्चर्य हुआ।

इस आदमी के ऊपर से असम्बद्ध लगने वाले वार्तालाप में क्या शुरू से अन्त तक सम्बद्धता का अदृष्ट सूत्र पिराया रहता है ? और उस शतावधानी मुनि की तरह क्या इसका मस्तिष्क भी एक साथ अनेक सतहों पर संचरण की क्षमता रखता है ?

नरोत्तम को अब भी चुप पाकर कीला ने कुछ कृत्रिम रोष के साथ कहा :

"देख बे मोटे, तेरी रोनी सूरत देखकर मुझे भी रोना आ जायेगा! ऐसा कौनसा आसमान टूट पड़ा है तेरे सिर पर ?.........जान है तो जहान है। जिन्दा रहा और भाग्य में लिखा होगा तो सगाई भी होगी और शादी भी। लेकिन यों रोता रहा तो जल्दी ही 'राम नाम सत्य' हो जायेगा।"

आखिर नरोत्तम को हंसी आ गयी। वह हँसा था कीला की आज्ञा का पालन करने के लिए नहीं, बल्कि उसके इस कोसने को सुनकर।

"हाँ, अब मेरे मन की हुई। इस तरह हँसता-बोलता, खुश-खुर्रम रहे तो कितना प्यारा लगता है !" कीला ने खुशी जाहिर की : "हाँ भई, यह कीला तो बात कहता है सच्ची; अपने को तो ऐसी रोनी सूरतें अच्छी नहीं लगतीं।"

नरोत्तम को फिर हंसी आ गयी।

यह देख कीला भी हंस पड़ा।

लेकिन उनकी उस हंसी में सच्चा उल्लास नहीं था। दोनों की मुस्कराहटों में एक-जैसी मूक वेदना तड़प रही थी।

२२
मैं शर्म से मरी जाती हूँ

राजकोट जंक्शन के प्लैटफार्म पर वैशाख महीने की लू गजब ढा रही थी। उत्तरा-फाल्गुनी और चित्रा नक्षत्रों के असह्य गरमी के दिन थे। गरम हवा छर्रों की तरह लगती थी। फिर भी प्लैटफार्म यात्रियों से खचाखच भरा हुआ था। किसी मेल ट्रेन की प्रतीक्षा की जा रही थी।

इतने यात्रियों में कोई खिलौनों का खरीददार नहीं था, इसलिए कीला अपने ठेले पर किसी शहनशाह की शान से पालथी मारे बैठा था। प्याऊ की छाँह में पड़े इस ठेले की बगल में नरोत्तम खड़ा था। दखलशा फकीर दीवाल के सहारे पड़ा थोड़ी-थोड़ी देर में अपने औलियों को याद कर रहा था। मगला पागल, अपनी आदत के अनुसार, वहां से जाने आने वाले लोगों के साथ बेसिर-पैर की बातें कर रहा था।

कीला के साथ मीठी बाई स्वामी का दर्शन कर आने और उसके रहस्यमय भूतकाल के बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त हो जाने के बाद नरोत्तम उसके प्रति अधिक आत्मीयता का अनुभव करने लगा था। कीला में नरोत्तम को सन्तप्त हृदय, परन्तु साथ ही सहानुभूति प्रवण मनुष्य दिखायी देता था। और इस सहानुभूति—प्रवणता के ही कारण वह उससे पहले की अपेक्षा अधिक निकटता का अनुभव करने लगा था। केवल कीला ही नहीं, कीला के हमेशा के संगी-साथी, यह फकीर और पागल भी नरोत्तम के घनिष्ट मित्र हो गये थे।

× × ×

"मोटे, ज़रा भी फिकर मत करना।" कीला बराबर नरोत्तम को दिलासा देता रहता था।

अब नरोत्तम की चिन्ता अपनी सगाई के टूटने की उतनी नही जितनी पैसा कमाने की थी। वाघणिया से आये इतने दिन हो गये थे, मगर अभी तक कही काम धन्धे का डौल बैठ नहीं पाया था; और यही उसकी चिन्ता का खास विषय था।

"मोटे, तुझसे एक बार कह दिया कि जब तक यह कीला मही-सलामत बैठा है तुझे किसी बात की फिक्र करने की जरूरत नही सारे दिन 'नौकरी-नौकरी' क्या किया करता है ? तेरे जैसा होशियार आदमी दूसरों की गुमाश्ता गिरी करे तो इस कीला को मारे शर्म के डूब मरना होगा। मैं तो तुझे बड़ा सेठ बनाना चाहता हूँ, एकदम बड़ा सेठ। राज-राजकोट के बाजार मे तेरी हुण्डी न चलवा दी तो यह कीला अपनी मूँछ मुँडवा लेगा......"

कीला ने जब लाखो के लेन-देन, हुण्डी और व्यापार की बातें शुरू करदी तो नरोत्तम को हँसी आ गयी। बोला :

"अभी तो मैं बिना काम-धन्धे का बेकार आदमी तुम्हारी रोटियां तोड़ रहा हूँ और तुम मुझे लाखों का लेन-देन करने वाला बड़ा सेठ बनाने की बातें ले बैठे।"

"कुछ गलत थोडे ही कह रहा हूँ मोटे ! मुझे तेरी परीक्षा लेनी थी, तेरे जौहर को परखना था, इसलिये इतने दिन तुझे अपनी कोठरी में बिठाये रखा। अब तेरी परीक्षा पूरी हुई, मैंने तुझे ठोक-बजा कर देख लिया। अब देखना कि तेरे हाथ के नीचे अच्छे-अच्छों से गुमाश्ता गिरी करवाता हूँ या नही ! मुझे तू अभी पहचानता नहीं है, मोटे ! मैं कौन ? कीला कंघी वाला......"

"आज ही वाघणिया से भाई साहब का पत्र आया है। मेरी फिकर करते हैं। इतने दिन तक काम-धन्धा नहीं लगा और मैं बेकारी के कारण यहां परेशान हूँगा, यह सोच कर भाभीजी मुझे वाघणिया वापस बुला रही हैं।"

"अरे पगले, कहीं इस तरह भी वाघणिया लौटा जाता है ?" कीला ने कहा : "छूँछे हाथ, धुली हुई मूली-जैसा अगर घर लौटा तो सारा गाँव यही न कहेगा कि शहर जाकर सड़कों की खाक छान आये ।"

"लगता है कि सडकों की खाक छानने-जैसी हालत ही होगी ।" नरोत्तम ने खिन्न होकर कहा ।

"अगर ऐसा हुआ तो यह कीला अपनी मूँछ मुडा लेगा, समझा? " कीला ने अपनी मूँछों पर ताव देते हुए कहा : "काम-धन्धा आदमी का मुँह देखकर, उसकी योग्यता के अनुसार ढूँढना होता है, रे मोटे ! तुझे ऐसे-वैसे काम पर लगा दिया तो तेरे साथ इस कीला की इज्जत भी तीन कौड़ी की हो जायगी । क्या मैं तुझे और तेरी योग्यता को नहीं जानता? तू किस बाप का बेटा है और तेरा खानदान भी कैसा है ! तू कहाँ शोभा पा सकता है, यह मैं यह जानता हूँ । तुझे ऐसी-वैसी जगह लगा दिया तो दूसरे ही दिन तेरे भाई साहब का नाराजी भरा उल्हना इस कीला को सुनना पड़ जायगा । समझा ?"

कीला की ऐसी बड़ी-बड़ी बातों के प्रति नरोत्तम का विश्वास डिग चला था, इसलिये वह बोला कुछ नहीं, केवल मन-ही-मन मुस्कराता रहा ।

× × ×

प्लैटफार्म पर यात्रियों की भीड़ काफी बढ़ गयी थी । गाड़ी का सिगनल हो गया था, इसलिए कुली सामान उठाने के लिए तैयार खड़े थे । कीला ने भी अपना ठेला छाँह में से बाहर निकाला और 'चल भाई, दो-चार खिलौने बेच लूँ' कहता हुआ एक पंचरंगी झुनझुना हाथ में लेकर बजाने लगा ।

कीला अपने ठेले को प्लैटफार्म के फ़र्श पर धीरे धीरे ठेल रहा था और नरोत्तम उसके साथ-साथ चल रहा था । कीला झुनझुने को बजाता हुआ अपने खिलौनों का विज्ञापन करता जाता था । यह देखकर नरोत्तम के मन में आज पहली बार यह सवाल उठा था कि जिसके बाप दादे

रियासतों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी कामदार रहे हों उसको यों मामूली खिलौनों की फेरी लगाना केवल स्वांग है या यही उसका सच्चा स्वरूप है ? एक समय पैसे वालों का यह उत्तराधिकारी आज मुफलिस के रूप मे दुनिया को धोखा दे रहा है या अपने आपको ?

"ये महुवा के रंगीन खिलौने !"

"यह चक्री और घोड़ा……"

"ये सूँड वाला हाथी और रग-बिरंगा मोर……'

'ये पचरंगी पुतली और सुग्गा-सोंटी……"

आग उगलती धूप मे एक हाथ से पसीना पोंछता दूसरे हाथ से झुनझुना बजाता और मुँह से आवाजे लगाता कीला सारे प्लैट फार्म की लम्बाई पर धीरे-धीरे खिलौनों का ठेला ढकेलता जा रहा था।

और नरोत्तम सोच रहा था : रंग-बिरंगे खिलौने बेचने वाले इस आदमी के जीवन का कौन-सा रंग असली है—केसरिया या भगवा ? इस रहस्यमय आदमी की पहचान क्या है—कुंकुम या भस्म ? या जीवन के दोनों तत्त्व, भोग और वैराग्य इस मस्त-मौला के जीवन पट में ताने-बाने की तरह बुने हुए हैं ? और क्या दोनों ही इस तरह आपस में घुल-मिल गए हैं कि उन्हें एक दूसरे से अलग करके देखा और जाना नहीं जा सकता ?

कीला ने सहसा ठेला खड़ा कर दिया। उसने आवाज लगाना भी बन्द कर दिया और जाने क्या सोचने लगा।

"मोटे, तुझे स्टेशन पर कुलीगिरी करना आता है।" कीला ने गम्भीरतापूर्वक पूछा ।

नरोत्तम सन्न-से रह गया। थोड़ी देर बाद, केवल बोलने के ही लिए बोला : "इसमें आने-न-आने की क्या बात है ?"

"यह कोई जवाब नही हुआ।" कीला ने डपट कर कहा : "सच-सच बता, तुझे कुली गिरी करना यानी मुसाफिरो का सामान उठाकर लाना-लेजाना आता है या नहीं ?"

नरोत्तम और घबराया। बोला : "यह भी कोई हुनर है, कीला भाई, जिसे सीखना पड़े !"

"सीखने को तो कुछ नहीं होता, लेकिन मेहनत-मजदूरी करते आदमी को शर्म बहुत आती है—मानों छोटे बाप के हो गये हों। खास-कर के ऊँची जाति वाले ऐसे कामों को हिकारत की निगाह से देखते हैं।" कीला ने उससे पूछा : "तुझे तो शर्म नहीं आती ?"

इस प्रश्न का जवाब देना नरोत्तम के लिए आसान नहीं था; लेकिन कीला की अंगारों जैसी आँखों को देखकर उसने लड़खड़ाते हुए कह दिया :

"ना, नहीं आती !"

"वाह पट्ठे, शाबाश !" कीला खुश हो गया।

× × ×

गाड़ी यार्ड में दाखिल हुई। एंजिन की फुफकार और डिब्बों की खड़-खड़ फड़-फड़ से बिदक कर यात्री दो-एक कदम पीछे हट गये।

ट्रेन की गति धीमी हुई :

डिब्बों के दरवाज़े खुलने लगे।

कीला ज़ोर-ज़ोर से अपने खिलौनों का गुण-गान करने लगा।

गाड़ी रुकी। खुले दरवाजों पर चढ़ने और उतरने वाले यात्री धक्का-मुक्की करने लगे।

कीला खिलौनों की आवाज लगाते-लगाते सहसा चुप हो गया। सामने वाले डिब्बे में से एक परिचित सज्जन को उतरते देख वह पुकार उठा :

"जय रामजी की सेठजी, जय रामजी की ! आनगाँव हो आये ?"

"हाँ !" सामने से केवल इतना ही उत्तर मिला।

कीला ने फौरन उस उतरने वाले यात्री से कहा : "सामान की फिक्र मत कीजिये……अपने पास आदमी है…घर तक पहुँचा आयेगा !"

फिर नरोत्तम की ओर मुड़कर बोला : "मोटे, सेठजी का सामान उठा ले और जा, भीमाणी की गली तक पहुँचा आ।"

फुर्ती से इतनी बात कह कर कीला झुनझुना बजाता और आवाज़ लगाता हुआ ठेले को ठेलता-ठेलता ग्राहक की खोज में वहाँ से आगे बढ़ गया।

नरोत्तम उसकी इस बात को सुनकर स्तब्ध ही रह गया। अभी थोड़ी देर पहले, जब कीला ने कुली गिरी करने के बारे में पूछा था तो उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि उस बात पर इतना ज़ल्दी अमल करना पड़ जायगा। लेकिन अब उस बारे में अधिक सोचने-विचारने का समय नहीं था, क्योंकि जिस यात्री से कीला ने सिफारिश की थी उसने फौरन नरोत्तम को हुक्म सुना दिया था :

"यह सन्दूक उठाना हो तो जल्दी से उठा ले, नहीं तो मैं दूसरे हमाल को बुलाता हूँ। एक तो गाड़ी लेट आयी और ऊपर से तूभी देर करेगा तो घर पहुँचते-पहुँचते शाम ही हो जायगी।"

नरोत्तम इतना अधिक विचलित हो गया था कि उस सज्जन ने क्या कहा, कुछ भी उसकी समझ में नहीं आया। वह केवल इतना समझ पाया कि सामान उठाने का आदेश दिया गया है। और अपने साथी की बात को सिर-माथे चढ़ा कर उसने उस यात्री का सामान उठाकर अपने सिर पर रख लिया।

और सामान उठाये हुए वह उस सेठ के पीछे-पीछे चलने लगा।

फाटक पर टिकिट कलेक्टर ने उस परिचित आदमी से पूछा : "क्यों मनसुख भाई, कहाँ से आ रहे हो।"

"मेंगणी से।" कहकर मनसुख भाई आगे बढ़ गया।

अब तो नरोत्तम को इस आदमी के नाम और गाँव के बारे में लेश-मात्र भी सन्देह नहीं रहा। आज कीला ने अनजाने ही कैसी मुसीबत में फँसा दिया, यह सोचता हुआ वह चुपचाप आगे बढ़ा।

चलते-चलते नरोत्तम को यह खयाल आया कि ट्रेन में से एक नहीं

दो यात्री उतरे थे; मनसुख लाल भाई के साथ उनकी घर वाली भी उतरी होगी, जो धीरे-धीरे चलती हुई इस मजदूर के पीछे-पीछे आ रही है। मनसुख लाल भाई बार-बार मुड़कर देख लेते थे कि मजदूर और उनकी अर्द्धाङ्गिनी पीछे पीछे चले तो आ रहे हैं।

नरोत्तम को यह खयाल भी आया कि कहीं अपरिचित कुली सामान के साथ रफू चक्कर न हो जाय इस आशंका से सेठ की घर वाली शायद जान-बूझकर पीछे रह गयी। इतना अच्छा हुआ कि ये लोग मुझे शक्ल से नहीं पहचानते; वर्ना कीला भाई ने तो मेरी इज्जत दो कौड़ी की कर ही दी थी।

× × ×

नरोत्तम के सिर पर सामान का बोझ तो था ही, इस तरह के दु:ख दायी विचारों का बोझ और बढ़ जाने से उसकी धीमी चाल और धीमी हो गयी।

मनसुख भाई ने पीछे देखकर मजदूर की धीमी चाल के बारे में शिकायत की : "कीला ने भी किस सुस्तराम को साथ कर दिया !" और फिर जोर से बोले : "ए भाई, यों रुपए गज की चाल से चलेगा तो हमें घर पहुँचते-पहुँचते शाम नहीं रात हो जायगी। जरा जल्दी पाँव उठा।"

और फिर, मजदूर के पीछे चली आती युवती को संबोधित कर कहा : "चम्पा, जरा जल्दी पाँव उठाओ, बेटी। घर पर तुम्हारी मामी रास्ता देख रही होंगी।"

यह सुनकर चम्पा के पाँव जल्दी-जल्दी उठने लगे या नहीं सो तो वही जाने, परन्तु नरोत्तम के पाँव जरूर एक क्षण के लिए रुक गये।

उसने कुतूहल से प्रेरित पीछे की ओर देखा और चम्पा के कदम भी रुक गये। दोनों की आँखें मिलीं और चम्पा के मुँह से निकल पड़ा :

"हायराम ! तुम········तुम ?"

"हाँ !" सिर्फ एक अक्षर बोलकर नरोत्तम मुड़ गया और बहुत तेज़ी के साथ मनसुख भाई के पीछे-पीछे चलने लगा।

अब तो धीमी चाल से चलने वाली चम्पा को भी उस युवक को उलहना देने के लिए उसके पीछे दौड़ने को मजबूर होना पड़ा। वह जल्दी-जल्दी घबराये हुए स्वर में बोली :

"हायराम ! यह तुमको क्या सूझी !"

"बुरे दिनों ने जो सुझा दिया।" इतना कह कर मजदूर आगे बढ़ गया।

"उतार दो सामान !.........फेंक दो सामान !.........यह तुम को शोभा देता है ?" पीछे से आवाज़ आयी।

आगे से उत्तर मिला : "सब शोभा देता है।"

पीछे से शिकायत हुई : "लेकिन तुम तो मेरे......"

"अब कोई नहीं।" अच्छा ही हुआ कि शिकायत अधबीच कट गई; नहीं तो युवती जरूर उलझन में पड़ जाती कि 'तुम तो मेरे' के बाद क्या कहकर कौनसा रिश्ता प्रकट करे !

थोड़ी देर के बाद वह गिड़गिड़ायी : "कहती हूँ, सन्दूक उतार दो, यह तुम को शोभा नहीं देता......मैं शर्म से मरी जाती हूँ।"

इस बार युवक थोड़ा ठिठक गया और पीछे की ओर मुड़कर बोला :

"तुम्हें क्यों शर्म आना चाहिए ? अब तुम्हारा-मेरा क्या सम्बन्ध ?"

"क्या कोई भी सम्बन्ध नहीं ?"

"था, तब था। अब तो, अब तो तुम......"

"अब मैं तुम्हारी कोई नहीं होती ?" चम्पा ने एक दम सीधा सवाल किया।

"मैं कैसे कहूँ ? दुनिया की निगाहों में तो......"

"दुनिया गयी चूल्हे में.........तुम्हारा अपना मन क्या कहता है ?"

नरोत्तम को यह मर्मस्पर्शी प्रश्न सुनकर एक क्षण चुप रह जाना

पड़ा। क्या उत्तर दे, यह अभी सोच ही रहा था कि मोड़ पार करते हुए मनसुखलाल भाई की आवाज सुनायी दी :

"ए भाई, हमें जल्दी घर पहुँचा दे !"

युवक-युवती दोनों चुप होकर जल्दी-जल्दी चलने लगे। दोनों हृदय मूक वेदना से मसोसे जा रहे थे, लेकिन उस समय की विचित्र परिस्थिति और उतनी ही विचित्र मनः स्थिति में उस वेदना को वाणी द्वारा व्यक्त करना दोनों के लिए सम्भव न था।

आखिर भीमाणी की ड्योढ़ी आ गयी।

मनसुखलाल भाई ने अपने घर का भारी-भरकम बड़ा दरवाज़ा खोला।

दरवाज़ा खुलने की आवाज़ से यह अनुमान लगाकर कि पति और भानजी आ गये हैं, धीरज मामी फुर्ती से बाहर आयीं और 'आओ चम्पा बेटी, आओ।' कहती हुई चम्पा को अन्दर ले गयीं।

चम्पा जाते-जाते भी नरोत्तम को आँखों में अभियोग, उलहना और वेदना भरे, देखती गयी।

मनसुख भाई ने जेब से बटुवा निकाला और चुपचाप मजदूर को मजदूरी चुका दी; फिर खुद ही सामान उठाकर ले गये। कुली-हम्मालों का घर के अन्दर आने देना वे खतरे से खाली नहीं समझते थे।

नरोत्तम बड़ी देर से ड्योढ़ी के अन्दर खड़े एक व्यक्ति की ओर टक लगाये देख रहा था। जब किवाड़े ज़ोर की आवाज़ के साथ बन्द हुए तो वह जैसे होश में आया। चलने को कदम बढ़ाये तो देखता क्या है कि पाँव के पास ही एक बटुवा पड़ा है।

कुतूहल से उसने चमड़े के उस जेबी बटुवे को खोलकर देखा तो उसके एक खाने में दस-दस रुपए के नोटों की गड्डी और दूसरे खाने में रेजगारी थी।

नरोत्तम थोड़ी देर तो अनायास हाथ में आयी उस लक्ष्मी की ओर टुकुर-टुकुर देखता रहा। उसे समझते देर न लगी कि सेठ ने मजदूरी

चुकाने के लिए बटुवा निकाला होगा और फिर जल्दी-जल्दी अन्दर की जेब में रखते समय वह नीचे गिर पड़ा होगा।

थोड़ी देर नरोत्तम ड्योढ़ी के बन्द किवाड़ों की ओर देखता रहा। उसकी एक आँख में एक व्यक्ति के लिए उत्कण्ठा और दूसरी आँख में दूसरे व्यक्ति के लिए अत्यधिक तिरस्कार का भाव था।

अन्त में उसने दरवाज़े की कुण्डी खटखटायी।

दरवाज़ा खुला और 'कौन है ?' कहते मनसुखलाल भाई बाहर निकल आये।

"यह आपका बटुवा यहाँ गिर गया था।"

"ओह ! बटुवा !" मनसुखलाल की तो जैसे साँस ही रुक गयी थी।

नरोत्तम बटुवा उनके हाथ में थमाकर चल दिया।

"ए भाई ! रुकना ज़रा, रुकना तो !" सेठजी ने मजदूर को रुकने के लिए कहा।

नरोत्तम आदेशानुसार रुक गया। इस बीच घबराये हुए मनसुख भाई ने बटुवे के अन्दर से नोटों की गड्डी निकाली और साँस रोक कर गिनने लगे।

नरोत्तम ने सोचा कि बटुवा पा जाने की खुशी में सेठजी ने मुझे इनाम देने के लिए रोका है।

लेकिन मनसुख भाई ने नोट गिन चुकने के बाद रेजगारी हथेली पर उँड़ेली और उसे गिनने लगे।

नरोत्तम परेशान हो उठा। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि बटुवा वापस पा जाने की खुशी में सेठजी आखिर कितना बड़ा इनाम देने जा रहे हैं, कि इतनी देर लगादी। साथ ही उसे यह असमंजस भी हो रहा था कि इनाम लेना ठीक होगा या नहीं।

लेकिन सौभाग्य से नरोत्तम को ऐसे किसी असमंजस का सामना नहीं करना पड़ा। जब इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि मजदूर ने बटुवे में से कुछ भी नहीं निकाला और उसमें की एक-एक पाई सलामत है तो उन्होंने उसे जाने की छुट्टी दे दी : "बस, अब तू जा सकता है, जा........"

× × ×

नरोत्तम हँसता हुआ स्टेशन की ओर जा रहा था तब मनसुख भाई हँस-हँसकर घर में खुश खबर सुना रहे थे :

"बच गये ! बच गये !"

धीरज मामी ने पूछा : "क्या हुआ ? हुआ क्या ?"

"अरे घर में डाका पड़ ही गया था। बड़े-बूढ़ों का पुण्य आड़े आया और हम बच गए।"

"मामाजी, क्या हुआ ? बात क्या है ?" चम्पा ने पूछा।

"अरे, मैं तो हूँही भुलक्कड़ ! मजदूर को पैसे देकर बटुवा जेब में रखने गया तो यह नीचे गिर पड़ा......"

"अच्छा......फिर ?" धीरज मामी और चम्पा ने एक साथ पूछा।

"बटुवा मजदूर के हाथ लग गया।"

"क्या वह लेकर चला जा रहा था।" धीरज मामी ने पूछा।

"अरे, मजाल है उसकी कि यों बटुवा लेकर चला जाये ? सीधा थाने ले जाकर बन्द न करवा देता !" मनसुख भाई अकड़ कर बोले : "उसने दरवाजा खुलवाकर फौरन बटुवा सौंप दिया। बच गये। बड़े-बूढ़ों के पुण्य से बच गये ! दुकान की सारी बचत बटुवे में ही थी...बच गयी, भगवान ने बचाया !"

"मजूर ने उसमें से कुछ चुराया नहीं, यह बड़े अचरज की बात है। बटुवा खुद लौटा दिया, इसे उसकी भलमनसाहत ही समझना चाहिए।" पत्नी ने कहा।

"कैसे न लौटाता ? क्या उसके बाप का माल था ? चौरी करता तो क्या मैं छोड़ देता सीधा बारह ताड़ी में बन्द न करवा देता ?"

"लेकिन मामाजी, उसने दरवाजा खुलवाकर बटुवा दे दिया। इसे उसकी ईमानदारी ही मानना होगा।" चम्पा बोली : "मजूर कभी इतने भोले और ईमानदार सुने हैं ? वह जरूर अच्छे घराने का होना चाहिए।"

"हमारा ईमानदारी का पैसा था हमारे पास लौट आया।

वेईमानी का होता तो चला जाता।" अब धीरज मामी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।

"मामाजी, उसने पूरे पैसे सहित बटुवा आपको दे दिया, तो आपने उसे कुछ इनाम-इकराम भी दिया या नहीं ?" चम्पा ने पूछा।

"हुँह, इस तरह हर किसी को इनाम-इकराम बाँटते फिरें तो शाम तक दिवाला निकल जाये, समझी पगली ?" मनसुख भाई ने जबाब दिया : "चम्पा, अभी तुझे शहरी जीवन का तजुर्बा नहीं है यह मेंगणी नहीं, राजकोट है, राजकोट; समझी !"

और मानों इसी पर से बात याद आगयी हो इस तरह पत्नी से बोले :

"कल सवेरे एक लड़का चम्पा को देखने आयेगा। सारी तैयारी ठीक से कर लेना, अच्छा।"

२३

जौहर परखा गया

"वाह बहादुर, वाह !"

"शाबाश पट्ठे, शाबाश !"

नरोत्तम अपने पहले श्रमयज्ञ का अनुभव सुना रहा था और कीला उसे हर वाक्य पर शाबाशी देता जाता था।

"उसने मुझसे कहा कि यह तुम्हें क्या सूझी ?......मैंने जवाब दिया कि बुरे दिनों ने जो सुझा दिया !"

"वाह मोटे, वाह ! बहुत बढ़िया जवाब दिया !"

नरोत्तम एक-एक संवाद सुनाता जाता था और कीला उस पर न्यौछावर होता जाता था।

"उसने मुझसे कहा कि तुम्हें यह शोभा नहीं देता......मैंने जवाब दिया कि सब शोभा देता है।"

"शाबाश मोटे, शाबाश !"

नरोत्तम के एक-एक वाक्य पर कीला लहालोठ हो रहा था।

"फिर तो उसने मुझसे बार-बार कहा, सिर से बोझा उतार फेंकने के लिए समझाया, गिड़गिड़ायी, यहाँ तक कह दिया कि तुम तो मेरे......"

"फिर, तूने क्या जवाब दिया ?"

"मैंने कह दिया कि अब मैं तुम्हारा कुछ भी नहीं होता। हमारा रिश्ता जब था तब था; अब क्या ?"

"कमाल कर दिया, मेरे शेर, तूने ! खूब सुनायी !"

फिर नरोत्तम ने मनसुख भाई का बटुवा गिरने की बात सुनायी तो कीला उत्सुकता से सुनता रहा।

"मैंने दरवाज़े की कुण्डी खट-खटाई तो मनसुखलाल बाहर आये, तब मैंने कहा कि यह लो अपना बटुवा·····जेब में से गिरा है।"

"फिर ?"

"फिर मैं वहाँ से चल दिया।"

"योंही ? वगैर कुछ बोले-बतियाये ?"

"नहीं। कुछ ही दूर गया हूँगा कि उन्होंने आवाज़ देकर बुलाया।"

"अच्छा·····फिर ?"

"फिर उन्होंने सभी नोट दो-दो बार गिने। पूरा इत्मीनान कर लिया तभी मेरी छुट्टी की कि अब तू जा सकता है, जा·····"

"बस ? इनाम-इकराम कुछ भी नहीं दिया ?"

"नहीं।" नरोत्तम ने कहा : "और इनाम किसलिए ? बटुवा उन्हीं का था, उन्हें सौंप दिया।"

सुनकर कीला चुप हो गया। काफी देर वह मन-ही-मन जाने क्या सोचता रहा। फिर एकाएक आंखें टिमटिमाते हुए पूछ बैठा ;

"अच्छा, मान ले कि मनसुख भाई ने सचमुच बटुवे में से दो एक नोट निकालकर तुझे इनाम में दे दिये होते तो तू क्या करता ?"

"और तो क्या करता, नोट उनके हाथ में रखकर कह देता कि अपना पैसा अपने ही पास रखो; मैंने बहुत पैसा देखा है और ऐसे नोट भी बहुत देख चुका हूँ।"

इस बार कीला के मुँह से प्रशंसा का एक शब्द भी नहीं निकला। 'वाह, वाह !' और 'शाबाश मोटे, शाबाश' कह कर उसने नरोत्तम की पीठ नहीं ठोकी। उलटे चेहरा गम्भीर करके जाने किन गहन विचारों में तल्लीन हो गया।

इतने दिन के संग-साथ से यह बात नरोत्तम की समझ में आ गयी थी कि कीला का मौन हमेशा अर्थ सूचक होता है। लेकिन यह पता लगाना मुश्किल था कि वह इस समय क्या सोच रहा है। नरोत्तम के लिए चुपचाप देखते रहने के और कोई चारा नहीं था।

कीला के प्रशस्त ललाट पर उभरने वाली रेखाएं कभी ऊपर चढ़ती थीं, कभी सिमट जातीं, कभी फैल जातीं तो कभी उनमें गुत्थी-सी पड़ जाती थी। ऐसा लगता था मानों शतरंज की बिसात पर मोहरे महत्त्वपूर्ण हलचल कर रहे हों। कीला के उपजाऊ दिमाग में जरूर कोई रहस्यपूर्ण व्यूह रचा जा रहा था। किसी विशाल मोर्चे पर युद्ध हो रहा हो और सेनापति की मेज के छोटे-से नकशे पर रेखाएँ बदलती जाती हों, ठीक वैसा ही दृश्य इस समय कीला के भाल पर दिखायी दे रहा था।

ध्यानस्थ ऋषि वर्षों का मौन भंग कर दो-एक शब्दों का उच्चारण करता है ठीक उसी तरह कीला ने कहा :

"पास ! पास !"

नरोत्तम को ये शब्द ऋषि के मन्त्रोच्चार—जैसे ही गूढ़ लगे, अतएव उनका अभिप्राय: जानने के लिए वह आँखें फाड़े कीला की ओर देखने लगा।

कीला ने फिर दो शब्दों का उच्चारण किया :

"पौ बारह ! पौ बारह !"

नरोत्तम की उलझन और भी बढ़ गयी! 'पौ बारह' से इस आदमी का अभिप्राय क्या है? किसी खेल का दाव चल रहा है या पाँसा फेंकने की बात कर रहा है? किसी प्रतिस्पर्धी को पराजित करना चाहता है या कोई और बात है? जब कुछ भी समझ में नहीं आया तो नरोत्तम प्रश्न सूचक दृष्टि से कीला की ओर देखने लगा।

"अब बेड़ा पार है तेरा, समझा मोटे? अब तेरी जीत के डंके बजेंगे!" कीला ने फिर रहस्य भरी वाणी का प्रयोग किया तो नरोत्तम

की उलझन और बढ़ गयी। कैसा तो बेड़ा पार और कैसे जीत के डंके? क्या टूटी हुई सगाई को जोड़ने का मनसूबा कर रहा है या बड़ी-बड़ी बातों का जबानी जमा-खर्च कर यह जोशीला आदमी मुझे परेशान करना चाहता है?

"मोटे, तेरे तो खुल गये; बिना हर्र-फिटकरी के चौखा रंग आ गया।"

जब नरोत्तम का धैर्य खूट चला तो उसने झुँझलाकर पूछा: "मगर खुल क्या गये, कुछ तो पता चले?"

"तेरे भाग्य! और क्या?" और कीला ने फरमान ही सुना दिया: "कल सबेरा होते ही तुझे दुकान पर बैठ जाना होगा।"

कोशिश करके भी नरोत्तम अपनी हँसी न रोक सका। पूछा: "किस दुकान की बात कर रहे हो?"

"हमारी अपनी!"

"कौनसी? खिलौनों के इस ठेले की?" नरोत्तम फिर हँस पड़ा।

"अबे, खिलौनों की नहीं, कपास की आढ़त की दुकान की बात कर रहा हूँ।" कीला ने स्पष्टीकरण किया।

"यह किसकी दुकान है?"

"है तो मंचेरशा पारसी की……लेकिन अपनी निजी दुकान से भी बढ़िया है।"

"पारसी की पेढ़ी पर और मैं?"

"हाँ, हाँ, तू! इसमें आश्चर्य की क्या बात है? मंचेरशा के पिता और मेरे पिता एक ही रियासत में नौकर थे। वे दीवान थे और मेरे पिताजी कामदार। उन दिनों दोनों परिवारों में बड़ा घरोपा था। पिताजी की कामदारी जाने के बाद मंचेरशा व्यापार में लग गये। वह जो विलायती पेढ़ी है न, काठियावाड़ का कच्चा माल (कृषि उपज) भारी तादाद में निर्यात करती है। मंचेरशा ने उसी के मुकाबले अपनी यह पेढ़ी खड़ी की है। हमारे ही मुल्क में हमारे ही

माल का व्यापार अंगरेज़ को तो करना आता है; हमें नहीं आता ? मनसुख भाई जिस अंगरेज़ी पेढ़ी में काम करते हैं उसी के मुकाबले मंचेरशा ने अपनी पेढ़ी शुरू की है। मंचेरशा को पारसी होने के नाते आधा अंगरेज़ तो मानना ही पड़ेगा और लोग ऐसा मानते भी हैं। देस-दिसावर में उनकी अच्छी जान-पहिचान है। व्यापार में उन्हें एक कुशल और विश्वसनीय आदमी की जरूरत थी......"

"मेरे-जैसे ?" नरोत्तम ने सहज कुतूहल से पूछा।

"हाँ, तेरे-जैसे, नहीं तो क्या मेरे-जैसे ?" कीला ने कहा : "मुझ से मंचेरशा कई दिनों से कह रहे हैं कि कामदार, अपनी पेढ़ी पर बैठ जाओ और सारा काम सँभाल लो, लेकिन मैं ही मना करता हूँ......"

"सो क्यों ?"

"मैं कहता हूँ कि नहीं भाई, भला मेरा यह रेलवे का स्टेशन और भला मेरा ठेला। खिलौनों की फेरी का अब तो इतना आदी हो गया हूँ कि पेढ़ी के गुलगुले गादी-तकियों पर बैठने से मेरा बदन दर्द करने लगेगा......"

"तुम भी कीला भाई, हमेशा उलटी ही बात किया करते हो !" नरोत्तम ने हँसकर कहा।

"नहीं रे मोटे, उलटी बात नहीं करता, बिलकुल सच कहता हूँ। बड़ी मुश्किल से तो दुनिया से अलग हो पाया हूँ, फिर उसके जंजाल में क्यों फसूँ ? बेकार, जैसा कि मीठी बाई स्वामी कहती हैं, जीना थोड़ा और जंजाल ज्यादा !"

"तो क्या मुझसे मंचेरशा की पेढ़ी पर गुमाश्तगिरी करते बनेगी ?" नरोत्तम ने पूछा।

"गुमाश्तागिरी ?" और कीला ने ठहाका लगाया। फिर उसने नरोत्तम को समझाया : "तुझे पेढ़ी का सारा काम सँभालना है; व्यापार और लेन-देन करना है, गुमाश्तागिरी नहीं। वाघणिया के नगर सेठ के बेटे से यह कीला क्या गुमाश्तागिरी करवायेगा ?"

अब नरोत्तम को ताना मारने का मौका मिल गया : "गुमाश्तागिरी न सही, बोझा ढोने की मजदूरी तो करवा ही ली……"

"तेरी परीक्षा लेना चाहता था, इसलिए मजदूरी करवायी।"

"परीक्षा ? कैसी परीक्षा ?"

"तेरा जौहर परखना था।" कीला ने स्पष्टीकरण किया : "पेढ़ी पर मसनद लगाकर बैठने वाले आदमी को पसीना बहाना भी आना चाहिए। गलत नहीं कह रहा। यकीन न आता हो तो पूछ देखना अपने भाई साहब से। सेठाई करना सहज काम नहीं है। ऊँचे पद पर बैठकर हुक्म चलाने वाले को जरूरत पड़ने पर मेहनत-मजदूरी करना भी आना चाहिए। हाथ के नीचे हजार गुमाश्ते भी क्यों न हों, सेठ में तो हमाल का काम करने की क्षमता भी होना चाहिए। तभी उसका सेठ बनना सार्थक होता है और वह धन एवं अधिकारों का सही उपभोग कर सकता है।"

कीला के इन नये विचारों को नरोत्तम दिलचस्पी से सुनता रहा। कीला ने आगे कहा :

"व्यापार-वणिज और इन्तजाम करने की योग्यता तुझ मे है, यह तो मैंने पहले ही दिन जान लिया था। मंचेरशा भी कई दिनों से कह रहे थे, परन्तु मैंने इतने दिनों तेरी सिफारिश इसलिए नहीं की कि तुझे परख लेना चाहता था। मेरे लिए यह पता लगाना जरूरी हो गया था कि तुझ में सेठ बनने की क्षमता है या नहीं। आज मजदूरी करवाकर इस बात की परख मैंने करली।"

"सच कह रहे हो ?" नरोत्तम को अभी भी कीला की बातों पर विश्वास नहीं हो रहा था।

"हाँ ! मैंने तुझे मंचेरशा की पेढ़ी पर कभी का बिठा दिया होता और आज तेरे हाथ के नीचे दस-बारह गुमाश्ते काम भी कर रहे होते; लेकिन उसके पहले यह पता लगाना जरूरी था कि इतना बड़ा अधिकारी बनने की तुझमें योग्यता है भी या नहीं ! मंचेरशा के जैसी बड़ी

और प्रतिष्ठित पेढ़ी के प्रधान के पद पर बैठना मामूली बात नहीं है। अधिकारों का सही उपयोग करना आना चाहिए और अधिकार मद को अपने पर हावी न होने देना भी; नहीं तो वे अधिकार आदमी पर हावी होकर उसका सिर फेर देते हैं। मुझे तेरी परीक्षा करके देखना था, जो मैंने रेलवे यात्री का बोझा ढोने का काम सौंपकर की।"

"रेलवे यात्री का ही नहीं, मेरी एक बार की......"

"मंगेतर ही क्यों नहीं कहता ! शरमाता क्यों है ?" कीला ने कहा : "यह भी एक तरह से अच्छा ही हुआ—एक पन्थ दो काज हो गये।"

"सो कैसे ?"

"उसने तेरे सिर पर बोझा देखकर यह जो कहा कि मैं मारे शर्म के मरी जाती हूँ......"

"हाँ, कहा तो जरूर; और एक बार नहीं, तीन-चार बार कहा कि सामान नीचे उतार दो, मैं मारे शर्म के मरी जाती हूँ।"

"बस-बस, इतना बहुत है—उसके ये दो वाक्य काफी हैं।" कीला ने कहा : "तेरी परीक्षा के साथ-साथ अनायास ही चम्पा की भी परीक्षा हो गयी।"

"सिर्फ दो वाक्यों से ?"

"दो क्या एक, अरे, आधे वाक्य से ही सब कुछ समझ में आ जाता है। सच्चे मोती का पानी तो एक नजर में ही परख जाता है। असली और नकली मोती में यही तो फर्क होता है, समझा ?"

"मेरे तो यह कुछ समझ में नहीं आता।"

"तेरे भले ही समझ में न आये, मेरे सब कुछ समझ में आ गया। उसका यही कहना कि मैं शरम से मरी जाती हूँ, काफी है। अब वह है और यह कीला है। उसकी शादी नरोत्तम के सिवा किसी और से नहीं होगी।"

"कीला भाई, तुम भी अच्छी-खासी डींग हाँकते हो !" नरोत्तम ने कहा ।

"डींग नहीं हाँकता । यह कीला डींग हाँकना जानता ही नहीं । मैं तो रोकड़ा रुपया हूँ । उधार बात अपने पास नहीं होती; नकद के सिवाय और कोई बात अपने को नहीं आती । कीला जो कहता है उसे कर दिखाता है । गलत बात कहना अपने उस्ताद ने हमें सिखाया ही नहीं । मैं तुझे ताम्र पत्र लिखकर देता हूँ कि चम्पा की वरमाला तेरे ही गले में पड़ेगी । चाहे तो इस फकीर और उस पागल को भी गवाह कर ले । यदि इसमें जरा भी मीनमेख हुई तो यह कीला अपनी मूछें मुड़ा लेगा । समझा ?"

कीला अपनी बड़ी-बड़ी मूछों पर गर्व से बल देता रहा और नरोत्तम अपने इस विचित्र साथी को सम्भ्रम देखता रहा । अन्त में कीला ने बड़े अभिमान के साथ कहा :

"अरे मोटे, मुझे इस बात का अफसोस है कि तूने अभी तक इस कीला को पहचाना नहीं । जानता है, मैं कौन ? कीला कंघीवाला ।"

रात भोजन के बाद नरोत्तम और कीला देर तक बातें करते रहे ।

"कल सवेरा होते ही तुझे मंचेरशा की पेढ़ी में काम शुरू करना है ।" कीला ने आदेश दिया ।

"कल, सबेरे ही ?"

"हाँ भाई, अच्छे काम में देर नहीं की जाती ।"

"यह काम थोड़े ही, धन्धा-रोजगार है ।" नरोत्तम ने मज़ाक किया : "और धन्धा-रोज़गार शुरू करने में अच्छा दिन, अच्छा मुहूर्त और अच्छा शकुन देखना चाहिए ।"

"कीला इस तरह के बुढ़िया पुराण को नहीं मानता । भगवान के बनाये सातों दिन अच्छे ही होते हैं । भला-बुरा शकुन देखने का काम साड़ी पहनने वाली औरतों को सौंप दिया; हम मर्दों के लिए तो आठों

पहर के सभी चौघड़िये शुभ हैं। यह कीला तो एक ही बात समझता है : कलाइयों में ताकत और काम करने की काबिलियत होना चाहिए।" और दूसरे ही क्षण कीला ने अपने जीवन-सूत्र का उच्चारण किया : "हुनर हाथ में उसे चिन्ता क्या ?"

कीला की इन प्रेरणात्मक बातों से उत्साहित होकर नरोत्तम ने पूछा :

"अब वाघणिया भाई साहब को पत्र लिखकर बता दूँ कि काम-काज का प्रबन्ध हो गया ? भाभी और भाई साहब, दोनों बहुत खुश होंगे।"

"नहीं !" कीला ने कठोर स्वर में इनकार कर दिया : "भाई साहब को ऐसा रूखा काग़ज़ लिखना उचित नही। बेजान कागज पढ़कर भाई साहब को कभी विश्वास न होगा कि नरोत्तम राजकोट की एक बड़ी पेढ़ी का सर्वे-सर्वा बन गया।"

"उन्हें कैसे विश्वास दिलाया जायेगा ?"

"थोड़े दिनों के बाद मनीआर्डर से रुपये भेज कर।" कीला ने उपाय सुझाते हुए कहा : "जब अंजलीभर रुपये देखेंगे तो उन्हें आप ही समझ मे आ जायेगा कि छोटा भाई कमाने लगा है और अच्छा पैसा कमाने लगा है।"

"अंजली-भर रुपये ?"

"अजली-भर क्या, खजाना-भर रुपये भाई साहब को भेजने होंगे।" कीला ने कहा : "इतना ही नही, ओतमचन्द जी को मंचेरशा की पेढ़ी का दलाल नियुक्त करना होगा। वे उधर के गाँव-गाँव से माल खरीदकर इधर भेजेंगे। इस काम के लिए उन्हें रुपए में आना दो आना ही दलाली मिलेगी तो भी उनकी सालाना आमदनी लाख-सवा लाख के करीब हो जायेगी।"

"तुमने तो बहुत लम्बा विचार कर डाला, कीला भाई।"

"यह कीला छोटा विचार तो कभी करता ही नहीं। हींग बेचकर

कभी हाथी नहीं बाँधा जा सकता और न अंगुली फूलकर खम्भा बन सकती है।" और कीला ने एक बार फिर गर्व भरे स्वर में कहा : "यह कीला तो एक ही बात समझता है—मारना तो मीर, नहीं तो हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना।"

"बड़े जबर्दस्त हो भाई।" कीला की गर्वोक्ति से प्रभावित नरोत्तम ने कहा : "तुम्हारी पहुँच-परिचय गजब के हैं।"

"पहुँच न होती तो मैं कामदार से कंघीवाला कैसे बनता ?"

"अरे हाँ, यह तो तुमने अभी तक नहीं बताया कि तुमने अपना नाम क्यों बदला ?"

"जिन्दगी के बदलते रंगों के साथ आदमी को अपने नाम भी बदलते रहना चाहिए। यदि हम खुद नाम न बदलें तो दुनिया ही बदल देती है। यह कहावत तो तुमने सुनी ही होगी कि खाली गाँठ का गांगला और गाँठ का पूरा गांगजी भाई ! गाँठ में पैसा रहने पर जो 'गांगजी भाई' कहलाता है वही गाँठ खाली हो जाने पर 'गांगला' कहलाने लगता है। दुनिया का दस्तूर ही ऐसा है। इसमें आदमी का कोई कुसूर नहीं। नाम की बड़ी महिमा है, मोटे !"

नाम की महिमा का वर्णन करते-करते कीला सहसा चुप हो गया। नरोत्तम सोच ही रहा था कि अब कौनसी नयी बात सुनने को मिलेगी कि तभी कीला ने विस्फोट-सा किया :

"मोटे, मुझे तेरा नाम भी बदलना होगा।"

"मेरा नाम बदलना होगा ?" नरोत्तम ने चकित होते हुए पूछा : "मेरा नाम तो मैं यहाँ आया तभी तुमने बदल दिया। नरोत्तम को 'मोटा' बना चुके हो, अब क्या कोई तीसरा नाम रखने का इरादा है ?"

"मोटा तो दुलार का नाम है रे पगले ! लोक-व्यवहार के लिए कोई दूसरा ही नाम रखना पड़ेगा……मंचेरशा की पेढ़ी पर तुझे किसी और ही नाम से बिठाना होगा।"

"लेकिन नाम बदलने की जरूरत क्या है ?"

"सो तेरी समझ में नहीं आयेगा। अभी तू एक तरह से बच्चा ही है और दुनिया के कटु अनुभव तुझे हुए नहीं हैं, इसलिए कीला की यह चाल अभी तेरी समझ में नहीं आयेगी।"

"अच्छी बात है ! लेकिन यह तो बताओ कि नया नाम क्या रखोगे ?" नरोत्तम ने कुतूहल से पूछा।

"आज रात नींद में सोचूँगा।" कीला ने जवाब दिया : "और कल सवेरे नया नाम रख दूँगा। उठते ही तुझे नये नाम से पुकारूँगा।"

२४

मन-ही-मन

"मामाजी, वह मजदूर कौन था ?"

"उसने इतने रुपयों से भरा हुआ बटुवा वापस कर दिया, यह कोई मामूली बात है ? मजदूरी तो जरूर करता है, मगर लगता है सच्चा और ईमानदार !"

"क्यों मामाजी, आपने उसे रुपये-दो रुपये इनाम-इकराम क्यों नहीं दिया ? कुछ देकर खुश करना चाहिए था न ?"

"मामाजी, उस बेचारे को कैसा लगा होगा ! सोचता होगा कि सेठजी पूरे कंजूस निकले ! मैने भरा-पूरा बटुवा लौटा दिया और इनसे चवन्नी भी नहीं दी गयी·········"

चम्पा हर वक्त मनसुखभाई से ऐसे सवाल किया करती ।

और मनसुख भाई हर बार झुंझला कर कह देते :

"ओह, मजदूर-मजदूर करके तू तो हमारी जान खा गयी !"

"तूने तो बात का बतंगड़ बना डाला ।"

मामा इस प्रकार झुंझला कर अपनी उकताहट जाहिर करते, लेकिन भानजी उकताने का नाम न लेती । वह रोज़ दूने उत्साह और उत्सुकता से अपने सवाल पूछती रहती ।

"मामा, आप उसे लाख मज़दूर कहें, लेकिन शक्ल-सूरत से वह मज़दूर लगता नहीं था :"

"अच्छा भाई, मजदूर न सही, कुली सही और तुझे कुली नाम

भी अच्छा न लगता हो तो मैं उसे हमाल कहा करूँगा। यह तो उस बुढ़िया के तीन बेटों-जैसी बात हो गयी तीनों के नाम अलग-अलग: एक का नाम परवत, दूसरे का नाम पहाड़ और तीसरे का नाम पठार; लेकिन अन्त में तीनों पत्थर ही हुए…… …"

"मामा, आप कुली या हमाल कहकर उस मजदूर की मजाक भले ही उड़ालें, मगर उसका असली नाम भी तो कुछ-न-कुछ होगा?"

"होगा, हमें उससे क्या?" मनसुख भाई ने थोड़ा उग्र होकर पूछा।

चम्पा ने डरते-डरते कहा: "आपको उसका नाम जानना चाहिए………"

"ऐसे हाली-मवाली का नाम मुझे क्यों जानना चाहिए? क्या अपने द्वारे बुलाकर परछना है उसे?"

'परछना है' शब्द सुनकर चम्पा के मन में आया कि 'हाँ' कह दे। लेकिन कह नहीं सकती थी, इसलिए किसी तरह जब्त कर गयी:

"लेकिन मामाजी, उसे यों खाली हाथ लौटा देना तो अच्छा नहीं हुआ। क्या इससे हमारी बदनामी नहीं होती?"

"बदनामी किस बात की? और दो टके के आदमियों के आगे बदनामी हो या नेक नामी परवाह ही कौन करता है?"

चम्पा क्षण-भर के लिए चुप हो गयी। यह सोचने लगी कि अपने मन पसन्द विषय पर अब क्या कहकर मामा से बात करे। आखिर जो बात दिल में घुमड़ रही थी वह फिर ओठों की राह बाहर आ ही गयी:

"मामाजी, आप लाख उसे मजदूर कहें, मगर वह मजदूर नहीं था………"

"अच्छा बाबा, मजदूर नहीं, बड़ा मनसबदार था! मनसुखभाई ने चिढ़कर जवाब दिया: "तू तो अब यही कहेगी कि लखपति था, साहूकार का बेटा था. नवाबजादा था, अरे धन्ना सेठ था।"

चम्पा प्रसन्न हो गयी। जो-कुछ वह कहना चाहती थी, मगर कह नहीं पा रही थी उसे मामा के मुँह से अभिव्यक्ति मिल रही थी : चिढ़कर मामा व्यंग्य में जो-कुछ कह रहे हैं वह अक्षरशः सच है, यह बात चम्पा उन्हें कैसे समझाये ? हाय, वह उन्हें कैसे विश्वास दिलाये कि स्टेशन से अपने सिर पर बोझा ढोकर जो घर तक रख गया है वह वास्तव में धन्ना सेठ का ही बेटा है ?

"मामाजी, उसकी शक्ल-सूरत से तो यही लगता था कि उसने अच्छे दिन देखे हैं......"

"फिर मजदूरी क्या शौक की खातिर कर रहा था ?"

"शौक की खातिर तो नहीं, मगर मुसीबत आ पड़ने से ऐसा हलका काम करने को मजबूर हुआ होगा।" यह कहकर चम्पा ने फिर वही बात दुहरादी : "उस आदमी का चेहरा ही बताये दे रहा था कि उसने कभी मजूरी नहीं की और न उसे मजूरी करना आता है।"

"न आती होगी तो अब आ जायेगी।" मनसुख भाई ने चुभते स्वर में कहा !" करने से सब काम आ जाते हैं, काम खुद सिखा देता है।"

चम्पा कट कर रह गयी ! वह सोच नहीं पा रही थी कि अब क्या कह कर मजदूर की बात छेड़े ! एक बार तो मन में आया कि साफ-साफ कह दूँ वह मजदूर और कोई नहीं, वाघणिया के ओतमचन्द सेठ का छोटा भाई है और उसका नाम नरोत्तम है; लेकिन दूसरे ही क्षण उसने यह विचार छोड़ दिया। यदि मामा को मजदूर के बारे में सचाई का पता चल ही गया तो वे उसे और भी तुच्छता से देखने लगेंगे :

अब उसके सामने प्रश्न यह था कि उस मजदूर का पता कैसे लगाया जाये ?.........चम्पा की आँखों में उसके प्रियतम की तसवीर घूम गयी। उसकी एक ही सूरत अलग-अलग जगहों में अलग-अलग रूपों में नजर आने लगी सबसे पहले अमरगढ़ स्टेशन पर मेहमानों को

वाघणिया ले जाने के लिए आयी हुई एक मूर्ति; रास्ते में घोड़ागाड़ी में बैठे-बैठे आँखें मिलाने और नैन-सैन करने वाली दूसरी मूर्ति; दुमंजिले की अटारी में गुपचुप रस भरी बातें करने वाली तीसरी मूर्ति; मेंगणी लौटते समय फिर घोड़ागाड़ी में स्टेशन ले जाते हुए। अरुणोदय के समय हृदय मे प्रेम-पखेरू का मूक कलरव गुंजाने वाली चौथी मूर्ति; मेंगणी पहुँचने के बाद, पहली रात में व्यग्रता की मधुर पीड़ा में सच्चे सपनों का अनुभव कराने वाली और फिर तो प्रतिदिन जाग्रतावस्था में भी सपनों का अंजन आँखों में आंजने वाली पाँचवीं मूर्ति; और अन्त में, रोजकोट स्टेशन से घर तक सिर पर बोझा ढोकर मजदूर का स्वाग रचाने वाली और इसीलिए मन को बहुत बेचैन करने और तड़पाने वाली छठवीं मूर्ति………

पहले और आखरी चित्र में समय का काफी अन्तर पड़ गया था मानों एक पूरा जीवन ही बीत गया हो ! पहली बार देखे हुए और अन्तिम बार अनायास ही दिखायी दे गये व्यक्ति में बड़ा विरोधाभास लग रहा था। लेकिन चम्पा जानती थी कि पहले पाँच चित्र स्वाभाविक थे, जबकि अन्तिम चित्र अस्वाभाविक; उसमें स्वाभाविकता नहीं; नाटकोयता थी।

उन्होंने ऐसा नाटक क्यों किया ? यह सच है कि उन पर विपत्ति पड़ी है। यह भी मान लिया जाय कि सचमुच ही पेट भरने के लिए उन्हें मजूरी करनी पड़ रही है, तो भी स्टेशन पर किसी और का बौझा ढांने के बदले उन्होंने मामा का ही बोझा क्यों ढ़ोया ? क्या जान-बूझकर ऐसा किया ? मामा को तो वे पहचानते भी नहीं। दोनों आदमी कभी मिले नहीं; किसी ने किसी की सूरत भी नहीं देखी। क्या गाड़ी रुकते ही उन्होंने अनायास या केवल भूल से मामा के हाथ से सामान लेकर सिर पर रख लिया ?

इस घटना के बारे में कुछ अधिक सोचने पर चम्पा को सहसा एक तीसरा व्यक्ति याद आ गया। गाड़ी रुकने पर, सामने से किसी

आदमी ने मामा को आवाज़ दी थी कि आनगांव से लौट आये, मनसुख भाई !..........अपना आदमी है, समान घर तक पहुँचा आयेगा........

हाँ ठीक से याद आ गया। मामा का सामान उन्होंने यों ही नहीं उठाया था; किसी ने उन्हें उठाने के लिए कहा था। कौन था वह आदमी, जिसने उन्हें कुली-कवाड़ी का काम करने के लिए कहा ? उनका रिश्तेदार था या मालिक ? उसने उन्हें ऐसा हलका काम-न करने-जैसा काम-करने के लिए क्यों कहा ? क्या कोई गैरों से ऐसा कह सकता है, कहना उचित है ?

हाँ, अब याद आया, ठीक-ठीक याद आ गया ! गाड़ी प्लेट फार्म पर रुकी तो एक आदमी खिलौनों का ठेला घुमा रहा था। एक हाथ से वह झुनझुना बजा रहा था, दूसरे हाथ से ठेला ढकेल रहा, और मुँह से चिल्लाता जाता था, 'लो, महुवे के रंगीन खिलौने लो।'

स्मृति पट पर एक के बाद एक दृश्य उभरते जाते थे, जिनसे समग्र चित्र बनकर सामने आता जा रहा था।

हां, अब याद आया। मामा के पीछे-पीछे मैं धीरे-धीरे चलती हुई स्टेशन के दरवाज़े के बाहर जा रही थी, तब उस खिलौने वाले ने मुझे घूर-घूर कर देखा था।........क्यों देखा था ? मामा का परिचित था इसलिए ? मामा के घर नया मेहमान कौन आया है, यह जानने के लिए ? पता नहीं, उसने ऐसे क्यों देखा, मगर मैं तो उसकी बिलाव-जैसी घूरती आँखों को देखकर डर गयी थी........

उस घटना की लुप्त कड़ियाँ जैसे-जैसे जुड़ती गयीं चम्पा की समस्या सुलझने के बदले और भी उलझती गयी........वह खिलौने बेचने वाला कौन है ? मामा का सामान उठाने के लिए उसने क्यों कहा ? उसने मुझे इस तरह घूर-घूरकर क्यों देखा ?.........क्या वह जानता है कि मैं मनसुख भाई की भानजी हूँ ?......शायद जानता ही हो ! मामा मुझे राजकोट क्यों लाये हैं, इस बात को भी क्या वह जानता है ?

कौन है वह ठेले वाला ? प्रीतमचन्द सेठ का परिचित तो नहीं है ? उनके परिवार से उसका क्या कोई सम्बन्ध है ? क्या वह उनका रिश्तेदार है ? वह सारा नाटक उन्होने जान-बूझकर किया या अनायास, अपने-आप हो गया ?

और सहसा चम्पा के मन में यह विचार बिजली की तरह कौंध गया कि मेरी परीक्षा लेने के ही लिए तो उन्होंने यह नाटक नहीं किया ? इस तरह की बातें कभी अपने-आप नहीं हुआ करतीं। इसमें जरूर कोई भेद है।

इस विचार से उसे बड़ा सुख और सन्तोष मिला कि यदि वास्तव में उन्होने यह नाटक मेरी परीक्षा लेने के ही लिए किया तो कितनी अच्छी बात है ? परीक्षा में मैं पूरी तरह सफल हुई हूँ ! रास्ते में मैने उनसे ठीक तरह से बातें कीं। मैंने कही कोई गलती नहीं की। मैंने उनसे साफ-साफ कहा कि यह तुम्हें शोभा नही देता और तुम्हारे सिर पर बोझा देखकर मैं शरम से मरी जाती हूँ। क्या इतने से वे मेरे मन की बात समझ नहीं गये होंगे ? हैं तो बड़े ही चतुर और समझदार-आधी बात सुनकर ही पूरा मतलब समझ जाते हैं ! फिर ऐसी बातें तो आदमी इशारे से समझ लेता है। जबकि मैंने मुँह खोलकर कहा कि मैं शरम से मरी जाती हूँ। समझदार के लिए इतना इशारा काफी है। जरूर वे सब-कुछ समझ गये होंगे। मुँह से जरूर कुछ नहीं बोले, मगर मन का प्रेम कभी छिपा रह सकता है ? उनकी आँखों में प्रेम पुकार-पुकार कर कह रहा था और वह मैंने देखा। घर के अन्दर जाते-जाते दरवाजे पर मैने थोड़ा-सा पलट कर देखा तो उनकी आँखें मेरी ही ओर लगी हुई थीं। इतना बहुत हैं ! हम दोनों मुँह से बोले बिना मन-ही-मन सब समझ गये। हम दोनों के अन्तर्यामी इस बात के साक्षी हैं......अब अगर भाग्य में लिखा होगा तो जिस तरह मन मिले उसी तरह हम दोनों भी हँसी खुशी एक दूसरे से अवश्य मिलेंगे।

इस सम्भावित मिलन की अनुभूति मन-ही-मन इतनी उत्कट हो गयी कि चम्पा उमंग भरे स्वर में मनसुखलाल से कह उठी :

"मामा, उस मजदूर का पता तो लगाओ।"

मनसुखलाल भाई अपने आप में न रह सके। मारे क्रोध के गरज उठे :

"ओहो ! मजूर-मजूर की रट लगाकर बिलकुल नाक में दम कर दिया तूने !"

इतना कहकर मनसुखलाल दूसरे कमरे में चले गये !

उनका वहाँ से चला जाना एक तरह से अच्छा ही हुआ। क्योंकि न जाते तो चम्पा के उमड़ते हुए आँसुओं को देखकर घबरा जाते !

"क्या है ? यह शोर-शरापा कैसा हो रहा है ?' कहती हुई धीरज-मामी रसोई घर से दौड़ी आयीं।

कमरे में आकर देखती हैं तो चम्पा की बड़ी-बड़ी अनीली आँखों की कोर में असली मोती-जैसा एक-एक आंसू अटका हुआ था।

"हाय, हाय ! मेरी चम्पा बिटिया को क्या हो गया ?" धीरज मामी घबरा उठी और पूछने लगीं !"

"मामा ने कुछ कहा ? डाँटा ?"

"किसी ने लगती बात तो नहीं कहदी मेरी रानी बिटिया को ?"

"बेमन की कोई बात हो गयी ?"

"बुरा लग गया ?"

इतने प्रश्नों के बाद भी जब चम्पा कुछ न बोली तो मामी की घबराहट और बढ़ गयी ! वे व्यग्र स्वर में पूछने लगीं :

"हमारे यहाँ अच्छा नहीं लगता ?"

"मेंगणी की याद आ गयी ?"

"अम्मा-बाबूजी की याद सता रही है ?"

बेचारी धीरज मामी को यह कौन समझाता कि उनकी युवती भानजी को इस समय मेंगणी या माँ-बाप की नहीं एक बोझा ढोने वाले मजदूर की याद सता रही है ?

नारी सुलभ आत्मीयता से उन्होंने चम्पा को छाती से लगा लिया और अपनी साड़ी के पल्ले से उसकी आँख में अटके आँसू पोंछने लगीं ।

"रोना क्यों आ गया मेरी बेटी को ? बताओ न, मेरी सौगन्ध !"

आँख में अटके एक-एक आँसू के पोंछे जाते ही अन्दर रुके हुए आँसू उमड़ पड़े और गालों पर ढुलक-ढुलक कर बहने लगे ।

"हाय, मेरी बिटिया को क्या हो गया ?" गुलाब के फूल पर छितराये ओसकणों-जैसे आँसूओं को स्नेह-पूर्वक-पोंछती हुई धीरज मामी उसे दिलासा देने लगीं :

"आज इस तरह कहीं रोया भी जाता है, बिटिया ? आज तो मुन्सिफ का लड़का तुम्हें देखने आ रहा है......हाय-हाय ! आँखें तो देखो, इतनी-सी देर में लाल-गुलाल हो गयीं । तुम्हारे मामा तो हैं ही गुस्सैल । मुझे भी बात-बेबात रुलाते रहते है । अभी उनकी खबर लेती हूँ । तुम चुप हो जाओ, बिटिया, मेरी अच्छी बिटिया !"

इस तरह सान्त्वना देकर मामी धीरज पनिहारे से पानी का गिलास भर कर लायीं और सिसकती हुई चम्पा को किसी तरह दो घूँट पिला दिये । जब उसके आँसू रुक गये तो मामी ने कहा :

"मुँह-हाथ धोकर चोटी-पट्टी से लैस हो जाओ ! मुन्सिफ का लड़का, बस, आता ही होगा ।"

२५

उषा की लाली

तीसरे पहर का समय था।

वाघणिया के टेढ़े-मेढ़े बाजार में इस समय ग्राहक बिलकुल न होने से ठाले दुकानदार झपकियां ले रहे थे। ऐसा लगता था मानों दिन दहाड़े स्यापा पड़ गया हो। यहाँ तक कि एक कोने में छोटी-सी दुकान लगाकर बैठने वाला ओतमचन्द भी, सन्नाटा होने के कारण, छोटी-सी मसनद से टेक लगाये अधलेटा-सा पड़ा था।

ऐसे सन्नाटा भरे वातावरण में अमरगढ़ से आने वाले डाक के हलकारे ने वाघणिया गाँव में प्रवेश किया। गाँव के सदर फाटक की ड्योढ़ी में चौकीदार भी झिलंगी खाट में पड़ा खर्राटे भर रहा था। उसे सरकारी कागज़ों का बंडल सौंपने के लिए हलकारे को अपने हाथ की घुंघरू वाली लाठी बजाकर जगाना पड़ा।

गाँव के छोर की दो-तीन गलियों में चिट्ठियाँ बाँटकर वह सीधा बाजार की ओर मुड़ गया।

बाजार इतना संकड़ा था कि विपरीत दिशाओं से दो बैलगाड़ियाँ आ जायें तो किसी एक को वापस लौटकर दूसरी को रास्ता देना पड़ता था। इस समय उस बाजार के रास्ते पर यहाँ-वहाँ आवारा ढोर अपना दखल जमाये पड़े थे। हलकारा उनको लांघता हुआ आगे बढ़ा तो उसके पाँव की आवाज़ से ऊँघते हुए कुत्ते जाग उठे और डाक विभाग के इस खाकी वर्दीधारी को देख भौंक-भौंक कर स्वागत करने लगे।

कुत्तों के भौंकने की आवाज़ ने झपकियाँ ले रहे व्यापारियों को जगा दिया। हर अंतरे दिन तीसरे पहर के समय विकराल कुत्तों के भौंकने की आवाज़ डाकिये के आगमन की निश्चित सूचना हुआ करती थी।

ग्रामवासियों की ही तरह हलकारा भी इस वातावरण का अभ्यस्त हो गया था। वाघणिया के कुत्ते सारे जिले में मशहूर थे, इसलिए यहाँ डाक बाँटने के लिए आते समय वह छड़ी लाना कभी भूलता नहीं था। अपने लम्बे कार्यकाल और अनुभव के कारण वह यहाँ के हरएक कुत्ते से परिचित हो गया था। इसीलिए इस समय एक हाथ में डाक का थैला लिये और दूसरे हाथ से छड़ी घुमाता हुआ वह किसी मध्यकालीन योद्धा की तरह वाघणिया के स्यापा पड़े बाजार में आगे बढ़ता जा रहा था। साथ ही अपने पर भूंकने वाले स्वजनों—जैसे परिचित कुत्तों को 'अबे बस कर कालू !' 'अबे चुप भी होजा मोती।' 'बस-बस, बहुत हो गया शेरू !' आदि प्रेम पूर्ण सम्बोधनों से चुपाता हुआ वह डाक भी बांटता जा रहा था।

वाघणिया के व्यापारियों की एक विचित्र आदत थी। किसकी दुकान पर कितनी डाक आती है, इसका वे खास तौर पर ध्यान रखते थे। इस बात का पता लगाने का उनका ढंग भी बड़ा अनोखा था। जिस दुकान के आगे हलकारा रुकता वहाँ से कुत्तों के भूकने की ठहरी हुई आवाज सुनायी पड़ती और जब वह आगे बढ़ता और चलता रहता तो कुत्ते भी उसके पीछे-पीछे चलते हुए भूंकते थे इसलिए भूंकने की चलती हुई आवाज़ सुनायी पड़ती थी। इससे दुकानदारों को अपनी दुकानों के अन्दर बैठ-बैठे पता चल जाता था कि डाकिया किसके यहाँ रुका और कितनी देर रुका रहा।

लेकिन आज वाघणिया के दुकानदारों को एक नया ही अनुभव हुआ। ओतमचन्द की पेढ़ी का दिवाला निकल जाने के बाद उसके यहां डाक भी बहुत कम आने लगी थी। चढ़ती के दिनों में सबसे ज्यादा डाक, यहाँ तक कि वाघणिया की कुल डाक के आधे कागज-पत्तर

ओतमचन्द की दुकान के हुआ करते थे । लेकिन मुफलिसी के इन दिनों उसके यहाँ शायद ही कोई पत्र आता था । परिणाम स्वरूप डाकिये के आने के समय ओतमचन्द की दुकान के आगे कुत्तों के भूंकने की आवाज़ बहुत कम, छठे-छमाहे ही सुनायी पड़ती थी । लेकिन आज बात बिलकुल उलटी हो गयी थी । आज वाघणिया की किसी और दुकान के आगे नहीं, ओतमचन्द की खस्ताहाल दुकान के आगे कुत्ते भूँकने लगे तो आस-पास के दुकानदारों के कान खड़े हो गये ।

दुकानदारों को ज्यादा आश्चर्य तो तब हुआ जब कुत्ते ओतमचन्द की दुकान के आगे काफी देर तक भूंकते रहे ।

अब दुकानदारों का कुतूहल अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया । मसनदों के सहारे विश्राम कर रहे अपने थल-थल शरीरों को उन्होंने कष्ट दिया और गरदनें उठा-उठाकर बाजार की ओर देखा तो डाकिया ओतमचन्द की दुकान के आगे रुका ही नहीं था, कुत्तों के डर से अन्दर जाकर बैठ गया था । वह केवल बैठा ही नहीं था ओतमचन्द को समझा रहा था कि पीले काग़ज़ पर कहाँ-कहाँ दस्तखत करने चाहिए; और ओतमचन्द दावात में सरकण्डे की कलम बोर-बोर कर दस्तखत कर रहा था ।

देखने वालों की आँखें कपाल में चढ़ गयीं ।

दस्तखत हो जाने पर गवाह की जरूरत पड़ी । ओतमचन्द ने सामने वाली दुकान की ओर मुड़कर आवाज़ लगायी : "भूधर भाई, जरा आ तो जाओ, इस पर गवाही करनी पड़ेगी ।"

भूधर भाई बड़ी देर से आँखें फाड़े धनादेश के उस पत्रक की ओर देख रहे थे । अब जो गवाही करने आये और अपने दस्तखत बनाते हुए रुपयों की तादाद देखी तो बेचारों की पुतलियाँ ही बाहर निकल आयीं ! आखिर पूछ ही तो लिया : "कहाँ से आया है ?"

"राजकोट से ।" ओतमचन्द ने कहा : "अपने छोटे भाई नरोत्तम ने भेजे हैं......"

फिर क्या था ? भूधर भाई के मुंह से बात सारे बाजार में और बाजार से सारे गाँव में फैल गयी ।

"ओतमचन्द के घर आज लपसी पकेगी ।"

"किस खुशी में ?"

"मन्याडर आया है ।"

"राजकोट से नरोत्तम ने रुपये भेजे हैं ।"

बिजली की गति से सारे गाँव में कानोंकान खबर फैल गयी । सुनकर कुछ लोग प्रसन्न हुए; कई जल मरे और कुछ लोगों ने बिलकुल स्थितप्रज्ञ की तरह व्यवहार किया । लेकिन जिनकी कल्पना शक्ति अधिक प्रखर थी उन्होंने इस समाचार को सुनकर कुछ ज्यादा ही कुतूहल प्रदर्शित किया :

"क्यों जी, नरोत्तम को इतने रुपये मिले कहाँ से ?"

"राजकोट में क्या रुपये के पेड़ उगे हैं कि आदमी जितना जी चाहे झाड़ ले ?"

"क्या उसने घर में ही टकसाल खोल ली है ?"

ओतमचन्द के हितैषियों द्वारा उठाये गये इन अत्यन्त गम्भीर प्रश्नों का जवाब आसानी से नहीं दिया जा सकता था; इसलिए अन्त में प्रश्नकर्ताओं को ही इनका जवाब देना पड़ा :

"नरोत्तम ने जरूर किसी की तिजोरी काटी है !"

"किसी की दुकान में सेंध लगायी होगी ।"

"राजकोट—जैसे शहर में इतने सारे रुपये क्या फालतू पड़े हैं ?"

"अभी कोई राजकोट गया था, वह बता रहा था कि नरोत्तम स्टेशन पर किसी का खिलौनों का ठेला चलाता है । उस काम में इतना पैसा कहाँ से कमा लिया ?"

"जरूर कहीं हाथ मारा होगा ।"

"स्याह-सफेद कर किसी गरीब को मूँड़ा होगा ।"

और कल्पना के घोड़े इससे भी आगे दौड़ाये गये । अनुमानों और अटकलों के समर्थन भी खोज निकाले गये ।

"स्याह-सफेद करना उसके खानदान के लिए कोई नयी बात नहीं। नरोत्तम भी आखिर ओतमचन्द का ही सगा भाई है! ओतमचन्द ईश्वरिया से दिन दहाड़े दकुभाई के ओसारे में से रुपयों की थैली पार कर लाया था......मकनजी मुनीम आँखों देखी बात कह रहा था...... नरोत्तम ने भी उसी पनिहारे का पानी पी रखा है......बड़े भैया तो बड़े भैया छोटे भैया सुभान अल्लाह......नरोत्तम क्यों उन्नीस उतरने लगा..."

गाँव के लोगों को ओतमचन्द ने कुत्सा-निंदा के कीचड़ मे किल-बिलाता छोड़ा और दुकान मामूल से कुछ जल्दी बन्द कर दी। दरवाजे की ऊपर और नीचे वाली दोनों कुण्डियाँ चढ़ाकर ताले लगाये और फिर आजीविका के उस साधन-स्थल को तीन बार चुपचाप प्रणाम कर वह घर की ओर जाने के लिए कदम बढ़ा ही रहा था कि सामने से एक-टक देख रहे भूधर भाई ने आवाज़ कसी :

"ताले अच्छी तरह खींच और हिला-डुलाकर देख लेना, ओतम-चन्द भाई!"

व्यापारी के व्यंग्य को समझते ओतमचन्द को देर न लगी। लेकिन प्रत्युत्तर में वह मौन, मधुर हंसी-हंसकर रह गया। हाँ, चलते-चलते, अपने को ही सुना रहा हो इस तरह इतना अवश्य कहता गया :

"हज़ार ताले-चाभी में रखो जिसके नसीब का होगा वह तो उसे मिलकर ही रहेगा; दाने-दाने पर खाने वाले के नाम की मुहर लगी होती है......"

इतना कहकर ओतमचन्द ने अंगरखे के नीचे सदरी की अन्दर वाली जेब को हाथ से दबाकर इस बात का इत्मीनान कर लिया कि संभाल कर रखी हुई जोखिम सही-सलामत तो है!"

गाँव वाले इस 'मन्याडर' की खबर सुनकर दंग रह गये थे, लेकिन ओतमचन्द तो इतने निर्विकार भाव से घर पहुँचा मानो कुछ हुआ ही न हो। नित्य नियमानुसार उसने सिर उठाकर देखा तो ओसारे के किनारे खम्भे से टिककर लाडकोर खड़ी थी। ओतमचन्द ने आज कुछ

अधिक गौर से पत्नी के चेहरे की ओर देखा, लेकिन उसे लाडकोर में कोई खास परिवर्तन नहीं दिखायी दिया; केवल उसकी आँखें अन्तर के उल्लास का भेद प्रकट कर रही थीं।

प्रौढ़ हो जाने के बाद इस दम्पती ने आपस में हँसी-मज़ाक करना लगभग छोड़ दिया था। लेकिन आज लाडकोर अपने आपको संयम में न रख सकी। उसने ओसारे की सीढ़ियाँ चढ़ रहे ओतमचन्द से कहा : "रुक जाओ छिन भर; तुम्हारी आरती उतार लूँ......"

"किस खुशी में ?" ओतमचन्द ने पूछा : "मैं क्या बारात चढ़कर आया हूँ !"

"नरोत्तम का मन्याडर जो आया है !"

"तुमसे किसने कहा ?"

"बटुक ने।"

"बटुक को कैसे पता चला ?"

"गली के लड़कों से......"

"ओफ्फोह ! इतनी-सी देर मे बात गली तक भी पहुँच गयी !" ओतमचन्द ने आश्चर्यान्वित होकर कहा : "गजब का गाँव है यह...... कौओं की जमात की तरह। यहाँ कोई बात छिपी नही रहती।"

"अजी, चार-पाँच पड़ोसिनें आकर बधाई भी दे गयीं और कहती गयी कि आज तो जरूर लपसी पकना चाहिए।"

"लपसी ?" ओतमचन्द कुछ देर विचार मग्न हो गया; फिर एका-एक आनन्दित होकर बोल उठा : "होने दो।"

"क्या होने दो ?"

"लपसी, और क्या ?" ओतमचन्द ने कहा : "अदहन चढ़ा ही दो। चार-पाँच पड़ोसिनें कह गयी है तो फिर पंच कहे सो परमेश्वर !"

"सच कह रहे हो या मज़ाक कर रहे हो ?"

"ऐसी बातों में कहीं मज़ाक की जाती है ?"

"लेकिन मन्याडर सच ही आया है या गाँव वालों की निरी गप्प है ?"

"यह गाँव इतना भला नहीं कि अकारण ही हमें इतनी इज्जत बख्श दें।" यह कह कर ओतमचन्द ने अंगरखे के नीचे वाली सदरी की जेब से नये कुर-कुरे नोटों की गड्डी निकालकर पत्नी को दिखायी।

"हाय-हाय, यह क्या करते हो ! इस तरह कहीं ओसारे में दिन दहाड़े जेब से जोखिम निकाली जाती है ?" लाडकोर ने पति को सावधान करते हुए सुझाव दिया : "पटारे में संभाल कर रख दो......"

"लाओ चाभी......" ओतमचन्द ने घर के भीतर जाते हुए कहा।

"चाभी क्या होगी !" पत्नी ने कहा : "पटारा खुला हुआ है। तुमको दूर से आते देखा तो मैंने सावधानी के खातिर पहले ही खोल दिया......"

"भई, तुम्हारी सूझ-बूझ के क्या कहने !" पत्नी के स्त्री-सुलभ उत्साह और सतर्कता की हंसकर दाद देते हुए ओतमचन्द ने कहा : "इन मामलों में कोई तुम्हें पा नहीं सकता।"

"जोखिम को तो संभाल कर रखना ही चाहिये। बेचारे नरोत्तम ने जाने कौनसी नौकरी करके और जाने कितना पसीना बहाकर इतना पैसा इकट्ठा किया होगा......"

"नौकरी करता ही कौन है ?"

"फिर इतना पैसा कैसे कमा लिया ?"

"नरोत्तम भागीदारी में (साझे में) काम करता है.........वह मंचेरशा पारसी की पेढ़ी में हिस्सेदार है। इस कागज को फुर्सत में पढ़ लेना, सब मालूम हो जायेगा।"

"सच ? तब तो तुम्हारे मुंह में घी शक्कर !"

"खाली घी-शक्कर से क्या होगा ? दोनों का मजा तब है जब लपसी भी हो।"

"अभी अदहन चढ़ाती हूँ और फौरन थाली परोस कर लाती हूँ।"

पटारे में नोटों की गड्डी को संभालकर रखते हुए ओतमचन्द ने पूछा : "बटुक कहाँ चला गया ? दिखायी नहीं दे रहा ?"

"मुझे मन्याडर की बात बताकर फिर गली में खेलने चला गया।"

"उसे बुलाकर कह दो कि तेरे लिए नयी और बड़ी घोड़ागाड़ी आ रही है। राजकोट से आने वाले एक आदमी के हाथ भेजी है।"

"नरोत्तम घोड़ागाड़ी की बात अभी तक भूला नहीं है।"

"भूलता कैसे ? काग़ज़ में लिखा है कि अब्दुल सेठ राज़ी हो जायें तो उनसे अपनी घोड़ागाड़ी वापस खरीद लेना।"

"सच ?"

"लो, खुद ही पढ़लो।"

"पहले मुझे लपसी पका लेने दो। कागज़ बाद में, इत्मीनान से पढ़ूँगी।"

"मैं तो लपसी के बारे में मज़ाक कर रहा था, तुम सच मान बैठी !"

"अब तो पका ही लेने दो; तुमने कहा इस खातिर ही सही।" यह कहती हुई लाडकोर रसोई घर की ओर चल दी।

"मैं तब तक आपा भाई काठी के घर हो आता हूं।"

"उनसे क्या काम पड़ गया ?"

"कल के लिए उनकी घोड़ी चाहिए।"

"क्यों ? कहीं जाना है क्या ?"

"अब तो हर तीसरे दिन कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी गाँव जाना होगा।" ओतमचन्द ने कहा : "इस बार सारे इलाके का कपास हम खरीदेंगे।"

"हम ?" मारे आश्चर्य के लाडकोर का स्वर भर्रा गया।

"हम यानी मंचेरशा की पेढ़ी के लिए, नरोत्तम की ओर से।" ओतमचन्द ने इस स्पष्टीकरण के द्वारा पत्नी को आश्वस्त किया।

"तुम्हारा भाई तो शहर में जाकर बहुत बड़ा आदमी बन गया। सारे इलाके की कपास खरीदने की बातें करने लगा।"

"मेरा भाई नहीं, तुम्हारा देवर।" ओतमचन्द ने मन-प्राणों को

छूनेवाली मन्द मुस्कराहट के साथ कहा : "यहाँ से जा रहा था तब तुमने जो आशीर्वाद दिया था वह फलीभूत हो गया।"

लेकिन भोली लाडकोर को अपने इतने बड़े सौभाग्य पर सहसा विश्वास नहीं हो रहा था। पति के दिवालिया हो जाने के बाद उसके मन में हीन भाव घर कर गया था, जिसकी अभिव्यक्ति इस समय एक बचकाना प्रश्न के रूप में हुई :

"बड़े ठाकुर अपने हिस्से की कपास हमारे हाथ बेचेंगे ?"

"पिछले बरसों भी वे हमी को बेचते थे।"

"उन बरसों की बात छोड़ो ····तब हमारी साख कितनी ऊँची थी। लेकिन अब······"

"अब हम से भी ऊँची साख मचेरशा पारसी की है। सरकार की टकसाल से भी ज्यादा सिक्के मंचेरशा की हुण्डियों के उठते हैं। नामी व्यापारी इसी तरह तो मारता है।"

लाडकोर को फिर भी विश्वास नहीं हुआ; इसलिए उसने पूछा :

"क्यों जी, बड़े-बड़े व्यापारी आड़े नही आयेंगे ?"

"हम औरों से एक सैकड़ा भाव बढ़ा देंगे। दाम बनाये काम और लौंडी बजाये सलाम। दुनिया का यही दस्तूर है।"

लाडकोर अपनी एक-एक शंका का समाधान पति के मुँह से सुनती और प्रसन्न होती जाती थी। लेकिन जीवन-नाटक में दरिद्रता के लम्बे-लम्बे दृश्यों के बाद नये जीवन के उषाकाल का जो सुखद दृश्य आरम्भ हो रहा था उस पर उसे सहसा विश्वास नहीं हो पाता था। इसीलिए तो उसने पुनः एक बचकाना प्रश्न पूछा:

"क्यों जी, क्या सच ही ऐसा होगा ?"

"हाँ-हाँ, तुम देखती चलो इस ओतमचन्द के करतब ! एक मौसम ठीक उतर गयी तो बेड़ा पार है।"

"फिर तो तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर !"

"घी-शक्कर नहीं, लपसी चाहिए।" पत्नी की ओर मुग्ध दृष्टि से

देखते हुए ओतमचन्द ने कहा और फिर वहाँ से चला गया।

लाडकोर ने भी जाते हुए पति की ओर वैसे ही मुग्ध भाव से देखा और उस प्रौढ़ दम्पती के जीवन में वर्षों बाद क्षण-भर के लिए नये प्रेमियों—जैसी आह्लादक मधुरिमा दृष्टि मिलन के माध्यम से निर्मित हो गयी।

× × × ×

आपा भाई काठी से घोड़ी की बात तय करके ओतमचन्द जब भोजन पर बैठा तो काफी देर हो गयी थी। उसने बटुक को भी अपने साथ बिठा लिया। लेकिन हर्षोत्फुल्ल लाडकोर ने जब बड़ी उमंग से लपसी परोसना शुरू किया तो ओतमचन्द ने कहा :

"लपसी नहीं, पहले रोटी लाओ।"

"रोटी तो मैंने इस समय बनायी ही नहीं।"

"सवेरे की ठण्डी-बासी जो भी होगी, चलेगी। रोटी पहले, लपसी बाद में।"

"रोटी तो बारहों महीने खाते हैं।" लाडकोर ने कहा : "आज लपसी खाओ।"

"रोटी बारहों महीने नहीं, जिन्दगी-भर खाना है; इसीलिए पहले रोटी और बाद में मिष्टान्न।" यह कह कर ओतमचन्द ने खुलासा किया : "मिष्टान्न तो आज है और कल नहीं; इसीलिए तो आदमी भगवान से लपसी-लड्डू नही सूखी रोटी माँगता है, समझी ? मलाई-रबड़ी नहीं सेर बाजरा ही माँगता है। और जिन्दगी में सेर बाजरा मिलता रहे, इससे बड़ा सुख और क्या है ?"

पति के अत्यधिक आग्रह पर लाडकोर को सबेरे की बासी रोटी परोसनी ही पड़ी। लपसी को ओतमचन्द ने उसके बाद ही हाथ लगाया।

फिर खाते-खाते वह मिष्टान्न के बारे में दार्शनिकता बघारने लगा :

"सुख में आदमी को बौराना नहीं चाहिए और दुःख पड़ने पर घबराना नहीं चाहिए। मिष्टान्न और पकवान सुख की अपेक्षा दुःख में ज्यादा स्वादिष्ट लगते हैं।"

"दुःख में ज्यादा स्वादिष्ट लगते हैं ?"

"हाँ ! तुमने उमंग से लपसी बनायी, उसमें काफी गुड़ डाला तो वह मीठी और स्वादिष्ट तो लगेगी ही। लेकिन बचपन में एक बार बुरे दिनों में मैंने अपने हाथ से लपसी बनायी थी और वह बहुत मीठी—बहुत स्वादिष्ट लगी थी।"

"अपने हाथ से बनायी थी इसीलिए अधिक मीठी लगी?" लाडकोर के स्वाभिमान को इस विचार से चोट लगी कि उसकी पाक कला का कम मूल्यांकन किया जा रहा है।

ओतमचन्द ने स्पष्टीकरण किया :

"नहीं, मैंने अपने हाथ से बनायी थी इसलिए अधिक मीठी नहीं लगी। बहुत दुःख पड़ने के कारण मुँह का स्वाद ही बढ़ गया था। उस समय मेरे पिताजी जीवित थे। माँ तो मुझे और नरोत्तम को छोटे-छोटे छोड़कर ही मर गयी थी। मैं पिताजी के साथ दुकान पर भी बैठता और घर लौटकर खाना भी बनाता। उन दिनों कपास की खेती आज की तरह बड़े पैमाने पर नहीं की जाने लगी थी, इसलिए हमारे यहाँ घी का बड़े पैमाने पर व्यापार होता था। एक बार रात में किसी ने हमारे बखार में सेंध लगायी और घी के लबालब भरे बीस कुप्पे चुरा ले गया। सवेरे जब चोरी का पता चला तो पिताजी बेचारों के हाथ के तोते उड़ गये ! मैं नासमझ बच्चा ही था, इसलिए फूट-फूट कर रोने लगा। पिताजी ने किसी तरह समझा-बुझाकर चुप किया। बखार का तो सारा घी चोरी हो गया था; लेकिन दुकान में फुटकर बिक्री का एक कुप्पा रखा हुआ था। पिताजी ने वह कुप्पा मेरे हाथ में देते हुए कहा कि घर जाकर फौरन लपसी का अदहन चढ़ा दे ! मैंने कहा कि हम तो लुट गये और आप लपसी बनाने की बात कह रहे हैं ! पिताजी बोले, चोर बीस कुप्पे चुरा ले गया इसलिए मनों से घी खायेगा तो क्या हम पाव सेर-आधा सेर घी भी अपने पेट में न डालें ? उस दिन हमने खूब घी डाल-डालकर लपसी खायी और उसका स्वाद

आज तक मेरे मुँह में घुला हुआ है। उसके बाद हजारों बार लपसी खायी होगी, लेकिन वैसा स्वाद और वैसी मिठास फिर कभी नहीं आनी।"

इतना कहकर ओतमचन्द छोटे बच्चे की तरह खिलखिला कर हँस पड़ा।

बटुक की रुचि न लपसी में थी और न रोटियों में और न इन दोनों पदार्थों की दार्शनिक मीमांसा में। वह तो काका के यहाँ से आने वाली नई घोड़ागाड़ी की बातों में मस्त हो रहा था। वह गाड़ी कैसी होगी, उसका घोड़ा कैसा होगा आदि सवालों के आगे उससे पेट भर कर खाया भी न गया।

रात में दोनों दु:खी पति-पत्नी इत्मीनान से बातें करने बैठे।

ओतमचन्द को अपने जीवन की ऐसी ही कुछ दु:ख भरी रातें याद हो आयीं। जिस दिन वह दिवालिया घोषित हुआ था वह रात……जिस दिन नरोत्तम ने शहर जाने की ज़िद की थी वह रात……जिस दिन बटुक बिना खाये सो गया था और लाडकोर ने उसे ईश्वरिया जाने की सलाह दी थी वह रात………और जिस दिन वह मौत के मुँह से बचकर ईश्वरिया से खाली हाथ लौटा था और लाडकोर के आगे झूठ बोला था वह कभी न भुलायी जाने वाली रात……उन सभी रातों को ओतमचन्द व्यग्र हुआ था; उन सभी घटनाओं ने उसके हृदय को सन्तप्त कर दिया था, मगर आज वह प्रफुल्लित था। उन रातों की व्यग्रता उद्वेगजनित थी, आज की रात की व्यग्रता परितोषजन्य। और इसीलिए आज का रात्रि-जागरण उसे अशान्तिकारक नहीं, मीठा लग रहा था।

लाडकोर ने लालटेन के उजाले में नरोत्तम के पत्र को कई बार पढ़ा, फिर भी उसे सन्तोष न हुआ। वह हर बार उसमें से नये अर्थ ढूँढ़ती रही। नरोत्तम के इस नये काम में जो अपार सम्भावनाएँ निहित थीं उन्हें ओतमचन्द उसे समझाता जाता था और वह अधिकाधिक आनन्द का अनुभव करती जाती थी।

शेख चिल्लियों की तरह नहीं, पूरी तरह स्वस्थमना इस दम्पती ने नव-जीवन के सुखद सपनों को मानों साकार होते देखा और उन सपनों की माधुरी में लम्बी रात कब और कैसे बीत गयी उन्हें पता ही न चला।

सवेरा होने से पहले ओतमचन्द उठ खड़ा हुआ और प्रातः कर्मों से निवृत्त होकर आपा माई काठी के यहाँ पहुँच गया। पिछली साँझ की व्यवस्था के अनुसार जब वह घोड़ी को कस कर अपने इलाके के गाँवों का चक्कर लगाने के लिए निकला तो पूर्वाकाश में उषा की लाली ढेर-ढेर ढुलकने लगी थी।

२६
चम्पा का मंगेतर

"तौबा तेरे से !"

"तुझ से तो अब तंग आ गये !"

"बालिश्त-भर की छोकरी ने हमको तिनगी का नाच नचा मारा।"

मनसुख भाई बहुत नाराज होकर चिल्ला रहे थे। मामा की सिंह-जैसी उग्र गर्जनाओं के आगे गरीब हिरनी-जैसी चम्पा धीमी आवाज में बोल रही थी :

"मामाजी, इसमें मेरा क्या कुसूर ?"

"आप बेकार मुझ पर नाराज़ हो रहे हैं !"

"मामाजी, मैंने आपका क्या बिगाड़ा ?"

चम्पा को यों गिड़गिड़ाते देख मनसुख भाई का गुस्सा और भड़क उठा :

"हमारा तू क्या बिगाड़ेगी ? खुद अपना ही भाग्य बिगाड़ रही है।"

"मेरे भाग्य में जो लिखा होगा होकर रहेगा।"

"लो, और सुनो इस छोकरी की बातें। कहती है, मेरे भाग्य में जो लिखा होगा होकर रहेगा !" मनसुख भाई का पारा और चढ़ गया : "तू बचपना करे तो क्या हम भी तेरे साथ बच्चे बन जायें ? हमें तो तेरा हित देखना होगा न ?"

'कभी-कभी हित करते अहित भी हो जाता है।"

"क्या बकती है ?" मनसुख भाई फिर गरजे : "जबान बहुत चलने लगी है, क्यों ?"

मामा को गरजते देख चम्पा इस तरह कांप उठी कि उसके मुँह से बोल भी न फूटा। भानजी के इस मौन ने मनसुख भाई के गुस्से को और भड़का दिया।

"हम तो तुझसे परेशान हो गये।" मामा ने उस पर गुस्सा निकाला : "तूने हमारी इज्जत मिट्टी में मिला दी।"

"आपकी इज्जत मैं क्यों मिट्टी में मिलाने लगी ? क्या मुझे आपकी इज्जत प्यारी नहीं ?" चम्पा बहुत धीमे स्वर में बोल रही थी : "आपकी और मेरी इज्जत क्या अलग-अलग है ?"

"लेकिन मेरी तो नाक कट गयी।"

"किस तरह ?" चम्पा ने पूछ ही तो लिया।

"अभी तुझे पूरी तरह जानना बाकी ही रह गया है ?" मामा ने कहा : "मुन्सिफ के लड़के को मना करके तूने हमारी नाक कटवा दी।"

चम्पा के मन में तो आया कि कह दे, "नाक कट गयी तो अब नयी नाक से दिवाली मनाना........' लेकिन अवसर की गम्भीरता देख चुप रहना ही ठीक समझा।

"हमारे लिए डूब मरने की बात हो गयी। मुन्सिफ-जैसे बड़े अफसर के सामने सिर उठाने लायक भी तूने हमें नहीं रखा।" मनसुख भाई एक ही बात तो घुमा-फिरा कर अलग-अलग तरह से कह रहे थे : "तूने हमारी लाख रुपये की इज्जत दो कौड़ी की कर दी......"

"लेकिन मामाजी, उसमें मैं क्या करूँ ? मेरा क्या कुसूर ?"

"तुझे तेरा कुसूर अभी समझाना पड़ेगा क्या ? ज़रा, यह तो सोचा होता कि मुन्सिफ-जैसे आला अफसर का घराना किसके भाग्य में ? और मामूली आदमी की बात वे कान पर धरते भी हैं ? यह तो मेरी साख का खयाल कर किसी शुभ मुहूर्त में उन्होंने हाँ करदी और लड़का तुझे देखने चला आया। और तेरे भाग्य अच्छे रहे होंगे और मेरे हाथ में यश लिखा होगा जिससे लड़के ने तुझे पसन्द कर लिया। और इस लौंडिया के मिजाज तो देखो कि मना करके परे खड़ी हो गयी !"

"मना न करती तो क्या करती ?"

"मना करने के लिए उसे यहां बुलाया था ? हमारी नाक कटवाने के लिए उसे यहाँ लाये थे ?"

"लेकिन इसमें मेरा क्या कुसूर ?"

"नहीं, कुसूर तेरा नहीं हमारा है क्योंकि हमीं ने आगे रह कर यह सब किया।" और मनसुख भाई फिर जली-कटी सुनाने लगे : "तेरे फूटे भाग्य में ऐसा-मान-मरतबे वाला खानदान है ही कहाँ ? मिट्टी के देवता को तो बिनौले की ही आँखें शोभा देती हैं। तेरी किस्मत में मुन्सिफ का घराना नहीं उस नरोत्तम-जैसा फटीचर ही लिखा है ।"

"मामाजी, और चाहे जो भी कह लीजिये, मगर उनके बारे में कोई ओछी बात मत कहिये ।"

"क्यों नरोत्तम के लिए बड़ी हमदर्दी है तेरे मन में ?"

"हाँ, है ।"

"क्या कहा ?"

"हाँ, हाँ, हाँ........"

"अभी भी ? सब कुछ खत्म हो जाने के बाद भी ?"

"हाँ ।" चम्पा ने साहस बटोर कर कह ही दिया ।

सुन कर मनसुख लाल स्तब्ध रह गये । उन्होंने डरपोक दिखायी देने वाली चम्पा से ऐसे धृष्ट उत्तर की अपेक्षा नहीं की थी ।

चम्पा उत्तेजना में ऐसा जवाब देने को तो दे गयी, लेकिन अब उसकी समझ में आया कि बड़ी धृष्टता हो गयी । यह धड़कते हृदय से प्रतीक्षा करने लगी कि इस दुस्साहस के लिए मामाजी की ओर से तोप ही दग जायगी ।

लेकिन उसकी यह आशंका निर्मूल सिद्ध हुई । मनसुख लाल ने एक शब्द भी न कहा ।

चम्पा को आश्चर्य हुआ ।

मामा न केवल चुप रहे, थोड़ी देर बाद इस तरह कमरे के बाहर चले गये मानों कुछ हुआ ही नहीं ।

अब चम्पा जरूर डर गयी। मामा का मौन उस मासूम लड़की की घबराहट का कारण हो गया :

× × ×

"क्यों धीरज बेटी, कैसी हो ?"

दुपहर बाद, काम-काज से छुट्टी पा, धीरज मामी ओसारे में पाँव पर पाँव चढ़ाये आराम से बैठी सुपारी काट रही थी कि गलियारे के अधखुले दरवाजे की राह परिचित स्वर सुनायी दिया।

"कौन, कीला भाई ? आओ, आओ।" धीरज ने स्वागत किया :

"आज इतने दिनों बाद सूरत दिखायी है। कोई नयी तरह की कंघी लाये हो क्या ?"

"मैं न तो कंघी लाया और न खम्पारा ही। तुम्हारे-जैसी बड़ी सेठानी अब मुझसे कंघी क्यों खरीदने लगी ?" कीला ने कहा : "इधर से खाली हाथ जा रहा था, तुम दिख गयी, सोचा, बिटिया के हाल-चाल पूछता चलूँ।"

"बहुत अच्छा किया; आओ, बैठो !"

"जानती हो, किस नाते से तुम्हें बेटी कहता हूँ ?" कीला ने पूछा।

"नहीं तो।"

"अच्छा बताओ, तुम्हारी ननिहाल कहाँ है ?"

"राणसीकी।"

"और कुटुम्ब ?"

"देवाणी।"

"तो हम दोनों एक ही गोत्र के हुए। राणसीकी मेरे भी मामा का गाँव और कुटुम्ब देवाणी। तेरे पिता और मैं दूर के रिश्ते के भाई होते हैं।"

"सच !"

"हाँ।" कीला ने कहा : "तुझे तो क्या ही याद होगा, लेकिन जब तू छोटी थी तो मैंने तुझे गोद में खिलाया है।"

"सच ?" धीरज खुश हो उठी ।

"हाँ । तू तुतला-तुतला कर बोलती थी और मुझे 'काका-काका' कहा करती थी ।"

कीला के उपजाऊ दिमाग ने ही यह रिश्ता खोज निकाला था; और वह थोड़ी ही देर में धीरज मामी से घुल-मिल गया ।

कीला यहाँ इस बात का इत्मीनान करके ही आया था कि मनसुख लाल दुकान जा चुके हैं। अब उसने दुनिया भर की बे सिर-पैर की बातें शुरू कर दीं । आज तक इस व्यापारी के ग्राहक-समुदाय का बड़ा भाग औरतें ही रही थीं, इसलिए मीठी-मीठी बातें करके उनसे घुल-मिल जाने और अपनापन कायम करने की कला में वह सिद्ध-हस्त हो चुका था । न जाने कहाँ से वह रिश्ता-नाता ढूँढ निकालता और सामने वाले आदमी को बातों में बहा ले जाता । इस तरह लोगो के मन जीतना उसके बाँयें हाथ का खेल हो चुका था । इस समय भी बातें तो यहाँ-वहाँ की और ऊटपटांग ही कर रहा था लेकिन निगाहें घूम रही थीं, ओसारे के चारों कोनों पर और ठेठ कमरे के अन्दर तक ।

"ऐसी भौंडी कंघी से तू अपने बाल औंछती हैं ?" धीरज ने निकट पड़ी हुई कंघी की ओर इशारा करते हुए कीला ने कहा ।

"इससे बढ़िया कंघी तुम दे जाओ तभी न मेरे पास हो !" धीरज ने जवाब दिया ।

"मैं क्यों दे जाऊँ ? बम्बई से क्यों नही मंगाती ?" कीला ने कहा :

"ऐसी भौंडी कंघी देखकर तेरे बदले मुझे शर्म आती है ।"

"हम गरीबों को ऐसे चोचले नहीं सुहाते........"

"तुम गरीब हो ? मनसुख भाई की सेठानी और गरीब ? मनसुख भाई भी कौन—विलायती पेढ़ी के मुनीम; उपासरे के आगेवान; धर्म के संरक्षक; बिरादरी के मुखिया; बड़े आदमी........"

मनसुख भाई का विरुद बखानते-बखानते कीला सहसा चुप हो गया । अन्दर के कमरे में उसे किसी की घूमती-फिरती परछाईं दिखायी दे गयी थी । पूछा :

"कोई मेहमान आया है क्या ?"

"हाँ; मेंगणी से मेरी भानजी आई हैं—चम्पा ।"

"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा !" कह कर कीला ने एकदम सहज भाव से पूछा : "मामा के यहाँ यों ही घूमने-फिरने आयी होगी ?"

"आयी तो है काम से, लेकिन काम पार लगता दिखायी नहीं देता ।"

"कीला ने मानों सुना ही नहीं; पहले की ही तरह सहज भाव से पूछा : किस गाँव शादी की है भानजी बिटिया की ?" कीला ने इतनी सी देर में उस अनजान लड़की से 'भानजी बिटिया' का रिश्ता बना लिया ।

जवाब में धीरज ने बड़े नाटकीय ढंग से लम्बी साँस लेकर कहा : "अरे, भाग्य में विघ्न न लिखा होता तो आज बेचारी शादी-ब्याह कर अपनी ससुराल में होती........"

"ऐं ? ऐसा क्या विघ्न आ पड़ा ?"

"विघ्न तो मुआ ऐसा कि न कहते बने और न सहते बने ।"

धीरज की इस बात ने दो व्यक्तियों की जिज्ञासा जाग्रत कर दी ।

अपने बारे में क्या बात हो रही है, यह जानने के लिए चम्पा किवाड़ों की ओट में छिप कर खड़ी हो गयी; और नरोत्तम की एक बार की वाग्दत्ता की जीवन-धारा कहाँ तक पहुँची है, यह जानने को कीला उत्सुक हो उठा ।

और फिर तो कीला अपने असाधारण कौशल से धीरज को बात-चीत के प्रवाह में घसीट लाया । दिखावा तो उसने ऐसा किया मानों इस मामले में उसे कोई सरोकार नहीं; लेकिन पूछने योग्य और न पूछने योग्य सभी तरह के सवाल पूछ-पूछ कर उसने बहुत कुछ बल्कि सभी कुछ जान लिया । और धीरज ने भी चम्पा के बारे में सब-कुछ, यहाँ तक कि पूरा राई-रत्ती हाल बता दिया ।

"इत्ते लड़के दिखाये, इसे एक भी मंजूर नहीं हुआ । मुन्सिफ के लड़के तक को तो मना कर दिया, औरों की बात ही क्या ?"

"क्या कारण हो सकता है ?"

"कौन जाने भई !" धीरज ने कहा : "किसी के मन का भेद क्या जाना जा सकता है ? मनमाने की बात है ।"

कीला जिस ढर्रे पर लाना चाहता था बातचीत लम्बे प्रयत्नों के बाद उसी ढर्रे पर आ लगी थी । अब अपने उद्देश्य को पूरा करने लिए वह बातचीत को उसी ढर्रे पर लगाये रखना चाहता था कि उसके सौभाग्य से धीरज ने स्वयं ही पूछ लिया :

"कीला भाई, उस दिन स्टेशन से बोझा ढोने वाले को तुमने भेजा था ?"

"हाँ; शायद मैंने ही भेजा था ।"

अन्दर के कमरे में छिपकर खड़ी चम्पा इस संवाद को सुनकर चौकन्नी हुई । वह गौर से सुनने लगी ।

"वह आदमी कौन था, जानते हो ?" धीरज ने आगे पूछा ।

"स्टेशन पर तो हजारों आते और हजारों जाते हैं । मैं सभी को कैसे जान सकता हूँ ?"

"उसका नाम-पता कुछ मालूम है ?"

"मैं तो सिर्फ आदमी की शकल याद रखता हूँ, नाम-पता नहीं ।" कीला ने कहा : "नाम तो मैं अपना खुद का ही भूल गया हूँ ।"

"क्या वह आदमी अब भी स्टेशन पर है ?"

"स्टेशन पर कोई आदमी क्या हमेशा बना रहता है ? वह जगह तो धर्मशाला की तरह है । मालगाड़ी के सामान की तरह आदमी आता है और चला जाता है । वहाँ तो आवारे ढोर भी रोज नये-नये आते हैं ।" इतना कहकर कीला आगे बोला : "स्टेशन मास्टर और टिकट बाबू की भी बदली होती रहती है । स्टेशन पर कोई चीज़ स्थायी रूप से नहीं रहती । केवल यह कीला, दखलशा फकीर और भगला पागल हैं, जो स्थायी रूप से डेरा डाले पड़े हैं ।"

"अच्छा तुमने जिस आदमी को भेजा था उसका नाम-पता कहीं से मिल सकता है ?" धीरज की पूछताछ जारी रही ।

"उस कुली कबाड़ी के नाम की तुझे क्या जरूरत पड़ गई है ?"

"मुझे नहीं........."

"तब किसे ? मनसुख भाई सेठ को ?"

"नहीं, उन्हें भी नहीं।"

"फिर ?"

एक क्षण तो धीरज सोच-विचार में पड़ गई कि अब इस नाजुक मसले को जारी रखना ठीक होगा या नहीं; लेकिन जानने की अभिलाषा इतनी उत्कट थी कि वह अपने को रोक न सकी, अतः आगे बोली :

"बात अपने ही मन में रखने-जैसी है......"

"यह भी क्या कीला से कहना होगा बिटिया ?"

कीला ने धीरज को इतनी बार 'बेटी-बेटी' कहकर सम्बोधित किया था कि उसकी सारी हिचक जाती रही, और वह बोली :

"बात यह है कि वह आदमी हमारे घर तक आकर सामान पहुँचा गया, उस दिन से........."

धीरज फिर रुक गयी।

"उस दिन से क्या हो गया ? बता बिटिया, घबरा क्यो रही है ?"

"उस दिन से हमारी चम्पा ने उसकी रट लगा रखी है।"

"सच ? मजदूर की रट लगा रखी है ?",

"उसे मज़दूर कैसे कहा जाये ?"

"क्यों नहीं कहा जा सकता ? मजदूरी करेगा वह मजदूर तो होगा ही।"

"लेकिन हमें वह मजदूर-जैसा नहीं लगा।"

"मजदूर-जैसा नहीं तो फिर कैसा लगा।

"किसी से कहोगे तो नहीं ?"

"इस कीला से यह भी कहना होगा, बिटिया ?"

"वह आदमी चम्पा बिटिया के मंगेतर-जैसा लग रहा था।"

सुनकर कीला जोर से हो-हो कर हँस पड़ा। मारे हँसी के दुहरे हो

रहे कीला को देखकर धीरज आश्चर्य में पड गयी। काफी देर हँसते रहने के बाद कीला बोला :

"तुम पगला तो नहीं गयी हो ! बात ही ऐसी कह दी कि मरे गधे को भी हँसी आ जाये ! चम्पा का मंगेतर क्यों करने लगा ?"

"यह मानने को जी तो हमारा भी नहीं चाहता, लेकिन चम्पा रानी पक्का यकीन किये बैठी है। और इसीलिए........."

"इसीलिए क्या ? रुक क्यों गयी, बोलो !"

धीरज ने अपनी आवाज को बहुत धीमा करके कहा :

"उसी दिन से वह खोयी-खोयी रहने लगी है और सोते-जागते उसी का नाम रटा करती है।"

२७

कहीं से खोज निकालिये !

"पधारिये प्रभूलाल सेठ, पधारिये

अपनी कोठरी के बाहर चबूतरे पर कीला बैठा था; नरोत्तम को आते देख उसका स्वागत करते हुए कीला ने बड़े तपाक से कहा :

"अजी······आइये, आइये, सेठजी, पधारिये !"

कीला उठकर कोठरी में गया और डामची* पर से हीराकणी† की खोल वाली गुदड़ी उतार कर जमीन पर बिछादी। और फिर स्नेह पगे शब्दों में सोत्साह अनुरोध किया : "बिराजिये, बिराजिये, प्रभूलाल सेठ !"

नरोत्तम की हँसी तो पहला स्वागत-वाक्य सुनते ही छूटने लगी थी, अब वह खिल खिलाकर हँस पड़ा और बोला :

"कीलाभाई, इस गरीब आदमी की हँसी क्यों उड़ाते हो ?"

"अबे, क्या ठिठोली मर गयी जो हँसी उड़ाऊँगा ?"

"लेकिन मुझसे ठिठोली, कीलाभाई ? तुम्हारे 'मोटे' से ठिठोली ?"

"अब तुझे 'मोटा' कहकर नहीं पुकारा जा सकता।" कीला ने निर्णयात्मक स्वर में कहा।

"मोटा से तुमने प्रभूलाल बना दिया, यहाँ तक तो खैर कोई

---

* डामची-बिस्तर रखने की लकड़ी की घोड़ी अथवा घड़ोची।

† हीराकणी-काँच के टुकड़ो और सितारों टँका सौराष्ट्र का कलात्मक वस्त्र।

बात नहीं। मगर अब प्रभूलाल सेठ कहते हो तो मैं शर्म से गड़-सा जाता हूँ।"

"सेठ अगर न कहूँ तो अपमान होता है।"

"कैसी बात करते हो कीलाभाई ? मैं तो तुम्हारे लड़के जैसा हूँ।" नरोत्तम ने कहा : "मेरा मान क्या और अपमान क्या ?"

"बात तेरे मान-अपमान की नहीं है मोटे ! बात है मंचेरशा डमरी के मान-अपमान की।" कीला ने स्पष्टीकरण किया : "तुझे प्रभूलाल सेठ कहकर नहीं बुलाऊँ तो मंचेरशा की पेढ़ी का अपमान होता है। ऊँचे पद का मान-सम्मान तो किया ही जाना चाहिये, मोटे !"

"लेकिन जब तुम्हीं सेठ कह कर पुकारते हो तो मुझे बड़ी परेशानी होती है।"

"तू अभी तक नासमझ का नासमझ ही रहा। इतने दिन कीला की शागिर्दी करने के बाद भी दुनियादारी की समझ न आयी सो नहीं ही आयी ! मैंने तुझ से कम-से-कम हजार बार तो कहा ही होगा कि खाली गाँठ का गांगला और गाँठ का पूरा गांगजी भाई...आदि काल से यही होता आया है। बिन टका नर टकटकायते ! इस कीला की गाँठ में अगर कल पाँच पैसे हो जायें तो सब 'कीलाचन्द भाई-कीलाचन्द भाई' कहकर सलामे दागने लगें और बड़े-बडे धन्ना सेठ और अहलकार-मुसद्दी भाई-भाई करने लगे। समझे प्रभूलाल सेठ ?"

"देखो, फिर तुमने मुझे सेठ कहा।"

"अरे बौड़म, सेठ बनने के लिए दुनिया वाले क्या नहीं करते ? और तुझे सेंत में सेठ बनना मिल गया तो यों मुँह बिगाड़ रहा है मानों गिलोय का सत पिला दिया हो !"

"मैंने भी तुम्हारी तरह बहुत सेठाई देखी है, जानी है और भोगी भी है। मेरे लिए यह कोई नयी बात थोड़े है।"

इसलिए तो मैं सच्चे आदमी के सिवाय किसी को सेठ नहीं कहता। बड़े-से बड़े मानधाता को भी अपने आगे कुछ नही गिनता। वह लखपति है तो होगा अपने घर का। इस कीला का मिजाज किस करोड़ पति से कम है। क्या तू इस बात को नही जानता ?"

"जनता क्यों नहीं ? जरूर जानता हूँ और खूब अच्छी तरह जानता हूँ।"

"तब ठीक है"। कीला ने कहा ! "मैंने खुद सेठाई छोड़ने के बाद, आजतक सिर्फ दो आदमियों को सेठ कहकर बुलाया है......"

"कौन हैं वे भाग्यवान ?"

"एक तो मंचेरशा डमरी......सच्चा, पैदाइशी अमीर है वह"

"और दूसरा ?"

"राजमान राजेश्री सर्व शुभोपमा लायक श्री पाँच प्रभूलाल सेठ।"

"यह कौन है ?"

"इसे पहचानने में अभी तुझे समय लगेगा, इसका असली नाम तो नरोत्तम सेठ है। मूल निवासी वाघणिया का, लेकिन इन दिनों मंचेरशा की पेढी के प्रधान पद पर बैठा है। इसे पहचानने में तुझे अभी समय लगेगा, मोटे ! इस नये सेठ का नाम तेरी जबान पर जरा देर से ही चढ़ सकेगा।"

कीला ने चेहरे को यथासम्भव गम्भीर बनाये रख इतनी बात तो कह दी, पर वह इसके बाद गम्भीरता को टिकाये न रख सका। फौरन नन्हें बच्चे जैसी निर्दोष हँसी हँस दिया।

नरोत्तम का हृदय अपने इस बुजुर्ग की स्नेहपूर्ण हँसी से आप्लावित हो गया। इस स्नेह का प्रत्युत्तर उसने हृदय की मूक वन्दना के द्वारा प्रदान किया।

गम्भीर होने के बाद कीला ने पहला ही सवाल यह पूछा :

"व्यापार-धन्धे के क्या हाल हैं ?"

"अच्छे।"

"आढ़त का काम ?"

"भाई साहब ने अपने जिम्मे ले लिया है।"

"बहुत बढ़िया। आढ़त और दलाली के काम में मंचेरशा को ऐसा भरोसे का आदमी दूसरा न मिलता दूसरे लोग एक तो दुगुनी दलाली का

हिसाब बनाते हैं, ऊपर से मुनाफा मार लेते हैं, सो अलग! मनसुख भाई वाली विलायती पेढ़ी इसी वजह से तो पनप नही पाती।"

"हमारी तो इस मौसम मे वाजिब दरो पर और काफी देर तक खरीदारी होती रहेगी।" नरोत्तम ने कहा : "भाई साहब ने उधर के सभी ठाकुरो-जागीरदारो के हिस्से का कपास ले लिया है......भाव दूसरो की अपेक्षा एक सैकड़ा ज्यादा देना पड़ेगा, और भाई साहब की दलाली छोड़कर भी विलायती पेढ़ी से हमे माल सस्ता पड़ेगा।"

"वाह ! शाबाश !"

"इस साल माल सोलह आने उतरा है; मगर अपनी पेढ़ी में बीस आने उतरेगा।"

"वाह शाबाश !" नरोत्तम को शाबाशी देने के बाद कीला ने कहा ! "अगर ऐसे ही पाँच मौसम लगातार हो जायें तो मनसुख भाई वाली पेढ़ी को बोरिया-बिस्तरा समेटना पड़े।"

"ऐसा नही हो सकता।"

"अगर यह भविष्यवाणी गलत हो जाये तो कीला मूँछ मुड़ा लेगा।"

"विलायती पेढ़ी का मुकाबला हम कैसे कर सकते हैं; उसके आगे हमारी बिसात ही क्या ?" नरोत्तम ने कहा।

"पेढ़ी विलायती होने से क्या होता है ? व्यापार में अनुभव होना चाहिए। उसके मुनीम मनसुखलाल को तो इतनी तमीज भी नहीं कि गज में कितने अंगुल होते हैं।" कीला ने कहा : "अभी तक बाजार में कोई मुकाबले पर नही था, इसलिए काठ की तलवार से लड़ रहे थे। अब आटे-दाल का भाव मालूम होगा और पता चल जायेगा कि कितने बीसी का सौ होता है।"

इस आत्म विश्वास से भरी वाणी को सुनता हुआ नरोत्तम कीला की ओर विस्फारित आँखों से देख रहा था तभी कीला ने कहा :

"इस तरह आँखें फाड़े क्या देख रहा है ? यकीन न आता हो

तो लिखले लाल किताब में—एक-एक अक्षर लिखले। अगर बात झूठ निकल जाये तो यह कीला मूँछ मुड़ा लेगा, मूँछ; समझा ?"

बार बार मूँछ मुंड़ाने की बात पर नरोत्तम को मन-ही-मन हँसी आ गयी। यह देख कीला ने फिर टोका :

"मेरी बात तेरे गले अब भी नहीं उतरी, क्यों ? लेकिन मोटे, तेरे ग्रह इन दिनों बहुत अच्छे हैं।"

"मेरे ग्रह बहुत अच्छे हैं, यह तुमने कैसे जाना?" नरोत्तम ने मज़ाक में पूछा : "क्या तुम्हें ज्योतिष आता है ?"

"इसमें ज्योतिष क्या करेगा ? यह कीला तो सभी कुछ आँखो के सामने प्रत्यक्ष देख रहा है।"

"प्रत्यक्ष क्या देख रहे हो ?"

'जो देखा और देख रहा हूँ, उसे अभी नहीं बताऊँगा। सब अपने आप पता चल जायेगा।"

"पत्रा देख आये हो क्या ?" नरोत्तम ने फिर चुटकी भरी।

"पत्रा देखे ज्योतिषी। इस कीला को पत्रा-पंचांग की कोई जरूरत नहीं। मैं तो भविष्य को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देख आया हूँ। उसमें मीन-मेख नहीं हो सकती।"

कीला जान बूझकर गोल-मोल बातें कर रहा था ताकि नरोत्तम की जिज्ञासा बढ़े और वह कुछ पूछे।

और आखिर नरोत्तम कुतूहल का मारा पूछने के लिए विवश हो ही गया : "तुम कहाँ गये थे और क्या देख आये हो ?"

"मैं गया था मनसुखलाल भाई के यहाँ......"

"मनसुखलाल भाई के यहाँ ?" नरोत्तम चौंका।

"हाँ, मनसुखलाल भाई के यहाँ ! तुझे इतना आश्चर्य क्यों हो रहा है ? यह कीला तो सारे गाँव का चूहा है। मैं तो बड़े-बड़े साहूकारों के यहाँ भी पहुँच जाता हूँ, फिर मनसुखलाल किस खेत की मूली है ?"

"तुम उसके घर गये क्यों थे ?"

"क्यों गया था ? इस कीला को किसी के यहाँ जाने के लिए कोई बहाना चाहिए ? मै गया था अपनी बिटिया का हाल-चाल पूछने ।"

"तुम्हारी बिटिया कौन ?"

"मनसुख भाई की बीबी, धीरज ।" कीला ने कहा : "मैं उसके हाल-चाल पूछने गया था । धीरज दूर के रिश्ते में मेरी बेटी होती है, समझा ?"

इतने दिन साथ रहकर नरोत्तम यह अच्छी तरह समझ चुका था था कि कीला भाई की यह रिश्ते-नाते वाली बात सिरे से मनगढ़न्त होती है ।

"क्यों बे, मुस्करा क्यों रहा है?" कीला ने बनावटी गुस्से से कहा : "क्या मैं गलत कहता हूँ ?"

"नही-नहीं ! यह मैंने कब कहा कि गलत कह रहे हो ?"

"फिर मेरी ओर यों दीदे निकालकर क्या देखता है ?" कीला ने पूछा ।

नरोत्तम ने कोई जवाब नही दिया ।

"क्यों बे, चुप क्यों हो गया ! मुँह में दही जमा है क्या ? बोलता क्यों नहीं ?"

"क्या बोलूँ ?"

"कुछ पूछता क्यों नही ?"

"क्या पूछूँ ?"

अब कीला को हँसी आ गयी। बोला :

"अबे, हम से उड़ता है ! जो पूछना चाहता है, क्या हम जानते नहीं ? इस कीला ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली है, हाँ ! हम सारी दुनिया को अपनी टाँग के नीचे से निकाल चुके हैं । तू क्या पूछना चाहता है, हम खूब जानते हैं । दूध पीते बच्चे नहीं है ।"

"जब जानते हो तो बताते क्यों नहीं कि मै क्या पूछना चाहता हूँ !"

"तू चम्पा के बारे में पूछना चाहता है। बोल, सच है या गलत? चम्पा क्या करती है और उसका क्या हुआ, यही तुझे मालूम करना है। ठीक है न ?"

नरोत्तम ने शरमाकर नकार में सिर हिला दिया।

"अबे, उल्लू की दुम ! मुँह भावे और मूड़ हिलावे।"

कीला फिर उसे प्यार-भरे स्वर में डाँटने लगा : "हमीं को उलटी पट्टी पढ़ा रहा है, क्यों ? इस कंघी वाले का गुरु बनने चला है, क्यों बेटा ?"

"किसकी मजाल कि तुम्हें उलटी पट्टी पढ़ाये ?" नरोत्तम ने अभ्यर्थना के स्वर में कहा : "तुम तो अच्छे-अच्छों को घोलकर पी जाओ ! इस दुनिया में तुम्हारा गुरु बनने का बूता किसका है ?"

"अब आया रास्ते पर।' नरोत्तम द्वारा अपनी सामर्थ्य की स्वीकृति पर आत्म सन्तोष का अनुभव करते हुए कीला ने कहा : देख, मैंने तेरे मन की बात किस तरह मालूम करली !"

"जब मालूम कर ही चुके हो तो बता दो। मुझे जो पूछना है वह मेरे बिना पूछे ही बता दो।"

"मैं बता दूँ ? हर्गिज नहीं। मर भले ही जाऊँ, पर बताऊँगा नहीं।" कीला फिर सनक गया।

"मुझसे कोई गलती हो गयी है क्या ?" नरोत्तम ने हँसते हुए पूछा।

"गलती ? बहुत बड़ी गलती ! मेरा गुरु बनने की कोशिश की, यह क्या कोई मामूली गलती है ?"

"इसके लिए माफी माँगता हूँ। माफ कर दीजिए कीला भाई साहब।" नरोत्तम ने कृत्रिम गम्भीरता से कहा।

"इस कीला के पास माफी कैसी और वाफी कैसी ?"

नरोत्तम को कीला की इस तरह की स्नेहभरी ज्यादतियों का काफी अनुभव था। वह जानता था कि थोड़ी देर सताने-चिढ़ाने के बाद गाड़ी फिर पटरी पर आ जायेगी और कीला सभी कुछ बता देगा।

लेकिन गाड़ी फिर पटरी पर आती उसके पहले ही बाहर से किसी के पुकारने की आवाज़ सुनायी दी :

"स्टेशन वाले कीला भाई कहाँ रहते हैं ?"

कीला का ध्यान उधर बँट गया।

"वहाँ, उधर, ऊँचे चबूतरे वाली कोठरी में।"

किसी पड़ौसी ने पूछने वाले को बताया, तब तक कीला स्वयं बाहर निकल आया और जोर से बोल उठा :

'ओहो। आइये, आइये, मनसुखभाई, आइये।"

नरोत्तम तो नाम सुनकर ही चौंक उठा था, अब जो आगन्तुक को अन्दर आते देखा तो उसके हाथ-पांव फूल गये।

"प्रभूलाल सेठ, इनको बैठने के लिए थोड़ी जगह दीजिये।" आगन्तुक को नरोत्तम की ठीक बगल में बैठाते हुए कीला ने कहा : "कीला की इस कोठरी में तो 'संकड़ी मढ़ैया साधुन की भरमार' वाला हाल है, मनसुखलाल भाई :"

आगन्तुक को इस प्रकार साधुओं में खपाने के बाद कीला ने औपचारिकता निभायी :

"आज तो आपने इस गरीब का घर पवित्र कर दिया !"

"मैं आपको ढूँढ़ने स्टेशन गया था। वहाँ सब जगह खोजा, लेकिन पता न चला। अन्त में उस फकीर ने बताया कि कीला भाई कोठरी पर गये हैं।"

"फकीर मेरा सच्चा दोस्त है।"

"उसने जगह बतादी तो मैं खोजता हुआ यहाँ आ गया।"

"आप आये, बड़ा अच्छा किया ! मेरे सिर-माथे पर। आप जैसे बड़े आदमियों के पाँव हम जैसे गरीबों के द्वार पर कब पड़ते हैं !" कीला ने मुँह से मीठे शब्दों की ज्योनार परोसते हुए कहा।

"इधर बहुत दिनों से आपको देखा नहीं था, आज 'वेगन' 'नोट' कराने के लिए स्टेशन गया तो वहाँ आपका पता लगाने पर मालूम हुआ कि कोठरी पर चले गये………"

"क्या करू भाई साहब, हाथ से टिक्कड़ ठोकने पड़ते है, इसलिए जल्दी घर चला आता हूँ........"

"क़िस्मत वाले हैं आप कीला भाई, सचमुच किस्मत वाले !"

"हाथ से टिक्कड़ ठोकने पड़ते हैं, इसलिए किस्मत वाले हो गए, क्यों ?"

"हाँ, यही बात है। अपना अनुभव बता रहा हूँ। घर में रोटी पोने वाली है, आपके शब्दों में टिक्कड ठोकने वाली। मगर भलीमानस टिक्कडों के साथ हमें भी ठोक-बजा देती है।" फिर सहसा मनसुखभाई को याद आ गया कि इस कोठरी में कीला के अतिरिक्त एक सज्जन और विराजमान है, जिनके सामने अपना अनुभव इतने मुक्त मन से बताना अच्छा नही, इसलिए आत्म कथा को समेटते हुए बोले : ये सज्जन कौन हैं, कीलाभाई ? आपने परिचय नहीं करवाया।"

"आपने पहचाना नहीं ? ये हैं प्रभूलाल सेठ।"

मनसुखलाल गौर से नरोत्तम की ओर देखने लगा।

कीला ने नरोत्तम का पूरा परिचय दिया : "मंचेरशा की पेढ़ी के भागीदार।"

"ओ हो हो ! प्रभूलाल सेठ !" मनसुखलाल बड़े उत्साह से नरोत्तम से मिले : "आपका नाम तो सुना था। आज यहाँ मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।"

"मैंने भी आपका नाम तो बहुत सुना था।" नरोत्तम ने मनसुखलाल के कथन को अक्षरशः दुहरा दिया : "आज यहाँ मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।"

कीला उन दोनों मुलाकातियों को चुपचाप देखता रहा।

"इस मौसम में आपकी लेवाली तो बहुत जोरों पर है, प्रभूलाल सेठ !" मनसुखलाल ने कहा।

"अपनी हैसियत के मुताबिक काम करते हैं; मगर आपकी विलायती पेढ़ी का मुकाबला नहीं कर सकते।" नरोत्तम ने जवाब दिया।

कीला ने स्वर में स्वर मिलाया : "यह तो पेढी भी नयी है और प्रभूलाल सेठ भी अभी नये हैं। बच्चों का खेल ही समझिये; मगर धीरे-धीरे सीख लेंगे और जम जायेंगे।"

"काम सबको सिखा देता है। कहा है न कि कर्ता गुरु।" मनसुखभाई ने बुजुर्गाना अन्दाज़ में सूत्रोच्चारण किया।

नरोत्तम और कीला चुपचाप एक दूसरे की ओर देखते हुए आँखों-ही-आँखों में बातें कर रहे थे। नरोत्तम ने मानों शिकायत की, 'मैं तो यहाँ बुरा फँसा।' और कीला ने मानो आश्वस्त किया : 'देखता चल, मोटे, चुपचाप देखता चल।'

कीला ने यह सोचकर कि चुप्पी को मनसुखलाल अपना अपमान न समझ बैठें, भंग करते हुए कहा :

"हमारे लायक कोई हुक्म हो तो फरमाइये, मनसुखलाल भाई !"

"आप-जैसे हाकिम को मैं क्या हुक्म फरमा सकता हूँ।"

"फिर भी मेरे-जैसा कोई काम-काज हो तो बतलाइये।"

"काम वैसे खास तो कुछ भी नही, परन्तु………"

"खास न सही, आम ही बता दीजिये !"

"आम-खास वैसे तो कुछ भी नही, लेकिन, परन्तु……"

"बोलिये, बोलिये; संकोच क्यों कर रहे हैं !"

"इस बार मैं बाहर गाँव से लौटा तो स्टेशन से सामान ले जाने के लिए आपने एक बोझे वाला साथ कर दिया था………"

"हाँ-हाँ ! वह आदमी चोरी-चमारी करके तो नहीं भाग गया ?"

"जी नहीं ! चोरी-चमारी तो वह बेचारा क्या करता, उलटे उसने………"

"क्या किया ? ज्यादा मजदूरी तो नहीं मांगी ?" कीला ने पूछा : "या और कोई बदतमीजी कर बैठा ?"

"नहीं-नहीं, ऐसा कुछ नहीं किया। वह बेचारा तो बहुत भला आदमी था।" मनसुखभाई ने खँखार कर गला साफ किया और आगे

बोले : "बात यह हुई कि मैंने उसे मजदूरी के पैसे देकर बटुवा जेब में रखा और घर के अन्दर चला गया। मगर बटुवा जेब में रखे जाने के बदले नीचे गिर गया।"

"अरे-रे ! गजब हो गया ! फिर ? वह आदमी उठाकर चलता तो नहीं बना ?"

"उसने उठाया तो जरूर, लेकिन दरवाज़े की कुण्डी बजाकर मुझे बाहर बुलाया और बटुवा वैसा-का-वैसा मेरे हाथों में थमा दिया।"

'अच्छा········फिर ?"

"फिर क्या ? फिर मैं घर में चला गया और सबको यह किस्सा बताया तो मेरी भानजी चम्पा ने मुझे बहुत ताने दिये।"

"वह क्यों ?"

"सो तो वही जाने; मुझे क्या मालूम ? लेकिन वह कहने लगी जिस आदमी ने पूरा बटुवा सौंप दिया उसे पाँच पैसे इनाम देकर आपने खुश भी नही किया ?"

"लो, सुनो !" कीला हँस पड़ा : "मनसुखभाई, कहने वालों ने ठीक ही कहा है कि औरत की अकल उसके तलुवे में रहती है। अरे भाई, साड़ियाँ पहनने और चोटियाँ गूँथने वाली दुनियादारी की बातें क्या जाने !"

"कीलाभाई, उस लौंडिया ने मेरी जान साँसत में कर रखी है ! उसके ताने सुन-सुनकर मेरे कान पक गये। अब तो घर वाली भी भानजी की मदद पर उतर आयी है और घर में कदम रखते ही रोज-रोज सुनना पड़ता है, "उस मजदूर को ढूँढ़ो और इनाम दो !"

"हद हो गयी !" कीला ने कहा।

"इसीलिए तो स्टेशन गया था कि वह आदमी कीलाभाई का परिचित होगा।"

"ना भैया, ना ! कोई खास-जान पहचान नहीं थी। स्टेशन पर बेकार पड़ा काम मांग रहा था, मैंने काम बता दिया और आपके साथ लगा दिया।"

"आप उसका नाम-पता तो जानते होंगे ?"

"ऐसे कुली-कबाड़ी और हाली-मवाली का क्या नाम और क्या पता ?"

"लेकिन मुझे उसे पाँच रुपये का यह नोट देना था, अब क्या हो?"

"वह कहीं मिल गया तो आपकी दुकान पर भेज दूँगा।" कीला ने कहा।

"न, ऐसे बात नहीं बनेगी। आपसे भेंट हो, फिर आप उसे दुकान पर भेजे, इसमें तो कई बरस निकल जायेगे।"

"और तो क्या किया जा सकता है ?" कीला ने पूछा। "जिसके नाम-ठाम का पता न हो उसे ढूँढ़ा भी कैसे जाये ?"

मनसुख भाई कुछ देर सोचते रहे; फिर धीमी आवाज़ में बोले : "एक बात हो सकती है।"

"बताइये; क्या ?"

"पाँच रुपये आप के पास छोड़े जाता हूँ। आपको कहीं दिख जाये या मिल जाये तो मेरी ओर से उसे दे दीजियेगा।"

"मैं यह परायी अमानत कहाँ रखता फिरूँगा।"

"पाँच रुपल्ली कौन बड़ी अमानत है, जिसे आप रख नहीं सकते।"

"लेकिन यह कीला ठहरा व्यसनी और खर्चीला आदमी। ऐन वक्त पर पैसा मेरे हाथ मे रहा, न रहा ..."

"बस, बस, रहने दो कीला भाई, आपने तो हद ही कर दी।" मनसुखलाल ने टोक कर मीठी चुटकी ली : "जैसे मैं आपको जानता ही नहीं।"

कीला झेंप गया और इस भय से कि मनसुखलाल सच्चा परिचय देकर कहीं सारी पोल ही न खोल दे, उसने हथियार डाल दिये। बोला :

"ठीक है, जो आपको अच्छा लगे, कीजिये। अब तो खुश हुए ?"

"खुश तो हमे उस मजदूर को करना है। और तभी मेरे घर के लोग खुश होंगे। आप उसे कही से भी खोज निकालिये !"

"बहुत अच्छा। घर वाली खुश तो भगवान भी खुश।"

"आप मेरी खातिर थोड़ी मेहनत करके उसे खोज निकालियेगा। समझ गये न ?"

"जरूर, जरूर ! आप निश्चिन्त रहिये।"

मनसुखलाल भाई ने पाँच रुपये का नोट कीला के हाथ में देकर कहा : अब मैं जाऊँ ?"

"बड़ी खुशी से।"

'आइयेगा-पधारियेगा' की औपचारिक विदा के बाद जब कीला कोठरी में आया तो नरोत्तम को सम्बोधित कर कह उठा :

"अबे ओ मोटे, तूने तो खासी मुसीबत पैदा कर दी।"

नरोत्तम इस नाटक पर हँसता रहा और कीला बोलता रहा :

"तू गया तो था मजदूरी करने और मनसुख भाई के घर में पलीता लगा आया।"

"लेकिन इसमें मैं क्या करूँ ?" नरोत्तम ने कहा।

"तुझे जो करना था वह तूने कर डाला।" कीला ने जबाव दिया: "अब यह कीला है और मनसुख भाई हैं।"

"वे पाँच रुपए मुझे दो, लाओ :" नरोत्तम ने मजाक किया।

"मुँह धो रखो ! रुपए यों राह में पड़े है कि तुम्हें दे दें।"

"अब तुम क्या करोगे ?"

"चुपचाप देखता चल मोटे, कि यह कीला अब क्या करता है !" और कीला ने अन्त में हमेशा की तरह शेखी मारी : "तूने अभी तक मुझे पहचाना नही ! मैं कौन ? कीला कंबी वाला।"

२८

कामदार का लड़का

"अरे ओ छोकरों ! किसके हुकुम से तुम स्टेशन के अन्दर आये ?......ससुरो, बोरे फाड़-फाड़ कर मूँगफली खा रहे हो ? अपने बाप का माल समझ रखा है ? मर-भुक्खो, घर पर तुम्हारी माए खाना पकाकर खिलाती भी हैं या भूखे ही बाहर निकाल देती हैं ?......किस साल में जन्मे हो ? जरूर कहत के साल में जन्मे होंगे.........नहीं तो दूसरों की मूँगफली छील-छील कर पेट भरने की कैसे सूझती ? भागो जल्दी, नहीं तो पुलिस को बुलाता हूँ.....ये कोयले भर लिये हैं, जैसे मामा के ही घर का माल हो ? ....करो जेबें खाली, चोट्टो ! नालायकों !"

स्टेशन के निर्जन प्लेटफार्म पर कौला चक्रवर्ती सम्राट् की शान से चहलकदमी कर रहा था। 'वाच एण्ड वार्ड' विभाग के अधिकारी के रोब-दाब से वह इस छोर से उस छोर तक चक्कर लगाता हुआ स्टेशन की स्थावर और जंगम सम्पत्ति की रक्षा कर रहा था।

साइडिंग में पड़ी वेगन मे से मूँगफली चुराकर खाने वाले लड़कों को धमकाने के बाद उसने दूसरी ओर देखकर फटकारना शुरू किया :

"अरी ओ माताजी ! तेरा कोई पुछत्तर है या तू भी मेरे—जैसी ही है ?......तेरा घर-बार भी है या सटक सीताराम ?......इस स्टेशन को महाजनवाड़ा समझ रखा है क्या ?- यह हरा रजका* सब क्या

*मेथी से मिलती-जुलती एक प्रकार की हरी घास, जो मुख्यत: घोड़ों को खिलायी जाती है।

तेरे ही लिये आता है ? यह पिंजरा पोल नहीं, स्टेशन है स्टेशन, समझी ? सीधी तरह अपने खूंटे पर चली जा, नहीं तो डिब्बे में चढ़ा कर दिसावर रवाना कर दी जायेगी।"

गाय—जैसे मूक-पशु के साथ भी कीला इसी तरह बोलता-बतियाता था।

"उठ, ओ फकीर ! बहुत सो लिया, बहुत। कम्बख्त सारे दिन सोता है और सारी रात जागता है। सभी बातों में उल्टा चलने वाला..... अबे, अभी वन-डाउन आ खड़ी होगी, उठकर बैठ जा। दो पैसा भीख माँग ले, नहीं तो चाय पीने के लिए मुझ से पैसे लेना पड़ेंगे... ."

कीला इस प्रकार निरीक्षण करता हुआ ठेठ स्टेशन मास्टर के क्वार्टर तक पहुँच गया। वहाँ उसने मास्टर की बीबी को उद्देश्य कर आवाज़ लगायी :

"दया बहन, नल आ गया है, पानी भर लो, जल्दी......"

दया बहन ने उलटकर जवाब दिया : "कीला भाई, ये बरतन जरा नल के नीचे रख दोगे ? मेरे हाथ बझे हुए हैं......"

"क्यों नहीं, क्यों नहीं ?" कहते हुए कीला ने बरतन उठा लिये और नल की तरफ जाता हुआ बड़बडाया : "इस कीला के भाग्य में एक यही काम करना बाकी रह गया था, आज इसे भी कर डाला..."

फिर प्लेटफार्म पर चहल कदमी करते हुए उसने एक लुहाणा छोकरे को धमकाया :

"अबे ओ रतालू ! वगैर लेसन के चिवड़ा बेचता है, स्टेशन को लावारिस खेत समझ रखा है क्या ? आज गाड़ी से ए. जी. जी. साहब की सवारी आ रही है, पता है ? जल्दी से घर भाग जा; नहीं तो अभी पुलिस वाले आकर तेरे चिवड़े के साथ तुझे भी फेंक देंगे......"

कीला कुछ ऐसे रोब-दाब से एक के बाद एक हुकुम छोड़ता जा

रहा था, मानो रेलवे स्टेशन का समग्र विस्तार अकेले उसीकी मिल्कियत हो।

थोड़ी ही देर में प्लेटफार्म पर चमचमाते बिल्लों वाली एजेन्सी की पुलिस आ पहुँची और गोरे साहब की सुरक्षा की दृष्टि से खतरनाक समझे जाने वाले लोगों को डण्डे मार-मार कर बाहर खदेड़ने लगी। इस काम में, बरसों से स्टेशन की बिना वेतन और बिना सत्ता के रखवाली करने वाले कीला का मार्ग दर्शन उन सरकारी सत्ताप्राप्त लोगों के लिए अतीव उपयोगी सिद्ध हुआ। अनाथाश्रम, लँगड़े-लूले पशुओं की पिंजरापोल, प्याऊ आदि के लिए हाथ में छोटे-छोटे डिब्बे लेकर पैसा उगाहने वाले व्यक्तियों को आज अवांछनीय करार देकर बाहर निकाल दिया गया। कीला ने सिर्फ दो ही आदमियों को बचाया: एक दखलशा फकीर और दूसरा भगला पागल। इन दोनों पर भी डण्डाधारी पुलिस ने अपने डण्डे उठाये थे, लेकिन कीला ने बीच-बचाव करते हुए कहा: "रहने दो, इन्हें रहने दो। ये तो अपने ही आदमी है।"

लाट साहब के शुभागमन के कारण आज स्टेशन का वातावरण इतना बोझिल हो गया था कि 'वन-डाउन' से यात्रा करने वाले जो मुसाफिर आ रहे थे, वे पुलिस की इतनी अधिक चहल-पहल देखकर डर जाते। टिकट की खिड़की पर भी विकराल सिपाहियों को खड़ा देख यात्री डरते-काँपते टिकट कटाते और फिर चुपचाप किसी कोने-अन्तरे में दुबक जाते।

ट्रेन को पिछले स्टेशन से जैसे ही लाइन-क्लियर मिला कीला ने ठेले पर ढका हुआ तिरपाल समेटा और प्लेटफार्म पर फेरी शुरू कर दी:

"लेओजी महुवा के रंगीन खिलौने......"

"लेओजी झुन-झुना और चक्की और घोड़ा......"

"लेओजी मोर और तोता छड़ी......"

"लेओजी ये खिलौने, बच्चा भी खेले और बच्चे के माँ-बाप भी खेलें······"

इस तरह आवाज़ लगाता हुआ कीला प्लेटफार्म पर खिलौनों का ठेला घुमा रहा था कि सहसा उसकी आवाज़, निगाहें और ठेला, तीनों ही रुक गये ।

फाटक में होकर मनसुख भाई, उनकी पत्नी धीरज और उनके पीछे एक सिमटती-सिकुड़ती युवती चले आ रहे थे ।

"कैसे हो, कीला भाई ?" ठेले के साथ खड़े कीला को देखकर मनसुखलाल ने आवाज़ देकर पूछा ।

"ओ हो ! मनसुखभाई ! कहाँ को ?" कीला ने पूछा ।

"मेंगणी··· ··"

"एकदम कैसे ?"

"चम्पा को छोड़ने जा रहा हूँ ।"

"बस ? इतनी जल्दी वापस ? अभी ही तो मेगणी से आयी थी···"

"मैं तो अब भी कहता हूँ कि आयी है तो महीना-दो महीना रहले, मगर इसने मेंगणी जाने की जिद ठानली है ।" मनसुखभाई ने कहा ।

धीरज ने भी पति के स्वर में स्वर मिलाया : "चम्पा रानी को हमारे यहाँ अच्छा नहीं लगता······"

"कमाल है, राजकोट—जैसे शहर में अच्छा नहीं लगता !" कीला ने कृत्रिम आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा और फिर मनसुखभाई को उद्देश्य कर बोला : "अच्छा हुआ कि आपसे मुलाकात हो गयी······शाम को मैं आपके घर आने वाला था····· बेकार का चक्कर हो जाता ।"

"क्यों भला, ऐसा क्या काम आ पड़ा ?"

"एक वही काम जो आपने सौंपा है । और तो कोई काम है नही !"

"उस मजदूर का पता चला ?"

मनसुखलाल ने अधीर होकर पूछा ।

"जी हाँ, बड़ी मुश्किल से पता चला !"

"कहाँ ? कैसे ?"

"आज सवेरे के मेल से जा रहा था ।"

"किधर......?"

"बम्बई ही जा रहा होगा—फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठा था, इसलिए पास की मुसाफिरी तो हो नही सकती ।"

'फर्स्ट क्लास में बैठा था ?" मनसुखलाल दंग रह गए ।

"फर्स्ट से ऊँची क्लास तो कोई है नहीं, इसलिए मजदूर होकर फर्स्ट में ही बैठना पड़ा होगा ।" कीला ने बेपर की उड़ाई ।

"लेकिन मजदूरी करते-करते फर्स्ट क्लास में कैसे जा बैठा ?"

"मुझे भी यही ताज्जुब हो रहा है ।"

"आपके देखने में गलती हुई होगी, कीला भाई !......जरूर गलत फहमी हो गई है... ....किसी दूसरे ही आदमी को......."

"मनसुखभाई, इतना तो आप भी मानेंगे कि यह कीला कभी धोखा नहीं खा सकता, खासकर आदमियों को पहचानने में ।"

"लेकिन आपने उससे वह बटुवे वाली बात पूछी थी या नहीं ?"

"इसलिए तो मैंने उस कम्बख्त को जा घरा । आप हुक्म दे गये थे कि उसे कहीं से भी खोज निकालूँ और पाँच रुपए इनाम दे दूँ । उसी दिन से मैं चौकन्ना होकर चारों ओर देख रहा था ।"

चम्पा धीरज भाभी के पीछे खड़ी बड़ी उत्कण्ठा से इस बात-चीत को सुन रही थी ।

"फिर ? फिर आपने उसे रुपये दिये या नहीं ?"

"रुपये देना तो चाहा, मगर.......मगर......."

"मगर क्या हुआ ?"

"देने की कोशिश तो की, लेकिन मेरी कम्बख्ती ही आ गयी ।"

"क्यों, ऐसी क्या बात हुई ?" मनसुखभाई ने घबराकर पूछा : "पाँच रुपये उसे कम तो नहीं लगे ?"

"कम कैसे लगते ?" कीला ने जवाब दिया : "मगर उसने मुझे ऐसा मुँह तोड़ जवाब दिया कि अब आपसे क्या कहूँ ।"

"हें ! क्या कहा उसने ? सारी बात खुलासेवार बताइये !"

"मैंने उससे कहा कि उस दिन लम्बा कोट पहने हुए जिन सेठजी के यहाँ तू सामान उठाकर ले गया था और कोट की जेब से बटुवा गिरने पर तूने वापस कर दिया था, उसकी खुशी में उन सेठजी ने ये पाँच रुपये इनाम के भेजे हैं·····"

"बिलकुल ठीक कहा आपने। फिर ?"

"फिर तो उसने मुझे वह सुनायी है कि सात पीढ़ियों तक भुलाये न भूलेगी······"

"आपको सुनायी "

"मतलब यह कि सुनायी तो आपको ही, लेकिन आप उस समय वहाँ हाजिर नहीं थे, इसलिए सब इस कीला को ही सुननी पड़ी !" कीला ने रूआँसे स्वर में कहा।

"ससुरा यह मजूरा तो कुछ अजीब ही किस्म का आदमी निकला ! करने को मजूरी और मिजाज देखो तो राजा-महाराजाओं—जैसे !" मनसुखलाल ने कहा : "उसने क्या सुनाई, यह तो बताइए।"

"उसने कहा कि यह पाँच रुपल्ली जिसने दी है उसी को वापस कर दे·········"

"बद दिमाग कहीं का !"

"और फिर बोला कि इस नोट भेजने वाले से मैंने कहीं ज्यादा रुपये देखे हैं······"

"बहुत मगरूर मालूम पड़ता है।"

कीला के हर वाक्य पर मनसुखभाई का अहंकार आहत होकर शब्दों की राह फूट पड़ता था और चम्पा उत्तरोत्तर अधिक सन्तोष का अनुभव करती जाती थी। कीला इस कल्पित कहानी को सुनाये जा रहा था। वह आगे बोला :

"वह तो यहाँ तक कह गया कि जिसने ये पाँच रुपये भेजे हैं उसके जैसे आदमियों से तो मैं अपने घर गुमाश्तागिरी करवाता हूँ; और यह बात उसने कही भी एक बड़े लखपति व्यापारी की तरह······"

चम्पा के गुलाब की कली—जैसे नाजुक ओठों पर प्रसन्नता की

जो मुस्कराहट उभर आयी थी उसे सजग कीला के अलावा और कोई देख न सका।

मनसुखलाल ने अपने चुटीले अहंकार की तिक्तता को व्यक्त करते हुए कहा :

"यह तो ससुरा हद दर्जे का पाजी निकला। पूत पिसनहारी (पीसने वाली) का और नाम गुलाबदास—जैसा कोई शेखीबाज होना चाहिए ! तभी तो वह औंधी खोपड़ी का ऐसी ऊटपटांग बातें बक गया !"

"नहीं-नहीं, मनसुखभाई, आदमी तो मुझे घर का खाता-पीता और भला ही लगा।" कीला ने अब अपने साथी का बचाव करने की आवश्यकता को अनुभव करते हुए कहा : "उसकी शकल से पता चलता था कि रुपये को तो वह आदमी हाथ का मैल समझता है......मुझे तो चेहरे से यही लगा कि बहुत अच्छे दिन देख चुका है......"

"आप भी क्या अच्छी शकल और अच्छे दिनों की बात करते हैं ! मुझे तो वह बम्बई का कोई मवाली लगता है ! मजदूरी के बहाने घर का दरवाजा देख गया ! बम्बई की सुनहरी टोली वाले अकसर ऐसी ही चालें चलते है।" फिर मनसुखभाई आशंकित होकर बोले : "हम सब घर बन्द कर मेंगणी जा रहे हैं, पीछे से वह मवाली ताला तोड़कर घर में न घुसा तो अपना भाग्य सराहेंगे !"

सुनकर चम्पा ने असीम घृणा से मनसुखलाल की ओर देखा।

चम्पा के मुस्कराते चेहरे के इस आकस्मिक भाव-परिवर्तन की ओर भी कीला के अतिरिक्त किसी और का ध्यान नहीं गया।

अब चम्पा को लेशमात्र सन्देह नहीं रहा कि यह खिलौने बेचने वाला केवल नाटक कर रहा और मामा को बना रहा है। सहज बुद्धि वाली उस युवती को विश्वास हो गया कि 'कंघीवाले' के नाम से प्रख्यात इस आदमी को नरोत्तम के बारे में सब-कुछ मालूम है। उस दिन, इसी स्टेशन पर, यहीं से सामान उठाकर घर तक पहुँचा आने

की बात इसी आदमी ने कही थी। उसमें इसका कोई हेतु अवश्य रहा होगा; और इस समय यह जो बात कह रहा है, इसमें भी इसका कोई न कोई गूढ़ संकेत अवश्य है!

इस बीच प्लेटफार्म पर पुलिस और सेना के अधिकारी, एजेन्सी दफ्तर के बड़े अफसर, विभिन्न रियासतों के कारभारी, दीवान और दो-एक राजा आदि भी पहुँच गये थे। यह देखकर मनसुखभाई ने कीला से पूछा :

"आज बडे लोगों की यह इतनी चहल-पहल क्यों है ?"

"आपको नहीं मालूम ? पोलिटिकल एजेण्ट आ रहे हैं।"

"कौन, वाटसन साहब ?"

"हाँ।"

"कहाँ से ?"

"सासण के जंगल से शिकार खेलकर लौट रहे है।"

सुना तो धीरज भाभी काँप उठीं और उनके मुँह से एक भय सूचक सिसकारी निकल गई।

"लेकिन इसके लिए यहाँ इतने सारे आदमी......"

"सात फुट लम्बे शेर का शिकार जो करके आ रहे हैं......"

धीरज भाभी ने प्लेटफार्म पर ही थू-थू करके अपना अहिंसा-प्रेम और जीव हिंसा के प्रति तिरस्कार व्यक्त कर दिया। इधर मनसुखलाल ने पूछा :

"सात फुट लम्बा शेर ?"

"एक इंच भी कम नहीं।"

"लेकिन हमने तो छह फुट से लम्बा शेर कहीं सुना नहीं......"

"लेकिन वाटसन साहब की गोली से मरने वाले सभी शेर छहफुट से बढ़कर सातफुट के हो जाते हैं।"

"यह कैसे ?"

"साहब का एक ए. डी. सी. है। वह अपने पास नापने का एक फीता रखता है। उसमें से उसने शुरू का एक फुट का टुकड़ा काटकर फेंक

दिया है। इसलिए शेर कितना ही बड़ा क्यों न हो, नापने पर एक फुट बढ़ ही जाता है। समझे ?" कीला ने रहस्योद्घाटन किया।

मनसुखभाई रस लेकर साहब के शिकार के इस रहस्य को सुनते रहे। लेकिन चम्पा की गोरे साहब में, शिकार में या शेर में कोई रुचि नहीं थी। वह तो साहस बटोर कर कीला से एक बार पूछ लेना चाहती थी, 'बता दो, कहाँ है वह मजदूर जिसे तुमने भेजा था ? वह कहाँ रहता है ! क्या करता है ? मुझे याद करता है या नहीं ! उससे कह देना कि मैंने एक बार जो उसका वरण कर लिया है, वह पत्थर की लकीर हो गयी, अब उसमें मीन-मेख नहीं हो सकती।'

लेकिन इस मूक सन्देश को वाणी मिलती उसके पहले तो 'वन-डाउन' मेल फुफकारता हुआ आ पहुँचा और मनसुखभाई, 'चलो, आगे चलो, सारा डिब्बा खाली है,' कहते हुए धीरज और चम्पा को घसीट ले गये।

सजाये हुए राजसी सेलून के एक दरवाजे से गोरे साहब नीचे उतरे और दूसरे दरवाजे से सात फुट लम्बे वनराज को उतारा गया। हिन्दुस्तान के सबसे बड़े हाकिम के इस एजेण्ट का सोत्साह स्वागत किया गया। राजाओं और कारभारियों ने अपनी-अपनी कमर को नब्बे अंश के कोण तक झुका-झुकाकर कोर्निश बजायीं।

गोरे साहब की मांसल गरदन फूलों के हारों से दब गयी। लेकिन उससे भी अधिक हार और गुलदस्ते मृतक वनराज को भेंट किये गये।

साहब के बाद उनकी मेम-साहब उतरी और मेम साहब के बाद एक किशोर को लेकर आया।

मामा के साथ डिब्बे में बैठी हुई चम्पा सोच रही थी : कीलाभाई ने यह तमाशा क्यों किया ? मेरे मन को थाहने ? मेरी परीक्षा लेने ? उनका इरादा जो भी हो, मैं परीक्षा में पूरी तरह सफल हुई हूँ। वे कितना ही कसौटी पर कसें, इस सोने में कोई खोट नहीं—यह एकदम शुद्ध, सौ टच का है।

प्लेटफार्म पर मेम साहब के साथ किशोर को लिये हुए आया उतरी तब कीला एक हाथ से झुन-झुना बजाता, दूसरे हाथ से

ठेला को ढकेलता और मुँह से कर्कश स्वर में खिलौनों के गुणगान करता हुआ वहाँ से गुजर रहा था। उसने गोरे बच्चे को एक रंगे-चुंगे खिलौने की ओर ऊंगली से इशारा करते देखा तो रुक गया।

बच्चे ने खिलौने की ओर इशारा किया तो आया के साथ मेम-साहब भी रुक गयीं; और पत्नी को रुकते देखा तो वाटसन साहब भी रुक गये।

मालाएँ पहनाने का काम अधूरा ही रह गया। स्वागत-आयोजन भी रुक गया और स्टेशन पर जितने भी लोग थे गोरे किशोर और उसके हाथ में थमे हुए रंगीन खिलौने की ओर देखने लगे।

"वेरी गुड टॉय, वेरी गुड" कीला काम चलाऊ अंगरेजी में अपने माल की तारीफ कर रहा था।

इस बीच पोलिटिकल एजेण्ट न तो पुत्र को देख रहे थे और न खिलौने को, उनकी पैनी आंखें खिलौने बेचने वाले की ओर लगी थी और वे उसी को एक टक देखे जा रहे थे। लेकिन कीला की न जाने क्यों साहब से आंखें मिलाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। अपने चेहरे का बारीकी से निरीक्षण कर रही उन पैनी निगाहों से बचने के लिए वह कभी किशोर की ओर, तो कभी आया की ओर और कभी मेम-साहब की ओर देखने लगता था।

आखिर लाट साहब के मुँह से शब्द निकले : "टुमेरा नाम कीला चण्ड हाय ?"

उत्तर में 'हाँ' कहने का होश भी कीला को न रहा। अपनी घबराहट पर काबू पाने के लिए वह केवल स्वीकृति सूचक सिर-हिलाकर यन्त्रवत् 'वेरी गुड टॉय, वेरी गुड टॉय' बोले जा रहा था।

लेकिन ए. जी. जी. साहब इतनी आसानी से उसका पिण्ड छोड़ने वाले नहीं थे। उन्होंने फिर दूसरा सवाल पूछा :

"टुम हेमटराम कामडार का लरका हाय ?"

कीला नयी दुलहिन की तरह नजरें नीची किये बड़े ही भोंडे तरीके से 'हाँ साहब ! हाँ साहब !' करने लगा।

"कल सुबाह में नौ बजे कोठी का कचहरी में आव ।" गोरे साहब ने हुक्म सुना दिया ।

स्टेशन पर एकत्रित जन-समुदाय आँखें फाड़े देखता ही रह गया । लाट साहब ने फेरी वाले को जो आदेश दिया था उसे सुनकर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा ।

कीला ने आदरपूर्वक सिर झुकाकर इस आदेश को स्वीकार किया तब तक किशोर अपने लिए खिलौना पसन्द कर चुका था ।

कीला ने आग्रह पूर्वक कहा : "ले जाइये, साहब, बढ़िया खिलौना है, ले जाइये ।"

लोग अभी सोच ही रहे थे कि पोलिटिकल एजेण्ट—जैसे बड़े हाकिम खिलौने को किस रूप में स्वीकार करते हैं कि ए. जी. जी. ने अपनी मेम-साहब से कहा :

"टेक दैट ट्रॉय विथ अस, वी नीड नौट पे हिम ।" (खिलौना ले लो, पैसा देने की ज़रूरत नहीं ।)

२९

भाग्य की विडम्बना

स्टेशन पर बिन बादल की गाज गिरने-जैसी अनहोनी घटना घटित हो गयी। हिन्दुस्तान के सबसे बड़े हाकिम के एजेण्ट ने खिलौने के ठेले वाले से बात की ! कई लोगों को तो सारा दृश्य अपनी आँखों से देखने के बावजूद विश्वास नहीं हो रहा था।

"इतना बड़ा लाट साहब कीला-जैसे मुफलिस से बातें करेगा ?"

बस अनहोनी घटना के बारे में सब अपनी-अपनी अटकलें भिड़ा रहे थे।

"गोरे साहब का ध्यान महुवा के खिलौनों की सुन्दरता की ओर आकृष्ट हो गया और इसीलिए उन्होंने ठेले वाले के पास रुक कर पूछ-पाछ लिया।"

"नहीं भाई, नहीं ! विलायती खिलौनों के आगे हमारे इन काठिया-वाड़ी खिलौनों की बिसात ही क्या—कारण कुछ और ही रहा होगा।"

"अजी, कीला को आप अभी पहचानते नहीं। जरूर कोई गोल-माल किया होगा, जिसके लिए गोरे साहब ने उसे डाँटा।"

"कीला है तो अकड़बेग; मगर जरूर किसी गुनाह में फँस गया होगा।"

"हो सकता है, रेल विभाग की मंजूरी के बिना ही प्लैट फार्म पर ठेला चलाता रहा हो और इसकी रिपोर्ट एजेन्सी में हुई हो।"

लोगों ने मन-उपजायी बातें करने में कुछ भी उठा न रखा। और निठल्लों का कुतूहल उस समय चरम सीमा पर जा पहुँचा जब पोलि-

टिकल एजेण्ट द्वारा बातचीत किये जाने के दूसरे ही दिन से कीला गायब पाया गया। उसका ठेला सदा की तरह दखलशा फकीर और भगला पागल के सयुक्त अधिकार में ही रहा, लेकिन कीला उस पर जो तिरपाल ढांक गया था उसे दोनों में से किसी ने नहीं समेटा। खिलौना खरीदने के लिए अगर कोई भूला भटका ग्राहक आ भी जाता तो चरस फूँकने में मस्त फकीर उस परायी अमानत को छूने से इनकार कर देता। 'कीला भाई को आने दो। माल उसी का है, हमेरा नहीं।' वह ग्राहक को यही टकसाली जवाब सुना देता ! अगर ग्राहक पूछ बैठता, 'कीला भाई कहाँ हैं ?' तो अफीम के नशे में धुत् फकीर बड़ी लापरवाही से जवाब देता, 'खुदा को मालूम।'

फकीर के इस अस्पष्ट उत्तर से पूछने वालों का कुतूहल शान्त होने के बदले और बढ़ जाता था।

लोगों की शंकाएँ इस कारण और भी बढ़ गयीं कि कीला अपनी कोठरी पर भी नहीं दिखायी दिया था। आठों पहर जिस कोठरी के दरवाज़े खुले रहते थे उसका मालिक जब लगातार दो दिन तक वहां नहीं फटका तो पड़ौसियों ने अपने पड़ौसी धर्म का पालन कर कोठरी की कुण्डी चढा दी।

"गोरे साहब ने कीला को कोठी की कचहरी मे हाजिर होने का हुक्म दिया था··········ठेले के पास खड़े हुए पुलिस वाले ने साफ सुना था।"

अन्दर की बात जानने का दावा करने वाले अपनी कल्पना के सहारे कीला की टोह में लगे थे।

"कोठी की कचहरी गया तो क्या कोठी में ही रह गया ?"

"या एजेण्ट साहब ने हथकड़ी डाल कर हवालात में ढकेल दिया?"

"या फिर काले पानी रुखसत कर दिया ?"

"कीला का भला क्या पूछना ! कुछ स्याह-सफेद किया होगा तो भुगतना तो पड़ेगा ही·········"

ऐसे सन्देहास्पद वातावरण में ही चम्पा को मेंगणी पहुँचा कर, मन

सुखलाल ने कीला की तलाश में सुबह-शाम स्टेशन और स्टेशन से कीला की कोठरी के चक्कर लगाना शुरू किया। कीला के परिचित यही समझे कि कीला पर बाकी-वसूली के ही लिए इतने बड़े सेठ रोज चक्कर लगा रहे हैं। उन्हें विश्वास हो चला कि कीला ने जरूर कुछ गोल-माल किया है। या तो किसी का रुपया डकार गया है, या किसी की तिजोरी काटी है, या कहीं हाथ साफ किया है, नहीं तो इस तरह घर-द्वार, ठेला-वगैरह सूना छोड़ कर एकाएक उड़न-छू क्यों हो जाता ?

मनसुखलाल को कीला से मिलने की कुछ ऐसी जल्दी पड़ी थी कि वे सुबह और शाम के अतिरिक्त दुपहर के समय भी कीला की कोठरी के चक्कर लगाने लगे। पड़ौसियों के पास तो हर बार एक ही जवाब था : 'न तो कीला भाई आये और न अभी तक उनकी कोई खबर ही मिली।' मनसुखलाल के चले जाने के बाद वे और भी आशंकित हो उठते और कहते : 'सच ही, कीला ने कोई भारी गोलमाल किया है, नहीं तो इतना बड़ा सेठ दिन में तीन-तीन चक्कर क्यों लगाता !'

बराबर आठ दिन तक ऐसी ही अफवाहों का बाजार गर्म रहा। सारे राजकोट में यह बात फैल गयी कि स्टेशन पर से कंघी वाला कहीं भाग गया है।

सारे शहर में अकेले नरोत्तम को छोड़ और किसी को भी कीला के बारे में कोई जानकारी नहीं थी।

ठीक नौवें दिन शहर में तोप से गोला छूटने की तरह यह समाचार सुना गया :

"पोलिटिकल एजेण्ट के सरिश्तेदार (प्रमुख क्लर्क) के पद पर कीलाचन्द हेमन्तराय कामदार की नियुक्ति हुई है।"

यह समाचार ऐसा नहीं था जो शहर वालों के आसानी से गले उतर जाता।

"क्यों जी, यह किस कीला की बात है ! वह कंघी वाला ही या कोई और !"

'वही साहब, वही ! खिलौनों का ठेला चलाता था न, वही कीला।"

"मगर उसका अल्ल तो कंघी वाला है ! वह कामदार कब से हो गया ! और बाप का नाम हेमन्तराय कहां से निकल आया !"

फौरन शहर के बूढ़ों ने अपनी याददाश्त को कुरेद-कुरेद कर अनुसन्धान कार्य आरम्भ कर दिया और देखते-देखते इस समाचार का ताल-मेल भी बिठा दिया।

"हाँ, अब याद आया ! हेमन्तराय कामदार नाम के सीतापुर स्टेट के बड़े दीवान थे जरूर ! काठियावाड़ से उन्हीं ने सबसे पहले विलायत जाकर बैरिस्टरी पास की थी। एक तो समुद्रोल्लंघन का महापाप किया और दूसरे म्लेच्छों के साथ मांस-मदिरा खाकर देह भ्रष्ट करने का सन्देह भी था, इसलिए शुरू में जाति से बहिष्कृत किये गये। लेकिन बाद में, जब वह बहिष्कृत आदमी दीवान मुकर्रर हो गया तो जाति वालों ने खुद ही उसे फिर अंगीकार कर लिया। केवल सीतापुर के महाराजाधिराज उस धर्म भ्रष्ट कारभारी का स्पर्श होने पर चुपचाप गंगाजल का आचमन कर अपनी देहशुद्धि करते रहे। सीतापुर के लोगों को अब भी याद है कि दीवान हेमन्तराय के घर में कमर तक ऊँचे खड़े चूल्हे थे, औरतें खड़ी-खड़ी खाना बनाती थीं, टेबल-कुर्सी पर चीनी मिट्टी के बरतनों में खाना खाया जाता था और हाथ से कौर लेने के बदले छुरी-कांटों का प्रयोग किया जाता था। महाराजा का युवराज राज्य के पारसी दीवान का लड़का मंचेरशा और महाराजा के प्राइवेट सेक्रेटरी का बेटा कीला—तीनों ही बाल-मित्र सरकारी बग्घी में साथ सैर को जाया करते थे।"

हाँ, राजकोट वासियों को भी अब याद आ गया कि सीतापुर स्टेट की गद्दी के वारिस का बहुचर्चित मुकदमा लड़ने के लिए बैरिस्टर कामदार राजकोट आया करते थे। किशोर वय कीला भी कभी-कभी पिता के साथ आ जाया करता था। उस समय काठियावाड़ से विलायत हो आये इस एक मात्र 'देशी' आदमी के साथ पोलिटिकल एजेण्ट की

स्वाभाविक रूप से मैत्री हो गयी थी और इसलिए दोनों में अच्छा घरोपा भी हो गया था ।

फिर तो गद्दी के वारिस का वह मुकदमा ठेठ प्रिवी कौन्सिल तक पहुँचा और बैरिस्टर कामदार उसकी पैरवी के लिए विलायत भी गए। वहाँ पूरे तीन बरस तक मुकदमा चला, अन्त में खारिज हुआ और बैरिस्टर पराजित होकर लौट आये। मुकदमा खारिज होने के समाचार जरूर चौंकाने वाले थे, लेकिन उससे भी चौकाने वाली घटनाएँ तो बाद में घटीं, जिनके परिणाम स्वरूप सारे काठियावाड़ में खलबली मच गई थी। किसी ने सीतापुर के राजा के कान भर दिये कि बैरिस्टर कामदार विरोधी पक्ष से भारी रिश्वत खा गये और जान-बूझ कर मुकदमा हार गये। कानों के कच्चे राजा ने अपने ही दीवान के घर-द्वार और सम्पत्ति जब्त कर लिये। ऐसे प्रसिद्ध दीवान के घर-द्वार की जब्ती के समाचार जितने आघातजनक थे उससे कहीं शोकजनक घटना यह हुई कि जब्ती के ही दिन सन्देहास्पद परिस्थितियों में कारभारी हेमन्तराय की मृत्यु हो गयी।

इस अप्रत्याशित मृत्यु को लेकर गाँव में जितने मुँह उतनी बातें चल पड़ी थीं। एक पक्ष का कहना था कि अपनी ईमानदारी पर लगे इस कलंक को सहन करने से असमर्थ कामदार ने लोक निन्दा से बचने के लिए अफीम खाकर आत्म हत्या कर ली। दूसरे पक्ष का कहना था कि राजा ने रात में एक भोज का आयोजन किया और उस समय कारभारी के खाने में गुप्त रूप से जहर मिला दिया गया। लेकिन सचाई क्या थी इसका पता आज तक किसी को न चला—सब अनुमान ही लगाते रहे। उस शोकजनक घटना के परिणाम स्वरूप हेमन्तराय कामदार का परिवार छिन्न-भिन्न हो गया। पति की मृत्यु के बाद कामदार-पत्नी वैधव्य और लोक निन्दा के दुहरे आघातों को अधिक समय तक सह न सकी। जो अपार वैभव, अधिकार और मान-सम्मान का आकंठ उपभोग करती रही थी उस गृहिणी को, सारी धन-सम्पदा और घर-द्वार तक पर सरकारी अधिकार हो जाने के बाद जैसे बुरे दिन देखने

पड़े वह किसी भी गृहिणी का दिल तोड़ने को काफी था। इन सब आघातों से व्यथित और जर्जर वह बेचारी जल्दी ही मर गयी।

कीला ने जवानी में पाँव रखा ही था कि उस पर एक ही साथ तीन वज्र टूटे। क्षयरोग के कारण मौत के मुँह में जा ही चुका था कि किसी तरह भगवान की कृपा से बच गया। सगाई टूटने की करारी चोट भी लगी। किसी को विश्वास नहीं था कि वह जान लेवा क्षय रोग से बच जायगा! इसीलिए तो उसकी वाग्दत्ता की सगाई दूसरी जगह कर दी गयी थी। लेकिन भाग्य की विडम्बना देखिये कि कीला उसके बाद अच्छा होने लगा और मृत्यु-शय्या से उठ खड़ा हुआ। उसकी जिजीविषा ने परिचितों-रिश्तेदारों, सभी को आश्चर्य में डाल दिया। लेकिन राज-रोग से मुक्ति पाने वाला वह युवक पहले की तरह आशाओं, उमंगों और जीवन-रस से लबालब भरा कीला नहीं था। अब तो केवल पहले वाले कीला की हाड़-माँस की ठठरी, उसका प्रेत रह गया था। और जब उसे बताया गया कि उसकी वाग्दत्ता मीठी बाई अपने दूसरे मंगेतर को भी खोकर साध्वी बन गयी है तो उसे दुनिया से वैराग्य हो गया।

मन की इस स्थिति में पहले पिता की घोर अपमानजनक मृत्यु और फिर स्नेहमयी माता के हमेशा के लिए बिछुड़ जाने ने कीला को और भी विचलित कर दिया। एक साथ इतनी विपत्तियाँ किसी भी विचार-शील व्यक्ति को हिला देती हैं और वह कीला की ही तरह व्यग्र होकर बार-बार पूछने लगता है, 'मनुष्य पर दुःखों का इतना बोझ क्यों ?'

और एक दिन इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए कीला घर छोड़ कर चल दिया।

अज्ञातवास के पूरे पाँच साल उसने कहाँ और कैसे बिताये, यह तो कीला के सगे-सम्बन्धियों को भी मालूम न हो सका। सुनी-सुनायी खबरें उड़ती रहीं, कीला साधु हो गया है और गिरनार में किसी योगी के साथ धूनी रमाये पड़ा है; उसने जैन साधु से दीक्षा ले ली और पावा पुरी की ओर विहार कर रहा है; नहीं, नहीं, वह तो परिव्राजक हो कर हिमालय की ओर निकल गया है; नहीं जी, नहीं, उसने न तो दीक्षा

ली और न योगी ही बना, पेट का गड़हा भरने के लिए गाँव-गाँव भीख माँगता फिरता है। किसी-किसी ने तो यहाँ तक कह दिया कि कीला मणिकर्णिका घाट पर मर कर कभी का मुक्ति पा गया।

और मानों इस आखरी खबर को झुठलाने के ही लिए एक दिन सबेरे-सबेरे कीला राजकोट की गलियों में ज़ोर-जोर की आवाज लगा कर घूमता हुआ दिखाई दिया : "ले लो, सिर ओंछने की, बाल झाड़ने की विलायती कंघियाँ !.........सिर में से जूँ, लीख, रूसी (खोरी या बफो) सब निकाल बाहर करने वाली नये ढंग की कंघियां लो, कंघियाँ !"

और, बहुत दूर की बातों को बहुत लम्बे समय तक याद न रखने की अभ्यस्त लोक स्मृति कीला के मूल अल्ल 'कामदार' को बड़ी आसानी से भूल गयी और उसे 'कीला कंघी वाला' के नाम से प्रतिष्ठित कर दिया।

आज उन्हीं लोगों का प्यारा कंघी वाला—शहर के आबाल-वृद्ध सभी जिसे 'तू' कह कर सम्बोधित करते थे और जो खिलौनों का ठेला चला कर अपना पेट पालता था—वैस्टर्न इंडिया स्टेट्स एजेन्सी के सरिश्तेदार के स्पृहणीय पद पर प्रस्थापित हुआ था।

इस समाचार से आरम्भ में तो लोगों ने आघात-सा अनुभव किया। लेकिन अपने आपको हर परिस्थिति के अनुकूल बना लेने की क्षमता वाले लोक मानस ने फौरन इस नियुक्ति का औचित्य सिद्ध करने वाले कारणों को भी खोज निकाला।

"अरे भाई, हवेली का खण्डहर भी हजारों का होता है। अभी तक गर्दिश का मारा यहाँ-वहाँ भटकता रहा तो क्या हुआ ? आखिर लड़का किसका है ? हेमन्तराय कामदार का।"

"सच ही कहा है, जैसा बाप वैसा बेटा। बाप की समझ और बुद्धि बेटे में आये बिना रही है ? अन्त में कदर होकर रही।"

"लेकिन मज़ा देखो : हम सब ने तो बेचारे को कंघी वाला-कंघी वाला कह कर दो कौड़ी का बना दिया था; मगर परदेशी गोरे ने आखिर धूल भरे हीरे को पहचान ही लिया।"

"इतना तो कहना ही पडेगा कि लाट साहब ने रिश्ता खूब निभाया। हेमन्तराय की पुरानी प्रीति को वह भूला नहीं। अपने दोस्त के लड़के का हाथ थामा जरूर!"

नये सरिश्तेदार की नियुक्ति के समाचार सुनते ही राजे-रजवाड़े इस नये अधिकारी को बधाइयाँ और भेंट-सौगाते देने के लिए दौड़ पड़े। परिचय को कल्पवृक्ष समझने वाले व्यवहार कुशल व्यक्ति भी बधाई देने के बहाने मिठाई की छबड़ियों सहित कोठी में कीला से भेंट करने के लिए पहुँचने लगे। मगर कीला काफी दुनिया देख चुका था, वह इस तरह के मान सम्मान का वास्तविक अर्थ खूब अच्छी तरह जानता था। इसलिए एक दार्शनिक की तटस्थ दृष्टि से यह सारा तमाशा चुपचाप देखता रहा। मन मे तो उसे स्वार्थी ससार की इस लीला पर हँसी आ रही थी, लेकिन ऊपर से अपने बडे पद के उपयुक्त गम्भीरता का मुखौटा चढ़ाये रहा। उसे आश्चर्य भी होता था कि आज 'हम तो एक ही परिवार के हैं', 'बिल्कुल करीबी रिश्तेदार हैं', 'एक हो गोत्र के हैं' आदि दावे करने वाले इतने रिश्तेदार एकाएक कहाँ से निकल आये; और इतने दिन ये सब कहाँ छुपे हुए थे? बचपन मे उसने अपने पिता के अधिकार और रोब-दाब को देखा था, इसलिए चाटुकारों की बधाइयों का उस पर कोई असर न हुआ, न हो सकता था। अपने पिता की दीवानगिरी के दौरान वह रियासतों का आडम्बर, झूठी शान-शौकत, लाग-डाँट, रोब-दाव सभी कुछ अपनी आँखों देख चुका था। पिता के अनन्य मित्र वाटसन साहब के अत्यधिक आग्रह के कारण उसने सरिश्तेदार का पद स्वीकार कर लिया सही, लेकिन दो-ही-चार दिन में इतना घबरा गया कि खुशामदो और सिफारिशों के उस दम घोंटू वातावरण से कुछ समय छुट्टी पाने के लिए वह शाम को सीधा अपने बचपन के दोस्त मंचेरशा से मिलने दौड़ा गया।

× × ×

कीला जब मंचेरशा के यहाँ पहुँचा तो मंचेरशा अन्दर के कमरे में विदेशों को भेजी जाने वाली डाक तैयार करवाने में व्यस्त थे।

बाहर के कमरे में नरोत्तम स्थानीय खरीदों का हिसाब तैयार कर रहा था।

कीला ने जैसे ही पेढ़ी की सीढ़ियों पर कदम रखा नरोत्तम ने बड़े तपाक से स्वागत किया :

"आइये सरिश्तेदार साहब, पधारिये !"

"क्यों बे, औरों के साथ तू भी हमारा मजाक उड़ाने लग गया ?" कीला ने डाँट बतायी।

"मजाक कैसा? बड़े अफसर को क्या साहब कह कर नहीं पुकारा जाता ?"

"अबे, तेरा और मेरा रिश्ता छोटे और बड़े भाई का रिश्ता है और तू ही मुझे सरिश्तेदार साहब कहे, यह कहाँ तक उचित है ?"

"अगर तुम्हारा मुझे प्रभुलाल सेठ कहना उचित हो सकता है तो मेरा तुम्हें सरिश्तेदार साहब कहना उचित क्यों नहीं है ?"

इस पर नरोत्तम और कीला दोनों ने जोर का कहकहा लगाया।

कीला की परिचित हँसी की आवाज सुनी तो अन्दर से मंचेरशा दौड़े आये और 'कीला बेटे, तूने तो गजब कर डाला' कहते हुए अपने बचपन के साथी से प्रेमपूर्वक लिपट गये।'

पास खड़ा नरोत्तम बचपन के उन दोनों दोस्तों का वह प्रेम मिलन देखकर प्रसन्नता और सम्भ्रम से रोमांचित हो गया।

फिर दोनों दोस्त बातें करने लगे। मंचेरशा ने कहा :

"तूने तो बाबा, धड़ाम से तोप का गोला ही छोड़ दिया।"

"मैंने नहीं, ए. जी. जी. साहब ने। उन्होने जबरदस्ती मेरे गले यह इल्लत मढ़ दी......" कीला ने अपनी स्थिति स्पष्ट की।

"इतने दिन किस दुनिया में गायब हो गया था ?" मंचेरशा ने शिकायत की : "तुझे पूछते हुए पांच सौ आदमी तो पेढ़ी पर ही आये होंगे।"

"मैं वाटसन साहब के बंगले में ही था......"

"वाटसन साहब नें तुझे अपने बंगले में बन्द कर रखा था, क्या ?"

"हाँ, यही समझ लो।" कीला ने बताया : "घर द्वार छोड़ने के

बाद पाँच बरस तक मैने क्या किया, कहाँ रहा, कहाँ-कहाँ फिरा, साहब सब सुनना चाहते थे……"

"वाह बेटा, हम पूछते है तो चुप मार जाता है और उस विलायती गोरे को सब सुना दिया !" मचेरशा ने फिर शिकायत भरे स्वर में कहा।

"साहब ने जब बहुत आग्रह किया और मजबूर कर दिया तो लाचार मुझे सब कुछ बताना पड़ा………साहब ने सब, एक-एक अक्षर लिख लिया……"

"लिख भी लिया ?" मचेरशा ने विस्मित होकर पूछा : "सब लिख कर क्या तेरी रिपोर्ट करने का इरादा है उस बुड्ढे का ?"

"रिपोर्ट नही करेंगे, कहानी बनायेंगे।" कीला ने बताया : "वाट-सन साहब काठियावाड़ के गाँवों में घूम-घूमकर पुराने बहारवटियों (डाकुओ) की कहानियाँ लिख रहे है।"

"वाह, क्या कहने !" मंचेरशा ने व्यग्य किया : "मानो यह कीला भी कादू मकराणी-जैसा ही बहारवटिया हो !"

"लेकिन मैंने किसी कादर बख्श की नाक नहीं काटी !"

"वाह बेटा, बिना छुरी-चाकू के सारे शहर की नाक काटने के बाद भी सन्त बन रहा है !" मचेरशा ने टोना मारा : "सरिश्तेदार की पोस्ट पर काविज होने के बाद तो तूने बड़े-बड़े मुछन्दरों की नाक क्या मूँछे तक मूड़ दीं।"

"अफसरों का काम तो लोगों को उलटे उस्तरे से मूड़ना है ही।" कीला ने मजाक का जवाब मजाक से देते हुए कहा : "लाट साहब ने जबर्दस्ती मुझे इस मुसीबत में फँसा दिया……मेरे पिताजी के वे पुराने दोस्त जो हैं………"

"हाँ, जानता हूँ। रोज शाम को दोनों आदमी साथ डिनर लेते थे।"

"उन डिनरों के ही कारण तो आज मैं इस मुसीबत में फँस गया।" कीला ने कहा : "टेबल पर मैं पिताजी की बगल में बैठा करता था, इसलिए

साहब को मेरा चेहरा याद रह गया और इतने वर्षों के बाद भी स्टेशन पर मुझे खिलौने बेचते एकदम पहचान लिया ।"

"कीला, खिलौने के तेरे उस ठेले का अब क्या होगा ?"

"ठेला चलता रहेगा ?"

"कौन चलायेगा ?" मंचेरशा ने जरा नाराजी भरे स्वर में कहा : "कोठी की कचहरी से तू जायेगा चलाने ?"

"दखलशा फकीर चलायेगा अब उस ठेले को ।" कीला ने बड़े इत्मीनान से जवाब दिया : "वह बेचारा भीख माँग कर चरस के दम लगाता है । अब खिलौनों का ठेला चलाकर अपनी रोटी निकाला करेगा ।"

"वाह बेटा ! इतना बड़ा अफसर बन जाने बाद भी उस ठेले का मोह नहीं छूटा ?"

"छूट सकता भी नहीं, और न मुझे छोड़ना है ।" कीला ने समझाते हुए कहा : "मंचेरशा दोस्त अफसरी, तो आज हैं और कल नहीं । लेकिन ठेला तो हमेशा रहेगा और रोजी-रोटी देता रहेगा । तुम तो रियासतों में ही छोटे से बड़े हुए हो और जानते हो कि कुर्सी से खारिज अफसर दो कौड़ी का भी नहीं रह जाता । मैं भी अगर कुर्सी से खारिज हुआ तो अपने ठेले पर जा बैठूँगा । बाकी यह सारा मान-सम्मान कीला को नहीं, उसकी कुर्सी को मिल रहा है । मेरे पिताजी कहा करते थे, सिपाही की नहीं, सिपाही के डंडे की इज्जत होती है......"

मान-सम्मान की चर्चा के दौरान यह बात भी उठी कि कौन-कौन से राजा कीला को नजराना भेंट करने आये थे । कीला ने थोड़े क्षोभ के साथ बताया :

"अपना वह अजूबा भी सुनहरी साफा और मिठाई का टोकरा जबरदस्ती रख गया ।"

'अजूबा' का अपरिचित नाम सुनकर नरोत्तम जरूर विचार में पड़ गया, लेकिन मंचेरशा को समझते देर न लगी । 'अजूबा' और कोई नहीं सीतापुर के वर्तमान राजा अजीतसिंह थे, जिनका नामोल्लेख कीला

ने उनके बचपन के 'अजूबा' नाम से किया था, क्योंकि मंचेरशा और कीला उन्हें छुटपन में इसी प्यार भरे नाम से पुकारा करते थे।' 'अजूबा' या 'अजु' के साथ कीला और मंचेरशा सरकारी बग्घी में सैर करते, खेलते, ऊधम मचाते और धौल-धप्पा भी करते थे। लेकिन बचपन का वही प्यारा नाम अब इतना अप्रिय हो उठा था कि मचेरशा अपनी नाराजी व्यक्त किये बिना न रह सके। बोले :

"अजूबा तुझे मिठाई का टोकरा दे गया और तूने उसे रख भी लिया ?"

"रख लिया, क्योंकि रखना ही होता है। कोई कुछ देने के लिए आये तो इनकार करके उसे लौटाया नहीं जाता।" कीला ने कहा।

"इसी अजीतसिंह के बाप ने हेमन्तराय जी को जहर दिया था और उसका बेटा तुझे मिठाई खिलाने आया………"

"ऐसा मत कहो मंचेरशा, ऐसा मत कहो।" कीला ने अपने मित्र को अधबीच ही रोकते हुए कहा : "गयी-गुजरी को याद करने से कोई फायदा नही। जो होना था, हो गया और होनी के आगे आदमी का कोई बस नही। गडे मुर्दे क्यो उखाडे जायें ? पिताजी को इसी तरह मरना था, मर गये, अब लौटकर आने से तो रहे ?"

कहते-कहते कीला का गला भर आया। पिता की करुण मृत्यु का दृश्य आँखो मे नाच गया। उसने साफे के छोर से उमड़ते हुए आँसुओं को पोंछ डाला।

अपने मित्र को शोक मग्न होते देख सहृदय मंचेरशा भी चुप हो गये।

नरोत्तम के विस्मय की सीमा न थी। वह चकित होकर कीला की ओर देख रहा था। ऊपर से रूखा दिखायी देने वाला यह कठोर आदमी क्या अन्दर से सचमुच सवेदनशील और कोमल है ? अहर्निश आनन्द की लहरें तरंगित करने वाले इस हँसमुख आदमी का अन्तर क्या इस कदर आँसुओं से लबालब भरा हुआ है ? हृदय के अश्रु प्रवाह को दूसरों की निगाहों से छिपाने के ही लिये क्या यह हर समय अपने चेहरे पर मुस्कराहट का मुखौटा लगाये रहता है ?

वातावरण एकदम इतना विषादमय हो उठा कि देर तक तीनों मित्र चुपचाप बैठे रहे। अन्त मे कीला ने मन पर संयम करके कहा : "पुरानी दुश्मनी को भुलाकर ही इस दुनिया में जीवित रहा जा सकता है, मचेरशा !" और फिर अपनी आदत के अनुसार उसने एक सुभाषित सुना दिया : 'मीठी बाई स्वामी सच हो कहती हैं कि बैर से बैर का शमन नहीं होता, विनय और क्षमा से बैरी भी वश में हो जाते हैं। समझे ?"

असल में हुआ यह कि हेमन्तराय कामदार के उल्लेख से आँसू तो कीला की आँखों में आये थे, लेकिन आघात और वह भी जबर्दस्त आघात लगा था मंचेरशा को। वह निष्कपट और सहृदय पारसी सज्जन एक बारगी ही चुप हो गया था। यह स्थिति चतुर कीला से छुपी न रही। उसने फौरन विषयान्तर किया :

"व्यापार कैसा चल रहा है, मंचेरशा ?"

"बहुत बढ़िया। इस मौसम में ओतमचन्द भाई ने तो कमाल ही कर दिया। अमरगढ़ स्टेशन से तीस वैगन माल चढ़ भी चुका है। विलायती पेढ़ी वाले सोच में पड़ गये है ?" मचेरशा ने कहा; और अपनी प्रतिद्वन्द्वी विलायती पेढ़ी याद आते ही उन्हें मनसुख भाई भी याद आ गये। बोले : "अरे कीला मैं तुझे बताना भूल ही गया—लम्बा कोट पहनने वाले वे जो मनसुख भाई हैं न, वे रोज दो-दो बार तुझे यहाँ पूछने आते रहें हैं बेचारे।"

"वे आज ही सबेरे मुझ से मिल गये और मिठाई भी दे गये।"

"एक हफ्ते से तेरे पीछे घूमते-घूमते बेचारों के जूतों के तले ही घिस गये। रोज सुबह और शाम यहाँ आकर तेरे प्रभुलाल सेठ से पूछ जाया करते थे कि कीला भाई कहाँ गये कुछ पता चला ? उस भोले-भाले अल्लाह की गाय जैसे बनिये को तूने किसी मुसीबत में तो नही फँसा दिया ?"

"मुसीबत में तो उलटे उसी ने मुझे फँसाया है।"

"वाह बेटा, कीला को मुसीबत में फँसाने वाला तो कोई माई का लाल हमने आज तक नहीं देखा।"

"लेकिन इस मनसुखलाल ने मुझे एक मामूली-सी मुसीबत में जरूर फँसा दिया है।" कीला ने कहा : "आज सबेरे आकर पूछने लगा कि मंचेरशा की पेढ़ी वाले प्रभूलाल सेठ कैसे आदमी हैं ?"

"अच्छा ! फिर ?"

"मैने कहा, बिलकुल सोना ....."

"अच्छा ! फिर ?"

"फिर उसने पूछा कि प्रभूलाल की शादी हो गयी या क्वांरे हैं; तो मैंने बता दिया एकदम क्वाँरे।"

"ओह, अब समझ में आया कि वह बनिया इतने दिन से पेढी की सीढ़ियाँ क्यों घिस रहा था।" इतना कहकर मंचेरशा ने पूछा : "फिर क्या बात हुई, कीला ?"

"फिर उसने कहा कि मेरे एक भानजी है; मेंगणी में रहती हैं; प्रभूलाल सेठ कृपा करें तो उसका रिश्ता करने का विचार है।"

"वाह बेटा नरोत्तम ! हो गयी पाँचों घीं में।" मंचेरशा ने खुश होकर कहा : "अब तो तू चार हाथ वाला हो जायगा।"

कीला ने कहा : "इतनी जल्दी नही मचेरशा, थोड़ा सब्र करो ! तुम्हारे इस प्रभूलाल सेठ को इतने सीधे से चार हाथ वाला नहीं किया जा सकता।"

"क्यों ? सीधे से नही तो क्या टेढ़े से इसकी सगाई-शादी करेगा?" उत्साहित मचेरशा ने कुछ उग्र स्वर में पूछा ।

"कीला ने शान्त परन्तु आत्म-विश्वास से भरे स्वर में जवाब दिया : "हां, कुछ टेढ़े तरीके से ही इस लड़के की सगाई-शादी करनी होगी, क्योंकि कीला को इसके मामले में अभी सब चालें टेढ़ी ही चलनी पड़ी हैं।"

३०

बहन का भाई

दुपहर के भोजन का समय था। चिलचिलाती धूप के कारण मेंगणी की गलियों में आधीरात का-सा सन्नाटा हो रहा था। व्यापारी और दलाल, मजदूर और हमाल सभी दो घड़ी सुस्ता रहे थे।

गाँव के छोर पर स्थित एथल अहीर के बाड़े का रास्ता एकदम सूना था। एथल अपने ढोरों को लेकर जगल के चरागाह की ओर निकल गया था, इसलिए उसका बाडा भी इस समय बिलकुल सूना-सूना और खाली लग रहा था। घर में चूल्हे के पास बैठी उसकी अहीरिन हीरबाई रोटियाँ पो रही थी, तभी ड्योढी की कुण्डी बज उठी।

"कौन ?" रोटी पोने की पटर-पटर आवाज के बीच हीरबाई का मधुर स्वर गूँज उठा।

"दरवाज़ा खोलो तो पता चले।" उधर से भी उतना ही मीठा और स्नेह भरा उत्तर मिला।

हीरबाई को आवाज़ तो जानी-पहचानी-सी लगी, लेकिन ठीक से अन्दाज नहीं लगा पायी कि कौन है! वह रोटी पोते-पोते ही आटा सने हाथों से दरवाज़ा खोलने के लिए ड्योढ़ी की ओर चल दी।

'इस समय कौन आया है? मेहमान होता तो समय से आ जाता······हाट-बाजार करने वाले भी दुपहर माथे लेकर नहीं आते······ फिर इस कुवेला आने वाला कौन है?' इस तरह सोचते हुए हीरबाई ने दरवाज़े की आगल खोल दी।

ड्यौढ़ी का बड़ा दरवाज़ा चूलों में से चीं-चीं की आवाज़ करता हुआ खुला तो सामने एक घुड़सवार खड़ा दिखायी दिया। अच्छी नस्ल की घोड़ी लगाम खिंची हुई होने से एक पाँव लँगड़ा किये खड़ी थी और उस पर बैठा सवार आँखों से स्नेह का अमृत बरसा रहा था।

"अहा, मेरे सेठ ! ओतमचन्द सेठ !" हीरबाई के हृदय से स्नेह भरा उद्‌गार निकला।

सवार बड़ी शालीनता के साथ घोड़ी पर से नीचे कूदा और बोला : "सेठ नहीं, सेठ नहीं; भाई कहो बहिन, भाई !"

"मेरा वीर ! मेरा वीर !!" कहते हुए हीरबाई ने आटा सने हाथों से ही आगन्तुक की बलैयाँ लीं। "तुम्हारी आवाज पहचान न सकी, इसलिए पूछना पड़ा कि कौन है। आओ, मेरे भैया, आओ !"

हीरबाई ने घोड़ी की लगाम पकड़ली और ओतमचन्द के पीछे-पीछे ड्योढ़ी मे प्रवेश किया।

ओसारे के खम्भे से घोड़ी को बाँधकर चरनी मे से रजका लाकर उसके आगे डाला और ओतमचन्द के लिए खाट डालकर उस पर कम्बल बिछा दिया।

पनिहारे से लोटा भरते हुए हीरबाई ने पूछा : "आयर के मटके का पानी पी लोगे या पीतल के गगरे में नया पानी भर लाऊँ ?"

कमर में बँधे कपडे को ढीला करते हुए ओतमचन्द ने मज़ाक किया : "एक बार इस मटके का पानी पीकर भ्रष्ट हो ही चुका हूँ, अब और क्या भ्रष्ट हूँगा ?"

सुनकर मेहमान के साथ हीरबाई को भी हँसी आ गयी।

पानी पीते-पीते ओतमचन्द रूक गया और बोल उठा : "अरी बहिन, रोटी जल रही है शायद !"

"तवे पर डालकर आयी थी न इसलिए......"

"तो पलटो, पलटो जल्दी से।" नथुने सिकोड़-सिकोड़ कर जलती रोटी की गन्ध लेते हुए ओतमचन्द ने कहा : "रोटी में भौरी पड़ जायेगी।"

"दूसरी पो लूँगी ।" हीरबाई ने लापरवाही से कह दिया ।

"वाह, बाजरा क्या मुफ्त आता है कि यों रोटियाँ जलने दी जाये ?" कहकर ओतमचन्द खड़ा हो गया ।" चलो, मैं ही चलकर चूल्हे के आगे बैठता हूँ, जिससे तुम्हारे रोटी बनाने में बाधा न पड़े ।"

"तुम चूल्हे के आगे बैठोगे ?" हीरबाई ने सकुचा कर कहा ।

"हाँ, और रोटी भी खाऊंगा । इसलिए तो आया हूँ ।" ओतमचन्द ने कहा ।

"बहिन की हँसी उड़ाते हो भाई ?"

"हँसी नहीं उड़ाता, बहिन, सच कह रहा हूँ । खाने के समय क्या यों ही चला आया ?"

"आये तो बहुत अच्छा किया, मेरे सिर-माथे पर ।" हीरबाई अत्यधिक प्रसन्न होकर बोली : 'तुम आये, मेरे आंगन में उजाला हो गया ·····लेकिन किसी के हाथ खबर तो करवा दी होती !"

"खबर करवाने जितना समय ही कहाँ मिल पाता है ? अभी मेंगणी में हूँ, तो खाने के समय सरपदड़ मे और शाम को किसी तीसरे ही गाँव मे ।"

चूल्हे के समीप आसन बिछाकर मेहमान को बिठाते हुए हीरबाई ने पूछा :

"अभी क्या बहुत दौरा करना पड़ रहा है ?"

"मौसम जो है !"

"मेंगणी मे भी तुम्हारा व्यापार है क्या ?"

"यहाँ व्यापार तो क्या ही होगा, लेकिन मेंगणी से भी माल खरीदा है ·····"

"किसका ?"

"वजेसग ठाकुर का ···· "

सुनकर हीरबाई स्तम्भित रह गयी । अत्यधिक आश्चर्य के साथ बोली : "वजे संग ठाकुर का········ गाँव के मालिक का ? मेंगणी के राजा-ठाकुर का माल तुम खरीदते हो भैया ?"

"अपनी हैसियत के मुताबिक · ···"

"और बेचते हो किस गाँव ?"

'बम्बई से विलायत चढ़ाते हैं।"

"ठेठ मुम्बई से ठेठ विलायत तक माल चढ़ाते हो ?" हीरबाई ने और भी चकित होकर पूछा : "तो भैया, तुम ठेठ मुम्बई तक जाते होगे ?"

"मैं नहीं, मेरा छोटा भाई नरोत्तम, जो राजकोट में काम करता है, बम्बई आता जाता रहता है। मैं तो उसकी ओर से अपने इलाके का माल इकट्ठा कर देता हूँ··· "

ओतमचन्द के प्रत्येक वाक्य पर रोटी बनाती हुई हीरबाई के हाथ की आटे की लोई हाथ में ही रुकी रह जाती। एक बार तो वह आँखें फाड़े ओतमचन्द की तरफ इस तरह देखती रह गयी कि उसे याद दिलाना पड़ा : "रोटी पलटो, बहिन, जल जायेगी······"

"ओह, हाँ ! तेज आँच में तवा बहुत गरम हो गया है।" कहकर हीरबाई ने फिर वही बात पूछी : 'क्यों भैया, तुम हमारे गाँव के ठाकुर का माल खरीदते हो ?"

"खरीद भी चुका," ओतमचन्द ने कहा : "आज कीमत चुकाने गया था······"

"तुम हमारे ठाकुर को रुपए चुकाओगे ?" हीरबाई के गले अभी तक यह बात उतर नहीं रही थी।

"चुका आया······"

"कब ? अभी ?"

"नही-नही, सबेरे के समय।"

"तो तुम सबेरे ही गाँव में आगये थे ?"

"हाँ, हिसाब का काम तो जल्दी ही निपट गया था, लेकिन ठाकुर आव भगत करने लगे तो मुझे रुक जाना पड़ा। उन्होने खूब खातिर-दारी की। अमल-कसूँबा तो हम महाजन लोग छूते नही, मगर

केसरिया दूध उन्होंने खूब कसमें दे-देकर और मनुहारें कर-करके पिलाया। फिर ब्राह्मण को बुलवाकर मेरे लिए रसोई बनवा रहे थे, मगर मैंने इनकार कर दिया। कहा कि ब्राह्मण देवता को बेकार तकलीफ मत दीजिए; मैं तो गाँव में अपनी बहन के यहाँ रोटी खाने जाऊँगा……"

"सच भैया, तुमने यह कहा ?" हीरबाई ने फिर विस्मित होकर पूछा।

"क्यों न कहता ! मेंगणी आऊं और बहन के घर के बदले किसी और के यहाँ खाना खाऊं तो क्या तुम्हें बुरा नहीं लगेगा ?"

"लेकिन गाँव के ठाकुर राजा मालिक से तुमने सब ही इनकार कर दिया, भैया ? उतने बड़े आदमी को बुरा नही लगेगा ?"

"बहन का नाम आते ही ठाकुर चुप हो गये; समझ गये कि अब आग्रह करना बेकार है।" ओतमचन्द ने कहा : "मगर बेचारे ब्राह्मण देवता को बहुत बुरा लगा। उन्होंने तो कह भी दिया कि सेठजी, तुमने मेरा चकाचक चूरमा खटाई मे डाल दिया।"

"वह नरथू बामन तो मुआ है ही चकाचक का लोभी !" अब इत्मीनान मे बाते करने के लिए हीरबाई ने चूल्हे पर से तवा उतार कर नीचे रख दिया और वहाँ अनुपस्थित नरथू ब्राह्मण को कोसते हुए बोली : "उस चूरमा के चटोरे को क्या पता कि सेठ की बहन का घर इसी गाँव में है !"

यह कह कर उसने इतनी सफाई से चूल्हे पर बटलोई में अदहन चढ़ा दिया कि ओतमचन्द को कुछ पता न चला।

और उसे मीठी बातों में लगाये रख उतनी ही सफाई से बटलोई के खौलते पानी मे कुछ डाल भी दिया।

गली मे खेलने के लिए गया हुआ बींजल थोड़ी देर बाद लौटा और ठुनककर बोला . "माँ, माँ भूख लगी है ….."

"भूख भूख करता है, मगर यह भी दिखता है कि कौन आया है ?" हीरबाई ने पुत्र से कहा : अच्छा, बता तो कौन आया है ?"

ओतमचन्द की ओर थोड़ी देर देखते रहने के बाद बीजल बोल उठा : "मामा आये है ! मामा आये हैं।"

ओतमचन्द ने ललक कर बीजल को छाती से लगाया और फिर अपनी गोद में बिठा लिया। इसके बाद बच्चे से उसकी तोतली भाषा में बातें करते हुए उसने अपनी कमर मे लपेटे हुए कपड़े के छोर खोल डाले।

"ओहो ! खिलौने ! खिलौने !" बीजल मारे खुशी के उछल पड़ा।

ओतमचन्द की कमर में लिपटे हुए कपड़े में से निकले नयी तरह के खिलौनों की ओर हीरबाई भी सम्भ्रमपूर्वक देखने लगी।

"ओहो ! छुक-छुक गाड़ी !"

"ओहो ! पीप, पीप !"

"ओहो ! बाजा !"

बीजल एक-एक खिलौने को हाथ में ले-लेकर उनका नामकरण करता जाता था।

"भैया, ये खिलौने कहाँ के हैं ?" हीरबाई ने पूछा : "हमारे खरादिये तो ऐसी चीजें खरादते नही।"

"विलायत के हैं—चाभी देने से अपने-आप चलने लगते हैं।" और ओतमचन्द ने एंजिन में चाभी भरकर उसे चलने के लिए छोड़ दिया।

घुरूर-घुरूर की आवाज़ के साथ इंजन चलने लगा तो भोला बीजल डर कर परे हट गया।

हीरबाई भी इस चमत्कार से मन-ही-मन डर गयीं। बोली : "भैया, यह तो बड़ा अचम्भा है। कहाँ से ले आये ये खिलौने ?"

"बम्बई से।"

"ठेठ मुम्बई से ?"

"हाँ। अपना छोटा भाई नरोत्तम राजकोट में काम करता है।

उसका बम्बई जाने का काम पड़ता ही रहता है। उसने अपने बटुक के लिए इस तरह के खिलौने भिजवाये तो मैंने एक जोड़ा बीजल के लिए भी मँगवा लिये।"

अपने आप चलने वाले खिलौनों के प्रति बीजल का डर कम हो गया था, इसलिए अब वह स्वयं उनमें चाभी भर कर उत्साह से खेलने लगा था।

मगर हीरबाई अभी तक इन यांत्रिक अचम्भों की तारीफ किये जा रही थी : "क्या कमाल किया है !......मानों सचमुच की रेलगाड़ी ही देख लो ! ...अकल किसी के बाप की है !"

जो बीजल अभी थोड़ी देर पहले 'भूख लगी ! भूख लगी !' कह कर माँ को दिक कर रहा था वह खिलौनों में ऐसा मगन हुआ कि खाने की बात एक बारगी ही भूल गया।

"ऐ ! सब खिलौने तोड़ मत डालना। कुछ संभाल कर पटारे में रखदे...."हीरबाई ने पुत्र को डपटा।

"खेलने भी दो !" ओतमचन्द ने कहा : "खेलने और तोड़ने के ही लिए तो लिये हैं।"

"इनमें से कुछ खिलौने बीजल की दुलहिन को भेजूँगी।"

ओतमचन्द ने बड़ी मुश्किल से अपनी हँसी रोकी; फिर पूछा: "बीजल की दुलहिन खिलौनों से खेल भी लेती है ?"

"अभी कहां ? अभी तो पलना झूलती है।" हीरबाई ने बताया: "लेकिन बड़ी होकर तो खेलेगी ही। इन विलायती खिलौनों को देखकर बहुत खुश हो जायेगी मेरी बहू।"

ओतमचन्द मन-ही-मन हंसकर सोचने लगा कि नरोत्तम ने जब इन खिलौनों को बम्बई से खरीदा तो उसे क्या पता था कि ये पलना झूलती बीजल की दुलहिन के हाथ में पहुँचेंगे।

"अब रोटी खिलाओ बहिन !" अन्त में ओतमचन्द को ही भोजन के लिए कहना पड़ा : "साँझ तक मुझे दो-तीन गाँव और निबटाने है।"

अहीरिन ने ओतमचन्द के सामने काँसे की ऐसी चम-चमाती हुई थाली रख दी कि चाहो तो मुँह देख लो और बोली : "आज के दिन मेरे मैया को रोटी तो क्या खिलाऊँ ?"

ओतमचन्द पूछने जा ही रहा था कि 'रोटी नही तो क्या खिलाओगी' तभी उसकी थाली में घी से तर सेवैयाँ परोस भी दी गयीं।

"यह क्या ? यह क्या कर डाला ?" ओतमचन्द पूछता ही रह गया।

"तुम्हारे साथ बातें करती रही न, इसलिए रोटियाँ तो सब जल गयी।" कहकर हीरबाई आगे बोली : "तुम राजा ठाकुर के यहाँ का चूरमा छोड़कर मेरे यहाँ आये तो क्या बहिन मुँह मीठा भी न कराये ?"

खाते-खाते ओतमचन्द ने एथल के बारे मे पूछा :

हीरबाई ने बताया : "सबेरे से ढोर चराने चले जाते हैं तो दिन अस्ते लौटते हैं।"

"कोई बात नही, मैं अपनी घोड़ी को चरागाह की ओर मोड़ दूँगा और एथल भाई से मिलता जाऊँगा।"

"लेकिन तुमको वह जगह मिलेगी कैसे ?"

"मिलेगी क्यों नही ? तिराहे के पास नदी के उस पार ही तो ढोर चरते हैं !" ओतमचन्द ने कहा : "वह किनारा क्या मेरा जाना पहचाना नहीं है ?" वहीं तो मैं मार खाकर पड़ा था; और वहीं से एथल भाई मुझे झोली में डालकर यहाँ लाये थे।"

"तुम्हें अभी तक सब याद है ?" अहीरिन ने पूछा।

"जिन्दगी-भर याद रहेगा, बहिन ! तुमने सगी माँ की तरह सेवा करके जो मुझे मौत के मुँह से बचाया वह मरते दम तक भी कैसे भूलूँगा ?" ओतमचन्द ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा : "तुम्हारा तो मैं जन्मो-जन्म अहसान मन्द रहूँगा······तुम्हारे उपकारों का बदला मैं कभी नही चुका सकता······"

"मैं बिना भाई की थी और मुझे धरम का भाई मिल गया, यह क्या कम भाग्य है मेरा ? तुमने तो बड़े से बड़ा बदला चुका दिया।"

यह कह कर हीरबाई ऊपर की ओर देखती हुई बोली : "ऊपर वाले भगवान ने ही मुझ पर तरस खाकर तुम्हे हमारे यहाँ भेज दिया······"

"मुझे भी यही लगता है बहन, कि भगवान ने ही मुझे तुम्हारे यहाँ भेज दिया। नहीं तो कहाँ बाघणिया और कहाँ नदी का वह डरावना किनारा और कहाँ इस अनजाने घर की आवभगत ! लेकिन तुम्हारे हाथों मेरी जान बचना लिखा था तो वह मिथ्या कैसे होता ?"

"लेकिन मेरे बीजल के ननिहाल मे मामा कहलाने वाला कोई नहीं रहा और सगे मामा से भी सवाया स्नेह करने वाले तुम मिलना लिखे थे तो वह मिथ्या कैसे होता ?"

"बीजल की शादी में अब कितनी देर है ?" ओतमचन्द ने पूछा।

"तुम मामेरा (भात) लेकर आओ, बस इतनी ही देर है।"

"मैं तो तैयार ही हूँ, बहन ! तुम झूठ भी कहोगी तो सच मान कर आ खड़ा हूँगा।"

"ऐसी बात है तो अगली आखातीज (अक्षय तृतीया) को चले ही आना।"

"सच कह रही हो ? पक्की बात है न ?"

"बिलकुल। जरा भी फर्क नही। आखातीज को बीजल का तिलक चढ़ जायेगा।" हीरबाई ने कहा : "मेरी भौजी को भी साथ लाओगे न ?"

"जरूर, जरूर।" ओतमचन्द ने उसे आश्वस्त किया।

भोजन कर चुकने के थोड़ी देर बाद विदा होते समय ओतमचन्द ने बीजल से कहा : "चल तो मेरे साथ, मुझे नदी की ओर जाने वाला रास्ता बता दे।"

"जा बेटा, मामा को ईश्वरिया का रास्ता बता आ।" हीरबाई ने बीजल को ओतमचन्द के साथ भेज दिया।

थोड़ी देर बाद बेटा लौटकर आया तो माँ ने उससे पूछा : "क्यों रे, तेरे कुरते की जेब में यह गेंद-जैसा गोल-गोल क्या उभरा हुआ है ?"

बीजल ने कोई जवाब नहीं दिया, चुपचाप हंसता रहा। हीरबाई ने कुतूहल से उसकी जेब टटोली तो उसमें से सफेद गोल-गोल सिक्के खन-खनाते हुए गिर पड़े।

वे थे 'चोटी वाली रानी' की छाप के खरी चाँदी के बम्बैया रुपये !

जमीन पर बिखरे हुए, निःस्वार्थ स्नेह के प्रतीक जैसे उन धवल उज्ज्वल सिक्कों को अपलक देखती हुई अहीरिन के अन्तर से ये उद्गार निकले : "यह धरम का माना हुआ भाई तो सगे माँ जाये भाई से भी सवाया साबित हुआ......बहन को दिया जाने वाला कपड़ा भानजे की जेब में रखता गया !"

हीरबाई स्नेहार्द्र दृष्टि और कृतज्ञ भाव से भाई की ओर से प्राप्त इस भेंट को देख रही थी कि उसके कान में चांदी की घंटी के बजने जैसा मधुर स्वर सुनायी दिया : "हीरी काकी !"

"कौन ?" कहते हुए हीरबाई ने नजरें उठाकर देखा और बोल उठी : "चम्पा ! आ, आ, बेटी ! आज इस समय फुरसत कैसे मिल गयी री ?"

"फुरसत तो नहीं मिली काकी, लेकिन सब काम छोड़-छाड़कर पता लगाने आयी हूँ......"

"किसका ?"

"आपके भाई का......" चम्पा ने हंसते-हंसते कहा : "ओतमचन्द सेठ का—मेरे जेठ का—पता लगाने आयी हूँ।"

"तुझे कहाँ से मालूम हुआ री ?"

"दरबार की ड्योढ़ी से।"

"दरबार की ड्योढ़ी से कैसे ? किसने कहा ?"

"नरथू महाराज से। उन्होंने पिताजी से कहा, पिताजी ने अम्माँ को बताया तो मैंने सुन लिया और चूल्हा जसी के हवाले कर फौरन दौड़ी आयी......"

"लेकिन जरा-सी देर हो गयी। सिर्फ एक कदम का फासला—वे घोड़ी पर सवार होकर अभी ही गये हैं।" हीरबाई ने कहा।

३१

मैं इससे शादी नहीं करूँगी

बीजल की जेब से जमीन पर गिरे हुए चांदी के चमचमाते रुपयों की ओर जब चम्पा को प्रश्नसूचक दृष्टि डालते देखा तो हीरबाई ने उसे बताया :

"ओतमचन्द सेठ दे गये······बीजल की जेब में रखते गये······मेरे कपड़ों के लिए··· ··"

"समझ गयी।" चम्पा बोल उठी : "तुम्हारे धर्म के मुँह बोले भाई दे गये······"

"मुँह बोले धर्म के भाई जरूर है, मगर सगे भाई से भी अधिक··" हीरबाई ने कहा।

"सच है, बिलकुल सच।" कहकर चम्पा मुँह बोली बहिन को इस तरह कपड़ा दे जाने वाले 'भाई' की आर्थिक समृद्धि की कल्पनाओं में खो गयी।

पिछले कई दिनों से वह उड़ती बातें सुन रही थी कि ओतमचन्द सेठ आर्थिक दृष्टि से एक बार गिर जाने के बाद फिर खड़े हो गये हैं। पुराने बही-खातों में जिनकी जमा बाकी रह गयी थी उन सबके घर जा-जाकर मय ब्याज के चुकारा कर रहे हैं। बुरे दिनों में अबदुल्ला सेठ को जो घोड़ा-गाड़ी बेच देनी पड़ी थी उसे वापस खरीद लिया है। वास्तु-पूजा के बाद जिस नये मकान में थोड़े ही दिन रह पाये थे उसे भी वापस खरीदने की बातें चल रही हैं।

चम्पा इन उड़ती खबरों को सुनती थी, लेकिन मन बहुत ही सन्तप्त होने के कारण उसे इन पर विश्वास नहीं होता था। नरोत्तम को स्टेशन

पर बोझा ढोने की मजदूरी करते देखा था, उस दिन से उस बेचारी के कोमल मन में खासी उलझन पैदा हो गयी थी। समय के साथ वह उलझन बढ़ती गयी और उसमें ऐसी गाँठें पड़ गयीं कि सुलझाना असम्भव ही लगता था। राजकोट से लौटते समय स्टेशन पर कीला ने पाँच रुपये का नोट लौटाते हुए मामा से जो कुछ कहा था उसे सुनकर वह अवश्य प्रसन्न हुई थी—वह 'मजूर' फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठकर बम्बई जा रहा था, यह सुनकर उसे मन-ही-मन गहरा सन्तोष हुआ था। लेकिन मन की गहराइयों में कहीं इस समाचार की सच्चाई के प्रति सन्देह भी था। क्या सच ही ऐसा हो सकता है : 'एक बार जिस मुसीबत के मारे को स्टेशन पर कुली गिरी करनी पड़ी, क्या वह इस तरह बम्बई की यात्रा कर सकता है? इस सन्देह के साथ-साथ चम्पा के मन में यह विचार भी आता था कि ऐसा क्यों नहीं हो सकता? मेरी परीक्षा लेने के ही लिए उन्होंने उस दिन बोझा ढोया होगा। मुझे परखने और बेवकूफ बनाने के ही लिए उन्होंने वह नाटक किया होगा। वे सच ही बम्बई में व्यापार करते होंगे। यदि ओतमचन्द सेठ यहां इतने बड़े पैमाने पर व्यापार करते हैं, वजेसंग ठाकुर का माल खरीदते हैं तो उनका छोटा भाई और भी बड़ा व्यापार क्यों नहीं कर सकता?

इस तरह सोचते-सोचते एक नया ही विचार उसके मन में उभर आता था : यदि वे इतने सुखी हों तो कितनी अच्छी बात है! भगवान करें वे इतने सुखी हों तो मैं भी कितनी सुखी हो जाऊँ।

लेकिन दूसरे ही क्षण यह विचार हो आता कि अब मैं उनकी क्या लगती हूँ, मेरा और उनका रिश्ता ही क्या? उस दिन बोझा उठाकर मामा के घर पहुँचाने जा रहे थे तो मैंने कहना चाहा था, 'अरे, तुम तो मेरे········तब उन्होंने बीच में ही बात काट कर कह दिया था, 'अब कुछ भी नहीं।'

'क्या मैं सच ही उनकी कुछ भी नहीं हूँ?' यह प्रश्न बार-बार चम्पा के सन्तप्त हृदय को मथने लगा।

"चुप क्यों हो गयी री?" हीरबाई की आवाज कानों पर पड़ी तो

चम्पा को खयाल आया कि मैं विचारों के भँवर जाल में फँस गयी हूँ और हीरकाकी ने इस बात को ताड़ लिया है !

वह फौरन संभल गयी और अहीरिन को किसी प्रकार का सन्देह न हो इसलिए जो भी शब्द ओठों पर आये उन्हें बोल गयी : "बीजल के हाथ में यह जो खिलौना है न, मैं तो इसे देख रही थी।"

"तुझे पसन्द है यह खिलौना?" हीरबाई ने पूछा और वह खिलौना बीजल से लेकर चम्पा के हाथ में थमा दिया।

वह था एक गोरे युगल की उभरी हुई आकृति वाला चीनी मिट्टी का खिलौना। इस प्रदेश में यह खिलौना ही नहीं, उसमे अंकित मानव प्राणी भी नये थे—उनकी सूरत-शक्ल, उनके कपड़े-लत्ते और उनकी भाव-भंगिमाएँ भी यहां के लिए नयी और अपरिचित थीं।

"ओरी बिटिया, इन विलायती खिलौनों को तो देख ! ये आदमी और औरत साथ खडे हैं; हाय राम, कैसे लगते हैं।" हीरबाई ने कहा।

"ये गोरे साहब लोग हैं, हीर काकी।" राजकोट में अर्जित अपने अल्प ज्ञान के आधार पर अहीरिन को समझाते हुए चम्पा ने कहा : "यह टोप वाला साहब है और यह इसकी मेम है। साहब ने अपनी मेम पर छाता तान रखा है।"

"विलायत के लोग भी कितने होशियार होते हैं री।" हीरबाई ने प्रशंसात्मक स्वर में कहा : "ऐसे-ऐसे खिलौने बनाते हैं कि देखकर बुद्धि चकरा जाती है !"

"लेकिन ये विलायती खिलौने यहाँ आये कैसे !" चम्पा ने पूछा।

"लो ! यह तो मैं बताना भूल ही गयी। ओतमचन्द सेठ बीजल को दे गये हैं।"

"ओतमचन्द सेठ कहाँ से ले आये ! हमारे इधर तो इस तरह के खिलौने कहीं होते नहीं......"

"मुम्बई से आये हैं।"

"बम्बई से !" चम्पा ने चकित होकर पूछा : "बम्बई से कौन लाया !"

"वाह, तुझे इतना भी नहीं मालूम ! ओतमचन्द सेठ का छोटा भाई मुम्बई जाता रहता है, उसने ये खिलौने भेजे हैं......"

"किसके लिए भेजे ? क्या बीजल के लिए ?"

"नही री, बटुक के लिए भेजे थे वाघणिया, उनमें से थोड़े-से ओतमचन्द सेठ बीजल के लिए लेते आये......"

चम्पा की समझ में आ गया, बहुत कुछ उसकी समझ में आ गया। मन में इतने दिनों से जो सन्देह घुमड़ रहे थे वे सब एक बारगी ही निर्मूल हो गये। ओतमचन्द सेठ और नरोत्तम की नयी समृद्धि के बारे में जो कुछ सुनती रही थी और कीला भाई ने उस 'मजूर' की बम्बई की यात्रा के बारे में जो-कुछ कहा था वह सब तथ्यपूर्ण लगा।

सन्देहों का निवारण होते ही चम्पा मारे प्रसन्नता के रोमांचित हो उठी। हीरबाई ने उसके हाथों जो खिलौना थमा दिया था अब वह उसे उलट-पलट कर बड़े गौर से देखने लगी। उसने बार-बार उस खिलौने को देखा, सिर से पाँय तक देखा। वह खिलौना चम्पा के प्रियतम ने भेजा था। किसके लिए भेजा, इसकी क्या चिन्ता ? अभी तो वह भेजने वाले की एक बारकी वाग्दत्ता के हाथ में आकस्मिक रूप से पहुँच गया था। और क्या था उस खिलौने में ?—एक नारी और एक पुरुष ! आकृतियाँ अवश्य विदेश की और विदेशी थीं; लेकिन प्रतीक तो चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन नारी का ही था !

"भाई बेचारे कितने ममतालु हैं कि विलायत के खिलौने इस भानजे को खेलने के लिये दे गये !" हीरबाई कहे जा रही थी।

लेकिन चम्पा का न उधर ध्यान था और न इस बात में उसकी रुचि ही कि यह खिलौना कौन दे गया और किसको दे गया। उसके प्रणयातुर नयन तो खिलौने की उभरी हुई प्रतीकात्मक आकृतियों को अपलक निहारने में तल्लीन थे। युवक के हाथ के छाते के नीचे उससे सटी और आलिंगित-सी खड़ी हुई वह युवती कितनी निश्चिन्त और सुरक्षित लग रही थी। जीवन-साथी की छत्र-छाया में वह कैसी आत्म निर्भरता का अनुभव कर रही थी।

"भाई बेचारे आये तो थे काम-धन्धे से—वजेसंग ठाकुर के यहाँ—लेकिन······लेकिन भानजे के लिए इतने सारे खिलौने साथ बांधते लाये !" हीरबाई अभी तक अपने मुँह बोले भाई के प्रेम का गुण-गान किये जा रही थी ।

चम्पा का इस गुण-गान की ओर जरा भी ध्यान नहीं था । उसके मन का तार तो जुड़ चुका था उस व्यक्ति के साथ जिसने उस खिलौने को बम्बई से खरीद कर भेजा था । भोली मुग्धा ने फौरन उन निर्जीव आकृतियों में अपने व्यक्तित्व का आरोपण कर दिया—उसके और नरोत्तम के सुखी संसार का, अटूट और अखण्ड साहचर्य का निर्माण हो गया; दोनों जीवन-साथी एक-दूसरे के सहारे जी रहे हैं·········ओह, इस चीनी मिट्टी के टुकड़े में कितने और कैसे-कैसे भाव भरे हुए थे ।

"क्योंरी, यह खिलौना तुझे भा गया क्या ?" चम्पा को बड़ी देर से चुप खड़े देख हीरबाई ने आखिर पूछ ही लिया ।

"हाँ, काकी ! देखो न, कैसा बढ़िया खिलौना है ! भायेगा क्यों नहीं ?" और फिर तुरत बोल उठी : "इतना बढ़िया कि हम बड़ों का भी खेलने को मन हो आये ।"

हीरबाई चम्पा के मनोभावों को समझ गयी थी इसलिये या फिर बिना कुछ सोचे ही बोली : "तू कौन बड़ी हो गई है री ! जब तक ससुराल नहीं जाती हमारे मन तो बच्ची ही है ।" और फिर अपनी स्वाभाविक उदारता से उसने कहा : "यह खिलौना तुझे पसन्द आ गया है तो तू ले जा ।"

सुनकर चम्पा फूली न समायी । यह तो उसने सोचा भी नहीं था कि जिस चीज़ को संकोच के कारण मांग नहीं सकती वह यों अपने आप ही मिल जायेगी ।

"नहीं-नहीं ! जो खिलौना बीजल के खेलने के लिए आया है मैं उसे कैसे ले जा सकती हूँ ?" चम्पा ने इनकार तो किया, लेकिन निरे औपचारिक ढंग से ।

"अरी, बीजल के लिए ढेरों खिलौने है—यह छुक-छुक गाड़ी है, ये विलायती बाजे हैं……"

चम्पा और भी प्रसन्न हुई। लेकिन मन में विचार आया कि हीर काकी को कहीं मेरे मन की बात का पता तो नहीं चल गया? मैं इतनी देर चुप सोचती रही, इसलिए शायद उन्होंने मेरे चेहरे पर मन के भावों को पढ़ लिया हो……

उसे हर्ष के साथ थोड़े भय का भी अनुभव हुआ।

"लेजा बेटी, लेजा!"

हीरबाई ने आग्रहपूर्वक खिलौना देते हुए कहा: "बीजल के लिए तो घर में और भी गाड़ी-भर खिलौने पड़े हैं।"

स्नेहमयी हीर काकी की उस स्नेह भेंट को चम्पा ने फौरन साड़ी के पल्ले से ढँक लिया।

"क्योंरी, ढाँप क्यों रही है?" हीरबाई ने कुतूहल से पूछा:

"कोई देख न लेगा?"

"देख भी ले तो क्या हुआ? क्या किसी की चोरी की है?"

"नहीं, चोरी तो नहीं! मगर किसी ने पूछ लिया कि यह किसने भेजा तो……तो……"

"साफ और सीधा कह देना कि नरोत्तम सेठ ने भेजा है……"

"हाय राम! ऐसा भी कहीं कहा जाता है?" चम्पा लाज से लाल हो गयी और मुस्कराती हुई घर की ओर चल दी।

चम्पा लजाती, मुस्कराती जब अपने घर पहुँची तो कपूर सेठ और सन्तोकबा की बातें अभी खत्म नहीं हो पायी थीं। दोनों बड़ी गंभीरता से बातें किये जा रहे थे:

"ठाकुर के यहां आये! ठाकुर का माल खरीदा!" सन्तोकबा अभी भी आश्चर्य प्रकट कर रही थीं: "मेरे तो बात गले उतरती नहीं।"

"पहले तो मेरे भी गले नहीं उतरी थी, लेकिन नरथू पंडित ने कहा तो सच मानना पड़ा।" कपूर सेठ ने कुछ उदास स्वर में कहा।

"लेकिन गाँव के राजा-ठाकुर का माल खरीदना हसी-मजाक नहीं हैं! टेंट में टका होना चाहिये।"

"सो तो होगा ही। टेंट में टका हुए बिना इतना बड़ा व्यापार कोई कर सकता है?"

"लेकिन टेंट में टका रखने की उनकी हैसियत है भी? दिवाला निकालने के बाद तो एकदम खुक्ख हो गये थे!"

"मुझे भी यही अचरज होता है।" कपूर सेठ ने कहा : "अभी मैं धोलेरे गया था तो वहां मालूम हुआ कि ओतमचन्द ने सारा कपास एक सैंकडा भाव बढ़ाकर खरीद लिया।"

"सच कहते हो?"

"हाँ, आज बाजार में ओतमचन्द की हुण्डी नकद रुपये की तरह मानी जाती है।" कपूर सेठ कचोटते हृदय से स्वीकार कर रहे थे : "आज तक सूरत वाले आत्माराम भूखण की हुण्डी के भाव तेज थे, अब वाघणिया की हुण्डी की साख बढ़ गयी है।"

"लेकिन इतना ज्यादा माल खरीद कर करते क्या है?"

"सुना है, विलायत चढाते हैं....."

"क्या विल्लात में कपास नहीं निपजता?"

"विलायत में तो कहते हैं कि एक कोयले के सिवाय और कुछ नहीं निपजता, इसलिए अमेरिका से रुई मंगाकर मिलें चलाते हैं। मनसुख लाल ने अपने पिछले पत्र में लिखा था कि अभी अमेरिका में लड़ाई छिड़ गयी है इसलिए विलायत की मिलें बन्द हो गयीं और हमारे कपास की माँग बढ़ गयी।"

यह अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ शास्त्र न सन्तोकबा समझती थीं और न इसमें उनकी कोई रुचि थी। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार उनकी चिन्ता का विषय हो

भी नहीं सकता। उनकी सारी चिन्ता तो यह थी कि जो ओतमचन्द अभी कल तक मुफलिस था वह आज फिर से मालदार कैसे हो गया ?

माता-पिता की बातचीत सुनकर चम्पा के मन में आया कि कह दे, नरोत्तम के ही कारण ओतमचन्द सेठ मुफलिस से फिर मालदार हुए हैं; लेकिन उसने चुप रहना ही उचित समझा। वह इस करुण, परन्तु मनोरंजक जीवन-नाटक के सभी रंग देखने को उत्सुक थी।

जसी को पता चल गया कि बड़ी बहिन साड़ी के नीचे कुछ छिपाकर लायी हैं। उसने पूछा : "पल्ले के नीचे क्या ढका है ?"

"तुझसे मतलब ?" कहकर चम्पा ने उस खिलौने को छिपाकर पेटी में रख दिया और फिर माता-पिता की बातें सुनने लगी।

"उन्होंने नरथू पण्डित से रसोई बनाने के लिए इनकार कर दिया और कहा कि गाँव में मेरी बहिन का घर है, वहाँ भोजन करूँगा......"

"इस गांव में ओतमचन्द सेठ की किसी बहिन का नाम तो हमने सुना नहीं।" सन्तोकबा ने कहा : "लाडकोर की एक दूर के रिश्ते में बहिन जरूर है, लेकिन उसके यहां जीमने जाते तो हमें पता लगे बिना रहता? उसकी लड़की शारदा हमारी चम्पा की सहेली है। आज अगर उनके यहां कोई मेहमान भोजन करने गया होगा तो चम्पा मालूम कर आयेगी।"

"मुझे तो लगता है कि बहिन के घर का बस बहाना-ही-बहाना था, असल में ओतमचन्द को अपने घर पहुँचने की जल्दी रही होगी।"

"मेरा भी यही खयाल है।"

मन-ही-मन मुस्कराती हुई चम्पा अन्दर के कमरे में खड़ी ओसारे में बैठे माता-पिता की इन बातों को सुन रही थी कि इतने में डाकिये का परिचित स्वर सुनायी दिया :

"लेना हो, कपूर बापा।"

"लो, मनसुख लाल की ही चिट्ठी है।" कपूर सेठ ने कहा।

"लिफाफा फाड़े बिना तुम्हें कैसे पता चल गया ?"

"उनकी लिखावट और विलायती पेढ़ी का छपा नाम आप ही बता रहा है।"

"पढ़ो तो सही, क्या लिखा है ?" सन्तोकबा ने कहा : "किसी नये घर-वर का पता लगाया है या नहीं ?"

"बेचारे ने हजार घर-वर तो ढूँढ दिये, मगर हमारी लड़की के मन एक भी नहीं चढ़ा तो कोई क्या करे ?" और चम्पा के नाम को झींकते हुए कपूर सेठ चिट्ठी पढ़ने लगे।

औसारे में शान्ति छा गयी। पत्र का सारांश जानने के लिए संतोकबा बेचैन हो रही थीं। लेकिन उनसे अधिक बेचैन चम्पा थी। सन्तोकबा की बेचैनी केवल कुतूहल के कारण थी, लेकिन चम्पा की बेचैनी का कारण था चिन्ता और उद्वेग। राजकोट में मामा के घर जो मानसिक सन्ताप भोगना पड़ा था उसके प्रभाव से वह अभी तक पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायी थी। मुन्सिफ के लड़के सहित उसे जाने कितने आवारों और उद्दण्ड लड़कों के सामने उपस्थित होना पड़ा था और उससे जो मानसिक क्लेश हुआ था उसे वह भूली नहीं थी। वह मन-ही-मन डर रही थी कि आज के पत्र में मामा ने किसी नये लड़के के बारे में न लिखा हो ?

उसकी यह आशंका सच साबित हुई।

पूरा पत्र पढ़ने के बाद उसके पिताश्री ने कहा : "इस बार मनसुख भाई ने सबसे बढ़िया ठिकाना ढूँढा है।"

"सच ?" सन्तोकबा ने संतोष व्यक्त किया : "तब तो चम्पा के भाग्य खुल गये।"

"घर घोड़ा-गाड़ी और सब तरह के ठाठ हैं।" कपूर सेठ ने एक-एक कर बताना शुरू किया : "दिसावर का भारी व्यापार है।"

"किस गाँव के हैं ?"

"राजकोट के ही।"

"लेकिन मूल रहवासी कहां के हैं ?"

"इसके बारे में लिखा है कि अभी पूरा पता नहीं चला, लेकिन राजकोट में ही रहते हैं।" कपूर सेठ ने कहा : "लड़के का नाम है प्रभुलाल सेठ।"

"नाम तो अच्छा है; लेकिन बाप का नाम, कुल, गोत्र, प्रवर, शाखा आदि ?"

"यह सब पता लगाकर बाद में लिखेंगे, अभी तो यह लिखा है कि ऐसा लड़का दूसरा नहीं मिलेगा।"

इस 'लड़के' के बारे में इतनी जानकारी से ही चम्पा इस कदर अकुला उठी कि बाहर ओसारे में निकल आयी और साहस बटोर कर माता-पिता से कह दिया :

"मैं इससे शादी नहीं करूँगी !"

३२

सन्देश और संकेत

मंचेरशा के विशाल बंगले के बरामदे में बैठा नरोत्तम अपने विगत जीवन का सिंहावलोकन कर रहा था। छोटे से जीवन में घटी बड़ी-बड़ी घटनाओं को याद कर उसे हर्ष और शोक की मिली-जुली अनुभूति हो रही थी।

जीवन की गंगा-जमुना पर विचार करते-करते नरोत्तम का ध्यान अहाते के बाहर वाले रास्ते की ओर चला गया। एक युवती बड़े ही आत्म-विश्वास से अहाते का फाटक खोलकर अन्दर प्रवेश करती दिखायी दी।

मंचेरशा इस समय घर पर थे नहीं, इसलिए नरोत्तम की समझ में नहीं आया कि यह युवती किससे मिलने के लिए आयी है। उसे यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि वह युवती उसी की ओर मुस्कराती हुई चली आ रही थी।

बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए उसने बड़े ही परिहासात्मक स्वर में कहा : "कहो प्रभुलाल सेठ, कैसे हो ?"

नरोत्तम का आश्चर्य और बढ़ गया। वह उस आने वाली की ओर गौर से देखने लगा। उस अपरिचिता के मुंह से अपने लिए 'प्रभुलाल सेठ' का सम्बोधन सुनकर वह इस कदर स्तम्भित हुआ कि 'आओ-आओ' कहकर उसका स्वागत करने की सुधि भी नहीं रही।

"पहचाना ?" युवती ने पास आकर धृष्टतापूर्वक पूछा : "या

नरोत्तम से प्रभुलाल सेठ बने तो पुराने सगे-सम्बन्धियों को भी भूल गये ?"

इस सीधे और साफ सवाल से नरोत्तम और उलझन में पड़ गया। 'पुराने और सगे-सम्बन्धी' शब्दों के कारण आने वाली की शकल-सूरत देखी हुई तो जरूर लगी, लेकिन पहचान पाना मुश्किल हो रहा था।

नरोत्तम आँखें फाड़े उस 'पुराने रिश्तेदार' का आक्रमण भुगत रहा था कि इतने में आगन्तुका ने तीसरा सवाल दागा : "अब बम्बई के चक्कर लगाने वाले बड़े व्यापारी हो गये तो, मेंगणी के गरीब रिश्तेदारों की याद क्यों रहने लगी ?"

"ओह, शारदा ?" नरोत्तम सहसा बोल उठा : कितनी देर से पहचानने की कोशिश कर रहा था, नाम भी याद कर रहा था; 'मेंगणी के रिश्तेदार' शब्दों ने उसमें सहायता की। अब याद आया कि लाडकोर भाभी की एक दूर की मौसी मेंगणी में रहती है, उसी की यह लड़की है और नाम शारदा है।

"तुम सेठ-साहूकारों को रिश्तेदारों के नाम भी याद रहते हैं ?" शारदा अभी तक बराबर टोने मारे जा रही थी।

"वाहरे तेरे मिजाज !" नरोत्तम ने कहा : "देखे बहुत बरस हो गये, नाम भी भूल गया था इसलिए पहचानने में थोड़ा वक्त लग गया तो तूने तानों-तिश्नों की बौछार ही करदी !"

"तुम अकेले मुझी को नहीं भूले और भी बहुतों को भूल गये..."

"किसको ?" नरोत्तम ने पूछा : "और किसको भूल गया ?"

"लो, यह भी भूल गये कि किसको भूल गये !" शारदा ने कहा : "और बड़े आदमी कहते किसे हैं !"

नरोत्तम को समझते देर न लगी कि शारदा कहना क्या चाहती है; साथ ही इस युवती के अप्रत्याशित आगमन का कारण भी उससे छिपा न रहा।

जीवन धारा के इस नये मोड़ के बारे में सोचने का अवकाश उस बातूनी लड़की ने नरोत्तम को नहीं दिया। चुप रहना वह जानती ही नहीं थी। उसने फौरन एक नया सवाल दाग दिया :

"याद करो, अच्छी तरह याद करो, कोई याद आता है ?"

किसी कुशल वकील की जिरह—जैसे इस सांकेतिक प्रश्न का उत्तर ईमानदारी से तो 'हाँ' ही हो सकता था; लेकिन भोले नरोत्तम की समझ में नहीं आ रहा था कि वह हाँ कहे किस तरह ?

"अच्छी तरह, दिमाग पर पूरा जोर डालकर याद करो," शारदा की छेड़छाड़ जारी थी : "कौन भुला गया है ?"

अब नरोत्तम को खयाल आया कि शारदा चम्पा की बचपन की सहेली है और उसी नाते अपनी सहेली का सन्देश लेकर आयी है और इसीलिए इतने उत्साह से छेड़छाड़ कर रही है। लगता है जैसे मुझसे चम्पा का नाम बुलवाकर ही मानेगी; शायद ऐसा प्रण ठान कर ही आयी है। लेकिन उसके आदेश का पालन करना नरोत्तम के अहम् को स्वीकार नहीं हुआ; वह चुपचाप मुस्कराता रहा।

"बड़े भुलक्कड़ हो भाई ! आदमी—जैसे आदमी को यों सफा भूल जाते हो, पता नहीं तुम्हारे आसरे रहने वालों की क्या गत होगी !" शारदा के प्रेम-भरे मीठे-तीखे प्रहार चालू रहे : "अरे, मुँह से कुछ तो बोलो, यों मुस्करा क्या रहे हो ?......मुंह में दही जम गया है क्या ? या जिसे भूल गये हो उसका नाम लेते शरमाते हो ?......तुम आदमी लोग शरमाने लगोगे तो हम लहंगे-लुगड़े वालियां क्या करेंगी ?......अब जल्दी से बता दो कि कौन भुला गया है ?"

नरोत्तम ने केवल कहने के खातिर कह दिया : "याद नहीं पड़ता।"

लेकिन शारदा इस बनावटी उत्तर से चुप रहने वाली लड़की नहीं थी। उसने फौरन साड़ी के पल्ले में लपेटी हुई एक पोटली बाहर निकाली। नरोत्तम कुतूहल से उसकी ओर देखने लगा कि यह चालाक लड़की अब कौनसा दाव आजमाती है।

शारदा ने पोटली खोली तो अन्दर से एक विलायती खिलौना निकला। एक गोरा साहब छाता ताने खड़ा था और तले साहब से सटी हुई उसकी मेम खड़ी थी।

नरोत्तम विमूढ़-सा उस खिलौने को देखता रहा।

"अब कुछ याद आया ?" शारदा ने कहा : "अब कितने ही भुलक्कड़ क्यों न हो, याद आये बिना न रहेगा।"

नरोत्तम की एक याद ताज़ा हो गयी, लेकिन उस याद ने उसकी उलझन को और बढ़ा दिया। वह जल्दी से कह गया : "यह खिलौना तो मैंने बटुक के लिए वाघणिया भेजा था।"

"अब चम्पा ने तुम्हें भेजा है।"

"उसके पास कहाँ से आया ?"

"इससे तुम्हें मतलब ?" शारदा ने कहा : 'तुम्हारी भेजी हुई चीज़ चम्पा ने फिर तुम्हीं को भेज दी और साथ ही कहलवाया है कि…" कहते-कहते शारदा जान-बूझकर चुप हो गयी, तो नरोत्तम को पूछना पड़ा : "क्या कहलवाया है ?"

"कहलवाया है कि इस खिलौने में जो दो व्यक्ति साथ खड़े हैं उन्हें साथ ही खड़ा रहने देना।"

"हाँ……"

"ये दोनों अलग न हो जायें, इसका खयाल रखना……"

नरोत्तम एक क्षण के लिए मौन हो गया तो शारदा ने थोड़ा जोर देकर कहा : "सुन लिया प्रभुलाल सेठ ! चम्पा ने कहलवाया है कि इस खिलौने में है ऐसी ही हम दोनों की जोड़ी को भी अखण्ड रखना……"

सारा खेल नरोत्तम की समझ में आ गया। चम्पा की चतुराई भरी चाल, शारदा का दौत्य कर्म, और अपनी वाग्दत्ता द्वारा निर्जीव खिलौने में आरोपित सांकेतिक सन्देश सभी कुछ उसकी समझ में आ गया।

"किस चिन्ता में पड़ गये प्रभुलाल सेठ ?" शारदा ने पूछा।

"मुझे प्रभुलाल सेठ कहा तो तुझसे कुट्टी—बात नहीं करूंगा।" नरोत्तम बोला।

"नकली नाम तो तुम्हीं ने रखा, अब इस नाम से न पुकारें तो क्या करें ?" यह कहकर शारदा ने पूछा : "इस बनावटी नाम ने मेंगणी में क्या मुसीबत खड़ी कर दी है, कुछ पता है ?"

"मेंगणी तक यह नाम पहुँच गया है ?"

"हाँ।"

"वहाँ वालों को किसने बताया ?"

"चम्पा के मामा मनसुखलाल ने।" शारदा बोली : "मनसुखलाल ने मेंगणी चिट्ठी लिखी कि चम्पा के लिए प्रभुलाल नाम का एक लड़का ढूंढ़ा है।"

"सच ?"

"हाँ। चम्पा ने सुना तो साफ कह दिया कि प्रभुलाल से मैं शादी नहीं करूंगी।"

"फिर किससे करेगी ?"

"नरोत्तम से।" शारदा ने कहा।

और दोनों खिलखिला पड़े।

"यह तो भारी गड़बड़ हो गयी !" नरोत्तम ने कहा।

"गड़बड़ कहो, घपला कहो, सब तुम्हारा ही किया हुआ है। इसमें दूसरों का क्या दोष ?" शारदा ने कहा : "चम्पा तो बेचारी इस अफसोस में रो-रोकर मरी जा रही है कि जाने किस अपरिचित प्रभुलाल के साथ ब्याह दी जाऊंगी।"

"सच, इतना बड़ा घपला हो गया है ?" नरोत्तम ने हंसकर पूछा।

"घपला करने में तुमने कोई कसर भी छोड़ी है ?"

"जो कसर बाकी है," नरोत्तम ने कहा : "उसे तुम पूरा कर देना।"

"मुझे भी घपला करने को कहते हो ?"

"हाँ, करना ही होगा।" नरोत्तम ने कहा : "अब और कोई चारा नहीं है।"

"ऐसा फरेब भी कहीं किया जाता है ? बेचारी चम्पा के बुरे हाल हो रहे हैं। प्रभुलाल का नाम सुनकर जार-जार रोने लगती है कहीं कुआं-बावड़ी कर बैठी तो......"

"अरेरे ! बात यहां तक बढ़ गयी ?"

"तुम तो यहाँ बैठे हो; कैसे जान सकते हो कि चम्पा बेचारी पर क्या बीत रही है ! तुम्हारी याद में झुरा करती है। इसीलिए तो जब मैं यहाँ आने लगी तो यह खिलौना देकर उसने कहलवाया कि......"

"मगर यह खिलौना उसके पास कैसे पहुँच गया ?"

"वह एक लम्बी कहानी है, बाद में इत्मीनान से बताऊंगी।" शारदा ने कहा : "अभी तो तुम जवाब में कुछ ऐसा कहलवा दो जिससे वह बेचारी निश्चिन्त हो सके।"

"अच्छी बात है। तुम चम्पा को बता देना कि प्रभुलाल मेरा ही नाम है। लेकिन किसी और को यह बात मालूम नही होना चाहिए।"

"क्यों ?"

"क्योंकि और किसी को पता चल गया तो उलझन और बढ़ जायेगी।"

"तुम भी कैसी बात करते हो !"

"अभी तुम्हारी समझ मे नहीं आयेगा; लेकिन मैं सच कहता हूँ कि मेरा नाम नरोत्तम है, यह मनसुखभाई को पता चल गया तो उन्हें बहुत बुरा लगेगा।"

"वाह, ऐसा नाटक भी कहीं किया जाता है ?"

"आधा तो हो ही चुका है, इसलिए जैसे-तैसे बाकी भी पूरा करना ही पड़ेगा।" नरोत्तम ने कहा : "मनुष्य को कई बार वास्तविक जीवन के बदले नाटक की जिन्दगी देखना ज्यादा अच्छा लगता है।"

"जरूर अच्छा लगता है, लेकिन सिर्फ दूसरों की जिन्दगी के नाटक

देखना ।" शारदा ने कहा : "अपनी जिन्दगी में भी भला कोई नाटक करता है ?"

"कभी करना भी पड़ जाता है ।" इतनी बातचीत के बाद शारदा से इतनी आत्मीयता तो हो ही गयी थी कि नरोत्तम उसे अपने मन की बात कह सके, इसलिए उसने कहना शुरू किया : "यहाँ राजकोट में हमारे कितने रिश्तेदार हैं, यह तो तुझे भी मालूम है । शुरू में जब मैं यहाँ आया तो सारे रिश्तेदारों ने पहचानने से भी इनकार कर दिया । रास्ते में कहीं दिख जाता तो मुंह मोड़ कर चले जाते । अब अगर उनको पता चल जाये कि मंचेरशा की पेढ़ी में प्रभुलाल नहीं, नरोत्तम काम करता है तो उन बेचारों को परिचय ताजा करने की कितनी तकलीफ उठानी पड़ेगी ।"

"अच्छा, अब समझी ! स्टेशन पर कुलीगिरी कर रहे थे तब भी नाटक ही खेला जा रहा था, क्यों ?"

"कुलीगिरी ? स्टेशन पर ?"

"और नहीं तो क्या ? सिर पर बोझा उठाकर मनसुखलाल के घर पहुँचाने गये थे न ?" शारदा ने याद दिलाया : "या जिस तरह दूसरा बहुत-कुछ भूल गये वैसे ही इस बात को भी भूल जाना चाहते हो ?"

"तुझ से यह सब किसने बताया ?" नरोत्तम ने पूछा ।

"चम्पा ने और किसने ! तुम्हें कुलीगिरी करते देख बेचारी की जान ही निकल गयी थी । उस बात को याद कर-करके इतना रोयी है, इतना रोयी है कि बदन आधा भी नहीं रह गया ।"

"सच ?"

"और क्या झूठ ? तुमने तो ऐसा नाटक किया कि बेचारी न किसी से कह सके, न सह सके ।" फिर शारदा ने सीधा सवाल पूछा: "तुम्हें जरा भी दया नहीं आती ?"

अब नरोत्तम को लगा कि शारदा को विश्वास में लिये बिना काम

चलेगा नहीं, इसलिए उसने अपने राजकोट निवास का पूरा इतिहास, अथ से इति तक, बताया। कीला कंघीवाले का परिचय दिया, यह भी समझाया कि वह सब-कुछ कीला के निर्देशानुसार ही कर रहा है और यह भेद भी बताया कि स्टेशन की उस कुलीगिरी के पीछे कीला का असली मनशा क्या था !

सारा रहस्योद्घाटन करते समय नरोत्तम की निगाहें चम्पा द्वारा भेजे हुए उस सांकेतिक खिलौने की ही ओर लगी रहीं।

नरोत्तम ने जब सब-कुछ साफ-साफ और ईमानदारी से बता दिया तो शारदा को भी विश्वास हो गया। सारी बात सुन लेने के बाद उसने पूछा : "अब मेंगणी लौटकर मैं चम्पा को क्या जवाब दूं ?"

नरोत्तम अब भी उस खिलौने की ओर देख रहा था। सुनकर वह सहसा गम्भीर हो गया। उसे सोच-विचार में पड़ा देख शारदा ने फिर पूछा :

"चम्पा ने तो इस खिलौने के बहाने अपने मन की बात कह दी। तुम क्या कहते हो ?"

नरोत्तम दीवानखाने में चारों ओर इस तरह देखने लगा मानों उसे बड़ी घबराहट हो रही हो।

"कुछ ऐसा कहलवाओ जिससे उसकी चिन्ता मिटे, जी को शान्ति मिल सके।"

"जबानी ही कह देना।" नरोत्तम ने जवाब दिया।

"कमाल करते हो ! ऐसे मामलों में जबानी कही हुई बात का कोई यकीन करता है ?"

"बड़ी कानूनबाज मालूम पड़ती है; बिलकुल विलायत-पास बैरिस्टर की तरह बातें कर रही है !" नरोत्तम ने कहा : "मुझ से तहरीरी दस्तावेज चाहती है ?"

"दस्तावेज किस काम का ? चम्पा बेचारी को क्या पढ़ना-लिखना आता है ?" शारदा ने रहस्योद्घाटन किया : "इसीलिए तो बेचारी ने अपने मन की बात तुम्हारे तक पहुँचाने के लिए इस खिलौने का सहारा लिया।"

"मैं भी ऐसी ही कोई चीज़ भेज दूं तो कैसा रहे ?" नरोत्तम यह कहने के साथ ही फिर असमंजस में पड़ गया।

"सोने में सुहागा।" शारदा ने कहा : "ज़रूर भेजो। इसी तरह की कोई चीज़ भेज दो, जिससे उसकी बेचैनी कम हो और तुम्हारी वह निशानी हमेशा उसके सामने बनी रहे।"

शारदा के मुंह से 'निशानी' शब्द सुनकर नरोत्तम गौर से अपने चारों ओर देखने लगा कि शायद कोई चीज़ भेजने लायक निकल आये।

इस बीच शारदा चम्पा की वकालत करती रही :

"मेरी सखी के लिए ऐसी निशानी भेजो, जो आठों पहर उसकी आँखों के आगे रहे और उसे सदा तुम्हारी याद बनी रहे।"

नरोत्तम को हंसी आ गयी। बोला : "अपनी तसवीर निकलवा कर भेज दूं ?"

"हाय राम, यह क्या कहते हो ? शहर में रह कर तुम भी शहराती हो गये हो क्या ? साहब लोगों की तरह बोलने लगे हो !" शारदा ने मीठी-सी फटकार सुनायी : "तसवीर भेज दो, और वह चम्पा के माँ-बाप के हाथ लग गयी तो क्या वे उसे जीता छोड़ेंगे ? बेचारी का गला ही न घोंट देंगे ?"

मंचेरशा के दीवानखाने में सजावट की बहुत-सी चीज़ें थीं। चारों ओर देखते-देखते नरोत्तम की दृष्टि एक छोटी-सी मेज़ पर जाकर रुक गयी। उस मेज़ पर हाथी दाँत का एक सारस-सारसी का जोड़ा रखा था। मंचेरशा खुद तो अकेले जीव थे, लेकिन हृदय उनका एक कवि का था। यह सारस-युगल उनके मन भा गया था। कलाकार ने उस पक्षी-युगल को बड़ी तबीयत से बनाया था। मंचेरशा उसे अपने दीवानखाने मे रखने के लिए बम्बई से लेते आये थे। हाथी दाँत की वह कृति बहुत ही सुन्दर, अर्थ पूर्ण और प्रतीकात्मक थी ! द्वैत में अद्वैत की मूर्ति मन्त साधना-जैसा वह सारस-युगल एक दूसरे की गरदन में गरदन डाले अपनी चोंचें आसमान की ओर उठाये खड़ा था। पुरुष और प्रकृति के सनातन सम्मिलन का वह मानों मूर्त प्रतीक था। आपस में

लिपटी हुई दोनों की लम्बी गरदनें मानों एक हो गयी थीं। शरीर दो थे, लेकिन मन-प्राण एक हो गये थे। मानवी-प्रेम की परिभाषा से सर्वथा अनभिज्ञ उस पक्षी युग्म के प्रसन्न, परितृप्त मुखभाव मानों पुकार-पुकार कर कह रहे थे, 'हम दो नहीं, एक हैं; हम दोनों के मन-प्राण तानों-बानों की तरह बुने जाकर, घुल-मिलकर एक हो गये हैं; मृत्यु के अतिरिक्त और कोई शक्ति हमें विच्छिन्न नहीं कर सकती !'

नरोत्तम को याद आ गया कि सारस का जोड़ा जीवन पर्यन्त साथ रहता है, जीते-जी कभी अलग नहीं होता; एक के वियोग में दूसरा झुर-झुर कर आप ही मर जाता है। अक्षय साहचर्य का वह प्रतीक नरोत्तम की आँखों में बस गया। उसने उसे शारदा के हाथ में देते हुए कहा :

"लो, यह अपनी सहेली को दे देना।"

शारदा भी क्षण-भर उस प्रतीक को प्रसन्न मन देखती रही। उसमें सन्निहित गूढ़ार्थ और साथ के सांकेतिक सन्देश को समझते उस नारी हृदय को जरा भी देर न लगी।

"कल, घर पहुँचते ही, इसे चुपचाप चम्पा को दे आऊंगी।" शारदा ने सोत्साह कहा : "जबानी भी कुछ कहना है ?"

"यह सभी कुछ तो कहे दे रहा है, इसलिए मुंह से और क्या कहूँ ?" नरोत्तम ने कहा।

"हाँ, समझ गयी ! सारस के इस जोड़े की तरह तुम दोनों साथ रहना चाहते हो और साथ ही रहोगे।" इतना कहकर शारदा ने परिहास किया : "नरोत्तम भाई, तुम तो बड़े पहुँचे हुए निकले ! लेकिन अचरज की कोई बात नहीं। आखिर वर किसके हो ? चम्पा के ही न !"

"और तू भी क्या कम माया है ?" नरोत्तम ने भी मज़ाक किया : "खिलौनों की अदला-बदली का कमाल कर ही डाला ! आखिर सहेली किसकी है ?"

"तुम्हारी चम्पा रानी की ही ! यह सूझ उसी की है। मेरी अकल तो ऐसे मामलों में चलती नहीं।" इतना कहकर शारदा ने फिर टोना मारा : "जैसा कमाल तुमने किया वैसा ही शारदा ने……"

"और दोनों कामिलों को सन्देशवाहिका बनी कुमारी शारदा जी ! क्यों ठीक है न ?"

"मैं बेचारी तो तुम्हारे इस नाटक में सखी की तरह दासी का काम कर रही हूँ—सन्देश लाने और ले जाने का।"

"अरी दुष्ट, तू इसे नाटक कहती है ?"

और क्या कहें ? नरोत्तम भाई प्रभुलाल सेठ की भूमिका कर रहे हों, उसे नाटक नहीं तो क्या चेटक कहेंगे ?"

"अब सखीजी, इस नाटक की बात अपने मन में ही रखियेगा।" नरोत्तम ने अनुनय की : 'मेंगणी में किसी को प्रभुलाल का असली नाम बता न दीजियेगा……"

"एक चम्पा को छोड़कर………" शारदा ने कहा और हंसती हुई वहां से चली गयी।

३३

मतलब का संसार

"अरे वाह, कीला बेटे ने तो कमाल कर डाला !"

शारदा के जाने के बाद बँगले में प्रवेश करते हुये मंचेरशा ने कहा ।

"क्या किया ? क्या कमाल कर डाला ?" नरोत्तम एक साथ कई बार पूछ गया ।

मचेरशा अपनी धुन में मस्त बोले जा रहे थे : "इस शहर के लोग भी कमाल हैं ।"

"क्या हुआ ? कीलाभाई के खिलाफ कुछ......"

"अरे खिलाफ क्या और विलाफ क्या ? कीला को चौपाया-चतुर्भुज बनाने की बात चल रही है ।"

"क्या कह रहे हैं आप ?" नरोत्तम ने हड़बड़ा कर पूछा : "कीला भाई की शादी की बात ? कौन कह रहा है भला ?"

"आज सुबह से दुपहर तक तीन आदमी तो मुझसे आकर कह गये," मंचेरशा ने बताया : "कि कीला को समझाइये, वह हमारी लड़की से शादी कर ले ।"

"सच ?"

"हाँ जी ! सभी जानते हैं कि मंचेरशा बाबा कीला का जिगरी दोस्त है; इसलिए सब मुझी से कहने आते हैं कि सरिश्तेदार साहब को समझाइये ।

नरोत्तम के लिए यह समाचार अप्रत्याशित था। आरम्भ में उसे

थोड़ा आश्चर्य हुआ, लेकिन बाद में आनन्द। सोत्साह उसने मंचेरशा से पूछा : "तो अब कीलाभाई की शादी होगी ?"

"क्रानिक बैचलर भी कभी शादी करते हैं ?" मंचेरशा ने मजाक में कहा : "कीला को मैंने कितना समझाया, लेकिन वह क्यों समझने लगा ?"

"जो लोग आपके पास आये थे उन्हें आपने क्या जवाब दिया ?"

"मैंने साफ कह दिया कि बाबा, तुम इस मामले में कीला से ही जाकर कहो......तो बोले कि कीला से तो हमने कहा, मगर मानते नहीं, इसलिए आपके पास आये हैं; आप उनके दोस्त हैं, उन्हें समझाइये।"

"बात तो सच है।" नरोत्तम ने कहा : "आप कीला भाई को समझाइये।"

"बाबा, मैंने कितना समझाया, पर वह टस-से-मस नहीं होता; बस एक ही बात कहता है:......"

"क्या ?"

"कहता है कि ये लोग कीला की नहीं, गोरे साहब के सरिश्तेदार की शादी के लिए आये हैं......"

"बात तो ठीक है।" नरोत्तम ने कहा : "इसमें गलत क्या है ?"

"लेकिन कीला को यह पसन्द नहीं। वह कहता है कि मैं तो जो हूँ वही हूँ। ये लोग मुझे नहीं, मेरे ओहदे को अपनी लड़की ब्याहना चाहते हैं।"

"यह बात भी गलत नहीं।"

"इसलिये कीला कहता है कि मेरे बदले मेरी कुर्सी से ही अपनी लड़की ब्याह दें।" इतना कहकर मंचेरशा ने ज़ोर का कहकहा लगाया।

नरोत्तम को भी कीला के इस अक्खड़पन पर हँसी आगयी।

लेकिन अपने उद्धारकर्ता बुजुर्ग की शादी के प्रश्न को इस तरह हँसी में टाल देना उसे अच्छा न लगा।

"कीला कहता है कि मेरी कुर्सी से अपनी लड़की की भांवरें कर

दो ।" मंचेरशा अपने दोस्त की कही हुई बातों को सुना-सुनाकर स्वयं हँस रहे थे और नरोत्तम को भी हँसा रहे थे ।

लेकिन अब नरोत्तम को, इस प्रश्न की गम्भीरता के कारण, हँसी नहीं आ रही थी । मंचेरशा के मज़ाकों के साथ-साथ उसकी व्यग्रता बढ़ती जाती थी । तभी मंचेरशा की दृष्टि सहसा खाली तिपाई पर पड़ गयी और वहाँ सारस-युग्म को न पाकर उन्होंने पूछा :

"अरे, यहाँ जो 'स्टार्क' रखा था, उसे कहाँ हटा दिया ?"

"हटाया नहीं, चला गया, उड़ गया ।" नरोत्तम ने जवाब दिया : "सारस के पंख निकल आये......"

मंचेरशा की कुछ समझ में न आया, वे उलझन में पड़ गये और अपना सिर खुजलाने लगे ! नरोत्तम ने यह कहकर उनकी उलझन को और बढ़ा दिया :

"पंछी उड़ गये और उनकी जगह ये मनुष्य आ गये ।"

और शारदा द्वारा लाया हुआ वह खिलौना तिपाई पर रखता हुआ बोला : "पक्षियों की जगह अब ये दो मनुष्य—गोरा साहब और उसकी मेम यहाँ की शोभा बढ़ायेंगे ।"

बेचारे सीधे-भले मंचेरशा गजब की उलझन में पड़ गये ।

"मूक पक्षियों की अपेक्षा बोलने-बतियाने वाले आदमी ज्यादा अच्छे ।"

नरोत्तम के प्रत्येक रहस्यात्मक वाक्य पर मंचेरशा की उलझन बढ़ती जाती थी ।

"भाई, तुम्हारा यह नाटक मेरी समझ में बिलकुल नहीं आ रहा ।" आखिर मंचेरशा को कहना पड़ा ।

नरोत्तम को आश्चर्य हुआ । थोड़ी देर पहले शारदा आयी तो उसने भी 'नाटक' शब्द का ही प्रयोग किया था । सम्भव है, चम्पा ने स्वयं ही यह शब्द शारदा से कहा हो । और गलत भी क्या था ? रेलवे स्टेशन पर कुली गिरी का 'पार्ट' करने वाला 'प्रभुलाल' नाम से लम्बा-चौड़ा कारोबार करे और यों अपनी वाग्दत्ता को परेशानी में डाले तो उसके

क्रिया-कलापों को 'नाटक' के अतिरिक्त और क्या कहेंगे ?.........इस समय मंचेरशा ने 'नाटक' शब्द का प्रयोग बहुत ही सहज रूप से किया था, लेकिन नरोत्तम को बात लग गयी और उसने तय किया कि अपने निकटस्थ साथी के सामने इस तरह का नाटक करते रहना कदापि उचित नहीं। अन्त में मंचेरशा को सब-कुछ बता देने के विचार से उसने उनके समक्ष सारा रहस्योद्‌घाटन कर दिया।

दो सरल हृदय युवक-युवती के बीच—दो मुग्ध विरहियों के बीच ऐसे प्रतीकों के द्वारा सन्देशों के आदान-प्रदान की बात सुनकर सहृदय मंचेरशा गद्‌गद् हो उठे ! उन्होंने खुश होकर कहा :

"शाबाश बेटा, शाबाश ! तू भी छुपा रुस्तम निकला ! तूने भी गजब का नाटक कर डाला ! वह बेचारा मनसुखलाल अभी तक तुझे प्रभुलाल समझकर पहले वाली मंगेतर के ही साथ तेरी शादी की कोशिशें कर रहा है। और तू उस गरीब की मिट्टी पलीत किये दे रहा है।"

"देखा चाहिये कि किसकी मिट्टी पलीत होती है।" नरोत्तम ने कहा : "डर तो यह है कि कहीं मेरी ही मिट्टी पलीत न हो जाये......"

"अब तो तेरी और कीला, दोनों की ही शादी होने वाली है। देखना यही है कि पहले किसकी होती है......"

"कीलाभाई को ही पहले शादी करना चाहिये।"

"उसकी शादी तो अब क्या ही होगी......"

"क्यों न होगी ? आप उन्हें समझाइये।"

"वह अब समझे-समझायेगा नहीं।" मंचेरशा ने कुछ सोचकर कहा : "उसने किसी साधु से ब्रह्मचर्य की दीक्षा ले रखी है......"

नरोत्तम के लिए यह जानकारी बिलकुल नयी थी ! मंचेरशा के मुँह से इस बात को सुनकर वह चौंक पड़ा और पूछने लगा : "कब, किससे और कहाँ दीक्षा ली ?"

"घर-द्वार छोड़कर पाँच बरस के लिए चला गया था, तब बद्री-

केदार में किसी बाबाजी से भेंट हो गयी थी और कीला भस्म रमाकर उनके साथ बैठ गया था ।"

"सच कह रहे हैं ? मुझ तो आज तक इस बात का पता नहीं चला ।"

"किसी को पता नहीं है;" मंचेरशा ने कहा : "सिर्फ मैं, कीला और उसके गुरु को छोड़ कोई नहीं जानता ।"

"लेकिन अब तो......"

"वह अपने गुरु को छोड़कर भाग आया है ।"

"भाग आये हैं ? गुरु को छोड़कर ?" नरोत्तम को चोट-सी लगी। पूछा : "भाग क्यों आये ?"

"साधु जीवन में उसे कोई सार नहीं दिखायी दिया, इसलिये फिर संसार में लौट आया ।"

"जब लौट ही आये हैं तो बाकायदा संसारी बनने में क्या आपत्ति है उन्हें ?"

"मैंने भी उससे यही कहा, लेकिन वह मानता ही नहीं ।" मंचेरशा गम्भीर हो गये : "अब तुम उसे समझाकर देखो; शायद तुम्हारी बात मान जाये ।"

"जरूर समझाऊँगा ।" नरोत्तम ने कहा : "और आशा है कि राज़ी भी कर लूँगा ।"

× × × ×

दूसरे दिन नरोत्तम कोठी में कीला से मिलने गया तो उसके दरवाज़े में पैर रखते ही कीला अपनी लाक्षणिक शैली में पुकार उठा : "क्यों बे मोटे, आजकल बहुत महँगा हो गया है—ईदका चाँद, दर्शन भी दुर्लभ ?"

"मैं तो बिलकुल सस्ता हूँ..... टके सेर ।" नरोत्तम ने विनम्रता-पूर्वक कहा; और फिर बड़े ही आत्मीय स्वर में बोला : "महँगे तो तुम हो गये !"

"वाह बे ! हम और महँगे ? इस कीला को महँगा कहने वाला सारे शहर में एक तू ही निकला।"

"नहीं, मै अकेला नहीं, सारा शहर कहता है कि कीलाभाई कुर्सी पर बैठने के बाद बहुत महँगे हो गये........उनके भाव बहुत बढ़ गये.... एकदम बहुत, बहुत बड़े आदमी हो गये........"

"कौन कहता है ?"

"नाम बताकर पाप में कौन पड़े ? तुम ठहरे एजेन्सी के बड़े हाकिम, नाम सुनकर सब को फाँसी चढ़ा दोगे ! हुकूमत का यही उपयोग करोगे क्यों ?" नरोत्तम ने कहा : "और यह डर भी है कि नाम सुनकर तुम्हें बुरा लगेगा !"

"अबे, कीला के बुरा लगने की फिकर छोड़। यह दुनिया मुझे हमेशा बुरा ही तो लगाती रही है; आज तक कोई कसर छोड़ी भी है ?" कीला ने कहा : "भूँक दे जल्दी से ताकि जितना भी बुरा लगना हो लग-लगा जाये........"

"तो सुनो," नरोत्तम ने शुरू किया : "एक तो मुन्सिफ साहब कहते हैं कि तुम महँगे हो गये........"

"हाँ, सच है ! दूसरा कौन ?"

नरोत्तम ने अंगुली पर अंगूठा रखकर गिनती लगाते हुए कहा : "दूसरे, तहसील के बड़े बाबू कहते है कि......"

"बस-बस, बन्द करो, बहुत हो गया।" कीला ने हंसते हुए कहा : "समझ गया, सब-कुछ समझ गया।"

"तीसरे, नगर सेठ खुद कहते हैं......"

"अबे, कह तो दिया कि मैं सब-कुछ समझ गया, फिर यह मर्दुमशुमारी करके भेजा क्यों चाट रहा है ?"

"क्या समझ गये ?" नरोत्तम ने पूछा : "बताओ !"

"तुझे मंचेरशा ने सिखा-पढ़ाकर भेजा है।" और फिर जैसे अपने आप से बोला : "पारसी बाबा ने भी खूब चाल चली ! अपना बस न चला तो इस मिमुच्छे लौंडे को मेरे पास भेज दिया।"

"क्यों भेजा, यह भी जानते हो ?"

"कीला को चौपाया-चतुर्भुज करने के लिए। और तुम लोगों को काम ही क्या है ?"

"हाँ काम तो यही है। तुम्हारी शादी जो करना है। मना करोगे तो भी......"

"अबे, अकल के अजीरन ! कुछ समझता भी है या नहीं ? इस तरह तो शादी कीला की नहीं, कीला की कुर्सी की होती है।"

"सरिश्तेदार बनकर भी तुम रहे अक्खड़ के अक्खड़ ही।"

"अबे हम अक्खड़ नहीं, सच्चड़ हैं—सच-सच कहने वाले।" कीला ने नरोत्तम को समझाते हुए कहा : "सच-सच कह देता हूँ न, इसीलिए लोगों को कड़वा जहर लगता हूँ। समझा मोटे ?"

"क्या सारी जिन्दगी ऐसे कटुभाषी ही रहोगे ? कुछ तो मिठास रखा करो अपनी जबान में ?"

'कोशिश तो बहुत करता हूँ, लेकिन क्या करूं, यह दुनिया इतनी कपटी है कि जबान की सारी मिठास एकबारगी ही कड़वी जहर हो जाती है।" कीला ने नरोत्तम को समझाया : "जो तीन नाम तूने गिनाये, उन तीनों को कीला से रिश्ता जोड़कर अपना-अपना मतलब गाँठना है।"

"तुमको इसमें भी मतलब दिखायी देता है ? कोई तुम्हें अपनी कन्या देने आया तो उसमें तुम्हें स्वार्थ की गन्ध आने लगी ?"

"गन्ध नहीं आती, साफ-साफ आँखों से दिख रहा है। नगर सेठ चाहता है ए. जी. जी. की कृपा और उसके लिए मुझे सीढ़ी बनाना चाहता है। मुन्सिफ साहब को मुन्सिफी से सन्तोष नहीं, बनना चाहते हैं बड़ी अदालत के मुख्य न्यायाधीश; तीन बरसों से खुशामद और खटपट कर रहे हैं, लेकिन गोटी बैठ नहीं रही इसलिए अब कीला को खुश करने चले है। और तहसील के बड़े बाबू एक चक्कर में फस गये हैं; बहिसाब रिश्वत खायी है; किसी ने गुमनाम शिकायत कर दी है, नौकरी

से हाथ धोने का मौका आ लगा है, इसलिए कीला को फाँसने चले हैं........"

सुनकर नरोत्तम अवाक् रह गया। तब कीला ने कहा : "इन मतलबी यारों का काम बनाने के लिए कीला शादी करले ?"

"मेरे तो तुम्हारी ये बातें गले उतरती नहीं।" नरोत्तम ने कहा : "बेचारे स्नेहवश तुम से शादी की बात चलाने आये तो तुम यह क्यों मान बैठे कि अपना मतलब ही साधना चाहते हैं ?"

"मोटे, तुम अभी बच्चे हो। मेरी तरह दुनिया देखी नहीं है, इसलिए आसानी से इन बातों को समझ नहीं सकोगे। सरिश्तेदार की इस कुर्सी पर बैठने वाले किस तरह के धन्धे करते रहे है, तुम्हें क्या पता ?" कीला ने रहस्योद्‌घाटन किया : "आज तक जितने भी सरिश्तेदार हुए सबने दोनों हाथों से रिश्वतें बटोरीं और अपने घर भरे; इसीलिए तो ए. जी. जी. साहब ने मुझे इस पद पर बिठाया। अब अगर मैं भी ऐसे ही धन्धे करने लगूं तो मेरा नाम तो ठीक, लेकिन क्या मेरे बैरिस्टर पिता का नाम कलंकित न होगा ?"

"जब कोई ऐसा काम करने के लिए कहे, तुम इनकार कर देना।"

"ऐसे जंजाल में फंसने के बदले मैं क्यों न अपना ठेला चलाने के लिए लौट जाऊं ? भले मेरे खिलौने और भला मैं......"

कीला का दृढ़ निश्चय देखकर और अपने सारे तर्क समाप्त हो जाने के कारण जब नरोत्तम निरुत्तर रह गया तो कीला ने जोर देकर कहा : "मोटे, तूने अभी दुनिया देखी नहीं है, इसलिए यह बात तेरी समझ में आयेगी नहीं। मेरे जो इतने स्नेही और हितैषी निकल आये हैं वे सब लाभ और लोभ से ही प्रेरित हैं। बाकी यही कीला इतने बरसों से सबकी आँखों के सामने स्टेशन पर पड़ा हुआ था। उस समय किसी ने मुझे पूछा तक नहीं; आखिर क्यों ? बात यह है कि जैसा मीठी बाई स्वामी अपने बखाण में कहती हैं, समय बड़ा बलवान होता है; मनुष्य तो वही रहता है, पर समय बदलता रहता है। बाणावली अर्जुन तो वही था और उसके धनुषबाण भी वही थे, लेकिन एक समय काबों

ने उसे लूट लिया और दूसरे समय उसी ने धनुष-बाण से मत्स्य-वेध कर द्रौपदी को जीता और पत्नी बनाया……"

"अभी तुम्हारा समय भी बलवान है, इसलिए अर्जुन की तरह मत्स्यवेध कर डालो, "नरोत्तम ने कहा और फिर कुछ डरते-डरते मज़ाक में बोला : 'और घर में द्रौपदी का शुभागमन होने दो………"

"आइये, पधारिये !" दरवाज़े की ओर देखकर कीला बड़ी उमंग से पुकार उठा।

नरोत्तम ने मुड़कर देखा तो दरवाज़े में एक फटे हाल बुड्ढ़ा खड़ा था। उसके झुर्रियों वाले चेहरे पर साक्षात् दीनता विराजमान थी। पैबन्द लगे कपड़े उसकी गरीबी का ढिंढोरा पीट रहे थे। चुंधी आँखों की पलकें अन्तर की अकथनीय मूक वेदना के भार से बोझिल हो रही थी।

"आइये जूठा काका, पधारिये !" कीला खड़ा होकर इस प्रकार आदरपूर्वक दरवाज़े तक गया मानो किसी वरिष्ठ अधिकारी का स्वागत कर रहा हो !

इतना सम्मान भारी पड़ गया हो इस तरह बूढ़ा मारे संकोच के दो कदम पीछे हट गया।

"आइये-आइये, अन्दर चले आइये ! बैठिये।" कहता हुआ कीला आगन्तुक को स्नेहपूर्वक कमरे में ले आया और एक सरकारी कुर्सी पर बैठ जाने के लिए कहा !"

अमीरों के बैठने का आसन, कुर्सी देखकर बूढ़ा इतना डरा कि अपनी घबराहट में जमीन पर ही बैठ गया।

"जमीन पर मत बैठो काका, जमीन पर मत बैठो !" कहते हुए कीला ने फिर उससे कुर्सी पर बैठने का आग्रह किया।

"मुझे 'काका-काका' कहकर शर्मिन्दा क्यों करते हो, कामदार ?" बूढ़े ने अब पहली बार काँपते हुए कहा। "मैं तो बड़े मालिक, बारीस्टर साहब का चाकर……"

"मैं तुम्हारी गोद में खेलकर बड़ा हुआ हूँ काका।" कीला ने उसकी बात काटकर शहद—जैसे स्नेहार्द्र स्वर में कहा : "पिताजी के न रहने पर मेरे लिए तो आप ही पिता के समान......"

"यह तुम्हारा बड़प्पन है भैया; बड़े मालिक—जैसा बड़ा दिल तुमने भी पाया है।" बूढ़े ने कहा : "बाकी आज की दुनिया में कौन किस को जानता-मानता है !"

नरोत्तम बूढ़े को पहचानने की कोशिश कर रहा था। लगता था जैसे इसे कहीं देखा है; लेकिन कहाँ देखा, यह याद नहीं आ रहा था। शकल परिचित-सी लगती थी, लेकिन पहचान नहीं पा रहा था।

तभी कीला ने बातों-बातों में आगन्तुक से पूछा : "क्या हाल है मीठी बाई स्वामी का ?"

"धर्म-ध्यान करके कर्मों का क्षय करती रहती हैं।" जूठा काका ने औपचारिक उत्तर दिया।

और नरोत्तम को फौरन याद आ गया कि उस दिन कीला भाई के साथ उपाश्रय गया था तो वहीं इस बूढ़े को देखा था, जिसे 'कैसे हो कामदार' कहने पर कीला ने स्नेह भरी डाँट पिला दी थी।

"कई दिनों से आने का इरादा कर रहा था, लेकिन बन नहीं पाता था।" जूठा काका ने कहा।

"किसी के हाथ खबर करवा देते, मैं खुद चला आता।" इस बार कीला ने भी औपचारिकता निभायी।

"ऐसे में तो मुझी को आना चाहिए था......"

"तुम्हारा अपना ही घर है काका......"

"कामदार कुल के इस बड़प्पन को क्या मैं जानता नहीं ?" बूढ़ा व्यथित होकर बोला : "लेकिन कुछ ऐसी परेशानी आ पड़ी कि यहाँ आते मेरे पाँव नहीं उठ रहे थे......"

व्यवहार कुशल कीला को समझते देर न लगी कि बूढ़े बाबा किसी नाजुक समस्या को लेकर आये हैं। उन्हें आश्वस्त करता हुआ बोला :

बूढ़े की धुँधली दृष्टि कीला के बदले नरोत्तम पर स्थिर हो गयी। कीला समझ गया कि वे अपरिचित की उपस्थिति में संकोच का अनुभव कर रहे हैं। बोला : "इसे आपने पहचाना नही ? उस दिन उपासरे आया था तो यह मेरे साथ था।"

"हाँ, हाँ, अब शक्ल से पहचाना।"

"नरोत्तम इसका नाम है। मेरा अच्छा दोस्त है और मंचेरशा की पेढ़ी मे भागीदार है।"

"बिलकुल पहचान गया।" जूठा काका ने कहा : "तुम मीठीबाई स्वामी की वन्दना करने आये थे तो तुम्हारे साथ थे। अब मैने पहचान लिया।"

बूढ़े के हाव-भाव से कीला समझ गया कि 'पहचाना-पहचान लिया' कहने के बावजूद इस समय नरोत्तम की उपस्थिति बूढे को इष्ट नहीं है। किसी अत्यन्त गुप्त रहस्य को बताने में इस तीसरे व्यक्ति की उपस्थिति बाधक हो रही है। उसने फौरन नरोत्तम से कहा :

"मोटे, थोडी देर के लिए ओसारे में तो चला जा।"

नरोत्तम उठकर ओसारे में चला गया तो कीला ने कहा : "अब बताओ, काका, क्या बात है ?"

३४

बिना पंखों की चिड़िया

कीला के यह कहने पर भी कि 'बताओ काका' जूठा काका का मुँह खुल न सका; दो-तीन बार ओठ तो जरूर हिले, लेकिन शब्द नहीं निकले, तो कीला के मन का सन्देह और पक्का हो गया ! उनका सकोच मिटाने के लिए उसने कहा :

"काका, जरा भी सकोच मत करो। मुझे अपना ही, घर का, आदमी समझ कर जो भी कहना हो, कहो।"

"तुम्हें अपना ही आदमी समझता हूँ, इसीलिए तो यहाँ आया हूँ। मुसीबत ही कुछ ऐसी आन पड़ी है कि दूसरों को तो उसकी गन्ध भी नहीं लगने दी जा सकती।"

"इस कीला के मुँह से बात किसी के कान पर जाने की नहीं। आप तो जानते ही हैं कि मैं मुँह पर ताला लगाये रहता हूँ।" कीला ने विश्वास दिलाया और फिर बूढ़े की रुद्ध वाणी को मुक्त करने के लिए अनुकूल वातावरण बनाना शुरु किया : "मुसीबत तो इस संसार में आदमी के साथ लगी ही रहती है। आप तो इतने बरसों से उपासरे में सेवा करते हैं, इसलिए कई साधु-साध्वियों का उपदेश सुना होगा ! मीठीबाई स्वामी अपने बखाण में नहीं कहती कि विपदा में जो विचलित न हो उसी का नाम आदमी !"

"महासती के वचन तो अनमोल रतन हैं भैया......" बूढ़े ने कहा : "मगर मेरी मुसीबत बहुत विकट है।"

"इसीलिए तो इसे पंचमकाल कहा है काका ! 'दुबले और दो आषाढ' की तरह मुसीबतजदों पर ही अधिक मुसीबत आती है।" कीला ने दिलासा देकर कहा : "अब जल्दी से बता दो, क्या बात है ?"

"क्या कहूँ कीला भाई, कहने-जैसी बात नहीं है।" बूढ़े ने व्यथित होकर कहा : "छाती में होलियाँ सुलग रही है।"

"इसीलिए तो कहता हूँ कि दुखियारा दूसरे दुःखी से अगर मन का दुःख कहे तो हलका हो जाता है......"

"मन का बोझ हलका करने के ही लिए तो इस द्वारे आया हूँ भैया ! इतने बड़े शहर में मेरा तुम्हारे सिवाय कोई सहारा नहीं।" जूठा काका अब भी मूल विषय पर आने से कतरा रहे थे और इसलिए इधर-उधर की बातें कर रहे थे : "बारिस्टर साहब हमेशा मेहरबानी करते रहे और अब तुम्हारी मेहरबानी तो उनसे भी ज्यादा......"

"ऐसा मत कहो, काका ! मैं तो गरीबों के पाँव की धूल हूँ। तुम्हारी ही तरह का एक सताया हुआ दुःखी जीव हूँ। दुःखी आदमी दुःख में दूसरे दुःखी को याद करता ही है—यह कोई नयी या अचरज की बात नही।" कीला बूढे के संकोच को धीरे-धीरे कम करता जाता था : "मीठीबाई स्वामी सच ही कहती है कि सुख अकेले भोगना अच्छा लगता है, लेकिन दुःख तो चार जनों के साथ मिल-बाँटकर भोगने से ही हलका होता है......"

"मुझ पर दुःख का पहाड़ टूट गिरा है; उसे तो अकेले ही भोगना होगा।"

"फिर भी एक से दो भले। गलत थोड़े ही कहा है कि सौ की लकड़ी, एक का बोझ !" कीला ने कहा : "मुझे गैर मत समझो, काका ! अपना ही जानो और मन को शान्त कर सारी बात बताओ तो कोई-न-कोई रास्ता निकल ही आयेगा।"

कीला के इतना दिलासा देने पर बूढ़ा कुछ आश्वास्त हुआ। क्षोभ और संकोच दूर होने पर उसने कहा :

"मेरी लड़की है न, मोंधी......"

"हाँ !"

"उसे घर का काम-काज करने के लिए बुलाया था......"

"किसने ?" कीला ने अधीर होकर पूछा।

"उस कलमुँहे का तो नाम भी लेना पाप में पड़ना है......." जूठा काका ने कहा : "लेकिन उपासरे के मुखिया को तो तुम......."

"हाँ हाँ, जानता हूँ।" कीला उग्रस्वर में बोला : "सिर से पाँव तक जानता हूँ। उसकी नस-नस पहचानता हूँ। मुझसे कुछ भी छिपा नहीं है ... "

"वह मोंधी को अकसर अपने घर का काम करने के लिए बुला लिया करता था आज गेहूँ साफ करना है, घर आ जाना .. आज पापड़ बेलना है, इसलिए हाथ बँटाने को आ जाना''' .. इस तरह किसी-न-किसी बहाने लड़की को घर बुला लिया करता था......"

"और तुम उसे खुशी-खुशी भेज देते थे ?" कीला ने बीच में पूछा।

"नहीं भैया, मैं तो बिलकुल ही भेजना नहीं चाहता था..... सेठ की लम्पटता को सारा शहर जानता है, इसलिए मोंधी को उसके यहाँ भेजते मेरा मन मानता न था......" जूठा काका ने स्वीकार किया : "और फिर सेठानी ने खुद ही मुझे सावधान कर दिया था......आकर चुपचाप कह गयी थीं कि मोंधी को भेजना मत......"

"फिर भी तुमने भेजा ?"

"मंजूर करता हूँ कि इसमें गलती मेरी ही है......बड़े आदमी की बात टाल न सका, और मन से न चाहते हुए भी उसे भेजता रहा......"

"हद करदी......अपने हाथों गाय को कसाईखाने भेज दिया।" कीला ने अप्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा : "लेकिन मोंधी ने कभी कुछ..."

"नहीं कहा भैया। वह बेचारी इतनी गरीब और डरपोक है कि सारा गम मन-ही-मन सह गयी।" जूठा काका ने कहा : "बेचारी बिलकुल

अपनी मां-जैसी गरीब है······शान्त और सीधी इतनी कि मुर्दे को भी मर नही कह सकती ·····उसके सीधेपन के ही कारण तो यह सब अनर्थ हुआ ·····"

"अनर्थ कैसा ? क्या हुआ ?"

बूढ़ा फिर अस्वस्थ हो गया। ओठ दो-एक बार हिले, लेकिन शब्द मुँह तक आकर लौट गये। अन्त में मन की सारी शक्ति लगाकर, शर्म से सिर नीचा किये किसी तरह कहा :

"मोंघी के हमल ·····"

"राम ! राम !" कीला के हृदय से सहानुभूति के उद्गार सहज भाव से निकल पडे।

"क्वाँरी लड़की की जिन्दगी खराब हो गयी।" बूढ़े ने बिलख कर कहा।

"किस्मत का खेल।"

"माथे पर कलंक लग गया······"

"भोगना ही पड़ेगा······"

"मेरी सफ़ेदी पर कालिख······"

"समझता हूँ काका ! लेकिन जो हुआ उसमें तुम्हारा क्या दोष ?"

"इस बुढ़ापे में यों नीचा देखना पड़ा······"

"भाग्य में लिखा था, मिथ्या कैसे होता ?"

"कीला भाई, अपनी जाँघ के जख्म-जैसा हो गया, कहा भी नहीं जाता और सहा भी नहीं जाता।"

"हाँ, काका, जानता हूँ।" कीला ने कहा : "लेकिन जो हुआ उसे अनहुआ कैसे किया जा सकता है ? अब तो कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिये······"

"उपाय ?" बूढ़े की आँखों में चमक आ गयी : "उपाय भला क्या हो सकता है ?"

"आपने सेठ से बात की है या नहीं ?"

"जैसे ही पता लगा फौरन······"

"वह क्या कहता है ?"

"बनता है धर्मात्मा और उपाय बताता है पाप का……"

"राम ! राम !" कीला काँप उठा : "ऐसा पाप करने का विचार भी आदमी के मन में कैसे आता है ?"

"इसीलिए तो मैं उस पापी के मुँह पर थूक कर चला आया ।"

"बहुत अच्छा किया आपने ! ऐसे दुष्टों की तो जूतों से पिटाई करना चाहिये ।"

"आखिर तो मैं उसका आश्रित ठहरा, इसलिए कर भी क्या सकता हूँ ?" जूठा काका ने दीनतापूर्वक कहा : "लेकिन कीला भाई, तुम्हारे हाथ में तो हुकूमत है, तुम्हीं उसे कुछ……"

"करने को तो मैं फौरन हथकड़ी लगवा सकता हूँ ।" कीला ने उत्तेजित होकर कहा, लेकिन दूसरे ही क्षण शान्त होकर बोला : "नहीं-नहीं, उस हरामखोर को हथकड़ी लगवाने से भी कुछ नहीं होगा । उलटे सरकार की हथकड़ी अपवित्र हो जायेगी । और हमारा जो नुकसान हुआ है वह तो फिर भी बना ही रहेगा—इससे अनहुआ तो होगा नहीं ।"

यह कहकर कीला चुप हो गया, मानो अन्तर्मुख होकर इस समस्या का हल खोज रहा हो !

जूठा काका दिग्भ्रमित की तरह धरती कुरेदते हुए कह रहा था : "मेरी मोंघी बेचारी गरीब गाय-जैसी……फूट-फूट कर रोती है……सिर फोड़ती है……बाल नोचती है……

असहाय बालिका की यातना के इस वर्णन से संवेदनशील कीला का हृदय भी व्यथित हो उठा । उसकी आँखों के सामने रोती, बिलखती, सिर के बाल को नोचती एक करुण मूर्ति आ खड़ी हुई; भद्र समाज में उसकी गौरवहीन, अपमानजनक स्थिति का खयाल करके उस सहृदय व्यक्ति के तन-बदन में आग लग गयी ।

"मेरी आँखों की पुतली मोंघी की जिन्दगी बर्बाद होगयी……"

घायल व्यक्ति की तरह जूठा काका की आत्मा रह-रहकर तड़प उठती थी।

"यों हिम्मत मत हारो, काका !" कीला ने दृढ़ स्वर में कहा : "हमें जिन्दगी बख्शने वाला तो हजार हाथों वाला वह ऊपर बैठा है। किसी आदमी की क्या मजाल कि वह किसी दूसरे आदमी की जिन्दगी बर्बाद करे !"

सुनकर निराश जूठा काका कीला की ओर आशा भरी निगाहों से देखने लगा। कीला की गूढ़वाणी का अर्थ उसकी समझ में नहीं आया था, इसलिए पूछ बैठा : "लेकिन मोंघी की जिन्दगी तो बर्बाद हो ही गयी, अब बाकी क्या रह गया ?"

"किसने कहा कि बर्बाद हो गयी ? एक छोटी-सी भूल के कारण सारी जिन्दगी को हार बैठना कहाँ तक उचित है ?" कीला बूढ़े को दिलासा देने लगा : "भूल का उपाय करना चाहिए, काका ! पाँव पर फाड़ा हो जाता है तो हम उस पर पुल्टिस बाँधते है; सारे पाँव को काटकर फेंक नही देते। पाँव लंगड़ा हो जाता है तो आदमी को बैसाखी दे देते हैं, उसे मार नही डालते। समझे काका ?"

सुनकर बुढ़ऊ और भी आशा भरी निगाहों से उसकी ओर देखने लगे। लेकिन कीला की इन सलाहों का वास्तविक अभिप्राय उनकी समझ में ठीक से आ नहीं रहा था।

कीला घुमा-फिराकर एक ही बात इस बूढ़े के मन में बिठाने की कोशिश कर रहा था :

"जिन्दगी में तो बहुत से गड्हे-टीले आते हैं। किसी जगह पाँव फिसल जाये, और आदमी गड्हे में गिर पड़े तो उसे हाथ पकड़कर, सहारा देकर बाहर निकालना चाहिए। गड्ढे में गिरे हुए के सिर पर धूल डालकर उसे मुर्दे की तरह दफन तो नहीं किया जा सकता। जीवित और मरे हुए आदमी में इतना ही अन्तर है। समझ में आया काका ?"

बुढ़ऊ एकाग्रचित्त इन सलाहों को सुन रहे थे। 'आदमी का हाथ

पकड़कर बाहर निकालना चाहिए' शब्द उन्हे बहुत अच्छे लगे । सहज-भाव से कही हुई यह बात बूढ़े के व्यथित मन मे बार-बार गूंजने लगी । वत्सल पिता के हृदय ने पुत्री के सन्दर्भ में इन शब्दो को यो दुहराया : 'मोंघी का हाथ पकड़कर बाहर निकालना चाहिए ।' बाह, सलाह तो बढ़िया है, लेकिन क्या व्यावहारिक भी है ? सबसे बड़ी कठिनाई तो यही है ! और इसीलिए वह भोलेपन से पूछ बैठा :

"लेकिन मेरी मोंघी का हाथ कौन पकड़ेगा ?"

यह प्रश्न, सारी बात-चीत के सन्दर्भ में, बड़े ही सहज भाव से पूछा गया था, लेकिन कीला के तेज कानों में और उससे भी अधिक उसके संवेदनशील हृदय में वह एक विशिष्ट अर्थ बोध से मंडित होकर प्रतिध्वनित हुआ ।

"उस राक्षस ने जिसे भ्रष्ट कर दिया है ऐसी मेरी बे माँ की दुखियारी बेटी का हाथ अब कौन पकड़ेगा ?" बूढ़े ने बड़े ही दर्दभरे स्वर में पूछा । उसकी कोटरों में उतरी हुई निस्तेज आँखें कीला के सामने प्रश्न चिह्न बना रही थी ।

मासूम मोंघी और उसके पिता जूठा काका को बेबसी का खयाल कीला के हृदय को मथने लगा ।

कीला के लिए वह क्षण उसके जीवन की कड़ी-से-कड़ी परीक्षा का क्षण था । बूढ़े का वह एक ही प्रश्न उस साधु चरित्र व्यक्ति के शील और मर्यादा के समक्ष एक बड़ी-सी चुनौती बनकर खड़ा हो गया था ।

कीला का मन उस क्षण में जाने कहाँ-कहाँ घूम आया; अपने सारे अतीत का उसने चक्कर-सा लगा डाला । फिर देर तक वह चुप बैठा रहा, लेकिन मन में विचारों का तुमुल कोलाहल होता रहा ।

अन्त में जब विचार-तन्द्रा से चौंक कर जागा तो पाया कि जूठा काका की प्रश्नसूचक आंखे अभी तक उसी की ओर लगी हुई थीं । वह मौन दृष्टि चिल्ला-चिल्लाकर पूछ रही थी : जवाब दो, जवाब दो मेरी मोंघी का हाथ अब कौन पकड़ेगा ? . . . .

वह प्रश्न इतना महज और सरल नहीं था कि तुरंत उत्तर दिया जा सके। कीला को अब भी चुप बैठा देख बूढे ने कहा :

"मेरी सोनचिरैया-जैसी मोंधी अभी तो उठकर खड़ी भी न हो पायी थी कि उसके पंख कट गये.....अब वह उड़ेगी कैसे ?"

सुनकर कीला फिर अन्तर्मुख हो गया ! बूढ़ा अपना दुखड़ा सुनाता रहा :

"बिना पंख की चिड़िया हाय, अब जीयेगी कैसे ?"

"अगर कोई अपने पंख उसे मगनी दे दे....." देर तक चुप बैठे कीला के मुँह से अनायास ही निकल गया। और स्वयं कीला को ही आश्चर्य हुआ कि ऐसी बात उसके मुँह से निकल गयी !

"कोई पख मंगनी दे दे ?" बूढ़े को यह बात पहेली बुझौवल-जैसी लगी, इसलिए वह पूछ बैठा।

"हाँ !" अब कीला ने दृढ़ स्वर में कहना आरम्भ किया : "चिड़िया के पख कट गये तो जैसा कि मीठी बाई स्वामी कहती है, एक जीव दूसरे जीव को जिलाता है, मनुष्य-मनुष्य को उबारता है, मदद करता है......"

"लेकिन मेरी चिरैया को पंख कौन देगा ? कैसे देगा ?" बूढ़े ने अपनी शंका व्यक्त की।

"मुझे थोड़ा सोचने-विचारने का वक्त दो, काका !" कीला ने कहा : दो-चार दिन बाद मै स्वयं तुम्हारे पास आऊंगा और कोई-न-कोई रास्ता जरूर सुझा सकूंगा।"

"अच्छा भैया !"

"और देखो, घबराना बिलकुल नहीं, समझे ?" कीला ने दिलासा दिया।

"अच्छा भैया !" और जूठा काका आशा की एक हलकी-सी किरण के साथ वहाँ से विदा हुए।

जूठा काका के जाते ही कीला ने फौरन बाहर प्रतीक्षा कर रहे

नरोत्तम को आवाज देकर अन्दर बुलाया : "मोटे, अब अन्दर आ जाओ।"

बूढ़े के साथ कीला की क्या बातें हुईं, नरोत्तम जानता नहीं था, न जानने की उत्सुकता थी। उसे तो वह जिस काम के लिए आया था—मंचेरशा के प्रश्न का जवाब माँगने के लिए—उसी को जानने की जल्दी पड़ी थी; इसलिए आते ही उसने छोटे बालक की निष्कपटता, सरलता और जिज्ञासा से पूछा : "बताओ, मंचेरशा को क्या जवाब दूँ ?"

"अभी तुरत कोई जवाब नहीं दे सकता," कीला ने कहा : "लेकिन मुझे चारेक दिन की मुहलत दो; चौथे दिन मैं स्वयं आकर जवाब दे जाऊँगा......"

कीला भाई से इतना जल्दी और वह भी अनुकूल उत्तर मिल जायेगा, इसकी आशा नरोत्तम को नहीं थी। वह जवाब सुनकर उछल पड़ा और बड़े उत्साह के साथ बोला : "देखो, अगली पूर्णमासी को मुझे रुई की गाँठे अगनबोट मे चढाने के लिए बम्बई जाना है; उसके पहले तुम्हारा जवाब मिल जायेगा न !"

"जरूर...... "

"तुम्हारा जवाब मिले बिना मैं बम्बई नहीं जाऊँगा, कहे देता हूँ......" नरोत्तम ने दुलरा कर कहा।

"बहुत इतरा गया है, क्यों ?"

"तुम्हारा ही छोटा भाई जो ठहरा !" यह कहकर नरोत्तम हँसता-हँसता बाहर चला गया।

× × × ×

नरोत्तम के जाते ही कीला फिर विचारों में खो गया।

उसके बाद के तीन दिन और तीन रात उसने भयंकर मनोमन्थन में गुजारे। मन का यह तीव्र संघर्ष उसके चेहरे पर भी इस तरह उभर आया था कि देखकर खुद वाटसन साहब को भी आश्चर्य हुआ। गोरे साहब ने जब उससे उदासी का कारण पूछा तो पहले तो वह निजी मामला कहकर टाल गया। लेकिन पैनी निगाहों वाला वह सहृदय

साहब जब बराबर आग्रह करता रहा तो कीला के लिए उससे छिपाना मुश्किल हो गया। उसने अथ से इति तक सारी बात वाटसन साहब को बता दी; और जूठा काका की पुत्री की करुण, विषम स्थिति समझाते हुए समस्या के हल में अपनी दुविधा की बात भी बतायी।

वाटसन साहब कीला के ही मुँह से उसके अतीतकाल का सारा हाल सुन चुके थे, इसलिये उसके असमंजस को समझते उन्हें देर न लगी। वे जानते थे कि कीला एक बार मन की अस्त-व्यस्त अवस्था में, बिना सोचे-विचारे साधु जीवन की दीक्षा ले चुका है। उस दीक्षा की प्रतीक रुद्राक्ष के बड़े-बड़े मनकों की एक माला अब भी उसके गले में पड़ी हुई थी।

कीला ने साहब के आगे स्वीकार किया कि रुद्राक्ष की यह माला ही उसके कर्त्तव्य पालन में बाधक हो रही है। साधु जीवन की व्यर्थता समझ में आने के बाद, कर्मकांड की निरर्थकता का ज्ञान होने के बाद, त्याग की पलायन वृत्ति के बदले जीवन संघर्ष में जूझने की वृत्ति प्रबल होते ही वह पुन: ससार में लौट आया था। लेकिन फिर भी रुद्राक्ष की माला उसे पूरी तरह मुक्त नहीं होने दे रही थी। उस माला का एक-एक मनका लोहे की जंजीर की कड़ियों की तरह उसे जकड़े हुए था।

कीला के मन को इस तरह असमंजस में पड़ा देख वाटसन साहब को बड़ा आश्चर्य हुआ। इतने दृढ़ मनोबल वाला आदमी इस मामले में इतना दुविधाग्रस्त क्यों है? लेकिन गहराई से विचार करने पर यह बात उनकी समझ में आ गयी कि भारतीय जीवन प्रणाली में पला हुआ आदमी यदि एक बार की दीक्षा को इतना महत्त्व दे तो कोई आश्चर्य नहीं। असमंजस से मुक्ति पाने के लिए उसे केवल यह प्रतीति हो जाना चाहिये कि अन्तर के सच्चे आदेश के समक्ष दूसरे सभी बाह्य आदेश और बन्धन तुच्छ हैं।

कीला को इस बात की प्रतीति कराने का काम गोरे साहब ने स्वेच्छा से अपने ऊपर ले लिया। एक पूरा दिन वे कीला को विभिन्न दर्शनों और धर्मों का सार बताते रहे और अलग-अलग सन्तों के जीवन

प्रसंगों का वर्णन कर यह प्रतिपादित करते रहे कि बाह्याचार अथवा आचार धर्म से अन्तस् का, हृदय का धर्म श्रेष्ठ है ।

अन्त में यह बात कीला की समझ में आ गयी, कि स्थूल लोकाचार की अपेक्षा हृदय का धर्म अधिक महत्त्वपूर्ण है; और इस प्रतीति के साथ ही उसकी आँखों पर पड़ा परदा हट गया और उसे अपना जीवन मार्ग साफ दिखायी देने लगा ।

वह फूल जैसे हलके हृदय से जूठा काका के घर जा पहुँचा ।

बूढ़े ने सपने में भी नहीं सोचा था कि कीला अपने वायदे के अनुसार सच ही उसके घर पहुँच जायेगा । इसलिए बेचारा हड़बड़ाकर सरिश्तेदार-जैसे बड़े अफसर का स्वागत करने के लिए ठेठ दरवाजे तक दौड़ा चला आया ।

"अभी-अभी सेठजी आये थे ।" बूढ़े ने कहा ।

"क्या करने ?" कीला ने रुखाई से पूछा ।

"कुछ तो वे भी घबरा ही गये हैं, इसलिए रास्ता सुझाने आये थे ।"

"कौनसा रास्ता ? क्या वे मोंघी से शादी करेंगे ?"

बूढ़े ने दर्द भरी खिन्न हँसी हँसकर कहा : "राम का नाम लो भैया ! मुझसे कह रहा था कि लड़की को साथ लेकर लम्बी यात्रा पर चले जाओ ।"

"और बच्चा हो तो उसे गंगाजी में फेंक देने को कहा होगा उस राक्षस ने ?" कीला ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा ।

"नहीं-नहीं, यह कहने की हिम्मत तो नहीं हुई उसकी । हाँ, यह जरूर कहा कि अपनी जान-पहिचान के किसी अनाथाश्रम में भर्ती करवा देंगे ।"

"ऐसी बात सोचना भी मत । पैदा होने वाले गूंगे जीव ने क्या कुसूर किया है कि उस बेचारे को अनाथाश्रम में रखा जाये ?"

"फिर किया क्या जाये, कीला भाई ? मेरे तो कोई रास्ता समझ में नहीं आता ।"

"माँ-बच्चे का वियोग कराने से क्या पाप न लगेगा ?" कीला अभी भी गुस्से में ही बोल रहा था।

"भाग्य में वियोग लिखा ही होगा तो………" बूढ़े की जबान लड़खड़ा गयी : "जन्म लेने वाले के भाग्य में विधाता ने जो लेख छठी रात को लिखा होगा……"

"उस लेख को मेख मारकर मिटा देंगे काका।" कीला ने गर्व से कहा।

"किस तरह ?" बूढ़ा पूछने लगा : "आखिर किस तरह ?"

"सुनिये : अगर आपको मजूर हो तो मैं मोंघी का हाथ पकड़ने को तैयार हूँ।" कीला जल्दी-जल्दी कह गया : "मै उससे शादी करूँगा और कहूँगा कि यह मेरी ही सन्तान है।"

बूढ़ा आँखे फाड़े उसे देखता ही रह गया। जो सुना उसके सच होने का विश्वास न हो सका। चारों ओर दु:ख से घिरे आदमी की जो स्थिति सुख की एक जरा-सी झलक देखकर होती है, वही स्थिति इस समय जूठा काका की हो गयी। 'आपको मंजूर हो तो मै मोंघी का हाथ पकड़ने को तैयार हूँ' शब्द सच ही बोले गये या केवल मेरी भ्रान्ति है, इस बारे में बुढ़ऊ अपने तईं कोई निर्णय नहीं कर पा रहे थे।

"मीठीबाई स्वामी का उपदेश भूल गये ?" कीला ने फिर सुभाषित का सहारा लिया : "पुद्गल जीव का असत्कार करने से पाप लगता है।"

बूढ़ा अत्यधिक पुलकित होकर इस आदमी की ओर देख रहा था।

"अगर बच्चे की माँ का पता न चले तो कोई हर्ज नही होता, लेकिन अगर बच्चे के बाप का पता न चले, वह बे बाप का समझा जाये तो उस बेचारे की स्थिति बहुत हीन और अपमानजनक हो जाती है।" कीला अपनी बात समझाये जा रहा था "मोंघी के बच्चे को मैं अपना ही बच्चा मानूंगा।"

"तुम ? ……तुम ?……" हर्षातिरेक में बूढ़े के मुंह से शब्द नहीं

निकल रहे थे। वह गद्गद् हो गया और बोला : "लेकिन......लेकिन यह तो पराये का......पराये का पाप... "

"अपने सिर ओढ़ लूँगा !" कीला ने अपना दृढ़ निश्चय कह सुनाया।

बूढ़े को लगा कि यही उसका तारनहार है, अधमोद्धारक से भी अधिक उदार और महान् है। उसके इस आत्म त्याग के लिए कृतज्ञता प्रकट करने के उपयुक्त शब्दों का उस निरक्षर और अशिक्षित बूढे के पास नितान्त अभाव था; वह बेचारा भावातिरेक में उसके पैरों में जा गिरा और अपने हर्षाश्रुओं से उस उद्धारक के दोनों पाँवों को पखारने लगा।

कीला ने हाथ पकड़कर बूढ़े को उठाते हुए कहा : "काका, खड़े हो जाओ, खड़े हो जाओ ! मुझे यों शर्मिन्दा मत करो। मैं तो आपका बच्चा हूँ.....आप मेरे पिताजी की जगह है......आशीर्वाद दीजिये कि मैं सुखी होऊँ....."

३५
ज्योति-जगे

"सुना, बटुक की माँ ? नरोत्तम लिखता है कि........"

रात में भोजन-पानी से निवृत्त होकर ओतमचन्द पीतल की दीवट जलाकर घर में बही-खाता लिखने बैठा था। उधर लाडकोर पटारा खोलकर सारे गहनों और कपड़ो-लत्तों को उलट-पलट रही थी। दकुभाई के बालू की शादी होने के कारण लाडकोर पिछले कुछ दिनों से उसी की तैयारियों मे व्यस्त थी। इस समय भी वह बालू के लिए गहनों का जुगाड़ करने में इतनी मशगूल थी कि पति ने नरोत्तम का पत्र आने की जो बात कही, वह उसके कानों तक पहुँचने के बदले मानों हवा में ही उड़ गयी।

"सुना ? नरोत्तम की बम्बई से चिट्ठी आयी है......." पत्नी का ध्यान कहीं ओर है, यह समझकर ओतमचन्द ने फिर कहा।

'हँ......हँ......हाँ........." कहकर लाडकोर गहने-कपड़ों को फिर उलटने-पलटने लगी।

पति भोली पत्नी की ओर सहानुभूति से देखकर मुस्करा दिया।

ओतमचन्द थोड़ी देर बही-खाता लिखता और प्रतीक्षा करता रहा कि पत्नी मानसिक रूप से पत्र सुनने के लिए तैयार हो जाये तो नरोत्तम का पत्र उसे सुनाये। कुछ देर के बाद उसने सांकेतिक ढंग से कहा :

"सुना ? नरोत्तम ने तुम्हें पालागन लिखा है........."

लेकिन भाई के घर शादी में जाने के अत्यधिक उत्साह में लाडकोर ने यह तीसरी बार का कहना भी सुना-अनसुना कर दिया और उलटे पूछ बैठी : "बालू की दुलहिन के लिए कंगन बनवाऊँ या भुजबन्द ?"

"कंगन और भुजबन्द दोनों ही बनवा लो !" ओतमचन्द ने गम्भीर होकर कहा : "दकुभाई के लड़के की शादी में अगर गहना कम बनवाया गया तो हेठी हमारी ही होगी ।"

और ओतमचन्द फिर व्यंग्य भरी मुस्कान के साथ काम में लग गया ।

खुशी में बौराई लाडकोर बालू की शादी की तैयारियों में और भी व्यस्त हो गयी । वह उदारमना भगिनी अपने भाई का सारा भूतकाल ही जैसे भूल गयी थी । कर्कशा भौजाई ने मकान के वास्तु-पूजन के समय ननद के साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उसे भी वह मानों भूल गयी थी । ईर्ष्यालु और दुष्ट दकुभाई ने पत्नी के उकसाने और मुनीम के कहने में आकर जो शरारत की, रंग में भंग डाला और अन्त में जालसाजी करके ओतमचन्द की पेढ़ी को ही डुबो दिया—इन सब घटनाओं को वह स्नेह-मयी बहिन इस समय भूल गयी थी । भाई-भौजाई के लिए लाडकोर के हृदय में अपार स्नेह था । और एक घटना ने उस स्नेह में और भी वृद्धि कर दी थी । तंगी के दिनों में, एक नाजुक मौके पर, लाडकोर ने पति को ईश्वरिया भेजा था और दकुभाई से पाँच पैसे की मदद माँगी थी । ईश्वरिया की उस स्मरणीय यात्रा का जो मनगढ़न्त विवरण ओतमचन्द ने सुनाया था—दकुभाई ने कितनी आवभगत की, कितनी उदारता से पैसा दिया, और वाघणिया लौटते समय किस प्रकार बदमाशों ने सब-कुछ लूट लिया आदि—उसके परिणाम-स्वरूप 'मेरे दकुभाई' के प्रति बहन की ममता द्विगुणित हो गयी थी ।

भाई भौजाई के प्रति इस द्विगुणित ममता से प्रेरित होकर ही तो इस समय लाडकोर ईश्वरिया जाने और भतीजे की शादी में बुआ की हैसियत से वाह्-वाही बटोरने के मनोरथ गढ़ रही थी ।

ओतमचन्द को यह सब देखकर हँसी आती थी । ईश्वरिया से दकु-भाई के लठैतों की मार खाकर वह भगवान की कृपा से किसी तरह जिन्दा लौट सका था; लेकिन लाडकोर को इस बात का पता न चलने देने की ओतमचन्द ने पूरी पूरी सावधानी बरती थी । उलटे उसने वाघ-

णिया लौटने के बाद दकुभाई के स्नेह-सत्कार का मनगढ़न्त वर्णन करके पत्नी के मन में उसके सहोदर भाई का अत्यन्त मनोरम चित्र निर्मित कर दिया था। ओतमचन्द जानता था कि वह चित्र भ्रामक है; मृग मरीचिका की तरह है। लेकिन जलती दुपहरी की चिलचिलाती धूप और आग उगलती बालू में यात्री को मृग मरीचिका देखना अच्छा लगता है। मरीचिका की भी एक मोहिनी होती है। मृग जल आदमी की प्यास भले ही न बुझा सके, आँखों को अवश्य ठण्डा करता है। स्नेह की भूखी लाडकोर भी इस समय दूर, ईश्वरिया के सीमान्त पर दकुभाई के द्वारे, भ्रामक होते हुए भी नयनों को मनोहर लगने वाला, मृग जल देख रही है तो अवश्य देखती रहे। ओतमचन्द उस मृग जल को भ्रामक बताकर अपनी पत्नी के दिल को तोड़ने का पाप नहीं करेगा।

लाडकोर के दिमाग में बालू के लग्नोत्सव का पूरा नक्शा अंकित हो चुका था। दूल्हे की बुआ की हैसियत से अपना फर्ज निभाने में कितने गहने, किस तरह के कपड़े और कितना नकद रुपया देना होगा, इसका पूरा ब्यौरा उसने अपने मन में तय कर लिया था। विदा के समय ब्यौहार में भाई-भौजाई की ओर से कितना आदर-मान और कपड़े-लत्ते मिलेंगे, इसकी कल्पना भी उसने कर ली थी। मामा के घर प्यारे भानजे के रूप में बटुक का कितना आदर और स्नेह होगा इसका अनुमान भी उसने लगा लिया था।

"बटुक की माँ, इस दिये में ज़रा तेल तो पूर दो।"

बही-खाता लिख रहे ओतमचन्द ने दिये में एक और बत्ती जलाते हुए कहा।

"तुम अभी कितना तेल जलाओगे?" लाडकोर ने उठते हुए कृत्रिम रोष से पति को ताना दिया।

"पूरी मौसम के हिसाब का मेल मिलाना है।.........अगली अमावस्या को मुझे सारे बही-खाते लेकर मंचेरशा की पेढ़ी पर हाजिर होना है........."

अब कहीं लाडकोर को याद आया कि थोड़ी देर पहले पति ने

नरोत्तम का पत्र आने की बात कही थी, और उसने कोई उत्सुकता नहीं दिखायी थी।

"क्या नरोत्तम भाई का पत्र आया है ?" लाडकोर ने खिसियाए हुए स्वर में पूछा।

ओतमचन्द ने जान-बूझकर कोई जवाब नहीं दिया।

"क्या लिखते हैं अपने पत्र मे ?" पत्नी ने फिर पूछा।

पति फिर चुप रहा तो लाडकोर ने चिन्ता भरे स्वर में कहा : "बोलते क्यों नही ?"

"तीन-चार बार तो बोल चुका, लेकिन तुम्हें सुनने की फुर्सत ही कहाँ है ?" ओतमचन्द ने कहा : "अपने भाई की चिन्ता से छुट्टी पाओ तो मेरे भाई की बात सुनो !"

"हाय राम ! मैं भी कैसी तो भुल्लकड़ हूँ !" हृदय के निर्मल प्रेम को प्रतिबिम्बित करने वाली हँसी हँसकर लाडकोर ने कहा : "दकुभाई मुझे प्यारा है तो क्या नरोत्तम नहीं है ? दकुभाई मेरी माँ का जाया है तो नरोत्तम मेरे अपने पेट के जाये बटुक से भी ज्यादा है······कागज़ में क्या लिखता है, ज़रा पढ़कर सुनाओ न !"

"एक बार मैंने पढ़कर सुनाया कि नरोत्तम ने तुम्हें पालागन लिखा है तो तुमने कोई ध्यान नहीं दिया, इसलिए मैंने जवाब में लिख दिया कि तुम्हारी भाभी को पालागन स्वीकार नहीं है।"

"हाय ! हाय ! ऐसा भी कहीं लिखा जाता है ! फाड़कर फेंक दो उस जवाब को, और फिर से मेरा आशीर्वाद लिखो।" कहकर लाडकोर ने हुक्म दिया : "अब पूरी चिट्ठी बाँच कर सुनाओ ! बम्बई से क्या समाचार लिखे हैं।"

"तुम ईश्वरिया से आयी दकुभाई की चिट्ठी में मगन हो रही थी, बम्बई वाली चिट्ठी सुनने की फुर्सत ही कहाँ थी ?" पति ने फिर ताना मारा।

"मेरा तो मुआ स्वभाव ही भुलक्कड़ है, मैं क्या करूँ ?" और लाड-

कोर घिघियाने लगी : "अब मेहरवानी करके पूरी चिट्ठी सुना दो। .नरोत्तम भाई के समाचार जाने बिना मुझे नींद नहीं आयेगी।"

ओतमचन्द को अब पत्नी को ज्यादा सताना उचित न लगा, उसने कहा : "चिट्ठी में ज्यादातर तो व्यापार के ही बारे में लिखा है।"

"व्यापार-धन्धा कैसा क्या है ?"

"बढ़िया, बहुत ही बढ़िया।" ओतमचन्द ने बताया : "हमारी धारणा से कहीं बढ़िया........."

"तुम्हारे मुँह में घी-शक्कर।" पत्नी ने सन्तुष्ट होकर कहा : "नरोत्तम भाई यहाँ से अच्छा मुहूर्त देखकर शहर गये थे......"

"मुहूर्त की तो कौन जाने, लेकिन जाते समय तुमने उसका मुँह जरूर मीठा करवाया था........."

"और बलैयाँ लेकर आठों अंगुलियों से बाधा दूर की थी।"

"बस, सबसे बड़ा मुहूर्त तो वही था।" पति ने सारा श्रेय पत्नी को देते हुए कहा : "तुम्हारे आशीर्वाद के बिना वह भला इतना काम फैला सकता था ?"

"कितनी कमाई हुई है, जरा ठीक समझा कर कहो न !"

"वह लिखता है कि हमने सारे इलाके की रूई खरीद कर मंचेरशा की मार्फत विलायत भेजी तो उसका भाव सोने से भी अधिक मंहगा उठा।"

"कैसी बात करते हो ? रूई-कपास कहीं सोने के मोल भी बिकती होगी ?" लाडकोर ने शंका व्यक्त की : "धोलका-धन्धुका में तो कोई रूई को कौड़ियों के मोल भी नहीं पूछता !"

"धोलका-धन्धुका में कौड़ियों के मोल न बिकती होगी, विलायत में माणिक-मोती से भी महंगा भाव उठता है।" ओतमचन्द ने कहा : "मंचेरशा के साथ-साथ हमारी तकदीर भी खुल गयी........."

"सो किस तरह ? जरा समझाकर कहो, यों पहेलियाँ मत बुझाओ।"

"बात यह है कि अमेरिका में लड़ाई छिड़ जाने से विलायत की कपड़ा मिलों को रूई नहीं मिल रही, इसलिए हमारी रूई का इन दिनों बोलबाला है………"

"अच्छा, यह बात है……… "

"बम्बई में तेजी के कारण व्यापार में बड़ी उथल-पुथल मची हुई है।" ओतमचन्द ने ब्यौरेवार बताना शुरू किया : 'चारों ओर 'रूई लाओ ! रूई लाओ !' का शोर मचा हुआ है। नरोत्तम इस कागज में लिखता है कि नई रूई तो सारी आज बोट में चढ़ गयी और माँग अभी भी है, इसलिए पुरानी रूई के भाव भी चढ़ गये है, यहाँ तक कि लोग-बाग गद्दे, लिहाफ और सिरहाने तक उधेड़-उधेड़ कर उनमें की रूई महंगे दामों बेच रहे हैं।"

लाडकोर गम्भीरतापूर्वक सुन रही थी, अब खिलखिला पड़ी। बोली :

"रहने दो ! रहने दो ! ज्यादा गप मारकर मुझे बुद्धू मत बनाओ। लिहाफ़-गद्दों की सड़ी रूई के भी कहीं पैसे खड़े हुए है ?"

"वाघणिया में जरूर नहीं होते, लेकिन विलायत में होते हैं। हमारी रूई न मिले तो जानती हो, विलायत की बड़ी-बड़ी सूती मिलों में ताले लग जायें।"

"यह भी एक अचम्मा ही सुना।"

"अचम्भा और सुनो—रूई के व्यापारियों की इस बार इतनी कमाई हुई कि समझ में नहीं आ रहा है, रुपये का क्या करें, उसे कहाँ लगायें !" ओतमचन्द ने नरोत्तम के पत्र से और ब्यौरा दिया : "जिसने जिन्दगी में कभी सौ रुपये का नोट नहीं देखा था वह आज लखपति हो गया और मंचेरशा—जैसे सेठ, जो पहले से ही लखपति थे, करोड़पति बन गये।"

"भरे हुए में भरती होती ही है।" लाडकोर ने टिप्पणी की।

"लेकिन भरे हुए में इतना अधिक भर गया है कि उस रुपये की निकासी का कोई रास्ता समझ में नहीं आता।" पति ने आगे बताया :

"नरोत्तम लिखता है कि बम्बई के सब व्यापारी धड़ाधड़ जमीन और मकान खरीद रहे हैं। रूई के सब व्यापारियों ने छह-छह सात-सात मंजिले पुराने मकान खरीद लिये हैं और नये-नये बना रहे हैं। जमीन की माँग इतनी बढ़ गयी कि कहीं एक हाथ टुकड़ा भी ढूँढे नहीं मिलता।"

"यह तो एक अनोखी बात हुई! जमीन की क्या कमी?" लाडकोर ने कहा।

"बम्बई में चारों ओर समन्दर है, इसलिए वहाँ जमीन कम पड़ती है।" ओतमचन्द ने समझाया : "और जमीन कम पड़ती है, इसलिए अब बम्बई का समन्दर पाटा जा रहा है।"

"जाओ, जाओ! समन्दर भी कहीं पाटा जा सकता है?"

"तो क्या इस चिट्ठी में झूठ लिखा है?" पति ने फिर पत्र का हवाला दिया : "बम्बई में समन्दर पाटने के लिए एक कम्पनी बनी है, उसके हिस्सों का भाव भी तीन सौ सैकड़ा बढ़ गया। मंचेरशा और नरोत्तम ने साझे में इस कम्पनी के शेयर लिये थे। उसमें भी बहुत मुनाफा हुआ।"

"बडे-बूढ़ों ने कहा है कि तकदीर वालों के यहां मिट्टी भी सोना हो जाती है; और हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं।"

"नरोत्तम लिखता है कि मंचेरशा बम्बई में सतमंजिला मकान बनवा रहे हैं।"

"मंचेरशा सतमंजिला महल चुनवा रहा है, तो उसका भागीदार कितने मंजिल वाली हवेली बनवायेगा?" समझदार गृहिणी ने सांकेतिक प्रश्न पूछा।

"हम मंचेरशा के जितने मालदार थोड़े ही हैं? पेढ़ी में नरोत्तम का सिर्फ चवन्नी का साझा है।"

"तो वह चौथे भाग जितनी ऊँची हवेली बनवाये.........न हो तो दुमंजिला मकान ही बनवा ले।" लाडकोर ने कहा : "देसावर में इतना बड़ा व्यापार करने वाले को अब हम इस झोंपडे-जैसे मकान में कैसे रख सकेंगे?"

"मंचेरशा में और हम में इतना ही फर्क है।" ओतमचन्द ने कहा : "वह ठहरे पारसी और हम है बनिये, समझी ? बनिये का बेटा पैसों का घमण्ड नहीं करता और न कमाई का दिखावा करता है। हमारा रहन-सहन तो चीथड़ों में लिपटे रतन-जैसा कहा गया है।"

"तुम रहे वैसे-के-वैसे, आज भी स्वभाव में कोई परिवर्तन नहीं।" लाडकोर ने मीठा-सा ताना दिया : "छोटा भाई खंचियों से रुपये कमाता और गाड़ियों में भेजता है, मगर बड़े भाई की न मूँछ ऊँची, न सिर ऊँचा।"

"अरी भली मानस ! बनिये की मूँछ सदा नीची भली ! रुपया बढ़ने के साथ-साथ आदमी में ज्यादा विनम्रता और नरमी आना चाहिए, अहंकार और गरमी नहीं।" ओतमचन्द ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया : "बबूल और आम में इतना ही तो फर्क होता है—बबूल में जितने काँटे आते हैं वह उतना ही ऊँचा उठता जाता है; आम में जितने ही फल लगते हैं वह उतना ही झुकता जाता है।" यह कहकर उस धर्म परायण पापभीरु आदमी के मुँह से समस्त जीवन के निष्कर्ष-जैसा एक सुभाषित सहज रूप से निकल पड़ा : "जिसने सिर झुकाया वह भगवान को सुहाया।"

"झुक कर रहने से, विनम्रता और नरमी से मुझे कहाँ इनकार है ?" लाडकोर ने कहा : "लेकिन रहने का मकान तो ढंग-धड़े का होना चाहिये।"

"हम रहते हैं यह क्या बुरा है ? भगवान रखे वैसे ही रहना चाहिये···।"

पति के इस उपदेश के आगे लाडकोर निरुत्तर तो अवश्य हो गयी, लेकिन एक विचार उसके मन में बराबर घुमड़ता रहा। अन्त में डरते-डरते, उसने अपना वह विचार पति के आगे व्यक्त कर ही दिया : "हम अपना पुराना मकान शेखाणी सेठ से वापस क्यों न ले लें।"

ओतमचन्द इस तरह के प्रश्न की प्रतीक्षा कर ही रहा था। वह जानता था कि वास्तु-पूजा के कुछ ही दिनों बाद मेमन सेठ के हाथ नया

मकान बेच देने का जो घाव लाडकोर के हृदय में लगा, वह अभी तक भरा नहीं था। वह पहले भी कई बार इस मामले में अपना दुःख प्रकट कर चुकी थी। अब छोटे भाई के पुरुषार्थ से हालत सुधरी तो पुराना मकान वापस लेने की लाडकोर की आकांक्षा स्वभाविक ही थी।

"सुना है कि शेखाणी सेठ हमारे वाले मकान को औने-पौने निकालने की फिराक में हैं। क्यों सच है?" लाडकोर ने फिर उसी प्रसंग को छेड़ते हुए पूछा।

"हाँ, उन्होंने कहा तो मुझसे भी है कि कोई ग्राहक हो तो बताऊँ ··"

"अगर ऐसी बात है तो क्योंजी, हमीं क्यों न ले लें?" लाडकोर ने कहा : "आज तुमसे सच कहती हूँ, जिस दिन फिर उस मकान में जाकर रहेंगे, मेरे जी को तभी चैन मिलेगा······"

"हाँ, मुझे मालूम है।" ओतमचन्द ने कहा : "लेकिन एक बार जो इमारत अपने हाथ से निकल गयी, उसमें दुबारा क्या जाना? यही मानकर क्यों न सन्तोष करें कि वह हमारे भाग्य में नहीं थी?"

"खराब दिन आगये थे, इसलिए मकान निकाल देना पड़ा। लेकिन अब तो समाई हो गयी है, और मकान वापस मिल सकता है तो क्यों न लें?"

"अच्छी बात है, मैं कोशिश कर देखूँगा।"

"और देखो, अगर हो सके तो साथ-ही-साथ अपनी घोड़ा गाड़ी का सौदा भी कर लेना।"

"गाड़ी तो व्यापार-धन्धे के लिए लेना ही है, नयी ही क्यों न ली जाये?"

"नहीं, नहीं! वह पुरानी ही अच्छी है, सोने-जैसी है!" लाडकोर ने पति को समझाया : "उसी गाड़ी और उसी वशराम के लौट आने पर बटुक को ज्यादा खुशी होगी।"

पुरानी गाड़ी के प्रति पत्नी के भावनात्मक लगाव का ओतमचन्द जानता और समझता भी था। नये मकान और पुरानी गाड़ी दोनों जड़ वस्तुओं के साथ एक जीवित नाता स्थापित हो चुका था—वह प्रेम का

नाता था। संयोग से वह नाता टूट गया था, लेकिन आज उसके पुनः जुड़ने की सम्भावना पैदा हो गयी थी।

"नरोत्तम ने खुद ही मकान और गाड़ी वापस खरीद लेने की बात इस चिट्ठी में लिखी है।" ओतमचन्द ने कहा।

"तुमने बताया क्यों नहीं ?"

"जान-बूझकर ही। चिट्ठी का यह अंश तुम्हें इसलिए नहीं सुनाया कि मैं तुम्हारा मन जानना चाहता था।"

"अब तो जान गये।"

"हाँ, बिलकुल......"

दोनों पति-पत्नी नये सिरे से प्राप्त सुख की बातों में ऐसे मगन हुए कि रात कितनी बीत गयी, कुछ पता न चला। दिये की मन्द होती हुई जोत में लाडकोर ने दूसरी बार तेल पूरा और वे फिर बातों में मशगूल हो गये। ऐसी ही एक रात थोड़े दिन पहले भी जागते बीती थी......उस रात बटुक भूखा ही सो गया था; और लाडकोर ने पति को ईश्वरिया जाकर दकुभाई से सहायता की याचना करने की बात समझाने में सारी रात बिता दी थी। लेकिन वह रतजगा उद्वेगपूर्ण था, जबकि आज का रतजगा उल्लासपूर्ण। आज उन्हें नये जीवन के सपने साकार होते दिखायी दे रहे थे। इसीलिए तो आज की व्यग्रता की मधुर उत्तेजना में वे भिनसारा होने तक बीते दिनों और आती कल के जीवन के सुख-दुःख की बातें करते रहे।

अन्त में तीसरी बार दिये की ज्योति मन्द होने लगी; लेकिन अब तीसरी बार उसमें तेल पूरने की जरूरत नहीं रह गयी थी। उनके जीवन की ही तरह उनके आवास में भी नव प्रभात का मंगल प्रकाश प्रसारित होने लगा था।

३६

थैली किसने चुरायी थी ?

ओतमचन्द प्रातः कर्मों से निवृत्त होकर अपनी पेढ़ी पर गया और दुकान खोलकर मसनद पर बैठा ही था कि एक डरावनी शक्ल-सूरत वाला आदमी दुकान के दरवाज़े में आ खड़ा हुआ। आगन्तुक बूढ़ा तो वैसे ही था, बेढंगी वेश-भूषा ने उसके बुढ़ापे में और वृद्धि कर दी थी। सिर पर उसने बेतरतीबी से जो पगड़ी लपेट रखी थी उसे कपड़ा कहने के बजाय चिथड़ों और चिन्दियों का पिण्डा कहना ही ज्यादा उपयुक्त था। बदन पर के कपड़े इतने जर्जर और खस्ताहाल थे कि अनगिनत थेगलों के उस गूदड़ में एक अंगुल भी साबित जगह खोज पाना असम्भव था। उसका चेहरा इतना दुबला, सिकुड़ा और पिचका हुआ था मानों लगातार बारह बरस के दुर्भिक्ष से ग्रस्त दरिद्रता मूर्तिमन्त आ खड़ी हुई हो।

पहली नजर में तो ओतमचन्द भी उसे न पहचान सका; इस पर आगन्तुक ने बड़ी दीनता से पूछा :

"भूल गये, सेठजी ? शक्ल से भी नहीं पहचाना जाता ?"

ओतमचन्द और भी उलझन में पड़ गया और आगन्तुक को पहचानने की मन ही-मन कोशिश करता रहा। यह देख उस आदमी ने अपना माथा ठोक लिया और बोला :

"पहचाना भी कैसे जाऊँ ? पूरा हुलिया ही जो बदल गया है ! मगर क्या मुसीबत में आदमी की शक्ल-सूरत भी इतनी बदल जाती है कि पहचानी नहीं जाती ?"

आगन्तुक को उसके हुलिये अथवा शक्ल-सूरत से तो ओतमचन्द फिर भी नहीं पहचान सका, लेकिन इतनी देर की बातचीत के बाद बोलने का ढंग और आवाज़ पहचान कर सहसा कह उठा :

"अरे, तुम मुनीम तो नहीं ? मकनजी भाई ही हो न ?"

"हाँ, हूँ तो मकनजी ही, मगर अब मुनीम नहीं रहा।" बूढ़े बिजूके ने कहा : "राह का भिखारी हो गया हूँ।"

"क्यों ? कैसे ?"

"अपने किये का फल। और क्या कहूँ ? यहाँ की करनी का फल यहीं भोगना पड़ता है।"

"मगर हुआ क्या—साफ-साफ बताओ।"

"दकुभाई ने मुझे धोखा दिया। भिखारी बनाकर निकाल दिया। अब तो सिर्फ भभूत रमाना बाकी रह गयी।"

"अरे, यहाँ तक बात हो गयी......"

"अब क्या बताऊँ आपको; कुछ कहा नहीं जाता ! अपने हाथ के उछाले पत्थर ने अपना ही सिर फोड़ दिया।" और फिर किराये पर स्यापा करने वाले की तरह बड़े ही नाटकीय ढंग से रो उठा : "हाय रे, मैं सीधा-भोला दकुभाई के हाथों मारा गया !"

ओतमचन्द को मन-ही-मन हँसी आ गयी। इस शैतान मुनीम को सीधा और भोला कौन कहेगा ? यह तो बकरी भूलकर गाय बाँध लाने-जैसा भोला है !

"ज़रा हिम्मत से काम लो, मुनीम जी ! इस उम्र में यों राँड-बेवा की तरह रोना शोभा देता है ?" ओतमचन्द ने कहा।

"आज तो मैं रांड-बेवा से भी गया-गुजरा हो गया। दकुभाई ने मुझे दर-दर का भिखारी बना दिया।"

"भगवान किसी को भिखारी न बनाये।" ओतमचन्द ने प्रार्थना के स्वर में कहा।

"भगवान भले ही न बनाये, मगर दकुभाई ने मुझे भिखारी बनाकर

भीख माँगने पर मजबूर कर दिया।" मुनीम अब भी रूआँसी आवाज़ में ही बोल रहा था : "आप तो डूबे ही, साथ में मुझ गरीब को भी ले डूबे !"

"कौन डूबा ?" ओतमचन्द ने चिन्ता भरे स्वर में पूछा ?" क्या दकुभाई ?"

"जी हाँ, पूरी तरह डूब गये।"

"कैसे ?"

"स्याह-सफेद करने में !"

"लेकिन मोलमीन से तो काफी कमाकर लाये थे......"

"वह मोलमीन ही तो गले का हार हो गया !" मुनीम ने बताया : "वहाँ जो घोटाला किया वह जाहिर हो गया......"

"घोटाला ?" ओतमचन्द आहत होकर बोला : "दकुभाई ने घोटाला किया ?"

"घोटाला नहीं किया तो क्या पसीना बहाकर इतना पैसा कमाया था ? मालिक के घर में डाका डालकर......"

"डाका डालकर ? यह तुम कह क्या रहे हो ?" ओतमचन्द ने डपटते हुए कहा। लेकिन उन्हें फौरन याद आ गया कि मेरी पेढ़ी में भी तुम दोनों लुटेरे डाका डालकर ही निकले थे और अब एक लुटेरा दूसरे लुटेरे की इस तरह निन्दा कर रहा है मानों कोयला कालिख पर हँसने लगे।

"लेकिन पाप का घड़ा फूटते कितनी देर लगती है !" निन्दा-रस घोलते हुए मुनीम ने आगे कहा : "सारी गड़बड़ उजागर हो गयी। मोलमीन वाले ने बम्बई की खुफिया पुलिस की मदद से......"

"हें, खुफिया पुलिस ?" ओतमचन्द ने घबराकर पूछा : "बम्बई की खुफिया पुलिस ?"

"सख्त बीमारी का इलाज भी सख्त ही करना पड़ता है।" मुनीम ने पूरा हाल बताते हुए कहा : "पुलिस सूँघती हुई पहुँच गयी ठेठ ईश्वरिया गाँव और जब्त कर लिया गया दकुभाई का घर-द्वार......"

ओतमचन्द के लिए ये समाचार बिलकुल अकल्पनीय थे; सहानुभूति पूर्वक पूछता रहा : "फिर क्या हुआ ? फिर क्या हुआ ?"

"फिर दकुभाई को पहना दिये कंगन-सोने के नहीं, लोहे के।"

यह शब्दालंकार ओतमचन्द की समझ में नहीं आया, इसलिए मुँह बाये मुनीम की ओर देखने लगा। मुनीम ने समझाया :

"आप समझे नहीं ? लोहे के कंगन यानी हथकड़ियाँ।"

"दकुभाई को हथकड़ी पड़ गयी ? बेचारे को जेल में डाल दिया ?"

"डाल तो दिया था, मगर छुड़ाना पड़ा।"

"किसने छुड़वाया ?"

"कपूर सेठ ने।" कहकर मुनीम ने आगे बताया : "दकुभाई की हैसियत और साख के क्या कहने ! जमानत कौन दे ? अन्त में कपूर सेठ बीच में पड़े, खुद जमानत की, तब कहीं जाकर दकुभाई की हथकड़ियाँ खुलीं।"

"अच्छा हुआ कि कपूर सेठ जामिन हुए और दकुभाई को छुड़ा लिया।"

"न छुड़ाते तो क्या करते बेचारे ? बालू के साथ अपनी बेटी की सगाई क्या की चाचा से भतीजे हो गये। शरमा-शरमी से भी समधी की इज्जत तो बचाना ही पड़ती है।"

एक के बाद एक लगातार कई आघातजनक समाचार सुनकर ओतमचन्द के मुँह से निकल पड़ा "अरेरे ! बेचारे दकुभाई बड़ी मुसीबत में पड़ गये !

"अरे सेठ साहब, उस गेहूँ के साथ मैं गरीब घुन जो पिस गया !" मुनीम ने शिकायत की : "दकुभाई के लिए आपको इतना दर्द है और इस गरीब मुनीम का कोई भी खयाल नहीं ?"

"तुम्हारी नौकरी छूट गयी, यह इस बुढ़ापे में बुरा हुआ।"

"नौकरी को कौन रोता है साहब ? उसका कोई रंज-गम नहीं। अफसोस इस बात का है कि सारी जिन्दगी चौपट हो गयी।" अब

जाकर मुनीम ने भेद की बात बतायी : "आपके दकुभाई मेरी सारी ज़मा-पूँजी डकार गये, रोना तो इस बात का है।"

"तुम्हारी जमा-पूंजी कैसे डकार गये ?" ओतमचन्द के बात समझ में नहीं आयी, इसलिए पूछा।

"बर्मा की कमाई खत्म हो गयी तो मुझ से पैसे उधार माँगे। इस गरीबदास के पास खाने के लिए न सही मगर जाने के लिए जो थोड़ा बहुत पैसा-टका था वह सब जोड़-बटोर कर दकुभाई के यहाँ जमा करवा दिया।" मुनीम ने पुनः रोनी आवाज़ का सहारा लेकर कहा : "मैंने सोचा था कि सेठ का बड़ा नाम और बड़ी साख है इसलिए सारी पूंजी मयव्याज के लौटा देंगे। यह क्या पता था कि बड़े आदमियों की पोल भी बड़ी होती है और जो जितने मोटे उतने ही खोटे भी होते हैं..."

"यह सब तुम्हें पैसा उधार देने के पहले सोचना चाहिए था।"

"मुझे क्या पता था कि पैसा देकर इस तरह रोना होगा ! मैंने तो दकुभाई को भला और ईमानदार समझकर आड़े समय उनकी मदद की थी। उस समय मालूम थोड़े ही था कि मोलमीन में बड़ा भारी घोटाला करके आये हैं और उसका नतीजा ईश्वरिया तक पीछा करेगा।"

"होगा; यह सब तो ऐसे ही चलता रहता है। आदमी के सब दिन एक जैसे नहीं जाते। कभी घी घना तो कभी नही मुट्ठी चना..."

"सेठ साहब, घी घना अच्छा और नहीं मुट्ठी चना बहुत बुरा होता है। असल में दकुभाई की नीयत ही खराब थी और मुझे इसका पता नहीं था। उनके मन में चोर शुरू से था। अपने तो तबाह हुए ही, मुझे भी इस बुढ़ापे में तबाही की भट्टी में झोंकते गये......"

ओतमचन्द विचार मग्न हो गया। यह तो उसने सपने में भी नहीं सोचा था कि दकुभाई के जीवन की सुई, सारा चक्कर घूमकर फिर अपने मूल स्थान पर आ जायेगी। कुछ देर सोचते रहने के बाद उसने दुःख प्रकट किया : "बेचारे दकुभाई की हालत तो साधु के घर सेंध लगने-जैसी हो गयी !"

"इस बात में कोई दम नहीं है सेठ साहब ! दकुभाई कैसा साधु था, यह आपसे अधिक मैं जानता हूँ।" मुनीम अब बेधड़क निन्दा पर उतर आया था : "बाप और बेटा, दोनों के लक्षण बिलकुल एक ही जैसे हैं........."

"बालू की बात कर रहे हो ?" ओतमचन्द ने पूछा।

"जी हाँ, वह बल्लू का बच्चा तो बाप का नाम और रोशन करेगा। कुल उजागर न करे तो कह देना। जीते रहे तो बता दूँगा आपको।"

ओतमचन्द ने जब इस निन्दा-पुराण में अधिक रुचि नहीं दिखायी तो मुनीम ने बात को एक नया ही मोड़ दिया :

"सेठ साहब, उस दिन आप ईश्वरिया पधारे थे और ओसारे में बैठे थे तो रुपए की थैली गायब हो गयी थी—याद है ?"

"याद क्यों न होगा ?" ओतमचन्द ने गम्भीरता से कहा : "मैं खुद ही थैली बगल में दबाकर चलता बना था, फिर याद क्यों न होगा ?"

जो मुनीम शुरू से अब तक रूआंसी आवाज में रोना रो रहा था वह पहली बार खिल-खिलाकर हंसा। बोला : "सेठ साहब, आप भी खूब मजाक करते हैं। आप पर झूठी तोहमत लगायी गयी थी, मगर आप हैं कि कह रहे हैं, मैं खुद ही बगल में दबाकर चलता बना था !"

"मै न चुराता तो चौकीदार मेरे पीछे लगे आते ? और अगर मैं नहीं ले गया तो थैली गयी कहाँ ?"

"कहाँ गयी वह मैं जानता हूँ।"

"तुम क्या जानते हो सिर ? थैली सीधी चली आयी मेरे घर; तुम्हें क्या पता ?"

"आप भी, सेठ जी, खूब ठण्डे पहर की गप हांक रहे हैं।" मुनीम ने कहा : "थैली का चोर दकुभाई के घर में बैठा था और नाहक आपके पीछे चौकीदारों को दौड़ा दिया।"

"दकुभाई के घर में चोर ? क्या कहते हो ?

"जी हाँ; घर-उजाड़, घर का ही चोर ?"

"कौन ?"

"खुद दकुभाई के साहब जादे-बालू ! लौंडा अभी धरती में से तो ऊगा नही है और करतब दिखाना शुरू भी कर दिया। पूत के पांव पालने में ही नजर आगये !"

"क्या कह रहे हो ?"

"सच ही कह रहा हूँ। मेरी बात का यकीन न आता हो तो ईश्वरिया के किसी भी आदमी से पूछ देखो। वहाँ का छोटे-से-छोटा बच्चा भी दकुभाई के इस उठाईगिरे पूत की शोहरत से वाकिफ़ मिलेगा।"

"लेकिन थैली उसी ने चुरायी, यह किसने कहा ?" ओतमचन्द ने पूछा।

"सारा गाँव कहता है। अजी साहब, वह तो अभी से 'बाप मरे पर दुगुने' के हिसाब से रुक्के लिख-लिखकर पैसा उधार लेता फिरता है। उसके करतब मैं आपसे क्या कहूँ !"

ओतमचन्द ने पूछा : "बाप मरे पर दुगुने के हिसाब से रुक्के लिख-कर जो पैसा उधार लेता है उसे करता क्या है ?"

"करने की आपने भली पूछी सेठ साहब ! हाथ में पैसा हो तो खरचने के हजार ठिकाने अपने आप निकल आते हैं। फिर बालू तो बत्तीस लक्षणों से युक्त महापुरुष है। राजपूत-ठाकरों के सभी शौक बनिये के इस बेटे में पैदा हो गये हैं......" इसके बाद मुनीम ने आवाज़ को इस तरह धीमा करके बड़े ही भेद भरे ढंग से कहा मानों बालू के किसी श्रेष्ठ सद्गुण का वर्णन कर रहा हो : "आपको तो क्या ही पता होगा, मगर एक बार गाँव की सब अहीरिनों ने मिलकर बालू की मूसलों से पूजा कर दी थी, फिर भी उसे अक्ल न आयी......"

"लेकिन मैं जो कह रहा हूँ कि ओसारे में से रुपयों की थैली मैं खुद उठा लाया था, तुम बालू को फिर भी नाहक बदनाम करते हो ?"

ओतमचन्द ने एक बार फिर चोरी का कलंक अपने सिर ओढ़ने की कोशिश की। लेकिन वह स्वयं ही आवश्यक गम्भीरता बनाये न रख सका, इसलिए मुनीम के साथ-साथ खुद भी ठठाकर हंस पड़ा।

"चौकीदार खाली हाथ लौट आये और उन्होंने पूरा जोर देकर कहा कि थैली घर से बाहर नहीं गयी है तो दकुभाई को बालू पर शक हुआ।" मुनीम ने थैली-प्रकरण पर प्रकाश डालते हुए कहा : "कपूर सेठ ने तिलक की रस्म पूरी कर मेंगणी का रास्ता पकड़ा और दकुभाई ने फौरन बालू की पिटाई शुरू कर दी। वो मार पड़ी है कि बेटाजी तीन दिन तक खटिया से उठ न सके ....."

ओतमचन्द के मन में आया कि कहदे, चौकीदारों के हाथ की अंधी मार खाकर मैं भी तीन दिन मेंगणी में अहीर के यहाँ खटिया पर पड़ा रहा। लेकिन जिस बात को उसने अपनी सहधर्मिणी लाडकोर तक को नहीं बताया था, प्रयत्नपूर्वक छिपाता रहा था, उसे इस छदाम के मुनीम को कैसे बता देता ? उस बारे में उसने चुप रहना ही उचित समझा।

३७

बन्धन-मुक्ति

"कहो मोटे, बम्बई की क्या खबर है?" कीला ने बड़े ही फक्कड़ाना अन्दाज में नरोत्तम से पूछा।

"बम्बई की तो बहुत बढ़िया खबर है। तुम अपनी सुनाओ।" नरोत्तम ने पलट कर कीला से सांकेतिक प्रश्न किया।

"मेरी भी बहुत बढ़िया खबर है।" कीला ने जवाब दिया।

"क्या है, जल्दी बताओ।"

"नहीं, पहले तू बम्बई के हाल-चाल बता। मैं अपनी बाद में बताऊंगा।"

"बम्बई में तो उथल-पुथल मची हुई है।" नरोत्तम ने कहा।

"कैसी उथल-पुथल?"

"तेजी के दौर की। पैसा तो जैसे पेड़ों से बरस रहा है और वह भी बेहिसाब! बम्बई में पैसा सस्ता हो गया, लेकिन आदमी महंगे हो गये हैं—रुई की गाठों जितने महँगे······"

"इसीलिए आजकल मंचेरशा दिखायी नहीं देते।" कीला ने बंगले में चारों ओर निगाहें घुमाकर कहा: "रुई के व्यापार में लखपति हो गये तो पुराने दोस्तों से रुख मिलाना भी छोड़······"

"मंचेरशा अपनी अगीआरी* गये हैं, लौटते ही होंगे।" नरोत्तम

---

* पारसियों का पूजा स्थान

ने कहा : "कीला भाई, बम्बई में इन दिनों जमीन और मकान में पैसे लगाने की ऐसी हवा चली है कि मैं भी मंचेरशा की ओर से एक माले‡ का सौदा करता आया हूँ।"

"मंचेरशा माले के मालिक बन गये तो क्या उनका भागीदार बिना माले का ही रह जायेगा ?" कीला ने पूछा और फिर हंसते-हंसते कहा : "तू भी बम्बई में अपना महल खड़ा कर ले।"

"नहीं भैया, हमारे लिए तो भला हमारा वाघणिया और भली हमारी झोंपड़ी।"

"तो इतनी बड़ी पेढ़ी के भागीदार प्रभुलाल सेठ की शान कैसे रहेगी ?"

कीला की इस चुटकी पर नरोत्तम हंस दिया। फिर तुरंत गम्भीरतापूर्वक बोला : "कीला भाई, बड़े आदमियों की हवेलियां देख कर हम अपनी झोंपड़ियां नहीं गिरा सकते और न गिराना उचित ही है। परन्तु मैंने भाई साहब को लिखा था कि अपना पुराना मकान कमोबेश पर वापस मिल सके तो ले लें। आज उनका पत्र मिला कि अपने पुराने मकान और उसके साथ-साथ घोड़ागाड़ी का सौदा भी तय हो गया है।"

"बहुत बढ़िया।" कीला ने खुश होकर कहा।

"अगले सप्ताह रुपये चुका दिये जायेंगे और मकान का कब्जा मिल जायेगा।"

"शाबाश !"

"और कब्जा मिलते ही तुरत उसमें रहने के लिए चले जायेंगे।"

"इसे कहते हैं कमाल।" कीला ने और भी खुश होकर कहा।

"इससे भी बड़ा कमाल तो घोड़ागाड़ी के बारे में हुआ, कीला भाई !" नरोत्तम ने बड़ी उमंग से बताया : "बटुक को जो घोड़ागाड़ी बहुत प्रिय थी वही गाड़ी और वही कोचवान वशराम वापस अपने घर

‡ चालनुमा कई मंजिला बड़ा मकान।

आगये । परसों भाईसाहब अपनी ही घोड़ागाड़ी में मेंगणी के ठाकुर से भेंट भी कर आये......"

"गाड़ी आगयी तो अब साथ-साथ लाड़ो (दुलहिन) भी आ जायेगी ।" कीला ने रहस्यपूर्ण स्वर में कहा ।

नरोत्तम को चुपचाप प्रश्न सूचक निगाहों से अपनी ओर ताकते देख कीला ने बताया : "परसों मनसुख भाई फिर कोठी मे आये थे । अक्षय तृतीया को उनकी छोटी भानजी की शादी है......"

"छोटी भानजी यानी जसी की ?" नरोत्तम ने पूछा ।

"नाम किसे मालूम ! हां, यह जरूर बताया कि चम्पा की छोटी बहिन की शादी है । और मुझे न्योता दे गये कि प्रभुलाल सेठ को साथ लेकर मेंगणी आओ......"

"अभी तक उस आदमी ने प्रभुलाल सेठ को पहचाना नहीं ?" नरोत्तम ने पूछा ।

"अबे, वह ऐसा बौड़म है कि सारी उम्र तुझे पहचान नहीं सकता ।" कीला ने कहा : "अब तुझे प्रभुलाल सेठ के रूप में उसके साथ मेंगणी जाना होगा ।"

"मेरा नाम बदलकर तुमने खासी उलझन पैदा कर दी ।"

"एक उलझन सुलझाने के लिए मुझे मजबूर होकर दूसरी उलझन पैदा करनी पड़ी । पांव में चुभा काँटा निकालने के लिये कांटे का ही उपयोग करना पड़ता है । तेरी उलझन को सुलझाने के लिए यह नयी उलझन काम आयेगी ।"

"लेकिन प्रभुलाल सेठ का यह स्वाँग कब तक करना होगा ?" नरोत्तम ने घबरा कर पूछा ।

"मेंगणी में दाखिल होने तक...... "

"और उसके बाद की फजीहत ?"

"हमारी नहीं, इन लोगों की होगी ।"

"लेकिन वह नाटक उजागर हो गया तो क्या करेंगे ?"

"सूत्रधार कीला सब सँभाल लेगा। नायक, तुम निश्चिन्त रहो···"

"मेरे तो यह कुछ समझ में नहीं आता। बड़ी घबराहट होती है।" नरोत्तम ने व्यग्र होकर कहा।

"अबे, घबराहट हो तेरे दुश्मनों को ! अब तमाशा देखना मनसुख भाई का।" कीला ने कहा : "जब प्रभुलाल सेठ के बारे में अपनी गलती का उन्हें पता चलेगा तब मजा देखने काबिल होगा।"

"तुम्हें तो ऐसी गम्भीर बातों में भी मजा ही सूझता है।"

अबे, मोटे जिन्दगी पूरी, अगर जीना आये तो एक मजा ही है।" कीला ने अपना जीवन-सूत्र समझाते हुए कहा : "जिसे मौज-मजे के साथ जीना न आया वह सारी जिन्दगी रोता ही रहता है !"

"तुम्हें मजा आयेगा, लेकिन मेरी छीछालेदर होगी, यह भी सोचा है ?"

"हुँह, बेकार डरता है !" कीला ने इत्मीनान के साथ कहा : "इस कीला के रहते तेरी छीछालेदर क्यों होगी ? मोटे, तू चुपचाप देखते रहना इस कीला की करामात······"

कीला के आत्मविश्वास के प्रति नरोत्तम कुछ देर तो ससम्मान मौन रहा, लेकिन आखिर कहे बिना रह न सका : "तुम कुछ भी कहो, परन्तु इस तरह नाटक करना मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता।"

"अबे, तो क्या नाटक करना मुझे अच्छा लगता है ? नहीं, बिलकुल नहीं। लेकिन किया क्या जाये ? दुनिया को सच्चाई की अपेक्षा नाटक देखने में ज्यादा आनन्द आता है; इसीलिए तो मुझे कामदार का वास्तविक रूप छोड़कर कंघीवाले का नाटक करना पड़ा था; और तुझसे नरोत्तम के बदले प्रभुलाल सेठ का नाटक करवाया।" कीला ने समझाते हुए कहा : "और तारीफ यह है कि लोगों को कामदार की अपेक्षा कंघीवाला ज्यादा प्रिय लगता था; उसी तरह मनसुखभाई और कपूर सेठ को भी नरोत्तम के बदले प्रभुलाल पसन्द आ गया। बल्कि उनके मनमें बस

गया, सो भी देखे-परखे बिना ही।" इतना कहकर उसने अपनी आदत के अनुसार सुभाषित सुनाना शुरू कर दिया : मोटे, यह तो दुनिया का रिवाज ही है······सच्चे रूप की अपेक्षा स्वांग ज्यादा पसन्द आता है··· असल की अपेक्षा नकल अधिक प्रिय लगता है······"

"लेकिन इस बिना नक्कारे की नौटंकी में मेरा स्वांग मसखरे (विदूषक)—जैसा हो जायेगा, यह भी सोचा है ?"

"मसखरे का नहीं, मियां-बीबी का स्वाँग होगा, तू देखता चल !" कीला भविष्यवाणी कर रहा हो इस तरह, नरोत्तम की पीठ ठोकते हुए कहा : "इस मियाँ के मेंगणी पहुँचने-भर की देर है। बीबी तो वहां बैठी है ही। और मियां-बीबी राजी तो क्या करेगा काजी ?"

"तुम तो ऐसे कह रहे हो, मानों भविष्यवाणी कर हो।"

"और वह भी जन्म कुण्डली देखे बिना।" कीला ने उत्साह भरे स्वर में कहा : "मेरे कहने में मीन-मेख हो जाय तो मूँछ मुड़ा लूँ ! मैं कौन ? जानता है मुझे ? कीला कंघीवाला।"

"हाँ-हाँ, जानते हैं, जानते हैं; सिर से पाँव तक पहचानते हैं।" मंचेरशा ने कमरे में हँसते हुए प्रवेश किया और कीला को उद्देश्य कर बोले : "अच्छा हुआ कि तुझसे यहीं भेंट हो गयी। मैं जैसे ही अगीआरी से बाहर आया मुन्सिफ साहब की घोड़ागाड़ी मिल गयी। मुझे देखकर साहब ने गाड़ी रोक दी और पूछने लगे कि जो काम सौंपा था उसका क्या हुआ ? कीला भाई साहब ने क्या फरमाया ?"

"कीला भाई साहब ने ?" कीला ने 'साहब' शब्द पर जोर देकर आश्चर्य प्रकट किया।

"भई, तू ए. जी. जी. साहब का असिस्टेण्ट हो गया है इसलिए मुन्सिफ तुझे साहब तो कहेगा ही।"

"साहब क्या हुए मुसीबत हो गयी !"

"मैंने मुन्सिफ से यह कह कर पीछा छुड़ाया कि कीला आजकल में जवाब देने वाला है। अब बता तेरा क्या जवाब है ?"

"मैं भी कभी से यही पूछ रहा हूँ, लेकिन कीला भाई इधर-उधर की उलटी-सीधी बातें किये जाते हैं, मतलब की बात नहीं बताते।" नरोत्तम ने कहा।

"आज मैं सीधी और साफ बात कहने के ही लिए आया हूँ।" कीला ने बडे ही इत्मीनान से कहा: "मैने शादी करने का फैसला कर लिया......"

"शाबाश! शाबाश!! जीते रहो बेटा!" मंचेरशा चिल्ला उठे और फिर उन्होंने सोत्साह पूछा: "मुन्सिफ की लड़की से......"

"नहीं!" कीला ने जवाब दिया।

"नगर सेठ की लड़की से?"

कीला ने फिर सिर हिलाकर इनकार कर दिया।

"तो फिर किससे?" असमंजस में पड़े मंचेरशा ने पूछा:

"माल विभाग के बड़े बाबू की लड़की से?"

"नहीं, उसके साथ भी नहीं।"

तीसरे प्रश्न का भी नकारात्मक उत्तर पाकर मंचेरशा और नरोत्तम, दोनों ही गहरे सोच-विचार में पड़ गये। थोड़ी देर दोनों, मुँह से कुछ पूछने के बदले, कुतूहल भरी दृष्टि से कीला की ओर देखते रहे। उनकी मूक आँखें ही जैसे चिल्ला चिल्लाकर पूछ रही थीं: कौन? कौन? कौन? कौन?

उनके इस मौन कुतूहल का निवारण करने के ही लिए कीला ने कहा: "तुम्हें अपने जूठा काका की तो याद होगी ही? हम बच्चे थे तब वे अपने खेत पर हम लोगों को होरा खिलाने ले जाया करते थे।"

"बेरिस्टर चाचा के दफ्तर की सन्दूकड़ी लेकर चला करते थे, वही न?"

"हाँ, वही।"

"क्या अभी जिन्दा हैं?"

"हाँ, लेकिन मरने से भी बदतर हालत में ।"

"करते क्या है ?"

"यहाँ उपासरे में नौकरी करते हैं—झाड़ू लगाना, साधु-साध्वियों की टहल करना और मकान की देखभाल करना ।"

चतुर नरोत्तम इस विवरण से बहुत कुछ समझ गया । उसे वह दिन याद आ गया । जब वह कीला भाई के पास गया था और बूढ़ा कोई गुप्त बात करने के लिए आया था और स्वयं उसे बाहर बैठना पड़ा था ।

मंचेरशा इस बूढ़े का पूरा हाल जानने को इतने उत्कंठित हुए कि मुँह आधा खुल गया, तभी उन्हें कीला के ये शब्द सुनायी दिये :

"इन्हीं जूठा काका की लड़की मोंघी से मैं कल शादी करने जा रहा हूँ ।"

नरोत्तम को तो सुनकर अधिक आश्चर्य नहीं हुआ, लेकिन मंचेरशा मारे आश्चर्य के अवाक् कीला की ओर देखते रह गये । वह केवल इतना समझ पाये कि कीला के इस फैसले के पीछे जरूर कोई रहस्य है ।

सबसे अधिक आश्चर्य की बात तो यह थी कि अपने एकाकी जीवन की एकाकी मजिल से अब नयी पगडण्डी की ओर मुड़ रहा कीला पूर्णतः स्वस्थ चित्त था और इस समाचार को सुननेवाले मचेरशा मन-ही-मन बेचैनी का अनुभव कर रहे थे ।

कीला शायद अपने जिगरी दोस्त की परेशानी को ताड़ गया था, इसलिए उसने क्रमशः सारा हाल बता दिया । मोंघी की विषम स्थिति के बारे में, जूठा काका की परेशानी के बारे में और एक निरपराध भोली लड़की को कलंकित होने से बचाने के लिए स्वयं जो निर्णय किया उसके औचित्य के बारे में उसने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से उन लोगों को बताया । सुनकर मंचेरशा का उद्वेग ही कम न हुआ, वे सन्तुष्ट और प्रसन्न भी हुए ।

नरोत्तम के मन में आजतक अपने इस साथी के प्रति असाधारण सम्मान का भाव था। आजतक उसने इसे विभिन्न स्वरूपों में देखा था। इसके जीवन के अनेक पहलुओं से उसका परिचय हुआ था। लेकिन आज वह इसे जिस रूप में देख रहा था, इसके जिस पहलू से परिचित हो रहा था, वह अभूत पूर्व था। ऊपर से रूखा, लापरवाह, मनमौजी और ऊट-पटाँग लगने वाला यह आदमी अन्दर से इतना कोमल, गम्भीर और दृढ़ भी हो सकता है, इसका नरोत्तम को सपने में भी खयाल नहीं था। कौन जानता था कि कटुभाषी और अक्खड़ कीला का हृदय-स्रोत इतना मधुर, निर्मल और शीतल है? किसे पता था कि ऊपर से इतना कठोर दिखायी देने वाले हृदय में मानव प्रेम का मीठा रस छलक रहा है? आज कीला के जीवन के इस नये पहलू से परिचित होकर उसके प्रति नरोत्तम का सम्मान भाव पूज्य भाव में परिवर्तित हो गया। और वह पूज्य भाव इतना गहरा, हार्दिक और आत्मिक था कि नरोत्तम उसे वाणी से व्यक्त न कर सका; इस पूज्य व्यक्ति को केवल मन-ही-मन प्रणाम करता रहा।

मंचेरशा की मनःस्थिति भी कुछ इसी तरह की हो रही थी। वह सीधा-भला पारसी अन्तर के उल्लास से गद्‌गद्‌ हो गया। जो बात नरोत्तम शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं कर सका था अन्त में उसे मंचेरशा ने वाणी प्रदान की। कीला को बड़े प्रेम से अपनी बाँहों में बाँधते हुए उन्होंने कहा:

"कीला, दोस्त, तू तो देवता आदमी है, देवता······"

नरोत्तम ने इस अभिप्राय का मौन समर्थन किया और कीला ने सकुचा कर सिर नीचा कर लिया।

× × × ×

दूसरे दिन स्टेशन की सीढ़ियों के आगे दो घोड़ोंवाली एक चमचमाती बग्घी आकर रुकी। बग्घी को रोकने से पहले रास्ते में से भिखारियों को हटाने के लिए कोचवान ने पाँव से दबाकर जो घण्टी बजायी तो टन-टन की आवाज़ को सुनकर प्लैटफार्म की बेंच पर ऊंघता हुआ

एजेन्सी पुलिस का सिपाही एकदम हड़बड़ा कर जाग पड़ा। अपनी वर्दी को ठीक-ठाक कर वह खड़ा हुआ और देखा तो बग्घी के कोचबक्स पर सरकारी वर्दी में लैस कोचवान बैठा था। बेचारे पुलिसमैन की घबराहट और बढ़ गयी। अभी किसी ट्रेन के आने-जाने का समय तो है नहीं, फिर कोठी से यह कौन अफसर आया और क्यों आया—वह पुलिसमैन बेचारा यह सोच ही रहा था कि बग्घी का दरवाजा खुला और अन्दर से आपाद-मस्तक अफसरी लिबास में सज्ज कीला नीचे उतरा।

स्टेशन की सीढ़ियां चढ़कर वह सीधा प्लैटफार्म पर पहुँचा और खिलौनों के ठेले पर सोये हुए दखलशा को झकझोरने लगा : "उठ सांईं, उठ ! यों दिनभर लम्बी ताने पड़ा रहेगा तो ठेले का दिवाला खिसक जायेगा।"

फकीर कुनमुनाया और करवट बदल कर फिर खर्राटे भरने लगा तो कीला ने कहा : "यह लो चिलम, और दम लगाकर ताज़ा हो जाओ; अब सोने का वक्त नहीं है।"

जब दखलशा किसी तरह जागा तो कीला ने उससे पूछा : "वह पागल भगला कहां है ?"

अभी फकीर को बोलने लायक होश नहीं आया था, इसलिए उसने अँगुली से दूर की एक बेंच पर चादर तानकर सोये हुए आदमी की ओर इशारा कर दिया। कीला ने उसके पास जाकर चादर खींच ली और बोला :

"अबे ओ कुम्भकर्ण ! जल्दी से उठ खड़ा हो, नहीं तो दो धौल जमाऊँगा······"

अपने पुराने साथियों को जगाकर कीला ने उन्हें हुक्म दिया : "चलो, बैठो गाड़ी में········"

कहाँ ले जाता है बाबा ?" दखलशा ने पूछा। बेचारे फकीर को हमेशा यह डर सताया करता था कि कहीं पुलिस का सिपाही न पकड़ ले जाये ·····"

"थाने नहीं ले जा रहा," कीला ने कहा : "अपनी शादी में ले जा रहा हूँ।"

दखलशा ने घबरा कर पूछा : "अपनी शादी में ?"

"अपनी नहीं तो क्या तेरी ?" कीला ने कहा और अपने दोनों साथियों को किसी तरह बग्घी में बिठाकर आप उन दोनों के बीच में बैठ गया; फिर कोचवान से बोला : "चलो मंचेरशा के बंगले।"

रास्ते में दखलशा फकीर पूछे बिना न रह सका ; "कीला भाई, ये अपनी शादी बनाने का खयाल तेरेकू किधर से आ गया ?"

"सब योगायोग की बात है, सांई !" कहकर कीला चुप हो गया।

मंचेरशा के बंगले पर कीला की शादी के समारोह में नगर की महाजन बिरादरी के साथ कीला के आमंत्रितों में उसके इन दो पुराने साथियों के अतिरिक्त केवल पोलिटिकल एजेण्ट और उनकी पत्नी ही थीं। मेम साहब कीला के अतीत जीवन का पूरा हाल जान चुकी थी और उसके जीवन में एक कलाकार की तरह दिलचस्पी लेने लगी थी; इसलिए रेलवे प्लैटफार्म के कीला के इन दो विचित्र साथियों को वे बड़ी रुचि से देख रही थीं।

बिरादरी के मुखियाओं को शिवजी की यह बारात देखकर बड़ा अचम्भा हो रहा था। एक ओर मंचेरशा और प्रभुलाल सेठ, दूसरी ओर वृद्ध जूठा काका और उनके रिश्तेदार, तीसरी ओर फकीर दखलशा और भगला पागल, चौथी ओर गोरे लाट साहब और उनकी पत्नी। और इन सब के बीच भाग-दौड़ करते कीला के विलक्षण व्यक्तित्व को देखकर महाजन पंच कनफुसकियाँ करते हुए अन्दर-ही-अन्दर निन्दा का मजा ले रहे थे; लेकिन 'सत्ता के आगे सयानापन बेकार' नियम का अनुसरण करते हुए और सत्ताधारी सरिश्तेदार के रोब-दाब के मारे खुलकर कुछ कहने की किसी की हिम्मत नहीं हो पा रही थी।

लग्नविधि आरम्भ होने से पहले मंचेरशा नरोत्तम को साथ लेकर कीला अन्दर के कमरे में चला गया और उसने चुपचाप किवाड़े बन्द कर लिये।

नरोत्तम कुतूहलपूर्वक देखता रहा कि अब कीलाभाई क्या करता है। मंचेरशा भी समझ न पाये कि कीला दरवाजा बन्द करके क्या सलाह-मशविरा करना चाहता है!

कीला का चेहरा गम्भीर था। उसने जब धीरे-धीरे बालाबन्दी अँगरखे की तनियाँ एक-एक कर खोलना शुरू किया तो नरोत्तम का कुतूहल और बढ़ गया।

कीला ने बड़ी आसानी और सहज भाव से अँगरखे को अपने बदन पर से उतार डाला।

उसकी नंगी पुष्ट गरदन में रुद्राक्ष के बड़े-बड़े मनकों वाली एक माला शोभा पा रही थी।

"देखो मंचेरशा! सुनरे मोटे!" कीला ने अपने दोनों साथियों को सम्बोधित कर कहा: "बदरी-केदार के स्वामी जी ने मुझे साधु-जीवन की जो दीक्षा दी थी यह माला उसीका प्रतीक है। भेख तो मैं कभी का छोड़ चुका, साधु भी अरसे से न रहा, मठ से भाग कर फिर संसार में आ गया, लेकिन साधु-जीवन का मोह पूरी तरह छूट नहीं पा रहा था, इसलिए अंगरखे के नीचे इस माला को पहने रहा····· "

मंचेरशा और नरोत्तम माला के मनकों को टुकुर-टुकुर देखते रहे।

"आज मैं सही अर्थों में संसारी यानी गृहस्थ बन रहा हूँ, इसलिए अब इस माला को······"

नरोत्तम ने सोचा कि अब कीला भाई इस माला को उतार देंगे, लेकिन तभी उसने 'अब इस माला को तोड़ फेंकता हूँ' कहते हुए हाथ के एक झटके से उसे तोड़ डाला।

मंचेरशा, 'अरे, अरे, कीला! क्या करता है', कहते ही रह गये! और माला के मनके जमीन पर बिखर गये।

"यह माला मेरी छाती पर सीसे की तरह जमी बैठी थी।" कीला ने उन्हें बताया।

"एक बार जब सांसारिक जीवन जहर हो गया था, उससे मन उचाट हो गया था तो मैंने इस माला को अपने गले में पहना था।

लेकिन साधुओं के जीवन को अपनी आँखों से और बहुत करीब से देखने के बाद वह जिन्दगी मुझे साँसारिक जीवन से भी अधिक गन्दी और सड़ी हुई लगी। साधुओं से तो गृहस्थों की ही जिन्दगी अधिक उज्ज्वल और पवित्र होती है। साधु बनकर काया का कल्याण करने और परलोक सुधारने का भूत मुझपर सवार हुआ था। अब लगता है कि संसार में रहकर ही शरीर और आत्मा का कल्याण हो सकता है, साधु बन कर नहीं। आज साधु-जीवन के बन्धन से हमेशा के लिए मुक्त हो रहा हूँ और तुम दोनों के समक्ष, तुम्हारी साक्षी में गरदन में पड़ी इस बेड़ी को तोड़ रहा हूँ।"

दरवाज़े पर खट-खट की आवाज हुई। पंडितजी की आवाज़ सुनायी दी: "जजमान, जल्दी तैयार होकर बाहर आओ! मुहूर्त निकल जायेगा......"

और कीला ने फुर्ती से अँगरखा पहन कर जल्दी-जल्दी तनियाँ बाँधना शुरू किया।

३८

बाप का बैरी

दूसरे दिन सारे शहर में तोप के धमाके जैसा यह समाचार हवा की तरह फैल गया :

"कीला कंघीवाले की शादी हो गयी !"

टीका-टिप्पणियाँ तो खैर होना ही थीं, सो हुई। विवाह के समय उपस्थित महाजन-पंच के मुखियाओं ने ही कुत्सा-निंदा शास्त्र की मल्लिनाथी टीका आरम्भ कर दी :

"मानो चाहे न मानो, मगर दाल में कुछ काला है जरूर......"

"उसके बिना यों चटमंगनी, पट ब्याह हो सकता था भला ?"

कीला के कुछ हितैषियों ने और भी उग्र प्रहार किये :

"आप इसे शादी कहते हैं ? अजी, यह तो कसबी घर में डालना हुई !"

"ठीक कह रहे हैं आप। ऐसा शादी-ब्याह नीच जात में ही होता देखा गया है। जूठा भाई की मौघी के साथ कीला ने जिस तरह कुल्हड़ में गुड़ फोड़ा उसे शादी नहीं, राक्षस-विवाह ही कहना होगा।"

जो जूठा काका को जानते थे और जिन्हें वास्तविक स्थिति की भनक पड़ चुकी थी वे मौंघी की शारीरिक स्थिति के बारे में इशारे करने लगे :

"मानो या न मानो पर इसमें कोई गुठली जरूर फंसी हुई है......"

"अरे भाई, गुठली भी फंस जाती है ! लड़की अभी बच्ची और नासमझ ही तो है। भूल से पाँव ऊंचा-नीचा पड़ गया होगा......"

"और कीला को तो सारा शहर जानता है—कम्बख्त को लाज शर्म तो कुछ है नहीं; न ऊंच देखता है न नीच......"

"घर-घर घूमकर कंघी बेचता था तभी से लोगों को शक था कि इसका चाल-चलन अच्छा नहीं......"

"शक ठीक ही था, सामने आ गया। जूठा काका की भोली-भाली लड़की के साथ मुँह काला किया......"

"और जब इल्लत गले पड़ गयी तो मजबूरी में शादी कर लीपा-पोती कर दी......"

इस तरह लोगों ने दूसरे का कलंक कीला के माथे मढ़ दिया।

"गोरे साहब का सरिश्तेदार है तो क्या हुआ, आखिर तो ठेले पर खिलौनों की फेरी करने वाला ही है न, या और कोई ? आदमी की असलियत जाहिर हुए बिना रहती है कभी ?"

"घनघोर कलियुग आ गया है भाई ! धरती पर ऐसे पाप होने लगे तो बताओ, पानी कहाँ से बरसे ?"

धीरे-धीरे कीला के 'कुकर्म' को प्रकृति के साथ भी जोड़ दिया गया।

"गजब कर दिया कीला ने ! काम तो ऐसा किया कि सुनने वाले के कान के कीड़े झड़ जायें !"

"मंचेरशा के बंगले के दरवाजे बन्द कर चुपचाप शादी करली। लेकिन पाप कहीं छिपा रहता है ? पाप तो सिर पर चढ़कर बोलता है और कीला का पाप तो पीपल पर चढ़कर बोल रहा है !"

लेकिन ये सब वाक्प्रहार कीला की अनुपस्थिति में ही होते थे। उसकी उपस्थिति में तो लोग प्रशंसा के पुष्प ही बरसाते थे। जो ज्यादा सयाने थे वे तो जाकर कीला को बधाई भी दे आये ! और जो व्यवहार कुशल थे वे भेंट-सौगात भी लेते गये......

कीला के ऐसे भेंटकर्ताओं में एक, देवलिया के राजा सर अजीतसिंह जी भी थे। एक दिन कीला मामूल से कुछ देर शाम को कोठी पर पहुँचा तो उसने दीवान खाने में साफा, अचकन और चूड़ीदार पायजामा

पहने एक व्यक्ति को अपनी प्रतीक्षा में बैठा देखा। इतनी रात गये कहाँ के राजा साहब मिलने आये हैं, यह सोचता हुआ कीला जब करीब पहुँचा तो दो-चार कदम के फासले से आगन्तुक को पहचान कर पुकार उठा :

"ओहो अजूभा !—अरे, आप हैं राजा साहब अजीतसिंहजी बहादुर !"

"मुझे राजा साहब और सिंहजी बहादुर कह कर शर्मिंदा क्यों करते हो कीला भाई !" राजा साहब ने उठकर उसे गले लगाते हुए कहा : "मैं तो वही बचपन का साथी अजूभा हूँ।"

"बचपन की बात बचपन के साथ गयी। अब तो आप सर अजीत-सिंहजी बहादुर के० सी० आई० ई० हैं।" कीला ने मज़ाक में कहा : "आपके नाम के पीछे तो अंगरेज़ सरकार ने पूरी ए-बी-सी-डी ही जोत दी।"

"अरे भाई, ये खिताब तो गले में चक्की के पाट की तरह जानलेवा हो गये हैं।" राजा साहब ने सच्चे मन से अपनी आन्तरिक व्यथा कह सुनायी।

अजीतसिंह के इस एक ही वाक्य से कीला इनके आगमन का वास्तविक अभिप्राय समझ गया। कोठी के दफ्तर में इन राजा साहब से सम्बन्धित जो अत्यन्त गुप्त फाइल कीला ने देखी थी और जो गुप्त कागजात उसने पढ़े थे, उससे वह जान चुका था कि अजूभा बेचारा खासी मुसीबत में फंस गया है। लेकिन उसने यह नहीं सोचा था कि उस मुसीबत से छुटकारा पाने के लिए राजा साहब इतनी जल्दी अपने बालबन्धु की शरण में दौड़े आयेंगे !

"हम बचपन के दोस्त हैं।" अजीतसिंह ने धीरे-धीरे निकटता बढ़ाना शुरू की : "मेरे पिताजी और आपके पिताजी में तो घर जैसा रिश्ता………"

"सच फरमा रहे हैं, बिलकुल सच !" कीला ने हाँ-में-हाँ मिलायी।

वैसे उसके मन में तो आया कि कहदे, उस रिश्ते के ही कारण तुम्हारे बाप ने बैरिस्टर साहब को जहर देकर मार डाला और हमारा घर-द्वार जब्त कर लिया था। लेकिन कीला चुप रह गया।

"आपने तो हद कर दी, कीला भाई !" अजूभा ने शिकायत की : "चुप-चाप शादी करली और बचपन के इस साथी को याद भी न किया !"

कीला प्रश्न सूचक दृष्टि से बचपन के इस साथी की ओर देखने लगा।

"आप भूल गये तो क्या हुआ, बड़े आदमी है। यह नाचीज़ आपको थोड़े ही भूल सकता है।" इतना कहकर राजा अजीतसिंह ने रेशम के कपड़े में लिपटी हुई चांदी की एक तश्तरी निकाली और बोले : "इस शुभ अवसर पर बचपन के साथी की ओर से यह विनम्र भेंट स्वीकार कीजिये।"

अजीतसिंह ने अपने आगमन के वास्तविक प्रयोजन को ढांकने के लिए 'शुभ अवसर' की जिस चतुराई से ओट ली, उससे कीला को मज़ा आ गया। राजा साहब को बुरा न लगे और वे अपना अपमान न समझ बैठें इस तरह कीला ने अत्यन्त मधुर और विनम्र शब्दों में यह कहते हुए उपहार लौटा दिया :

"एक सरकारी कर्मचारी की मजबूरी तो आप जानते ही हैं। इच्छा रहते हुए भी मैं इस तरह की कोई चीज़ ले नहीं सकता। खिलौनों की फेरी करने वाला होता तो खुद आपकी सेवा में उपस्थित होकर और ज़िद करके उपहार माँगता। मगर अब......"

"हमारी दोस्ती तो अब भी ....."

"बरकरार है और रहेगी। लेकिन मैं सरकारी नौकर हूँ, इसलिए हाथ बंध गये हैं। इस तरह की कोई चीज़ लेने से पहले मुझे सोचना पड़ता है........"

"लेकिन मैं तो पुराने रिश्ते के ख़याल से......"

"आप दुरुस्त फरमाते हैं......"

"और अपनी खुशी से और खुशी के मौके पर देने के लिए……"

"यह भी दुरुस्त है……"

"फिर एतराज़ किस बात का ?"

"जी, एतराज तो कुछ भी नहीं। मगर हमारे देश में सरकारी अफसर यों ही सन्देह की दृष्टि से देखे जाते हैं; ऐसी बातों से उनके प्रति सन्देह और बढ़ता है………" कीला ने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा : "सरकारी अफसरी तलवार की धार पर चलने की तरह मुश्किल काम है। और अधिकार का नशा अफीम से भी गहरा होता है, इसे तो आप भी जानते हैं। आदमी कितना ही सावधान क्यों न रहे, अधिकार का नशा चढ़ते देर नहीं लगती।"

"लेकिन यह तो पारस्परिक प्रेम और नाता निभाहने की बात है। हंसी-खुशी के मौके पर उमंग से देने और लेने की सनातन प्रथा चली आती है। ऐसे समय एक से लेकर लाख रुपए तक दिया जाता है और सामने वाला लेता है, लेता आया है।"

"आप का कहना सच्च है, सौ फीसदी सच !" कीला ने दृढ़ता से कहा : "लेकिन एजेन्सी दफ्तर की कुर्सी पर बैठने के बाद मैं किसी से किसी भी निमित्त कुछ भी स्वीकार नहीं कर सकता।

राजा साहब ने बार-बार आग्रह किया, तरह-तरह की दलीलें दीं, कसमें खायीं—गर्ज यह कि सारे प्रयत्न कर देखे, लेकिन जब कीला टस-से-मस न हुआ, अपने निर्णय पर अन्त तक अटल रहा तो उन्होंने आग्रह करना छोड़ दिया।

और क्या समाचार हैं ?" कीला ने केवल औपचारिकता निभाने के लिए पूछा : "कुशल-मगल तो है न ?"

"हाँ, कुशल-मगल ही है।" कहकर राजा साहब चुप हो गये और थोड़ी देर बाद रुकते-रुकते बोले : "लेकिन……परन्तु……"

"क्या चिन्ता जैसी कोई बात है ? कोई परेशानी ? कोई झंझट ? हो तो बताइए……"

"परेशानी तो ऐसी है कीला भाई कि अब आप से क्या कहूँ ?"

"कहने की जरूरत भी नहीं। आप पर लगाये गये आरोपों को मैंने पढ़ा है।" कीला ने मैत्री पूर्वक कहा : "आरोप बहुत गम्भीर हैं, राजा साहब !"

"एक छोटी-सी भूल हो गयी, यह सब उसी का नतीजा है ! अदावती भाईबन्द इस बात को ले उड़े। जागीर और हिस्सा-बाँट के झगड़ों में उसे बहाना बनाकर साहब बहादुर के कान भर दिये।" अजीतसिंह ने कहा : "आपने जो फाइल देखी है वे सब कागज-पत्तर मेरे खार खाये हुए रिश्तेदारों के ही लिखवाये हुए हैं।"

"लेकिन आरोप इतने संगीन हैं कि साबित हो जाने पर आप की गादी छिन सकती है ! तब देवलिया पर रिजेन्सी कायम कर दी जायेगी और हो सकता है कि आपको मांडले की जेल मे बन्द कर दिया जाये।" यहाँ तक कि काला पानी ....."

"सब जानता हूँ, और इसीलिए तो तुम्हारे पास आया हूँ।" राजा साहब ने सिर नीचा करके कहा : "काले पानी की सजा की बदनामी मैं सह न सकूंगा, अफीम खाकर आत्म-हत्या कर लूंगा।"

"पागलपन की बातें मत कीजिये।"

"और क्या कहूँ ? घर के ही लोग बैरी हो गये तो दूसरों को क्या दोष दूँ ?" राजा साहब ने रोनी आवाज में कहा : "कीलाभाई, अपने इस बचपन के साथी को मारना या जिलाना अब आपके हाथ में है..."

"भगवान के हाथ में है। ऊपर वाले के सिवा न तो कोई हमें जिला सकता है और न कोई मार ही सकता है। आप भगवान पर भरोसा रखिये।"

"कोशिश करता हूँ पर रख नहीं पाता। चारों ओर से घिर गया हूँ। आप ही छुड़ायें तो छूट सकता हूँ......"

"मैं ? मैं तो एक मामूली आदमी......"

"लेकिन साहब बहादुर के सरिश्तेदार।" अजीतसिंह ने आजिजी भरे स्वर में कहा : "आप साहब से सिफारिश करदें और साहब के दिल में दया आ जाये तो मेरी बिगड़ी हुई जिन्दगी सुधर सकती है..."

कीला चुप रहा तो अजीतसिंह ने आगे कहा : "कीळाभाई, मेरा इतना काम कर दीजिये। आपके हाथ की बात है······जिन्दगी-भर यह एहसान न भूलूँगा।"

"ये सब बड़े सरकारी मामले हैं, राजा साहब !" कीला ने कहा : "इनमें कुछ कर पाना मेरे बस का नहीं।"

"आपके एक वाक्य से मेरी सारी मुसीबत दूर हो सकती है। आप साहब बहादुर को समझा दीजिये, मेरी नैया किनारे लग जायेगी।"

"अच्छा, सोच देखूँगा।" कीला ने आश्वासन देकर थोड़ी देर बाद अजीतसिंह को विदा किया।

और सच ही, कीला ने इस नाजुक मामले पर काफी विचार किया। अजीतसिंह के कई रूप सामने आये बचपन का लँगोटिया दोस्त अजूभा और पिता को जहर देकर मारने तथा परिवार को तबाह करने वाले राजा का बेटा अजीतसिंह ! वह दोनों में से किस आदमी का रिश्ता माने बचपन के मित्र का या बाप के बैरी का ?

कीला के सामने एक समस्या और उठ खड़ी हुई। वह अधिकार के जिस पद पर था उसका उपयोग ऐसे कामों में करना कहाँ तक उचित होगा ? अजीतसिंह को बचाने में किसी और के साथ अन्याय तो नही हो जायेगा ?

सारी रात इस मनोमन्थन में गुजारने के बाद कीला ने सवेरा होते ही सबसे पहले अजीतसिंह वाली उस गुप्त फाइल को एक बार फिर पूरा-पूरा पढ़ डाला। जब उसे पक्का विश्वास हो गया कि अजीतसिंह को बचाने में किसी के साथ अन्याय नही होता तो उसने ए. जी. जी. से निवेदन किया ;

"न्याय का सिद्धान्त भंग न होता हो तो कृपया राजा साहब पर दया कीजिये।"

गोरा साहब थोड़ी देर तो इस स्वाभिमानी सरिश्तेदार की ओर देखता ही रह गया। फिर पूछा .

"दया ? देवलिया के राजा पर दया करने को कह रहे हो ?"

"जी हाँ।"

"हेमन्तराय कामदार का लड़का खुद ही देवलिया के राजा पर दया करने को कह रहा है ?"

"जी, साहब !"

"बैरिस्टर साहब को जिसने ज़हर दिया उसके लड़के को बचाने की बात तुम कह रहे हो ?"

"बाप का बैर बाप के साथ गया। पुरानी दुश्मनी को अब याद करने से क्या फायदा ?" कीला ने कहा : "पिताजी उदार हृदय व्यक्ति थे। उन्हें किसी से बैर नहीं था। वे सबके प्रति दयालु और क्षमाशील थे। अजीतसिंह पर दया की गयी तो पिताजी की आत्मा को, जहाँ भी वह होगी, प्रसन्नता और सन्तोष होगा।"

गोरे साहब ने कीला की इस प्रेम वाणी को सुना और उन्हें विश्वास हो गया कि स्वर्गीय बैरिस्टर के सभी सद्गुण उनके इस पुत्र को प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं।

३६

पश्चात्ताप के आँसू

उस दिन बड़े सवेरे, वाघणिया में 'विलायती खपड़ों वाली हवेली' के नाम से प्रख्यात इमारत के दरवाजे पर एक घोड़ा गाड़ी खड़ी थी।

कोचबक्स पर बैठा कोचवान मन्द, मधुर स्वर में प्रभाती गा रहा था :

जागिये रघुनाथ कुँवर
पंछी बन बोले······

गाड़ीवान की गोद में, लगाम थामकर बैठा हुआ एक बालक बार-बार पूछ रहा था :

"वशराम काका, गाड़ी जल्दी हाँको न ! देर हो गयी तो खेत में से मोर उड़ जायेगा।"

"माजी के आये बिना गाड़ी कैसे हँकाई जा सकती है, बटुक भैया ?" गाड़ीवान ने बालक को समझा दिया और फिर प्रभाती गाने लगा। अन्त में बालक उकताकर घर की ओर मुह करके पुकारने लगा : "अम्मां, ओ अम्मां ! चलो न जल्दी ! पेड़ पर से रामचिरैया उड़ जायेगी······"

"आयी बेटा बटुक, अभी आयी। थोड़ी धीरज रख।" घर के अन्दर से गृहिणी ने पुत्र को स्नेह भरा उत्तर दिया और फिर पति से बहस करने लगी।

"ऐसा भी कहीं अच्छा लगता है ? मेरे दकुभाई के लड़के की शादी और तुम्हीं शरीक न हो तो कितना बुरा लगेगा ?"

"लेकिन यह एकाएक काम जो निकल आया ! आदमी चिट्ठी दे गया इसलिए मुझे आज गाँव माल खरीदने के लिए जाना ही होगा।"

बड़े शौक से बनवायी हुई जिस हवेली को एक बार बेच देना पड़ा था, उसे खरीदकर फिर से उसमें रहने वाले पति-पत्नी मुँह अंधेरे आपस में बातें कर रहे थे।

"व्यापार तो हर-हमेश करना ही है !" लाडकोर ने कहा : "शादी-ब्याह का मौका कौन रोज-रोज आता है......"

"मैं ऐन शादी के दिन पहुँच जाऊँगा।" ओतमचन्द ने विश्वास दिलाया।

"ऐन वक्त पर पहुँचना अच्छा लगेगा ? मेरे दकुभाई को कितना बुरा लगेगा ?"

"तुम और बटुक पहले जा ही रहे हो, इसलिए ज्यादा बुरा नहीं लगेगा। मैं भी शादी के दिन घोड़ी से पहुँच जाऊँगा।"

गाड़ी में बैठे बटुक ने बाँसुरी बजाते-बजाते फिर हाँक लगायी :

"अम्मा, जल्दी आओ न ! अब तो रामचिरैया दाने-पानी के लिए उड़ भी गयी होगी।"

सुनकर ओतमचन्द ने पत्नी से कहा : "अब ज्यादा देर मत करो। बटुक बेचारा उकता गया है।"

"लेकिन तुम शादी के दिन सचमुच ही पहुँच जाओगे न ?" लाडकोर ने ओसारे की सीढ़ियाँ उतरते-उतरते पूछा।

"यह भी क्या मुझ से कहना होगा ?"

"तुम्हारे आये बिना मेरा दकुभाई बारात नहीं ले जायेगा, यह समझ रखना।"

"दकुभाई का स्नेह-प्रेम क्या मैं जानता नहीं ?"

"तो ठीक !"

लाडकोर को जब यह पक्का विश्वास हो गया कि पति ईश्वरिया ज़रूर पहुँचेगे तभी वह घोड़ा गाड़ी मे सवार हुई ।

"इतनी जोखिम साथ है, इसलिए, वशराम, जरा होशियारी से जाना, हाँ !" ओतमचन्द ने गाड़ीवान को सचेत किया ।

"आप निचिन्त रहें मालिक ! रास्ता साफ और खूब चलता हुआ है । अर्शफियों का घड़ा भी ले जायें तो कोई डर-भय नहीं ।" कहकर वशराम ने गाड़ी हाँक दी

घोड़े के गले में पड़ी घुँघरुओं की माला बज उठी ।

और मानों घोड़े की टापों और घुँघरुओं की झंकार से ताल मिलाने के ही लिए बटुक ने बाँसुरी की टेर छेड़ दी ।

खुशी से भाई के घर जा रही लाडकोर ने बटुक से पूछा :

"हम किसके यहाँ जा रहे हैं ?"

"मामाजी के घर ।"

"किसकी शादी में ?"

"बालू भाई की······"

"यह बाँसुरी किसने भेजी थी ?"

"बालू भाई ने······"

बटुक ने फटा-फट अनुकूल उत्तर दिये, जिससे लाडकोर को परम सन्तोष हुआ । ईश्वरिया के चौकीदारों के हाथ मर्मान्तिक मार खाकर ओतमचन्द मेंगणी जा पहुँचा और वहाँ से हीरबाई अहीरिन से माँग कर बीजल की जो बाँसुरी बटुक के लिए ले आया था, उसके बारे में आज तक यही धारणा प्रचलित रही कि 'मामा ने भेजी है' । बटुक के लिए यह खिलौना बालू ने नहीं, बल्कि बीजल ने भेजा है, ओतमचन्द ने इस बात की अपने घर वालों को भनक भी नहीं पड़ने दी थी । और इसीलिए दकुभाई, समरथ और बालू के लिए हृदय में अपार प्रेम लिये लाडकोर इस समय बड़ी उमंगों से ईश्वरिया चली जा रही थी !

वाघणिया की सीमा पार कर गाड़ी जंगल के रास्ते पर हो ली । घोड़े की टापों की आवाज, घुँघरुओं की झनकार, बाँसुरी की सुरीली

तान और अरुणोदय की पवित्र ताज़गी से अनुप्राणित वीतराग-जैसे वशराम ने सुरीले बुलन्द स्वर में भजन के बोल उठाये :

खूँदी तो खमे माता प्रथमी
ने वाढी तो खमे बनराई···
कठण बचन ओल्यां साधुडां खमे,
ने नीर तो सायर मां समाय···

[रौंदा जाना धरती माता सहती है, और काटा जाना सहता है जंगल···कठोर वचन पहुँचे हुए साधु लोग सहते हैं, और पानी तो सागर में समाता है······]

पूर्वी आकाश लाल-गुलाल हो गया और उजेला भरने लगा तो बटुक ने अपने प्रियजनों जैसे मोर और रामचिरैया की खोज आरम्भ कर दी।

रास्ते में मिलते परिचित बैलगाड़ी वाले और अहीरिनें घोड़ागाड़ी से बिदक कर रास्ते के एक ओर हो जाते और वशराम से पूछते : "किधर ?"

"मेहमानी में······"

"किस गाँव ?"

"ईश्वरिये, शादी में······"

"किसकी ?"

"दकुमाई के लड़के की······"

प्रत्येक प्रश्नोत्तर पर शादी की खुशी में बावली लाडकोर प्रसन्नता से उछल-उछल पड़ती थी।

वाघणिया के परिचित राहगीर इस गाड़ी और अन्दर बैठी सवारियों को पहचान कर मन-ही-मन सोचने लगते : इसे कहते हैं ज़िन्दगी का उतार-चढ़ाव। यह गाड़ी एक बार ओतमचन्द सेठ को निकाल देनी पड़ी थी। आज फिर उसी गाड़ी और उसी हवेली का मालिक बनकर उपभोग कर रहा है। आदमी के हाथ में जो होता है वह चला जाता है, मगर भाग्य में लिखा होता है वह कहीं नही जाता।

बटुक को बहुत दिनों के बाद परिचित घोड़ागाड़ी में लम्बी यात्रा का अवसर मिला था, इसलिए वह मस्त था। 'वह देखो, मैना ! मैना ! वह देखो, हिरन ! हिरन !' कहता हुआ वह आनन्द के आवेश में खड़ा हो जाता था। लेकिन आज उसके बाल-सुलभ आनन्दोद्गार में साथ देकर प्रोत्साहित करने वाला नरोत्तम नहीं था, इसलिए बटुक की खुशी आधी रह जाती थी। उसकी बाल स्मृतियों में भूतकाल का एक सुखद प्रसंग अब भी ताजा था—वह इसी गाड़ी में नरोत्तम की बगल में बैठा था, सामने की बैठक पर मेंगणी के मेहमान बैठे थे, उसने एक पक्षी को देखा और नरोत्तम से पूछा, 'काका, वह जो पेड़ पर बैठा है, उसे क्या कहते है ?' बटुक के दुर्भाग्य से काका उस समय अन्यमनस्क थे इसलिए उन्होंने कोई जवाब नही दिया। बच्चे ने बार-बार वही सवाल किया, लेकिन नरोत्तम तो अपने ही हृदयकुंज में गूंजती हुई कुहू-कुहू ध्वनि को सुनने में इतना तल्लीन था कि उसे भतीजे को उत्तर देने की सुध नही रही। आखिर, बार-बार पूछे जाते 'काका, वह जो पेड़ पर बैठा है, उसे क्या कहते हैं ?' का उत्तर नरोत्तम के बदले एक युवती ने दिया था : 'उसे कोयल कहते हैं।' अपने बचकाने सवाल का इतनी आत्मीयता और स्नेह से उत्तर देने वाली उस अपरिचिता युवती के साथ इस बालक का इतने थोड़े सहवास में ही स्नेह-सम्बन्ध स्थापित हो गया था। लेकिन क्रूर विधाता ने उस स्नेह-सम्बन्ध को मानों हमेशा के लिए तोड़ डाला था। वह भोला और कम समझ बालक उस प्रसंग को अभी भी भूला नहीं था। और इस समय उन व्यक्तियों की अनुपस्थिति अनजाने भी अनुभव कर रहा था।

बटुक को जो अनुभव अनजाने में हो रहा था वही अनुभव लाडकोर को आज तक समान अवस्था में सताता रहा था। लेकिन इस समय अपनी स्त्री सुलभ उत्सव प्रियता के अतिरेक में उसके चित्त में ईश्वरिया, दकुभाई और बालू के अतिरिक्त और किसी भी विचार के लिए स्थान खाली नहीं रहा था।

बटुक अपने आत्मीयजनों-जैसे पक्षियों के साथ मन-ही मन दुलार-

भरी क्रीड़ाएँ कर रहा था । लाडकोर आगामी विवाहोत्सव की योजनाएँ बना रही थी । वशराम अपने प्रिय भजन और गीत गा रहा था । और ऊँची नस्ल का तेज़ घोड़ा धूल भरे कच्चे रास्ते पर गर्द के बगूले उठाता और सिर तक ऊँची धूल उडाता तेज़ी से रास्ता काट रहा था ।

"लो, वे ईश्वरिया के गोंहड़े के पेड़ दिखने लगे ।" वशराम की इस घोषणा के बाद ही लाडकोर अपने दिवास्वप्नों से जागी और बोली '

"बटुक, मामाजी का गाँव आ गया ।"

लेकिन पूरे दो प्रहर की वनांचल की यात्रा में प्रकृति और प्राणी एवं पक्षी-सृष्टि के साथ तद्रूप हो गये उस किशोर की अब मामा के गाँव में कोई खास दिलचस्पी रह गयी हो, ऐसा प्रतीत नहीं हुग्रा ।

"यह आ लगा ईश्वरिया का गोंहड़ा ।" वशराम ने दूसरी घोषणा की ।

और फिर तो पलक झपकते ही गाड़ी दकुभाई के दरवाजे पर जा खड़ी हुई ।

× × × ×

लाडकोर बड़े उत्साह से भाई, भाभी और भतीजे से बातें करने लगी और दकुभाई का अपराधी हृदय अत्यधिक क्षोभ का अनुभव ।

"बटुक, मामाजी की भेजी हुई बाँसुरी तो बजाग्रो, बेटा !"

लाडकोर का यह वाक्य सुनकर घर के सब लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे ।

माता के आदेश का पालन कर बटुक ने जब सच ही बाँसुरी बजायी तो दकुभाई की ग्लानि का पार न रहा ।

"यह बाँसुरी किसने भेजी थी, बटुक ?" लाडकोर ने पूछा ।

बटुक ने तपाक से जवाब दिया : 'बालू भाई ने ।"

विक्षुब्ध दकुभाई ने बालू की ओर देखा, बालू उलझन में पड़ गया और समरथ की ओर देखने लगा और समरथ शर्म से सिर नीचा किये चुपचाप जमीन कुरेदने लगी ! सबके मन में एक ही प्रश्न बार-बार

उठ रहा था : 'किसने भेजी थी यह बाँसुरी ? कब भेजी थी यह बाँसुरी ? किसकी समझ का फेर है ?'

बटुक भोलेपन से बाँसुरी बजाता रहा और बच्चे से भी अधिक भोली लाडकोर अपने भाई-भाभी का गुण गान करती रही।

विवाह के एक दिन पहले दकुभाई के यहाँ बड़े भोज का आयोजन किया गया था। आँगन में बड़े-बड़े चूल्हो पर देग चढ़े हुए थे। ओसारे में लाडकोर बैठी-बैठी समरथ से अपना सिर झड़वा रही थी। ननद के पीछे एक छोटी-सी माची पर बैठी समरथ लाडकोर के सिर में सुगन्धित तेल डालकर कंघी कर रही थी।

उमंगों भरी बुआ ने बालू की शादी की ज्योनार के लिए बडी-बड़ी तैयारियाँ की थीं। एक भट्टी पर हलवाई बड़ियाँ और पापड़ तल रहा था और इसके लिए लाडकोर की बगल में ओसारे वाला तेल का जमीन में गड़ा हुआ टांका खुला छोड़ दिया गया था।

हलवाई तपेला भर-भर कर टांके में से आवश्यकतानुसार तेल निकालता जाता था।

लाडकोर भौजाई के साथ सुख-दुख की बातें कर रही थी। इस समय वह झगडालू समरथ का सारा भूतकाल भूल गयी थी। अपने घर वास्तु के शुभ अवसर पर इसी भौजाई ने मोहनमाला-जैसी मामूली बात को लेकर जो महामथ किया था और रंग में भगकर डाला था आज के मंगल दिन यह सहिष्णु स्त्री उसे भी भूल चुकी थी।

इस बीच ओसारे में के टाँके का तेल खाली होते-होते ठेठ पेंदी तक पहुँच गया था। हलवाई को तेल की अभी और जरूरत थी। उसने एक तपेला और भरने के लिए ठेठ नीचे तक हाथ डाला तो तपेला किसी भारी चीज़ से टकराता प्रतीत हुआ।

"इस टाँके में पत्थर पड़ा है या क्या ?" कहते हुए हलवाई ने अपना पूरा हाथ अन्दर डालकर उस वजनी चीज़ को बाहर खींच निकाला।

तेल में सराबोर मोटे कपड़े की उस थैली की ओर लाडकोर कुतूहल से और समरथ आशका और संशय से देखने लगीं ।

हलवाई ने उस काली चीकट थैली को जोर से टाँकी की पाल पर गिराया तो शुद्ध चाँदी के बम्बैया रुपयों की परिचित खनखनाहट गूँज उठी ।

"ओ हो हो मामी ! मेरा दकुभाई इतने अधिक रुपयों वाला हो गया !" सिर के बाल झड़वाती हुई लाडकोर ने पीछे की ओर देखे बिना ही समरथ से मज़ाक किया . "तुम्हारे तो तेल के टाँके में से भी रुपयो की थैलियाँ निकलने लगी !"

लेकिन भौजाई की ओर से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिला तो लाडकोर ने फिर मज़ाक किया :

"तुम्हारे यहाँ इतनी सम्पदा है कि झाड़ू में से भी सच्चे मोती निकल आयें । अब तेल की टाँकी मे से ही इतने रुपये निकल रहे हैं तो पटारे का क्या पूछना ! उसमें क्या नहीं होगा !"

ननद को पूरी आशा थी कि इस बार तो भौजाई से कोई-न-कोई उत्तर जरूर मिलेगा, लेकिन सरमथ के मुँह से कुछ सुनने के बदले जब उसकी आँख में से टपके हुए गरम-गरम आंसू लाडकोर के हाथ पर गिरे तो वह चौंक उठी । बालों में की जा रही कंघी को रोककर, कढ़ी हुई बढ़िया माँग के बिगड़ जाने की परवाह किये बिना उसने पीछे की ओर गरदन मोड़कर देखा तो समरथ का चेहरा एक-दम काला-स्याह पड़ गया था ।

४०
पिछले जनम का बैरी

"अरी भाभी, तुम्हारी आँखें गीली ?" लाडकोर ने समरथ से पूछा : "रोती क्यों हो ?"

लेकिन समरथ के मुँह से कोई जवाब मिलने के बदले जब उसकी आँखों से आँसू ही अधिक गिरे तो लाडकोर को लगा कि जरूर कोई गड़बड़ हो गयी है। सिर झड़वाने का काम रद्द कर, हाथ में कटोरी लिये हुए वह खड़ी हो गयी और समरथ को भी माची से उठाते हुए बोली :

"क्या मेरे मुँह से कोई उलटी-सीधी बात निकल गयी……? तुमको बुरा लग गया ?"

लेकिन जवाब देने के बदले समरथ खिसियानी होकर जमीन ताकने लगी।

कमर तक गहरे टाँके में से रुपये की थैली निकालने वाला हलवाई बड़ी देर से तपेला हाथ में लिये पुतले की तरह खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था कि ढेर सारे कलदार रुपये निकाल कर देने के लिए कम-से-कम शाबाशी तो दी ही जायेगी। अब वह झुंझला उठा और बोला :

"यह थैली कहाँ रख दूँ ?"

"चूल्हे में :" समरथ ने जवाब दिया।

इस जवाब को सुनकर लाडकोर के मन का सन्देह और पक्का हो गया। उसने हाथ से इशारा कर हलवाई को वहाँ से चले जाने का आदेश दिया और जब दोनों अकेली रह गयीं तो पुनः समरथ से पूछा :

"भाभी, यह इतनी-सी देर में तुम्हें क्या हो गया ?"

"अब तुम्हें क्या बताऊँ !" और समरथ ने झेंपकर फिर आँखें नीची कर लीं।

"लेकिन इतनी-सी देर में हुआ क्या ? अभी-अभी तो तुम मजे से हँस-हँसकर बातें कर रही थी", लाडकोर ने अपनी साड़ी के पल्ले से समरथ के आँसू पोंछते हुए कहा : "कल तो बालू की बारात चढ़ेगी और आज इस तरह कहीं रोया जाता है ?"

"मेरी आँखों के आगे से उस कलमुँही थैली को फौरन हटा दो।" इतनी देर के बाद समरथ अब पहली बार बोली :

"क्यों हटा दें ? खनखनाते कलदार रुपये क्या मुफ्त के आते हैं ?" लाडकोर ने कहा : "जोखिम को तो कहीं भी छिपा कर रखना पड़ता है। तेल के टांके में ही क्यों, अंधेरे कुएँ में भी छिपाना पड़ता है ·····इस डरावने गांव में रहना हँसी-ठठ्ठा तो है नहीं !"

"छिपाया नही था·······"

"ओहो भौजी, छिपाया भी तो क्या कोई शर्म की बात है ?"

"लेकिन कह जो रही हूँ कि थैली को छिपाया नहीं था।"

"अच्छा-अच्छा, समझ गयी। मेरे दकु भाई ने उस थैली को टांके में उतार दिया होगा : आदमी कहां क्या रखते हैं, हम औरतों को क्या पता ?"

"कह तो रही हूँ कि टाँके में किसी ने भी थैली नहीं रखी।"

"खैर, जाने दो ! जिस किसी ने भी रखी हो, तुम्हें तो ऐन मौके पर चांदी के खनखनाते रुपये मिल गये, इससे बढ़िया शकुन और क्या हो सकता है !"

"सगुन नही", समरथ ने हाँफते हुए कहा : "असगुन कहो बहिन !"

सुनकर लाडकोर और भी उलझन में पड़ गयी। टाँके में से रुपये निकले और समरथ उसे असगुन कह रही है, क्यों ? क्या चोरी का माल है, या किसी की जमा मार खायी है ? भोली लाडकोर ने पूछ ही लिया :

"टांके में यह जोखिम गुपचुप रखी थी क्या ?"

"इसके वहाँ होने की बात खुद हमी को नही मालूम।"

"किसने रखी थी ?"

"किसी ने भी नहीं ।"

"भई, तुम तो पहेलियाँ बुझाने लगी । तुम्हें नहीं मालूम, किसी ने नहीं रखी तो इतनी बड़ी और वजनी थैली टांके में आयी कहां से ?"

"अपने आप ही आ गयी······मेरा मतलब है गिर पड़ी थी······"

"वाह भौजी, मुझे बनाओ मत ! इतने सारे रुपये तुम लोगों की जानकारी के बिना ही टांके में गिर पड़े ?"

"तुम्हें यकीन नहीं आयेगा बहिन, लेकिन मैं सच कहती हूँ, हमारे जाने बिना ही थैली सारी-की-सारी टाँके में खिसक गयी थी ।"

"कब की बात है ?"

"वह तो याद आता है और अब सारी बात भी समझ में आती है ।" समरथ ने बताते हुए कहा : "बालू के टीके के दिन हमने······"

"अच्छा-अच्छा, उस दिन तो बटुक के पिताजी भी यहाँ आये हुए थे······"

"हां, उसी दिन की बात है । टांके में तेल भरने के लिए यह ढक्कन खोला था और रसोई बनाने की जल्दी में मैं ढक्कन बन्द किये बिना ही रसोई घर में दौड़ी गयी थी······"

"अच्छा ! फिर ?"

"बाजार से तेल का डिब्बा भी मंगवाया था । मैंने सोचा कि वह आजाये तो उसे उँडेल कर तब ढक्कन लगा दूंगी और मैं रसोई घर में पकौड़ियां निकालने बैठ गयी ।"

"अच्छा, फिर ?"

"ओसारे में मेरे ननदोई जी अकेले ही बैठे थे, और कोई नहीं था···"

"ओसारे मे बैठे थे या कमरे में ?"

"तुम्हारे भैया ने उन्हें ओसारे में ही बिठाया था । कमरे मे तो कुछ खास—खानगी बातें हो रही थीं न, इसलिए······"

"अच्छा-अच्छा, समझ गयी । फिर क्या हुआ ?" लाडकोर की उत्कण्ठा बढ़ती जा रही थी ।

"ओसारे में से उठकर ननदोईजी कब दरवाजे से बाहर निकल गये, किसी को पता न चला......किसी को भी पता न चला।" समरथ ने घटना के सारे सूत्रों को जोड़ते हुए कहा : "इतने में बालू बाजार से नोट के नकद रुपये भुनवा कर थैली लिये आ पहुँचा। और आने के साथ ही ब्राह्मण को बुला लाने के लिए उलटे पांवों लौट भी गया। रुपयों की थैली को वह इस टांके की पाल पर रख गया था ?"

"फिर पाल पर से टांके के अन्दर किसने डाल दी ?"

"मैंने कहा न कि किसी ने भी अन्दर नहीं डाली।"

"तो क्या टाके में आपसे पैदा हो गयी ? टांके ने थैली का बच्चा जन दिया ?" समरथ की अन्तर्वेदना को समझने में असमर्थ लाडकोर ने मजाक करते हुए कहा : "ऐसे टाके तो भई, अच्छी तकदीर वालों के यहीं होते है।"

"अच्छी तकदीर वालों के यहां नहीं बहन, फूटी तकदीर वालों के यहाँ कहो।"

"फूटी तकदीर क्यों कह रही हो ?"

"तुम सच्ची बात नहीं जानती, इसीलिए ठिठोली सूझ रही है तुम्हें।"

"तो सच्ची बात तुम बता दो..." लाडकोर ने आग्रहपूर्वक कहा।"

"होनी थी, सो ऐसा हुआ कि बालू थैली रखकर गया, और मैं रसोई में थी कि इतने में दो बिल्लियाँ बाहर से लड़ती हुई ओसारे में घुस आयीं और धम् से गिरने की आवाज हुई।"

"किस चीज के गिरने की ?"

"क्या चीज गिरी थी, यह तो उस दिन पता न चल सका। मैं तो रसोई की जल्दी में थी, इसलिए बाहर आकर देखा नहीं। लेकिन अब समझ में आता है कि बिल्लियों ने लड़ते-लड़ते थैली को धक्का दिया होगा और वह उलटकर टांके में जा गिरी। तभी मजदूर बाजार से तेल का डिब्बा लेकर आया और उसने ओसारे मे से ही खड़े-खड़े पूछा कि

इस डिब्बे को कहां उँडेल दूँ ? मैने रसोई घर में से जवाब दिया कि टाँके में उँडेल दे । वह पूरा डिब्बा टांके में उँडेल कर चलता बना; और यह थैली टाँके की पेंदी मे पड़ा रह गयी—उस दिन से लेकर आज दिन तक… …..”

लाडकोर ने प्रसन्नता व्यक्त की : 'बड़े भाग्य कि इस तरह पैसा बचा रह गया ।”

“पैसा तो जरूर बचा रह गया लेकिन भलापन लुट गया और पाप चढ़ गया ।” दकु भाई-जैसे सेठ के सहवास मे रहने के बावजूद समरथ इस समय थैली-प्रकरण को लेकर पश्चात्ताप का अनुभव कर रही थी । अनायास ही उसके अन्तर की बात ओठों पर आ गयी : “इस टांके ने रुपयों को सहेज कर रखा, लेकिन हमें सज्जनता से रीता कर दिया ।”

समरथ की ये असम्बद्ध बातें लाडकोर के समझ में न आयी, इस-लिए वह मुँह बाये उसकी ओर देखती रह गयी :

“अपराधी समरथ को लगा कि ननद की पैनी निगाहें मुझ पर आरोप लगा रही है, इसलिए मारे घबराहट के वह स्वय ही कह गयी ।”

“बहिन, हम तुम्हारे गुनहगार हैं । न करने जैसे काम हम अभागों ने कर डाले ।”

सुनकर लाडकोर को और भी अचरज हुआ । उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है ? समरथ के होश हवास तो ठीक है ? थैली की छोटी-सी बात को लेकर इतना यह बतगड़ क्यों कर रही है ? या कोई और गहरी गड़बड़ है ?

लाडकोर इन विचारों में मग्न थी । उधर समरथ का मन दूसरे ही विचारों में उलझा हुआ था । ओतमचन्द पर थैली चुराने का झूठा आरोप लगाया, उसे चौकीदारों से पिटवाया—ये सब बातें लाडकोर को मालूम तो होंगी ही, इसलिए स्वयं ही क्यों न स्वीकार कर लिया जाये, आग लगने के पहले ही कुआं खोद लेना चाहिये, बारिश आने के पहले ही पाला बांध लेना चाहिए । यह सोचकर उसने कहा :

"बहिन, हम एहसान फरामोश निकले......इतने एहसानों के रहते भी हमने तुम्हारे साथ बुराई ही की.......हमें कुमति सूझी......हमारे हाथों बुरे काम हो ही गये..... तुम तो क्षमावान हो, बडे मन की हो... मेहरबानी करके हमारी गलती भूल जाओ, हमे माफ कर दो........."

लाडकोर दिग्मूढ़-सी देखती रही कि यह समरथ क्या बके जा रही है ?

"गलती कौन-सी और गुनाह कैसा ?"

"तुम तो सब-कुछ जानती ही हो, मै क्या बताऊँ!" समरथ ने कहा।

लाडकोर यही समझी कि भौजाई का इशारा वास्तु-पूजन के समय मोहन माला को लेकर जो झगड़ा हुआ था उसकी तरफ है, इसलिए उसने भोलेपन से कहा :

"हमने तो भुला ही दिया फिर माफ करने की बात ही कहां रही? वास्तु की बात वास्तु के साथ चली गयी। अब उसे याद करने से फायदा? गुजरी तिथि तो ब्राह्मण भी नहीं विचारता......"

लाडकोर की इस गलतफहमी ने समरथ के मन में एक और गलतफहमी पैदा कर दी। उसे लगा कि ननद ओतमचन्द पर चोरी का आरोप लगाने की बात तो जानती ही है, अब जान-बूझकर वास्तु-पूजन के समय गहने को लेकर जो झगड़ा हुआ था. उसका गड़ा मुर्दा भी उखाड़ रही है। इसलिए आत्म-रक्षणार्थ उसने पहले ही अपना अपराध स्वीकार कर लेना ठीक समझा। बोली :

"वास्तु वाली बात तो अब पुरानी हो गयी। उस समय तुम्हें दुःख देने में हमने कोई कसर नहीं छोड़ी थी, पर वह तो जो होना था सो हो गया। मेरा मतलब उससे नहीं इधर की बात से है। हम अभागे अपराधियों ने तुम्हें फिर दुःख दिया, दुबारा दु.खी किया......"

"फिर दुःख दिया, दुबारा दुःखी किया, कब ?"

"बालू के टीके के समय......"

"बालू के टीके के समय तो हम मुसीबत में थे, इसलिए मेरे दकुभाई ने हमारी अच्छी मदद की थी......"

"यह तुमसे किसने कहा ?"

"बटुक के पिताजी ने।" लाडकोर बोली।

सुनकर समरथ पशोपेश में पड़ गयी और घबराहट भरे स्वर में बोली : "ऐसी ठिठोली मत करो बहिन! जो सितम हमने तुम पर ढाया वह तो बाप के बैरी पर भी न गुजरे......"

"तुमने तो हमे बुरे दिनों में सहारा दिया।" भोली लाडकोर निश्छल मन से प्रशसा करते हुए बोली : "मेरा दकुभाई कम हौंसीला नही है। बटुक के पिताजी वाघणिया से एक दिन का कहकर ईश्वरिया आये थे। तुम लोगों ने उन्हें आठ दिन तक हिलने न दिया। और रोज तरह-तरह के पकवान खिलाये, खूब आव-भगत की, उसे मैं क्या कभी भूल सकती हूँ ? आज लड्डू तो कल लपसी, परसो खीर तो चौथे दिन चूरमा— मैं कहाँ तक गिनाऊँ ? मेरे दकुभाई के स्नेह-प्रेम के आगे और सभी का स्नेह-प्रेम हठा है !"

समरथ बुरी तरह घबरा गयी। ननद की एक-एक बात जलते अंगारे-सी लग रही थी। घिघिया कर बोली :

"हम गरीबो की बहुत खिल्ली उड़ा चुकी बहिन, अब भगवान के लिए बन्द करो। हमसे गलती हो ही गयी, तुम मेहरबानी करके भूल जाओ, दया होगी।"

"तुम्हारा क्या कुसूर ? तुमने तो अपने भानजे का खयाल कर उसके पिताजी को रुपये की थैली बधा दी थी......लेकिन हमारे नसीब ही फूटे थे; रास्ते में बटमारों ने राह छेक कर सब कुछ लूट लिया; तो तुम्हारा क्या कुसूर ?"

समरथ ऐसे चिहुँकी मानों अगारा छू गया हो। बोली :

"क्या लूट लिया ?"

"मेरे दकुभाई ने भानजे के लिए जो कुछ भी भेजा था वह सब लूट ले गये दई मारे बटमार......कोढ़ फूटे पापियों के......अन्धे हो जायें मुए हत्यारे !" ओतमचन्द के कथित लुटेरों को जी भर कर सरापने के बाद

लाडकोर ने आगे कहा : "नासपीटों ने नदी किनारे रास्ता छेक कर सब-कुछ छीन लिया और ऊपर से उन्हें मारा-पीटा भी। लाठियों की मार के नीले निशान उनकी पीठ पर उभर आये थे, जो महीने-दिन तक अच्छे न हुए।"

"उनका रास्ता बटमारों ने नहीं छेका था।"

"बटमार नहीं तो डाकू रहे होंगे।"

"डाकू भी नहीं थे......"

"तो उचक्के, लफंगे रहे होंगे, कलमुए कहीं के !.........कुत्ते नोच नोच खायें उन्हें......सातों पीढ़ी नरक में जाये उनकी......नासपीटों के दिल में दया-माया नाम को भी न थी......"

"उचक्के-लफंगे भी नहीं थे और न चोर-पासी ही।"

"कोई नहीं था तो उनकी पीठ में लाठियों से मार-मार कर रस्सियों जैसे नीले निशान उभारने वाले कौन थे ?"

"चौकीदार......"

"चौकीदार ? किस गाँव के चौकीदार ?"

"हमारे ईश्वरिया के ही।"

सुनकर लाडकोर को चोट-सी लगी। पूछा : "चौकीदार ? चौकीदार भी भला किसी का रास्ता छेकते हैं ?"

"हमीं ने रास्ता छेकने के लिए चौकीदारों को उनके पीछे दौड़ाया था।" समरथ अनचाहे ही कह गयी। ननद-भौजाई की बातचीत अब उस स्थिति में पहुँच गयी थी जब समरथ अनचाहे ही अनायास उसमें खिचती-घिसटती चली जा रही थी।

"तुमने.........तुम्हीं ने चौकीदारों को उनके पीछे दौड़ाया था ? क्यों ?" लाडकोर ने काँपती हुई आवाज़ में पूछा : "आखिर क्यों ? उन्होंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ? ऐसा क्या गुनाह कर डाला था उन्होंने ?"

"हमें उन पर बहम हो गया था—रुपये की थैली चुराने का शक हो गया था......" चाहते हुए भी, जाने किस भावना के वशीभूत समरथ

ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया : "मेरे ननदोई ओसारे में ही बैठे थे और बिना किसी से कुछ कहे गाँव से चले गये। ओसारे में बिल्लियां लड़ीं और रुपये की थैली टांके में जा गिरी, ठीक तभी वे दरवाज़े से बाहर हो गये थे, इस बात की जानकारी हमें नहीं थी। इसीलिए चोरी का दोष उन पर आ गया। तुम्हारे भैया ने फौरन चौकीदारों को उनके पीछे दौड़ाया......और चौकीदारों ने उन्हें नदी के किनारे जा पकड़ा...... थैली निकलवाने के लिए चौकीदारो ने उन्हें लाठियो से पीट कर अधमुआ कर दिया, लेकिन यह कौन जानता था कि थैली तो यहीं टांके के अदर पड़ी है........."

अब तक शान्त मन से प्रश्न पूछ-पूछ कर लाडकोर अपनी शंकाओं का निवारण कर रही थी। अन्तिम शंका का इस रूप में निवारण होते ही वह मारे क्रोध के फुफकार उठीं :

"मेरे पति पर ऐसा कलंक लगाते तुम्हें शर्म न आयी ?"

"गलती हो ही गयी बहिन ! हमारे भाग्य ही खोटे थे कि ऐसी दुर्बुद्धि उपजी।"

"भाड़ में जाये तुम्हारा भाग्य ! तुम लोग आदमी हो या जानवर ?"

"जानवर से भी बदतर निकले हम तो......लेकिन अब गयी गुजरी बात को भूल जाओ बहिन !" समरथ गिड़गिड़ा उठी : "अब तो तुम्हारी जूती और हमारा सिर ..."

"तुम नीच मेरी जूतियों के काबिल भी नहीं।" लाडकोर ने कुपित होकर कहा : "तुम-जैसे पलीतों के सिर छूने से मेरी जूती तक अपवित्र हो जायेगी।"

कहते-कहते लाडकोर की आँखों से चिनगारियां निकलने लगीं। उसके तन-बदन मे आग लग गयी।

समरथ दीनतापूर्वक घिघियाई : "माफ कर दो बहिन ! एक गुनाह तो राजा भी माफ कर देता है।"

"कैसी माफी और कहा की माफी !" लाडकोर ने तमक कर

कहा : "बटुक के पिताजी ने आज तक मुझे बताया नहीं और अन-जान रखी गयी इसलिए मैं हिये की फूटी तुम्हारे द्वारे चली आयी। अब तो इस घर की छाँह भी अपने पर पड़ने देना मेरे मन घोर पाप है...."

इतना कहकर वह क्रोधोन्मत्त चंडिका की तरह खड़ी हो गयी और प्रचण्ड स्वर में पुकार उठी : "बटुक !"

आँगन में से किसी ने जवाब दिया : "बटुक भैया खाने बैठे हैं।"

लाडकोर बवण्डर की तरह लपकती हुई आँगन में जा पहुँची और थाली पर बैठे बटुक को हाथ पकड़ कर तेजी से उठा दिया और बोली : "इस कसाई के घर का एक कौर भी गले के नीचे मत उतारना...."

खुले हुए अस्त-व्यस्त बालों को इधर-उधर उछालती और चीखती-चिल्लाती लाडकोर साक्षात् चंडिका-जैसी लग रही थी। समरथ अधि-काधिक विनम्रता से उसे शान्त करने की कोशिश किये जा रही थी; लेकिन लाडकोर उतनी ही अधिक उग्र होती जाती थी।

वह उतने ही प्रचण्ड स्वर में फिर चिल्लायी : "वशराम !"

दरवाज़े के बाहर चबूतरे पर बैठा वशराम चिलम पी रहा था। उसने फौरन अन्दर आकर पूछा : "क्या है माजी ?"

"गाड़ी जोतो, जल्दी !"

"लाडकोर के इस आदेश को दकुभाई ने भी सुना, जो वशराम के पीछे-पीछे ही अन्दर आया था। उसने कुतूहल से पूछा :

"अभी खाने के समय गाड़ी जोतकर कहाँ जाना है बहिन ?"

"वाघणिया !"

सुनकर दकुभाई पर जैसे बिजली टूटी।

समरथ ने जल्दी-जल्दी सारी घटना कह सुनायी और टांके की पाल पर रखी हुई वह थैली भी दिखायी।

दकुभाई आंखें फाड़े थैली की ओर देखता रहा। उसके चेहरे पर मानो कालिख पुत गयी थी।

लाडकोर ने पुनः कोचवान को तैयारी करने के लिए कहा : "वश-राम, गाड़ी जोतो जल्दी। मुझे देर हो रही है।"

"बहिन, शादी का शुभ काम निबटाये बगैर ही तुम यों चली जाओगी ?" दकुभाई ने मिन्नत की।

"लूका लगा दे शादी के तेरे शुभ काम में।"

"मगर कल सवेरे तो बालू की बारात उठेगी......"

"अब बालू न मेरा भतीजा रहा और न तू मेरा भाई......"

समरथ फिर ननद को मनाने लगी : "खाने के समय भी कोई यों घर छोड़कर जाता होगा बहिन ! थालियां परोसी जा चुकी हैं......"

"इस जनम में तो अब मैं इस घर का भोजन करूँगी नहीं।" लाडकोर ने साफ़-साफ सुना दिया : "इन थालियों में परोसा हुआ पकवान नहीं गोमांस है, गाय का रक्त है ·...."

"जरा शांत हो जाओ बहिन !" दकुभाई ने विनती की : "जी ठिकाने रख कर खाना खा लो।"

"आज से इस घर का पानी भी मेरे लिए हराम ! अन्न का एक दाना भी मुझे मंजूर नहीं !" कहकर लाडकोर ने पुनः कोचवान को आवाज़ दी : "वशराम, यह सर-सामान जल्दी रखो गाड़ी मे......"

"शादी-ब्याह के मौके पर इस तरह जाना क्या अच्छा लगता है, बहन ?" दकुभाई ने चिरौरी की।

"सगे बहनोई को चोर ठहराना और ऊपर से जानवरों की तरह पिटवाना अच्छा लगता है, तुझे शोभा देता है ?"

दकुभाई और समरथ ने लाडकोर को मनाने में कोई कसर बाकी न छोड़ी। जब दोनों पति-पत्नी उसके पाँवों में गिर पड़े तो लाडकोर गरजी : "खबरदार ! दूर रहो ! मेरे पैर छूकर मुझे अपवित्र मत करो !"

"बहिन, यह क्या कहती हो ?"

"सच ही कहती हूँ। तू मनुष्य नहीं, चांडाल है, चांडाल !" बटुक की अंगुली पकड़े फाटक की ओर जाती हुई लाडकोर बराबर गर्जन तर्जन करती जा रही थी : "तुझसे तो कसाई और खटीक हजार गुना

अच्छे। खटीक तो जानवर को ही मारता है, तू तो मनुष्यों को मारने वाला निकला।"

इतना कहकर लाडकोर ने भाई के प्रति अपनी सारी घृणा के प्रतीक स्वरूप उस पर थूक दिया और बोली : "थू है तुझ पर !"

दकुभाई इस भयंकर घृणा को भी बर्दाश्त कर गया और दूने उत्साह से बहन को रोकने की कोशिश करने लगा। वह दौड़ कर दरवाजे के बीच में खडा हो गया और बटुक को लेकर आगे बढ़ती हुई लाडकोर का रास्ता रोकने के लिए अपने दोनों हाथ फैला कर कहा :

"नही जाने दूँगा ·····नहीं जाने दूँगा······"

"हट सामने से खजुहे कुत्ते !" कह कर लाडकोर ने जोर से भाई के हाथ को झटक दिया और फुर्ती से गाडी मे जा बैठी।

कभी से रोने-रोने हो रहा दकुभाई अब हहाकर रो उठा और मिन्नतें करने लगा :

"बहिन, मेरे घर परोसी थाली को ठोकर मार कर मत जाओ बहिन······मेरा गुनाह गलती माफ कर दो बहिन······इस गरीब भाई पर कुछ तो तरस खाओ बहिन······यों मत जाओ ब···हि··न······"

"तुझ-जैसे हत्यारे पर तरस ? तुझे तो शूली चढ़ा दूँ तब भी मेरे जी को चैन न आये····· सगी बहिन का सुहाग उजाड़ने के लिए तैयार होने वाले को तो कौए-कुत्ते की मौत मारना चाहिये·" कहकर लाडकोर ने वशराम को हुक्म दिया : "हाँकों, जल्दी गाड़ी हांको ! इस हत्यारे घर के आगे खड़े होने में भी मुझे पाप लगता है ····"

कोई बस न चलते देख अन्त में दकुभाई घोड़े की बाग पकड़कर सामने खड़ा हो गया और कोचवान से कहने लगा : "नहीं जाने दूँगा··· गाड़ी को नहीं जाने दूँगा······"

भाई-बहिन के कलह में अभी तक मौन और तटस्थ वशराम ने अब पहली बार लाडकोर को समझाया : "मां जी, सगे मां-जाये भाई की बात रख लीजिये······"

"अब मेरा कोई मां-जाया भाई नहीं है।" लाडकोर ने साफ कह दिया : "आज से मुझे बिना भाई की समझना..........आज से मैं बिना नैहर की ....."

"मत बोलो, बहिन, ऐसे वैन मत बोलो, मेरा कलेजा फटा जाता है, बहन !"

"खबरदार जो मुझे बहिन कहा ! जबान खींच लूँगी। तू भाई नहीं मेरा पिछले जनम का बैरी है, बैरी !"

"तुझे सौगन्ध है बहिन, यों जाये तो मुझे मरता देखे "

"तेरे नाम को मै अभी से रो चुकी··· · यही समझना कि मेरे लिए तू जीता हुआ भी मरे के समान है ····आज से मेरे भाई के घर और पीहर का रास्ता हमेशा के लिए बन्द हो गया !"

"अब बस करो बहिन और उतर आओ नीचे !"

"नही उतरूँगी, नही उतरूँगी, नही उतरूँगी !" कहकर लाडकोर ने कोचवान से कहा : "जल्दी हांक, जल्दी ! मुझे इस बैरन धरती में बिच्छु डस रहे हैं ! मेरा तन-बदन फुँका जा रहा है।"

दकुभाई घोड़े की लगाम पकड़े दीनतापूर्वक गिड़गिड़ा रहा था : "नहीं जाने दूँगा, नही जाने दूँगा......"

"नीच, कुकर्मी, तेरे ऊपर से गाड़ी भी निकाल ले जाऊँ तो मुझे पाप नहीं लगने का !" कहकर कुपित लाडकोर ने कोचवान को हुक्म दिया : "इस पापी पर चाहे पहिया चढ़ जाये, चाहे यह कुचल जाये, तू फौरन गाड़ी आगे बढ़ा।"

आखिर वशराम ने ज़ोर लगाकर दकुभाई के हाथ से लगाम छुड़ायी और गाड़ी आगे बढ़ी।

रोता-सिसकता दकुभाई देर तक गाड़ी की ओर देखता रहा—देखता ही रहा।

गाडी जब गाँव के सदर फाटक से निकली तो जिन चौकीदारों ने ओतमचन्द को मार-मार कर अधमुआ कर दिया था, वे इस नये ढग की सवारी गाड़ी में बैठे हुए यात्रियों की ओर कुतूहल से देखने लगे।

ईश्वरिया की सीमा से निकल कर घोड़ा गाडी वाघणिया जाने के लिए नदी के किनारे वाली दिशा में मुड़ गयी। लाडकोर का गुस्सा अभी उतरा नहीं था, इसलिए वह बिलकुल चुप बैठी थी। बटुक अब कुछ बड़ा और थोड़ा समझदार भी हो गया था, इसलिए इस अप्रत्याशित घटना से वह इतना स्तब्ध हो उठा कि अपनी प्रिय बाँसुरी बजाने तक का होश न रहा। अकेला वशराम, जगल की गहन शान्ति में, थोडी देर पहले की घटना पर निरपेक्ष रूप से विचार करता हुआ अपने प्रिय भजन की एक कड़ी गाता जा रहा था :

कोण साचु रे ·········

ससारिया माँ सगु तारु कोण साचु रे···········

[कौन है अपना······इस दुनिया में सगा तेरा कौन है अपना······]

४१

हर्ष-शोक की गंगा-जमुना

तीसरा पहर होते-होते घोड़ा गाड़ी नदी किनारे पहुँच गयी। वशराम ने लाडकोर से कहा : "माजी, घोड़ा प्यासा हुआ होगा। हुकुम हो जाये तो थोड़ा रोककर पानी पिला लूँ ?"

"जरूर पिलालो; अच्छी तरह पिलालो। फिर तो ठेठ वाघणिया तक रास्ते में पानी नहीं मिलेगा।" लाडकोर ने कहा : "बेचारा अबोली वाचा का जीव, भूख-प्यास लगने पर हमारी तरह बोल तो सकता नहीं।"

वशराम ने इमली की घनी छाँह में गाड़ी खोल दी। लाडकोर और बटुक भी बैठे-बैठे थक गये थे, इसलिए पाँव सीधे करने के लिए नीचे उतर गये।

वशराम घोड़े को ठण्डा करने और पानी पिलाने के लिए नदी के ढलान की ओर ले गया।

ईश्वरिया से बिफर कर चली लाडकोर अभी तक झुँझलायी हुई थी। दकुभाई के प्रति उसका गुस्सा अभी शान्त नहीं हुआ था। यही कारण था कि नदी-किनारे कई अपरिचित पक्षियों को उड़ते देख बटुक उनके बारे में बार-बार पूछता था, लेकिन उसे माँ से कोई उत्तर नहीं मिल रहा था।

उद्विग्न लाडकोर को इस समय दकुभाई से अधिक अपने पति पर गुस्सा आ रहा था। आज तक उन्होंने इस बारे में एक शब्द भी क्यों

नहीं कहा ? अपने पर इतना कुछ बीत गया लेकिन मुझ से एक बार भी नहीं कहा, सो क्यों ? उलटे दकुभाई के स्नेह-प्रेम के मनगढ़न्त किस्से सुनाकर मुझे भ्रम में डाले रहे·····और मैं उनकी बातों को सच-मानकर बड़े ठाठ-बाट से ईश्वरिया पहुँच गयी······आखिर भरम का भाँडा फूटा और अब लौटकर वाघणिया जा रही हूँ······

"अम्मां, अम्मां बापूजी आये ! बापूजी आये !" बटुक प्रसन्न होकर चिल्ला उठा ।

"हो नहीं सकता ! कहाँ है; बता, कहाँ हैं ?"

"वो घोड़े पर ! वो उधर, घोड़े पर !"

सामने से सरपट चले आते घुडसवार को लाडकोर तो न पहचान सकी, लेकिन बटुक की पैनी निगाहों ने अपने पिता को आकृति से चन्ही लिया था ।

लाडकोर अभी विस्मय मे से मुक्त हो भी नहीं पायी थी कि घोड़ी नदी पार करने के लिए पानी मे उतर भी गयी और घुड़सवार बोल उठा :

"अरे, तुम यहाँ कैसे ?"

और इस प्रशन का उत्तर मिलने के पहले तो घोड़ी नदी पार कर इस किनारे आ भी गयी ।

तेजी से दौड़ी आती ऊँची नस्ल की घोड़ी को रोकने के लिए सवार ने एकाएक बाग खीची तो वह ठिठक कर पिछले पाँवों पर अलिफ हो गयी और हिन-हिना उठी । प्रौढ़ होते हुए भी ओतमचन्द एक युवक-जैसी चपलता से नीचे कूद पड़ा और बोला :

"इस समय यहाँ कैसे ?"

एक के बाद एक आकस्मिक रूप से घटित होने वाली घटनाओं ने लाडकोर को इस हद तक स्तम्भित कर दिया कि वह तुरत पति को कोई उत्तर न दे सकी ।

पत्नी के इस मौन से ओतमचन्द भी व्याकुल हो गया; उसने फिर

पूछा : "बालू की शादी तो कल की ही है न ? और आज तुम यहाँ इस तरह ....."

"आग लगे उसकी शादी को !" लाडकोर के मुँह से शब्द क्या निकले मानों चकमक और इस्पात की रगड़ से चिनगारियाँ छूटीं।

"शुभ प्रसंग पर ऐसे शब्द नहीं बोले जाते..... "

"बोले तो नहीं जाते, मगर जी जल रहा हो तो निकल ही आते हैं।"

"लेकिन यह अकस्मात् बेसुरा राग क्यों ? बात क्या हुई ? साफ-साफ बताओ।"

"साफ क्या बताऊँ, अपना सिर !" लाडकोर का गुस्सा कम न हुआ था। "तुम भी गजब के चुप्पे निकले ! ऐसी-ऐसी दुर्दशा हुई, मगर मुझ से कहा तक नहीं। मुँह सीये रहे।"

ओतमचन्द ताड़ गया कि दकुभाई के यहाँ कुछ गड़बड़ हुई है। लेकिन सीधे-सीधे पूछने के बदले वह पत्नी को औपचारिक आश्वासन देने लगा :

"होगा, यह सब तो ऐसा ही चलता रहता है।"

"ऐसा ही क्या चलता रहता है, मेरा सिर !" लाडकोर ने तमक कर कहा : "उन निगोड़ों ने तुम्हारे ऊपर रुपयों की थैली चुराने का आरोप लगाया और ऊपर से बुरी तरह पिटवाया तो भी तुमने......"

"थैली चुरायेंगे तो मार भी खानी ही पड़ेगी।" ओतमचन्द को हँसी सूझी : "यह तो सिर के मोल माल लेने की बात है ! रानी छाप टकसाली रुपये राह में पड़े तो मिला नहीं करते ?"

"लेकिन रुपये तो तेल के टाँके में से निकले......मेरी आँखों के सामने सील बन्द थैली बाहर निकली......"

"सच कहती हो ?" ओतमचन्द सोच में पड़ गया। पत्नी के एक ही वाक्य से उसके मन में बिजली-सी कौंध गयी। आज तक जो घटना रहस्य के आवरण में लिपटी हुई थी उस पर से पर्दा उठ गया।

ओतमचन्द की आँखों के आगे सारी घटना दिये के उजाले की तरह एकदम साफ हो गयी ।

"तुम भी गजब के चुप्पे निकले ! आज तक मुँह पर अलीगढ़ी ताला डाले रहे !" लाडकोर की उद्विग्नता अभी तक कम नहीं हुई थी : "यहाँ तक कि अपनी सात भाँवरों की ब्याहता को भी सच्ची बात नहीं बतायी ।"

"बताने से क्या लाभ होता ?" ओतमचन्द पत्नी को समझाने लगा : "उलटे बात उजागर हो जाती । हमारे साथ दकुभाई की इज्जत को भी बट्टा लग जाता !"

"उस नकटे की इज्जत ही कहाँ है कि बट्टा लग जाता ? उस दो कौड़ी के आदमी ने तुम्हारी लाख रुपये की इज्जत मिट्टी करदी, मार-पीट की सो अलग— तुमने यह सब बर्दाश्त कैसे कर लिया ?"

"करना पड़ा । उन दिनों हमारा बुरा समय चल रहा था, इसलिए निन्दा भी सह लेनी पड़ी । समय समय की बात है और समय बलवान होता है, बाकी आदमी तो हमेशा वही के वही रहते हैं ।"

"लेकिन थैली तो अपने से ही टाँकी मे जा गिरी थी......बिल्लियाँ लड़ीं और उनके धक्के से......"

"अब तो मैं भी समझ गया कि उसमें किसी का दोष नहीं था..."

"लो सुनो : राक्षस जैसे चौकीदारों ने मार-मारकर अधमुआ कर दिया और तुम कहते हो कि किसी का दोष नहीं था ! वाह !"

"सच ही दोष नही था ।" ओतमचन्द शान्तिपूर्वक पत्नी को समझाता रहा : "चौकीदार तो दकुभाई के कहने पर आये थे । और उसमें दकुभाई का भी बेचारे का क्या दोष ?"

"तुम उसे अब भी बेचारा कहते हो ?"

"और क्या कहूँ ? दकुभाई को जब ओसारे में थैली नहीं दिखायी दी तो उन्हें मुझ पर शक हुआ । स्वाभाविक भी था । मैं ओसारे में अकेला बैठा था तब तक थैली टाँके की पाल पर रखी थी । लेकिन

उकताकर बिना किसी से कुछ कहे बाहर चला आया और थैली गायब हो गयी तो मुझ पर शक होगा ही। इसमें गलत क्या है ?"

"तुम तो नरसी मेहता की तरह हो, इसलिए किसी का गुनाह दिखायी नहीं देता।"

"मगर किसी का गुनाह-गलती हो भी तो ! सच मानो इस मामले में किसी भी आदमी का कोई दोष नहीं।" ओतमचन्द ने उस दुःखद घटना का दार्शनिक पहलू स्पष्ट करते हुए कहा : "दोष किसी को देना ही हो तो बिल्लियों को देना चाहिये, जो लड़ती-लड़ती टाँके की पाल पर पहुँच गयी थीं, लेकिन बिल्लियाँ तो मनुष्य होती नही। इसलिए जो हुआ उसे प्रकृति की लीला ही कहना होगा……आदमी का उसमें कोई दोष नही !"

"सगे बहनोई के साथ ऐसी नीचता की फिर भी तुम्हें उसका दोष नही दिखायी देता ?"

"बिलकुल नही। सारा खेल प्रकृति की है। दोष-गलती-अपराध सब वही करवाती है। आदमी तो उसके हाथ का खिलौना है……बटुक के हाथ की इस बाँसुरी की ही तरह।"

बटुक की बाँसुरी का उल्लेख होते ही लाडकोर पूछ बैठी : "आज तक तो तुम यही कहते रहे कि यह बांसुरी दकुभाई के बालू ने भेजी है ?"

"तुम्हें बुरा न लगे इसलिए……"

"मुझे बुरा न लगे इसलिए धोखा देते रहे, क्यों ?" लाडकोर ने उग्र स्वर में कहा : "अब सच-सच बताओ, यह बाँसुरी किसने भेजी थी ?"

"चलो मेरे साथ, जिसने भेजी थी उससे तुम्हारी मुलाकात करवाये देता हूँ।"

"कहाँ चलना होगा ? किस जगह ?"

"यहाँ से ज्यादा दूर नहीं है। वे सामने ही तो मेंगणी के झाड़-पेड़

दिखायी दे रहे है, वही ।" ओतमचन्द ने कहा : "अच्छा ही हुआ कि तुम से भेंट हो गयी । मै अकेला जा रहा था, अब साथ हो जायेगा ।"

"कहाँ जा रहे थे ?"

"मेगणी जा रहा था ।"

"क्यों भला ?"

"मेरी बहिन के घर शादी है—भानजे की......"

"तुम्हारी बहिन और मेंगणी मे ? लाडकोर ने पूछा : "मैंने तो कभी नाम भी नहीं सुना...... "

"मेरी धरम की, मुँह बोली बहिन है, तुम कहाँ से पहचानोगी ?"

"अब भी जी नहीं भरा, मुझ से हसी किये ही जा रहे हो !"

"न न-न, हंसी नहीं करता, सच कह रहा हूँ । तुम घर से चली थी ईश्वरिया बालू की शादी करने, अब दकुभाई से नाराज होकर बिना शादी किये घर लौटोगी तो असगुन माना जायेगा । इसलिए मेरे साथ मेंगणी चलो । बहिन के यहाँ भानजे बीजल की शादी निबटाकर सब साथ-साथ हंसी-खुशी घर लौटेंगे......"

"यह सब सच कह रहे हो या गप् हांक रहे हो ?" लाडकोर का सन्देह अभी तक निर्मूल नहीं हुआ था : "तुम्हारी मुंह बोली बहिन का नाम क्या है ?"

"हीरबाई-एथल आयर की घरवाली ।" और ओतमचन्द ने पत्नी को पूरा किस्सा सुना दिया कि किस तरह एथल अहीर उसे नदी किनारे से झोली में डालकर अपने घर मेंगणी ले गया और हीरबाई ने कितनी लगन से सेवा-टहल कर उसे चंगा किया ।

सुनकर लाडकोर कांप उठी : "हायरे ! मुए चौकीदारो ने तुम्हें इतना मारा था और नासपीटे मुर्दे की तरह जगल में अकेला छोड़कर चले भी गये ?"

"हाँ !"

"इस भयानक जगह में अगर शेर निकल आता ?"

"तुम्हारे पुण्य आड़े आये और शेर के बदले देवता जैसा एथल

इधर निकल आया और मुझे झोली में डालकर मेंगणी ले गया।"

"चलो, चलो, जल्दी चलो ! मैं उस देवता का दर्शन करना चाहती हूँ।"

"वशराम, गाड़ी जोतो !" ओतमचन्द ने कहा : "और मेरी घोड़ी के पीछे-पीछे चले आओ। मेंगणी अब ज्याया दूर नहीं है। ये सामने ही तो दिख रहे हैं वहाँ के झाड़-पेड़।"

मेगणी के सदर फाटक में जब ओतमचन्द ने अपनी घोड़ी को लिया तो ड्योढ़ी में खटिया डालकर पड़े हुए सिपाहियों ने उसे पहचान लिया। पूरे मौसम-भर ओतमचन्द गाँव के जागीरदार ठाकुर वजेसंग के यहाँ आता रहा था, इसलिए सिपाही यही समझे कि वह सरकारी मेहमान है। वे फौरन उठकर खड़े हो गये और उसे सलाम बजाने लगे।

लेकिन घुड़सवार के पीछे-पीछे एक बढ़िया घोड़ागाड़ी भी आयी और वह लवाजमा दरबार गढ़ी की ओर मुड़ने के बदले जब अहीरवाड़े की ओर मुड़ गया तो सिपाहियों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

गढ़ी के कोट के सहारे चलता हुआ, तंग गली में मुड़कर वह घुड़सवार एथल अहीर के द्वारे आखड़ा हुआ। उसके पीछे-पीछे घोड़ागाड़ी भी वहाँ पहुँच गयी।

आज ओतमचन्द को दरवाजे की कुण्डी नही बजानी पड़ी। दरवाजा खुला था और आँगन में बड़ा-सा मण्डप बना था। मण्डप के नीचे खाटें बिछाकर सुगठित शरीर वाले कद्दावर अहीर बैठे हुक्का गड़गड़ा रहे थे। वे इस ऊँची जाति के घुड़सवार को देखकर खड़े हो गये।

घोड़ी की टापों और आँगन में आकर रुकते समय की उसकी हिनहिनाहट की आवाज़ सुनी तो हीरबाई बाहर दौड़ी आयी और घुड़सवार को देखते ही बोल उठी :

"आओ मेरे वीरा खूब वक्त पर आये !"

ओतमचन्द घोड़ी से नीचे उतरा। हीरबाई ने बलैयाँ लेते हुए कहा : "ठीक वक्त पर आ गये भैया, बहुत अच्छा किया। मामा के बिना मेरे बीजल की शादी सूनी-सूनी लग रही थी।"

ओतमचन्द ने पीछे खड़ी हुई घोड़ागाड़ी की ओर अंगुली दिखलाते हुए जब बताया कि बटुक और उसकी माँ भी आये हैं तो हीरबाई फूली न समायी। उसने एथल से कहा :

"मेरे भैया तो भोजाई को भी साथ लेते आये हैं। धन्न घड़ी और धन्न भाग्य !"

लाडकोर बटुक को लिये हुए गाड़ी से उतरी तो पति ने इन अपरिचित लोगों का यह कहकर परिचय कराया :

"दकुभाई ने तुम्हारे सुहाग को मिटाने जैसा काम किया और एथल भाई ने तुम्हारे सुहाग की रक्षा की......"

"जीते रहो भैया !" कृतज्ञ लाडकोर ने सच्चे मन से आशीर्वाद दिया।

"और ये है मेरी हीरबाई बहन। सगे बेटे से भी अधिक सेवा-टहल कर मुझे दो दिन में खड़ा कर दिया।"

"तुमने मेरी माँग के सिंदूर की रक्षा की, भगवान तुम्हारे बाल-बच्चों की रक्षा करे-घर-द्वार भरा-पूरा और लहलहाता रहे......तुम्हारा यह एहसान तो बहन, जन्म-जन्मान्तर तक नहीं भूलूँगी।" कहती हुई लाडकोर उस अहीरिन से ललक कर गले मिली और इतनी आत्मीयता से बातें करने लगी मानों बरसों की जान-पहचान हो।

"अरे, दुलहा राजा तो दिखायी नहीं देते ?" ओतमचन्द ने पूछा : "हमारा भानजा कहाँ है ?"

"बीजल ! बेटा बीजल !" हीरबाई ने अन्दर के सहन की ओर मुँह करके आवाज़ लगायी : "बेटा, बाहर आओ; देखो, मामाजी आये हैं।"

ललाट में बड़ा-सा तिलक लगाये, सिर से दुगुना बड़ा साफा बाँधे एक किशोर जैसे ही बाहर आया ओतमचन्द ने प्रेम पूर्वक उसे फौरन गोद में उठा लिया और बटुक से उसका परिचय करवाया :

"बटुक, यह तेरी बन्शी इन्होंने, बीजल भाई ने भेजी थी।"

बटुक ने पूछा : "मामा के बालू भाई ने नहीं ?"

"नहीं; इन्होने, बीजल भाई ने भेजी थी।"

लाडकोर सब-कुछ समझ गयी। सारी घटना के सूत्र एक-एक कर मिलते जा रहे थे। अपने विश्वास को और दृढ़ करने के लिए उसने पूछा : "बाँसुरी के साथ तुम गुड़-पपड़ी और तिल कुट्टे की मिठाई लाये थे, वह किसने दी थी ?"

"इन्होंने—मेरी हीरबाई बहिन ने ही !"

"अच्छा ?" लाडकोर ने सुखद आश्चर्य के साथ कहा : "हीरबाई बहिन के हाथ की गुड-पापड़ी हम लोगों ने खायी थी ?"

"हाँ," हीरबाई बोली : "तुम छू गयी !"

ओतमचन्द ने स्नेह भरे स्वर में कहा : "यों क्यों नहीं कहती बहन कि तुम जैसे देवोपम लोगों के हाथ का प्रसाद पाकर हम पुण्यशाली हो गये !"

एक ऊँची जाति और सम्पन्न वर्ग के तथा दूसरे छोटी जाति और श्रमजीवी वर्ग के दम्पतियों के बीच इस तरह का प्रेमालाप सुनकर एथल के घर न्योते में आये हुए मेहमान चकित रह गये।

बात-की-बात में लाडकोर और हीरबाई के दिल मिल गये और वह सम्पन्न सेठानी उस सामान्य अहीरिन का शादी की तैयारियों में हाथ बँटाने लगी।

सबसे अधिक आत्मीयता बटुक और बीजल के बीच स्थापित हुई। दुनियादारी की अटपटी रीति-नीतियों से अनजान और ऊँच-नीच के भेदों से आज तक अलिप्त उन एकाकी बालकों को एक-दूसरे का संग-साथ बहुत रास आ गया।

लम्बी यात्रा के कारण ओतमचन्द के हाथ-पाँव और चेहरे पर धूल छा गयी थी। कमर बन्द छोड़कर उसने मुँह-हाथ धोये और फिर सब भोजन करने बैठे।

भोजन से निवृत्त होने के बाद ओतमचन्द ने कमर में बँधी-बाँसली को धीरे से खोला और आवाज़ देकर बीजल को अपने पास बुलाया।

पति की आवाज़ सुनकर बीजल के साथ लाडकोर भी वहाँ चली आयी और उसने कुतूहल से पूछा : "यह क्या है ?"

"बाँसली !" ओतमचन्द ने जवाब दिया : "ठेठ वाघणिया से कमर में बाँधकर लाया हूँ, बड़ा बोझ लग रहा है।"

"इतने सारे रुपये लादकर चलते हो, बोझ तो लगेगा ही।"

"रुपये का बोझ नहीं है भागवान !" ओतमचन्द ने बड़ी गम्भीरता से कहा और फिर चुपचाप बाँसली में से एक-एक चीज़ निकालने लगा।

"अरे, यह तो हाथ की पहुँची है !" लाडकोर ने पूछा : "किसके लिए ?"

"मेरे भानजे बीजल के लिए......"

"और ये कान की मुरकियां (बालियाँ) ?"

"ये भी दुलहा राजा के लिए......"

"और यह हंसुली ?"

"मेरी बहिन हीरबाई के लिए।"

"और यह अशर्फियों की माला ?"

"मेरी बहिन पहनेगी।"

लाडकोर का आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। उसने पूछा : "इतने सारे गहने कहां से ले आये ?"

"किसी की रुपये की थैली चोरी नहीं की है, घबराओ मत। एक-एक चीज वाघणिया के सुनार से गढ़वायी है।"

"बड़े चुप्पे, बड़े घुन्ने निकले तुम तो !" लाडकोर ने फिर मीठा उलहना दिया : "मुझसे कहा तक नहीं।"

"कहने से क्या फायदा ?" और ओतमचन्द बीजल को गहने पहनाने लगा।

"मगर इतना सारा सोना तुमने गढ़वाया कब ?"

"छह महीने से गढ़े जा रहे थे......तुम अपने भतीजे के लिए बनवा रही थीं, साथ-साथ मैं भी अपने भानजे के लिए बनवाता जाता था।"

"ओफ्फोह, इतना गहरा पेट है तुम्हारा और ऐसे चुप्पे हो, मैं जानती नहीं थी। इतने दिन तक जैनमुनिजी की तरह मुँह पर मोपत्ती ही बांध रखी थी।"

"चुप रहने में जो मजा है वह बक बक करने में कहाँ ?"

"लेकिन अपनी सगी बीबी से तो कहना चाहिए था ?"

"अपने भानजे की शादी का मामेरा मुझे करना था, तुमसे कहकर क्या फायदा होता ?"

"अरे, तो मैं भी तुम्हारी कुछ होती हूँ या नहीं ?" और फिर लाडकोर ने एक महत्त्व का सवाल पूछा : "अपना भानजा क्या तुम्हीं को प्यारा लगता है, मुझे नहीं ?"

"अपनी बात तुम जानो।"

और ओतमचन्द ने हँसते-हँसते बीजल की कलाई में सोने की भारी भरकम पहुँची पहना दी।

"तुमने तो चुप कहकर मुझे बड़ी शर्मिन्दगी में डाल दिया ! सच; गजब के चुप्पे निकले !"

"क्यों-क्यों, तुम्हें किस बात की शर्मिन्दगी ?"

"तुम अकेले-अकेले बीजल के मामा बन बैठे तो क्या मैं उसकी मामी नही बन सकती ?"

"बनना चाहो तो बनो, कौन मना करता है ?"

"बनना चाहो तो बनो का क्या मतलब ? तुम इतना बड़ा मामेरा करोगे और मैं हाथ बांधे बैठी रहूँगी ?" कहकर लाडकोर ने इतने मनोहारी ढंग से भौंहें नचायी कि इस प्रौढ़ावस्था में भी ओतमचन्द के मन-प्राणों में गुदगुदी मच गयी और वह पत्नी की उस भँगिमा पर लहालोट हो गया। उसके चेहरे पर एक रस भरी मुस्कान दौड़ गयी और वह बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा करने लगा कि देखें, अब आगे यह मानिनी किस तरह का अभिनय करती है।

और मानिनी ने जो अभिनय किया वह तो उसके पति के लिए भी

कल्पनातीत था। ओतमचन्द को विस्मित करते हुए लाडकोर ने कमर से चाभियों का गुच्छा निकाला और ईश्वरिया से अपने साथ जिस पेटी को लायी थी उसका ताला खोला।

"इधर तो आओ लल्ला, मेरे पास।" लाडकोर ने बीजल को अपने पास बुलाया : "मामा का प्रेम देख लिया हो तो अब आओ, मामी का प्रेम देखो।"

और अपनी उसी भुवनमोहिनी भ्रू-भंगिमा के साथ उसने पेटी में से पाँच-सात कपड़ों में अच्छी तरह गठियाया हुआ एक बड़ा-सा डिब्बा बाहर निकाल कर खोला।

बीजल को एक-एक कर गहने पहनाती और पति की ओर तिरछी चितवनों और बांकी भौहों से बिजलियाँ गिराती हुई वह कहने लगी : "अब बताओ, किसका प्यार ज्यादा और किसका मामेरा बढ़-चढ़ कर है—मामा का या मामी का ?"

"अरे ! यह गहने तो तुमने बड़ी उमंगों से बालू के लिए बनवाये थे ?" ओतमचन्द ने चुटकी ली।

'अब तो यह बीजल ही मेरा बालू है।" लाडकोर ने भौहों से और भी कहर ढाते हुए कहा : "अब बताओ, कौन अधिक प्यार करने वाला निकला—मामा या मामी ?"

"भई, तुम्हारा मुकाबला मैं कैसे कर सकता हूँ ?"

"अब बताओ, किसके गहने ज्यादा हैं—तुम्हारे बनवाये हुए या मेरे ?"

"भई, तुम ठहरी लक्ष्मी माता का अवतार और मैं रहा नोन-तेल बेचने वाला गरीब बनिया······" पति ने पूरी तरह परास्त होकर कहा।

"मुझ से आज तक सभी कुछ छिपाकर रखा, तो अब लेते जाओ !······चुप्पे कहीं के !" पत्नी ने अपनी विजय के झंडे पूरी तरह गाड़ दिये।

"हाय राम ! यह क्या ?" हीरबाई वहाँ आयी तो गहनों से लदे बीजल को देखकर पूछने लगी : "यह सब क्या है ?"

बीजल ने कहा : "मामा जी ने पहनाये !"

"और मामी ने नहीं ?" लाडकोर ने फौरन बीजल की भूल सुधारी।

"हाँ, मामी ने पहनाये।"

हीरबाई को अपनी आँखों से देखकर भी विश्वास नहीं हो रहा था। परम्परा से चांदी के गहने पहननेवाली इस गरीब कौम में सोने के दर्शन भी दुर्लभ थे। ऐसे में बेटे के शरीर पर ढेर सारे सोने के गहने देखकर मां गद्‌गद् हो गयी और बोली :

"ये तो बहुत ज्यादा है, भैया !"

"गरीब आदमी ने अपनी हैसियत के मुताबिक किया है बहिन।" ओतमचन्द ने कहा : "बाकी तुम्हारे उपकारों का बदला तो तुम्हें पूरा-का पूरा सोने से मढ़ दें तब भी नही चुका सकते।"

लाडकोर ने पति का समर्थन किया : "बहिन, तुमने मेरे पति की रक्षा न की होती तो आज मेरे इन हाथों में सुहाग की ये चार चूड़ियां भी देखने को न मिलती !"

"लेकिन इतने ज्यादा गहने भी कहीं दिये जाते हैं, भैया ?" हीरबाई ने पहले ही जैसे गद्‌गद् स्वर में कहा।

"ज्यादा कहाँ है बहिन ? फूल के बदले पंखुड़ी ही समझो।" ओतमचन्द बोला : "इसे तुम्हारे एहसानों का बदला चुकाने की कोशिश मत समझना। जिसने नयी जिन्दगी दी उसका बदला तो एक ऊपर वाले के सिवाय और कौन चुका सकता है ? हम तो जनम भर और जन्मान्तरों तक तुम्हारे ऋणी रहेंगे; इन गूगे पशुओं का भी जन्म लेकर तुम्हारे आँगन में बंध जायें तो तुमसे उऋण न हो सकेंगे; हाँ, धन्य जरूर हो जायेंगे।"

निथरे हुए निर्मल नीर-जैसी सच्चे दिल की इस विनयपूर्ण वाणी

को सुनकर हीरबाई को अपना मृतक भाई याद हो आया और उसकी एक आंख से शोक का एक आंसू गिर पड़ा। लेकिन फिर तुरत ही खयाल आया कि यह धर्म का मुंहबोला भाई तो सगे, मां-जाये भाई से भी बढ़कर है; और इस विचार के आते ही हृदय पुलकित हो गया और आंखों से हर्ष के आंसू बह चले।

मानव-जीवन के ताने-बाने-जैसे हर्ष और शोक के आंसुओं की उस गंगा-जमुना को ओतमचन्द और लाडकोर न केवल एक-टक देखते ही रहे, उसमें अवगाहन कर, आप्लावित होकर धन्य-धन्य भी होते रहे।

४२

प्रायश्चित

शाम को बटुक बीजल के साथ गली में खेलने के लिए गया था। वह खबर लाया : "अम्मा ! अम्मां ! मैंने नरोत्तम काका को देखा।"

"पागल तो नहीं है !" लाडकोर ने कहा : "नरोत्तम भाई यहाँ भेगणी में क्यों आने लगे ? और कोई होगा।"

"काका ही आये हैं। मुझे गोद में उठा लिया और प्यार किया और तुम कहती हो कि कोई और होगा !"

"हो ही नहीं सकता।"

"बीजल से पूछ देखो।" बटुक ने कहा।

बटुक की बात का बीजल ने भी समर्थन किया कि हम लोग बाजार में गये तो एक आदमी ने बटुक को पहचान लिया, गोद में उठाया और प्यार किया; उसके साथ एक और आदमी था, जिसने अहीरवाड़े का हमारा नाम-पता भी पूछा······लेकिन फिर भी लाडकोर को विश्वास नहीं हुआ।

लाडकोर को यह समाचार सुनकर आश्चर्य हुआ, लेकिन ओतमचन्द को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उसने इस समाचार को कुछ इस तरह सुना मानों छोटे भाई के इस गाँव में आने की सूचना उसे पहले से हो ! इसीलिए, नरोत्तम के आने के विषय में, लाडकोर के उत्सुकता भरे प्रश्नों का जवाब वह बड़ी लापरवाही से दे रहा था : "नरोत्तम आया भी हो······"

"लेकिन यहाँ मेंगणी में क्या करने आयेंगे ?"

"व्यापारी आदमी को हजार तरह के काम होते हैं। यहाँ मेंगणी में ही क्या ठेठ लंका तक काम हो सकते हैं।"

पति के ऐसे उत्तरों से लाडकोर का सन्देह उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। अन्त मे इन अस्पष्ट उत्तरों से तंग आकर उसने कह दिया : "चुप्पे तो तुम हमेशा के हो। अपनी सगी बीबी को भी कभी सच्ची बात नहीं बताते।"

"सच्ची बात मैं क्या कहूँ ?" ओतमचन्द ने फिर गोल-मोल जवाब दिया : "सच जो भी होगा गाता-बजाता धूम-धड़ाके के साथ द्वार पर आ जायेगा।"

और सच ही, रात का भोजन हो चुकने के बाद एथल अहीर के द्वारे एक अपरिचित आवाज़ गूंज उठी :

"ओतमचन्द भाई हैं घर में ?"

"कौन ?" ओतमचन्द ने पूछा और अन्दर के ओसारे में से उठकर बाहर आया।

"मैं कीला !......कीला कंघीवाला !" बाहर से जवाब मिला।

"ओ हो, आप है ! मगर अब आप कंघी वाले कैसे ?" ओतमचन्द ने कहा : "अब तो आप कामदार और सरिश्तेदार हो गये हैं।"

गले मिलने के बाद कीला बोला :

"मेरी इस लम्बी-चौड़ी काया के पीछे आपका छोटा भाई छिपा रह गया, अब उसकी ओर भी देखिये।"

"बटुक ने हमें खबर कर दी थी कि नरोत्तम काका आये हैं।"

"नरोत्तम काका या प्रभुलाल काका ?" कीला ने व्यंग्य में कहा : "आज तो हमें सब जगह गलत नाम ही सुनने को मिल रहा है।"

"सब जगह ?"

"हाँ। हम मनसुख भाई के साथ, व्यापार के नाते से, उनकी भानजी की शादी मे यहाँ आये हैं। लेकिन कपूर सेठ तो इसे देखने के

साथ ही बोल उठे कि यह प्रभुलाल नहीं, नरोत्तम है।" कीला ने कहा : "मेरे तो यह गड़बड़ झाला कुछ समझ में नहीं आता।"

"गड़बड़ झाला जब हो गया है तो उसे पूरा ही कीजिये।"

"लेकिन यह झमेला तो हमें बहुत भारी पड़ता दिखायी दे रहा है। इस प्रभुलाल से कपूर सेठ अपनी लड़की की शादी का इरादा किये बैठे हैं।"

"कौन-सी लड़की ?"

"चम्पा, और कौन ?" कीला ने कहा : "और कपूर सेठ लगातार एक ही बात कहे जाते है कि यह प्रभुलाल नहीं, नरोत्तम है; और यह भी कहते हैं कि यह तो हमारे पुराने दामाद है और इनको हमें फिर अपना दामाद बनाना है।"

"कपूर सेठ ने तो कमाल कर दिया।"

ओतमचन्द अब भी लापरवाही से ही बोल-बतिया रहा था।

"कमाल में बाकी ही क्या रह गया !" कीला ने कहा : "मैं समझाकर हार गया कि यह आदमी नरोत्तम नहीं प्रभुलाल है, पर वे मानते ही नहीं।"

"बड़ी मुश्किल पैदा करदी उन्होंने तो।"

"अरे साहब, मुश्किल भी ऐसी कि अब मैं आपसे क्या कहूँ ! यहाँ हम एक मनसुखलाल के सिवा और किसी को जानते-पहचानते नहीं। और कपूर सेठ ने, आप देखिए कि अच्छी-खासी पहचान निकाल ली ! कहते हैं कि ये तो हमारे दामाद नरोत्तम ही हैं, और कोई नहीं ! पुराना रिश्ता टूट गया है, उसे फिर जोड़ दो।" कीला ने गम्भीरता से कहा : "ओतमचन्द भाई, हमारी हालत तो उस मुसलमान जैसी हो गयी जो बेचारा पढ़ने गया था नमाज़ और रोजे गले पड़ गये !"

"होने दीजिये ! इसी लायक हैं ?"

"कौन, हम ?"

"नहीं-नहीं, आप नही; कपूर सेठ......"

"तब ठीक है। बेचारे हमारे हाथ-पाँव जोड़कर घिघिया रहे हैं कि साहब, माफ कर दीजिये, आपको पहचाना नहीं!"

"आदमी को सही-सही पहचान पाना बहुत टेढ़ा काम है, कीला भाई।"

"लेकिन यहाँ जो पहचान हुई उसमें हमारे प्रभुलाल पर आफत आ गयी; अब क्या होगा? कपूर सेठ कहते हैं कि आपको तो खुद भगवान ने ही मेरे घर भेज दिया; अब यों ही नहीं जाने दूँगा......हमारे लिए तो उनका घर जेलखाना हो गया......"

ओतमचन्द और कीला देर तक इसी शैली में बातें करते रहे। लाडकोर सुनती जाती थी और उसके मन की उलझन बढ़ती जाती थी। लेकिन कीला की उपस्थिति में कुछ पूछना उसे उचित नहीं लगता था।

कीला रात देर तक बातें करता रहा। वास्तव में, लाडकोर और बटुक के सो जाने के बाद ही उन लोगों की गम्भीर चर्चा का दौर शुरू हुआ।

जब रात सिर्फ एक पहर बाकी रह गयी तो कीला और नरोत्तम वहाँ से गये।

× × × ×

दूसरे दिन जसी का विवाह था, इसलिए ईश्वरिया से बालू की बारात मेंगणी आ पहुँची और उन लोगों ने गांव के बाहर मुकाम किया।

कपूर सेठ बड़ी उमंग और उत्साह से बारात की अगवानी की तैयारियां करने लगे।

गाँव के कुतूहल प्रेमी तरुण 'जसी के दुलहे' को देखने के लिए गांव के बाहर, जहाँ बारात पड़ी थी, पहुँच गये।

'कहां हैं दुल्हाराजा? कहाँ है दुल्हा राजा?' करते हुए गांव के युवक-युवती बारात की गाड़ियों के बीच घूमने-फिरने लगे, लेकिन उन्हें कहीं दुल्हे के दर्शन नहीं हुए। इससे उनका कुतूहल बहुत बढ़ गया।

वे जितना ही दुल्हे के बारे में पूछते बाराती उतना ही गुस्सा होते और अन्त-अन्त में तो गांव वालों पर बिगड़ भी गये।

काफी ढूँढ़-खोज के बाद सिर्फ इतना पता चला कि सब के पीछे खड़ी हुई एक बन्द गाड़ी में दुल्हा राजा बैठे हुए हैं।

"बाहर क्यों नहीं निकल रहे ?"

जान-पहचान वालों ने पूछताछ की : "बालू भाई गाड़ी के अन्दर क्यों बैठे हैं ? नीचे क्यों नहीं उतरते ?"

"क्या किसी से शरमाते हैं ?"

धीरे-धीरे बारात के मुकाम से बात गाँव की गली तक पहुँची : "जसी का दुल्हा परदेवाली गाड़ी में छिपकर बैठा है।"

गांव की गली से कपूर सेठ के दरवाजे तक खबर पहुँचते देर न लगी : "दुल्हाराजा परदे में छुपे बैठे हैं; गाड़ी में से नीचे ही नहीं उतरते !"

अगवानी के लिए रवाना हो रहे कपूर सेठ ने यह खबर सुनी और उनके उठते हुए पैर थोड़ी देर के लिए ठिठक गये।

'क्या है ? क्या है ?' पूछताछ होने लगी। तभी गांव के दो हट्टे-कट्टे युवकों के कन्धों पर सहारे के लिए अपने दोनों हाथ रखे मकनजी मुनीम, जो अब अपंग हो गया था, लंगड़ाता हुआ कपूर सेठ के घर की ओर आता दिखायी दिया।

मुनीम को देख कपूर सेठ को आश्चर्य हुआ। समझ में नहीं आया कि इतनी तकलीफ उठाकर यह अपंग आदमी क्यों चला आ रहा है। शिष्टाचार की खातिर कपूर सेठ बोले :

"मुनीमजी, बड़ी तकलीफ की आपने !"

"करनी पड़ गयी।"

"हम बारात की अगवानी को जा ही रहे थे। आपको किसी सवारी में ले आते, मगर आपने जल्दी कर डाली।"

"करनी पड़ी।"

मुनीम के दोनों बार के उत्तर से कपूर सेठ आश्चर्य में पड़ गये। असली बात का पता लगाने के लिए उन्होंने दाना फेका :

"आज इतनी जल्दी क्यों आना पड़ गया ?"

"कोई चारा नही रह गया था "

सुनकर कपूर सेठ का माथा ठनका। समझ गये कि दाल में जरूर कुछ काला है; और मुनीम कोई भेद की बात बताने आया है। फौरन उसे कन्धे का सहारा देकर अन्दर वाले कमरे में ले गये, ओसारे में बिठाना ठीक न समझा।

कमरे में जब पूरी तरह एकान्त हो गया तो कपूर सेठ ने पूछा : "सब कुशल-मंगल तो है ?"

"हाँ, कुशल-मंगल तो होगा ही।" कहकर मुनीम एक शब्द बोला : "किन्तु......"

इस एक शब्द 'किन्तु' को सुनकर कपूर सेठ की छाती धड़कने लगी। पूछा :

"कोई ऐसी वैसी बात तो नहीं हो गयी ?"

"नहीं जी, ऐसी-वैसी तो कोई बात नहीं हुई, किन्तु......"

"किन्तु ? किन्तु क्या ?" कपूर सेठ ने आशंकित होकर पूछा : "दकुमाई के घर तो सब अच्छी तरह हैं न—क्षेम-कुशल ?"

"हाँ-हाँ, सभी अच्छी तरह, भले-चंगे हैं। किन्तु......"

"फिर किन्तु ? बात क्या है ?"

"बात भला क्या हो सकती है ? किन्तु......"

मुनीम के मुँह से हर वाक्य के अन्त में 'किन्तु' सुनते-सुनते कपूर सेठ बुरी तरह घबरा चले थे।

तभी एक आदमी 'कहां गये कपूर सेठ ? कहाँ गये कपूर सेठ ?' कहता हुआ उन्हें ढूँढ़ता अन्दर चला आया और बोला : "लो, तुम अभी यहीं हो ? बाहर तुम्हारी ढूँढ़-खोज हो रही है। चलो-चलो, बारात की अगवानी में देर हो रही है।"

"होने दो !" कपूर सेठ ने उसे फटकार दिया।

"लेकिन ढोली* जल्दी मचा रहा है। हमारा काम निबटाकर उसे एथल आयर के यहां ढोल बजाने जाना है।"

"जाने दो।"

"इस तरह तो हमें बारात की अगवानी में बहुत देर हो जायेगी।"

"होने दो।" कहकर कपूर सेठ पुनः मुनीम से पूछने लगे : "सच-सच बताओ, बात क्या है ?"

"मामला कुछ बिगड़ गया है सेठजी !"

"क्या फिर पुलिस जब्ती का वारण्ट लेकर आ गयी ?"

"अब दकुभाई के घर में धरा ही क्या है कि जब्ती लाना पड़े !"

"तो क्या कोई और परेशानी खड़ी हो गयी है ?"

"आदमी है तो उसके साथ परेशानी भी होगी ही; मगर दकुभाई की तकदीर में कुछ ज्यादा ही परेशानी लिखी हुई मालूम पड़ती है।"

"क्या बात है मुनीमजी, जल्दी बताओ न ?"

"दुल्हाराजा के सिर मुसीबत......"

"दुल्हाराजा के सिर कौनसी मुसीबत ?" कपूर सेठ की तो मानों साँस ही रुक गयी : "और कैसे ?"

"उसके लच्छनों से ! करम ही उसने ऐसे किये, तो कोई क्या करे।" अब मुनीम बड़े इत्मीनान से बता रहा था : "कोई भी मुसीबत बिन बुलाये तो आती नहीं !"

"कोई टंटा-बखेड़ा हो गया है क्या ?"

"थोड़ा नहीं; बहुत ज्यादा।"

"अरे ! किसने किया ?"

"जिन्होंने पिछले साल किया था उन्हीं ने।"

"क्या गाँव के अहीरों ने ?"

"और कौन करेगा ?"

---

*ढोल बजाने वाला—ढोलिया।

सुनकर कपूर सेठ लज्जित हो गए। धीमी आवाज़ में सकुचाते हुए पूछा : "लेकिन वह बात तो रफा-दफा हो गयी थी न ?"

"उगने के बाद सूरज को कहीं छाबड़ी से ढाँका जा सकता है ?" मुनीम ने पते की बात बतादी : "बालू तो बत्तीस के बदले तैंतीस लक्षणों वाला शूरमा निकला ....."

"हे भगवान ! मेरी लड़की की किस्मत ..."

"यही समझो कि फूट गयी। आज सवेरे बारात विदा होने वाली थी और पिछली ही रात ईश्वरिया के अहीरों ने बालू की लाठियों से धुनाई कर दी......"

"ओफ्फोह ! ये अहीर तो ससुरे एक ही शैतान हैं—यम के दूतों की तरह......"

"सेठजी, अपनी बहन-बेटी को बेइज्जत होते कौन देख सकता है ? बालू पर वो मार पड़ी है कि बचा को छठी का दूध याद आ गया होगा खोपड़ी खुल गयी और जमीन चाटने लगा। यह तो गांव के कुछ परिचित कुर्मियों ने बीच-बचाव किया तो जान बच गयी। यों समझिये कि शूली का संकट सुई से निबट गया......"

"बड़े-बूढ़ों का पुण्य आड़े आया......"

"फिर भी एक हाथ तो कुहनी में से उतर ही गया और सारे बदन पर लाठियों की मार के बड़े-बड़े निशान उभर आये हैं।"

"तब तो विवाह में विघ्न पड़ गया......"

"इसीलिए तो मैंने कहा कि चलो मन, कपूर सेठ को सारी बात पहले से बतादी जाये। बाद में तुम्हीं कहते कि मुनीम ने चेताया नहीं। किसी से उलहना सुनना अपने को अच्छा नहीं लगता। मैं तो बात कहता हूँ सच्ची !"

फिर एक आदमी अन्दर के कमरे में घुस आया और बोला : "समधियाने वाले आये हैं और पूछ रहे है कि बारात की अगवानी में में कितनी देर है ?"

"उनसे कह दो कि जल्दी न मचायें।" कपूर सेठ ने इस आदमी को भी दुत्कार कर बाहर निकाल दिया : "घोड़े पर सवार आये हैं, सो तो हम भी जानते हैं......"

"अब दुल्हा राजा तो बेचारा घोड़े पर सवार होने लायक रहा नहीं।" मुनीम ने कहा : "हड्डी-पसली एक हो गयी है। चार आदमियों ने सहारा दिया तब तो किसी तरह गाड़ी में बैठ सका।"

"हद हो गयी यह तो। लड़का ऐसा आवारा और बदमाश निकला!"

"इसीलिए तो मैं इस समय लंगड़ाता हुआ आपके घर आया हूँ।" मुनीम ने एकदम गम्भीर होकर कहा : "मेरा पाप मुझी को सालने लगा........."

"पाप ?" कपूर सेठ चौंका : "तुम्हारा पाप कैसा ?"

"मेरे किये का पाप।" मुनीम ने अपना अपराध स्वीकार करते हुए कहा : "बालू का रिश्ता मैंने करवाया था......और सो भी धोखे से......मैंने आपको धोखा दिया था......"

"यह क्या कह रहे हो ? तुमने मुझे धोखा दिया था ?"

"जिन्दगी मे आज पहली ही बार सच बोल रहा हूँ, इसलिए बोल लेने दो, रोको मत।" मुनीम का रूखा चेहरा आर्द्र हो गया था : "अपने पाप का प्रायश्चित्त कर लेने दो।"

"पाप कैसा और प्रायश्चित्त कैसा ? यह क्या पहेली है ?"

"मैंने तुम्हें धोखा दिया। दकुभाई का लड़का तो शुरू से ही बदचलन था... लेकिन मैंने तुम्हें भुलावा देकर उसी का रिश्ता वहाँ पक्का करवा दिया......बालिया (बालू) तो कोली-वाघरी से भी ज्यादा बदचलन और कुत्ते-बिल्ली से भी ज्यादा बेशरम है। इतने से सब तुम्हारी समझ में आ जायेगा!"

"हे भगवान!" कपूर सेठ सब समझ गये और बोले : "ऐसे

कुपात्र के हाथ पड़कर तो मेरी लड़की की सारी जिन्दगी ही खराब हो जायेगी।"

"अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है।" मुनीम ने कहा : "मूँग-चावल आपस में मिल नहीं गये हैं। अपनी लड़की की जिन्दगी सुधारना अभी तुम्हारे हाथ है।"

फिर एक आदमी अन्दर घुस आया और बोला : "दकुभाई सेठ खुद ही आये है......शिकायत कर रहे है कि दिन-दुपहर हो गया और बारात की अगवानी फिर भी नहीं हो रही, क्या बात है ?"

"उनसे कह दो कि सब काम अपने ढग से ही होगा।" यह कहकर कपूर सेठ ने उस आदमी को बाहर निकाला और फिर बोले : "नालायक बेटे की बारात लेकर धूमधाम से आये है, सो तो हम भी जानते है।"

मुनीम ने फिर बात का सिलसिला जोड़ते हुए कहा : "अभी भी बाजी हाथ से गयी नहीं है; हाँ, खेलना आना चाहिए......"

"सो किस तरह ?"

"अगवानी का विचार ही छोड़ दो !"

"लेकिन..... लेकिन..... फिर क्या ?"

"फिर यह कि जैसे आये हैं वैसे ही बैरंग लौटा दो।" मुनीम ने कहा : "उस बदचलन के पल्ले तुम्हारी लड़की पड़ गयी तो एक दिन बेचारी को कुआं-बावड़ी में डूब मरना होगा।"

सुनकर कपूर सेठ काँप ही रहे थे कि वह आदमी फिर अन्दर घुस आया तो वे गुर्रा उठे : "क्यों बार-बार घुसा आता है ?"

"जरूरी काम से आया हूँ।"

"दकुभाई से कहदे कि......"

"दकुभाई की बात नहीं है......"

"फिर क्या बात है ?"

"एथल भाई के यहाँ ईश्वरिया के जो अहीर न्योते आये हैं, उनका कहना है कि······"

"क्या कहना है उनका ?"

"कि दकुभाई के बालू की तो कल रात मूसलों से खूब पिटाई हुई है····· "

"हमें पता है, तू चलता हो यहाँ से।" कह कर कपूर सेठ ने उस आदमी को फिर बाहर हाँक दिया। लेकिन उनके मन में मुनीम ने जो शका ज़गायी थी उसका ईश्वरिया के अहीरों ने समर्थन कर दिया था।

दकुभाई को अपने साथ लेकर कपूर सेठ गाँव के बाहर बारात के पड़ाव पर गये और बोले : "दुलहे को परदे में क्यों बिठा रखा है ?"

"कहीं नजर-वजर न लग जाये।"

"यहाँ गाँव के बाहर किसकी नजर लगेगी ? फिर हमारे गाँव में नजर मूठ मारने और जादू-टोने करने वाला भी कोई नहीं है। आप लोग दुलहे को बेधड़क बाहर निकालिये।"

तब दुलहे को परदे में से बाहर निकालने के सवाल को लेकर दोनों समधियों मे खासी लम्बी-चौड़ी बहस होती रही ! लेकिन जब कपूर सेठ किसी भी तरह नहीं माने और दुलहे को अपनी आँखों से देखने का आग्रह दुराग्रह की सीमा तक करते रहे तो दकुभाई को मजबूर होकर गाड़ी का परदा खोलना और बालू को नीचे उतारना पड़ा।

चार बारातियों ने गाड़ी पर चढ़कर बालू को इस तरह नीचे उतारा मानों जिन्दा आदमी नही, लाश ढो रहे हों। सौ-सौ समरांगणों से जख्मी होकर लौटने वाले राणा सांगा-जैसी हालत में बालू को देखकर कपूर सेठ स्तम्भित रह गये। बोले :

"दुलहे को इतनी तकलीफ मत दो। इन्हें फिर परदे में ही बिठा दो।"

दकुभाई ने सफाई पेश की : "कल चलते-चलते पाँव फिसल गया और इतनी अधिक चोट आ गयी।"

"मैं जानता हूँ। ईश्वरिया गाँव की जमीन ही कुछ ऐसी रपटीली है कि दुलहे बेचारे का क्या दोष ? पाँव फिसल ही जाता है......"

"कुहनी की हड्डी उतर गयी है......"

"उतर ही जायेगी। अहीर की लौंगी लाठी पड़े तो किसकी कुहनी साबुत रह सकती है ?" कह कर कपूर सेठ ने आखरी फैसला सुना दिया : "अब तो कुशल इसी में है कि चुपचाप, किसी को पता चलने से पहले ही, जल्दी-से-जल्दी ईश्वरिया पहुँच जाइये !"

४३

भगवान ने ही भेजा !

जिस दिन राजकोट से मेहमान आने वाले थे, चम्पा की सहेली शारदा उसे सवेरे से ही छेड़ रही थी, 'प्रभुलाल सेठ की क्या खबर है ?' सुनकर चम्पा शरमा जाती और उलट कर कहती :

"अरी शैतान ! मुझसे पूछती है ? अब तो मुझ से ज्यादा तू ही उन्हें जानती है !"

शारदा और छेड़ती : "हाँ-हाँ, जानती हूँ कि तू रात-दिन आँखों में तेल डाले उनका रास्ता देख रही है। मुन्नी, दाई से पेट नहीं छिपाया करते। हमसे क्या छिपा है।"

"सच ही, तुझसे क्या छिपा है ?" चम्पा स्वीकार करती।

शारदा फिर पूछती : "लेकिन प्रभुलाल सेठ अब आयेंगे कब ?"

"क्यों री, तू क्यों इतनी उतावली हो रही है ?" चम्पा पूछती : "शादी मेरी और उतावली तुझे ?"

"अपनी सहेली की जल्दी से शादी करने की उतावली पड़ी है।" कहकर शारदा पूछती : "मैं जो खिलौना लायी थी वह कहां गया ?"

"यह रहा।"

"हुँ ! रोज़ इसके सामने टक लगाये देखा करती है, सो क्या मैं नहीं जानती ?" शारदा ने चुटकी ली : "सारस के इस जोड़े पर से तेरी निगाहें हटती ही नहीं, सो क्या मुझसे छिपा हुआ है ?"

"तुझसे क्या छिपा हुआ है बहिन ? मैने तुझसे छिपा कर रखा ही क्या है ?"

"सो तो सच है।" चम्पा की इस आत्म स्वीकृति से शारदा के अहम् भाव की परितुष्टि होती थी।" लेकिन देखना, इन दोनों पक्षियों के एक हो जाने पर कहीं इस सहेली को भूल मत जाना।"

"कैसी बात करती है बहिन ! तुझे क्या कभी भुला सकूँगी।" चम्पा कहती है : "तू ही तो प्रभुलाल सेठ के पास मेरा सन्देशा ले गयी थी।"

"क्योंरी, तू भी उन्हें प्रभुलाल सेठ कहती है !"

"और क्या कहूँ ? घर में सभी उन्हें इसी नाम से जानते हैं........ ऐसे में मैं उनका असली नाम कैसे ले सकती हूँ ?"

"लेकिन वे थोड़ी ही देर में यहाँ पहुँच जायेंगे और घर में सभी को असलियत मालूम हो जायेगी, तब क्या होगा ?"

"यह चिन्ता तो मुझे भी सता रही है। हाँ, फिर क्या होगा और हम क्या करेंगी ?" चम्पा ने पूछा।

"तू चिन्ता मत कर......" शारदा ने उसे हिम्मत बँधायी : "मैं जो हूँ ! उन्हे यहाँ आने तो दे, फिर वे तेरे प्रभुलाल सेठ हैं और यह शारदा हैं; मै सब देख लूँगी।"

"तेरे प्रभुलाल सेठ से क्या मतलब ?"

"तेरे यानी सोलहो आना तेरे ही; और किसी के भी नहीं।"

"पर क्या तू उन्हें अब भी प्रभुलाल सेठ ही कहेगी ?"

"नहीं तो और क्या कहूँगी ? असली नाम लेकर बुलाने से कोई गड़बड़ हो गयी तो ?"

"तू तो बड़ी तेज़ है री !"

"तेज़ न होती तो इतना पराक्रम कर पाती ?"

× × ×

जसी की उपस्थिति मे शारदा ऐसा व्यवहार करती मानों प्रभुलाल नाम के किसी आदमी को जानती ही नहीं। इससे नासमझ जसी पूरी तरह भ्रम में पड़ गयी थी। वह प्राय: इस बात की शेखी भी मारा करती कि चम्पा के लिए प्रभुलाल नाम के जिस अनजान आदमी को खोजा गया है उससे मेरा मंगेतर बालू कही श्रेष्ठ है। यों भी वह हमेशा अपने मँगेतर की तारीफ करती रहती थी। इधर जैसे-जैसे शादी के दिन करीब आते जाते थे बालू के गुणगान करते उसकी जबान थकती न थी। चतुर शारदा उसकी हाँ-में-हाँ मिलाया करती और बेवकूफ जसी को और भी बनाने के लिए कहती रहती कि वास्तव में तेरा दूल्हा चम्पा के दुल्हे से कही होशियार, मालदार और सुशील है।

लेकिन अन्त में जब मनसुख लाल के साथ दो मेहमान आये तो प्रभुलाल सेठ को देखकर चम्पा के माता-पिता से भी अधिक आश्चर्य जसी को हुआ। नरोत्तम को देखकर जसी को सही अर्थों में करारी चोट लगी। कपूर सेठ और सन्तोक बा ने तो आरम्भिक आश्चर्य के बाद कीला के इस 'षड्यन्त्र' को बढ़िया मजाक के रूप में स्वीकार कर लिया, लेकिन जसी इस सदमे से अपने-आपको किसी तरह मुक्त न कर सकी। क्योंकि वह जानती थी कि नरोत्तम सब बातों में बालू से श्रेष्ठ था।

और जब उसे पता चला कि एक बार जिसकी सगाई रद्द हो चुकी थी उसी नये नाम रूप-धारी नरोत्तम के साथ चम्पा की शादी करने को माता-पिता तत्पर है तो जसी की ईर्ष्या की सीमा न रही। इतना अच्छा जो दुल्हा बड़ी बहन के हिस्से में से साफ निकल गया था वही उसे फिर मिल रहा है, इस जानकारी ने लग्नोन्मुख जसी के सारे आनन्दोत्साह पर पानी फेर दिया।

मनसुख लाल को जब यह पता चला कि मेरे साथ आने वाला प्रभुलाल सेठ वास्तव में नरोत्तम ही है तो बेचारा बहुत शर्मिन्दा हुआ। उसने नरोत्तम से माफी मांगी और कीला को स्नेहभरा उल-हना दिया :

"वाह कीला भाई, आपने कमाल कर दिया ! मुझे अब तक बराबर अँधेरे में ही रखा ।"

"मैं खुद अँधेरे में था, आपके लिए उजाला कैसे करता ?"

"अब तो मज़ाक छोड़िये, बहुत हो चुका । कही ऐसी भी ठिठोली की जाती है ?"

"वाह साहब, हँसी मर गयी है कि मैं आपसे ठिठोली करता ।" कीला ने कहा ।

"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं !" कहकर मनसुख लाल बोले : "जो हुआ अच्छा ही हुआ ।"

"कुदरत को जो मंजूर था वही हुआ ।" बीच में कपूर सेठ ने अपनी राय जाहिर की ।

"मगर कीला भाई, आपने कमाल कर दिया ।" मनसुखलाल के मुँह से बार-बार यह विस्मयोद्गार निकलते रहे ।

"देखिये साहब, अज्ञानी और अन्धे दोनों एक समान कहे गये हैं । मैं इस प्रभुलाल सेठ को नहीं जानता था और आपको तो बिलकुल ही नहीं जानता था ।" कीला ने कहा : "इसीलिए अन्धा मारे बहरे को जैसी गड़बड़ हो गयी ।"

"नहीं-नहीं, अन्धे-बहरे-जैसा तो कुछ भी नहीं हुआ ।" कपूर सेठ ने कीला के कथन में सुधार किया : "जैसा होना चाहिए ठीक वैसा ही योगायोग हुआ है ।"

"बल्कि मैं तो कहूँगी कि आप लोगों को भगवान ने ही हमारे घर भेज दिया ।" सन्तोकबा ने अपनी श्रद्धा व्यक्त की ।

"भगवान पर ज्यादा भरोसा करना ठीक नहीं होता ।" कीला ने एक शोशा छोड़ा : "भगवान तो कई बार सच्चे आदमी को गलत जगह और गलत आदमी को सच्ची जगह भेज देता है ।"

"कीला भाई अपनी यह ठिठोली अब तो बन्द कीजिये ।" मनसुख लाल ने कहा : "हमारा बहुत मजाक बना चुके; अब तो मेहरबानी

करके बख्शिए ! हार मानते हैं साहब । कहिये तो चीं भी बोल दें ।"

× × ×

मकन जी मुनीम ने बालू की बारात को लौटाने के बाद एक चौकाने वाली बात कही । उसने बताया कि दकुभाई के यहां ओसारे में से रुपये की जिस थैली को चुराने का आरोप ओतमचन्द पर लगाया गया था, वह थैली वास्तव में किसी ने चुरायी नहीं थी; तेल के टांके में से वह थैली वैसी-की-वैसी सीलबन्द मिली; इस बात का पता जब लाडकोर को चला तो वह भाई से हमेशा के लिए नाता तोड़ कर, शादी के अगले ही दिन अपने घर लौट गयी......और फिर मुनीम ने भाई-बहिन के बीच जो गाली-गलौच और कहा-सुनी हुई उसका हू-ब-हू वर्णन अपनी चटपटी शैली मे करते हुए लाडकोर के विदा के समय के दृश्यों को मानों सजीवन कर दिखाया तो सुनने वाले अवाक् रह गये ।

"थैली किसी ने चुरायी नहीं थी ?" थोड़ी देर के बाद कपूर सेठ ने पूछा ।

"जी नहीं, किसी ने नहीं ।"

"तो फिर ओतमचन्द सेठ का नाम उसमें कैसे आ गया ?" अब मनसुख भाई ने पूछा ।

"उन पर बिलकुल गलत आरोप लगाया था । उस दिन ओतमचन्द भाई को तो दकुभाई ने अन्दर बुलाने के बदले ओसारे में ही बिठा दिया था, और इसे अपना अपमान समझकर वह चुपचाप वहां से चले गये, इसीलिए उन पर शक हुआ और चोरी का आरोप लगाया गया ।" मुनीम ने आगे और भी कहा : "शक ही शक में दकुभाई ने उनके पीछे चौकीदारों को दौड़ा दिया, जिन्होने बेचारे ओतमचन्द सेठ को मार-मार कर अधमुआ कर दिया था ।"

यह सुनकर कपूर सेठ और मनसुख लाल दोनों ही गहरे विचार में पड़ गये । जिस मुद्दे के आधार पर ओतमचन्द को चोर मानकर सम्बन्ध-

विच्छेद किया गया था वह मुद्दा ही गलत साबित हो गया तो दोनों आदमियों को बड़ा पछतावा हुआ। दकुभाई तो सन्देह के मारे अविचार पूर्ण कृत्य कर बैठे, जो एक हद तक क्षम्य भी है; लेकिन चोरी के निराधार आरोप पर इन लोगों ने जो अविचार पूर्ण कदम उठाया और उसका जो भयंकर विपरीत परिणाम हुआ, उसकी प्रतीति इन लोगों को अब जाकर हुई। दोनों आदमी हाथ मल-मल कर पछताने लगे कि चम्पा के वैवाहिक जीवन को हमीं ने अपने हाथों तहस-नहस कर डाला !

अन्त में, बिगड़ी बाजी को सुधारने के लिए उन्होंने चम्पा का विवाह नरोत्तम से ही करने का फैसला किया।

४४

महँगा मजदूर

शारदा के घर चम्पा, नरोत्तम और शारदा की तिकड़ी जमी थी और दिल खोल कर मजेदार बातें हो रही थीं। एक बार बाघणिया में वास्तु-पूजन के समय नयी हवेली के दुमजिले पर तीन युवा हृदयों की जैसी तिकड़ी जमी थी यह गोष्ठी भी ठीक वैसी ही थी। फर्क केवल इतना था कि जसी का स्थान इस समय शारदा ने लिया था।

इस त्रिपुटी की चर्चा का विषय भी प्रेमियों के कलह-जैसा ही उग्र परन्तु हृदयग्राही था। चम्पा को नरोत्तम से यह शिकायत थी कि 'तुमने स्टेशन से मेरा सामान क्यों उठाया ?' अपने बचाव में नरोत्तम की दलील थी कि 'मजदूर को किसी भी यात्री का सामान ढोने का अधिकार है।'

"लेकिन तुम असली मजदूर तो थे नहीं !" चम्पा ने कहा।

"क्या मजदूरों में भी असली और नकली होता है ?" नरोत्तम ने दलील पेश की।

"अगर तुम असली मजदूर थे तो बाद में किसी भी दिन स्टेशन पर दिखायी क्यों न दिये ?"

"तुम्हें क्या पता कि मैं बाद में किसी भी दिन स्टेशन पर दिखायी नहीं दिया ?"

"हम, यानी मैं और मामी जी, रोज सवेरे गुप्त रूप से पता लगाते थे।"

चर्चा के आवेश में चम्पा कह तो गयी, लेकिन उसे फौरन खयाल

आया कि 'गुप्त रूप से पता लगाने' की बात को यों उजागर करना उचित नहीं, इसलिए वह शरमा गयी ।

नरोत्तम ने कहा : "हम इतने सस्ते नही कि इस तरह गुप्त रूप से पता लगाने वालों (या वालियों) की आँखों में चढ़ जायें, समझीं ?"

"हां-हाँ, कितने महँगे हो, यह तो हम भी खूब जानते हैं ।" अब चम्पा ने भी निःसकोच कहा : "मजदूरी तो मामा जी से दुअन्नी ही मिली थी, या ज्यादा ?"

"और मामा की जेब से दो सौ रुपये का जो भरा हुआ बटुआ गिर पड़ा था, उस पर थूक कर वापिस कर दिया, उसका कोई हिसाब ही नहीं गिनोगी ?"

नरोत्तम ने बात केवल मज़ाक में कही थी, लेकिन चम्पा के दिल में जाकर चुभ गयी और बुरी तरह खटकने लगी । बटुआ लौटा कर वह मजदूर तो गर्व से माथा उठाये चला गया था, लेकिन अपने पीछे मनसुख मामा को जिस अपमानजनक स्थिति में छोड़ता गया, उसकी मर्मान्तिक लज्जा से चम्पा आज तक मुक्त न हो सकी थी । इसीलिए विनोद में कही हुई उस बात को ताना समझकर चुप हो गयी !

"हम इतने सस्ते नही हैं, समझी ?" नरोत्तम ने फिर कहा ।

सुन कर चम्पा और सकुचा गयी !

मौन असह्य हो जाने और खास तौर से चम्पा के संकोच और क्षोभ को दूर करने के लिए अन्त में शारदा को ही बीच-बचाव करना पड़ा : वह बोली :

"नरोत्तम भाई तो दो सौ रुपये और दो आने जितने महँगे हैं, समझ गयी ?"

"बस ?" चम्पा का संकोच कुछ दूर हुआ और उसने थोड़ी हिम्मत करके जवाब दिया : "कीमत आँक कर भी कुल इतनी ही आँकी—दो सौ रुपए और दो आने, बस ?"

इस जवाबी ताने का क्या जवाब दिया जाये, यह अभी नरोत्तम सोच ही रहा था कि शारदा ने उसकी मदद कर दी । बोली ।

"यह तो तुम्हारा बोझा ढोने वाले मजदूर की कीमत हमने आँकी है; बाकी, नरोत्तम भाई की कीमत तो लाखों में भी नहीं आँकी जा सकती।"

"वाह ! वाह ! क्या कहने।" चम्पा ने प्रसन्न, होकर लेकिन कृत्रिम रोष से कहा ।

"ठहरो ! ठहरो ! क्या भूल गयी ?" इस बार नरोत्तम बोला : "बटुवा लौटाने का इनाम तुमने कीला भाई के हाथ भिजवाया वह मैंने लौटा दिया था, क्या इस बात को भूल गयी ? और उस समय मैंने जो कहा था वह याद है या नहीं ?"

"याद क्यों नहीं है ? बराबर याद है। तुम्हारी एक-एक बात अच्छी तरह याद है।" चम्पा ने हार मानते हुए कहा : "हमें सताने में तुमने कोई कसर बाकी रखी है ......"

"सताने की क्या बात हुई ?" नरोत्तम ने कहा : "इनाम भेजने का आडम्बर करने से पहले मनसुख भाई को कुछ तो सोचना चाहिये था ! क्या उन्होंने मुझे भिखमंगा ही समझ रखा था ?"

"भिखमंगा न सही, मगर मजदूर तो थे !" चम्पा ने चुटकी ली।

फिर शारदा ने नरोत्तम की ओर से जवाब दिया : "मजदूर होने से कौन इनकार करता है ? लेकिन सारे गाँव के नहीं, चम्पा बहिन सिर्फ तुम्हारे ही।"

"हाँ, यह तो मै भी जानती हूँ।" चम्पा ने श्लेष में कहा : "जानती हूँ कि यह मेरे, सिर्फ मेरे ही हैं।"

"केवल मजदूर, और कुछ मत समझ-बैठना।" नरोत्तम ने भूल सुधारी।

"देखे-देखे, बड़े समझाने वाले।" चम्पा ने पहली बार तिरछी चितवनों से उसकी ओर देखते हुए कहा : "अब देखूँगी कि मेरी कैसी-क्या मजदूरी करते हो !"

४५

ग्रह शान्ति

गाँव के बाहर से ही बालू की बारात लौटा देने के बाद कपूर सेठ के सामने यह विकट प्रश्न खड़ा हो गया कि अब क्या करें ?

"तय की हुई शादी टल गयी !"

"शादी का मण्डप बिना शादी के तोड़ना पड़ेगा।"

"यह तो अपशकुन है, घोर अपशकुन !"

कपूर सेठ बुढ़िया पुराण की टीका-टिप्पणियाँ और अनिष्ट आशंकाओं से डर गये।

"ग्रह शान्ति करने के बाद अगर किसी की शादी न की जाये तो घर में अशान्ति हो जाती है।"

दान-दक्षिणा के अतिरिक्त और किसी बात से कोई मतलब न रखने वाले पुरोहित जी तरह-तरह के कपोल कल्पित भय दिखाने लगे।

"यह तो पातक कहा जायगा, महापातक !"

कपूर सेठ ने कहा : तुम्हारे महापातक से भी बड़े एक महापाप से बाल-बाल बच गया, इसके लिए भगवान का उपकार मानना चाहिये ! अपनी जसी की जिन्दगी तबाह होने से बच गयी, इसे हमारा सौभाग्य समझना चाहिये।

लेकिन दान-दक्षिणा से वंचित पुरोहित जी इतनी आसानी से क्यों समझने लगे ? उन्होंने शास्त्रों के ढेरों प्रमाण दे डाले कि अब इस घर पर क्या-क्या विपत्तियाँ पड़ेंगी। लेकिन कपूर सेठ फिर भी नहीं घबराये !

जब पुरोहित जी ने यह धमकी दी कि लग्न में पड़े इस विघ्न के कारण तुम पर नवों ग्रह कुपित हो जायँगे तो कपूर सेठ ने टके-सा जवाब पकड़ा दिया :

"नव ग्रह भले ही कुपित हो जायें, मुझे तो इस बात की खुशी है कि दसवें ग्रह को अपने घर आने से मैंने रोक दिया।"

"दसवाँ ग्रह ?" पुरोहित जी चौक उठे : ज्योतिष शास्त्र में तो सिर्फ नौ ग्रह हैं; दमवाँ ग्रह कैसे हो सकता है ?"

"ज्योतिष शास्त्र में न होगा, हमारे गार्हस्थ्य शास्त्र में तो आपके नवों ग्रहों से विकट और विकराल दसवाँ ग्रह होता है और हम उसे जामाता कह कर पुकारते हैं।"

"शान्तं पापं……शान्त पापं ! यह क्या कहते हो, सेठ जी ?" पुरोहित जी काँप उठे : "जामाता को आप दसवाँ ग्रह कहते हो !"

"मैं क्या कहता हूँ महाराज, शास्त्र कहता है—जामाता दशमो-ग्रहः ! यह ग्रह ऐमा दुष्ट और हठीला होता है कि नवों ग्रहो की शांति कर दी जाये, पर यह कभी शान्त नहीं होता, हमेशा अशान्ति पैदा करता रहता है। ससुर के सिर पर उम्र भर, लोहे के पाये की तरह अनिष्ट बनकर, चढ़ा ही रहता है। इसकी अनिष्ट दशा शनि की साढ़े-साती की तरह नहीं, आदमी की जिन्दगी से भी अधिक यावच्चन्द्र दिवाकरौ चलती है।" इतना कह कर कपूर सेठ ने फिर सन्तोष व्यक्त किया : "इस दसवें ग्रह की वक्र दृष्टि को मैंने गाँव के बाहर से ही फेर दिया, इसका मुझे सन्तोष है। अब आप अपने नव ग्रहों का जो भी करना चाहें कर लीजिये………"

पुरोहित जी समझ गये कि कपूर सेठ के यहां तो अपनी दाल गलेगी नही इसलिए उन्होंने सन्तोकबा की शरण ली। अनेक देवी-देवता और महादेवी राँदल माता कोप करेंगी, कुटुम्ब पर तरह-तरह की आपत्तियाँ आयेंगी आदि कई तरह के डर उन्होंने दिखाये।

"घर मे रांदल माता की स्थापना हुई है, शास्त्र विधि के अनुसार

वर-वधू द्वारा प्रणाम किये जाने के बाद ही उनका विसर्जन-विस्थापन हो सकता है, उसके पहले नहीं। अब आपके यहां वर-वधू द्वारा प्रणाम किये बिना यदि विसर्जन-विस्थापन हुआ तो रांदल माता रूठ जायेंगी, कोप करेंगी, जिसके बड़े भयानक परिणाम होंगे……"

सुनकर सन्तोकबा कांप उठीं—हाय राम, रांदल माता रूठ जायेंगी!

उन्होंने पति के आगे गुहार मचायी : "अजी सुनते हो—रांदल माता कोपायमान होंगी।"

पुरोहित की धमकियों की जिसने जरा भी परवाह न की थी वह कपूर सेठ पत्नी की दुहाई सुन कर चिन्ता में पड़ गये।

"हाय-हाय! यह तुमने कैसा नासमझी का काम कर डाला! द्वारे आये दुल्हे को लौटा दिया! जिसकी हल्दी चढ़ चुकी थी उसे गाँव के गोंहड़े से ही वापस कर दिया! हे भगवान, अब क्या होगा?"

पत्नी का रोना-धोना बढ़ चला और उसी अनुपात में पति की घबराहट भी।

"दुल्हे के करतब ही ऐसे थे कि उसे लौटाना पड़ा—लौटाये बिना कोई चारा नहीं था।"

"लेकिन रांदल माता ने कोप किया तो हमारा सत्यानाश हो जायगा!"

"कल होता हो तो आज हो जाये!" कपूर सेठ तंग आकर कह उठे।

"हाय! हाय! यह तुमने क्या कह डाला? अपने होश में भी हो?" पत्नी ने सिर पीटते हुए कहा : "अब इस मण्डप का माणक खम्भ (मानिक-स्तम्भ) कैसे उखाड़ेंगे?"

"खोद कर उखाड़ेंगे……और कैसे?"

"हाय रे हाय! घर-द्वार को तबाह करने पर तुले हो क्या? मंडप बनाने के बाद उसके नीचे विवाह की विधि किये बिना भी कहीं खम्भे उखाड़े जाते हैं आज तुम्हें हो क्या गया है!"

"मुझे तो कुछ नहीं हुआ। जिसे शादी करने के लिए बुलाया था वह लाडला अपने कुलक्षणों के कारण वापस चला गया।" कपूर सेठ ने गुस्सा होकर कहा : "अब तो एक ही रास्ता बचा है कि हम दोनों अपनी शादी इस मंडवे तले एक बार और कर लें !"

"हे भगवान ! इन्हें न तो किसी बात का विचार है और न लाज-शरम ! जो मुँह में आता है बोले जाते हैं।" कह कर सन्तोकबा फूट-फूट कर रो उठी।

"शान्त हो जाओ माजी, शान्त हो जाओ। आज के शुभ दिन और शुभ अवसर पर आँसू गिराना अमांगलिक होता है।" पुरोहित जी बीच मे कूदे : "शास्त्र में कहा है कि चित्त की शान्ति के द्वारा सभी शुभ-कामनाएं सफल होती हैं; अतएव शान्त हो जाओ।"

"चूल्हे में जाएं तुम्हारे शास्त्र ! मेरे घर विवाह में बिघ्न पड़ गया, उसका तो कोई उपाय करते नहीं और शास्त्र-शास्त्र रटे जा रहे हो।"

"शास्त्र में कहा है माजी, कि मन को ठिकाने रख कर विचार करने से सभी प्रकार के विघ्न दूर हो जाते है। आप घबराओ मत, मन को ठिकाने रखो।"

"तुम ब्राह्मणों को क्या ? जैसे भी हो तुम्हारी तो दक्षिणा पकनी चाहिये।"

"जैसे भी नहीं, केवल वर-कन्या का पाणिग्रहण करवा कर ही ब्राह्मण दक्षिणा ले सकता है, अन्यथा नहीं।"

"ए पुरोहित जी !" अब कपूर सेठ ने गुस्सा होकर डांटा : "दक्षिणा तो तुम्हारी जहन्नुम में गयी, अब तुम भी फौरन दफा हो जाओ !"

"साक्षात् भगवान के श्रीमुख से अवतरित ब्राह्मण का अपमान ? यजमान के द्वारा पुरोहित का अपमान ? शान्तम् पापम्, शान्तम् पापम् !" पुरोहित ने कहा : "अपमान करो, धक्के देकर निकालो, मैं यहाँ से जाने का नहीं। मैं कर्मकाण्डी ब्राह्मण शास्त्र के विरुद्ध आचरण कैसे कर सकता हूँ ?"

"मार झाड़ अपने शास्त्र को ! चलता हो यहां से, हमारा माथा मत खा !"

"कटु वचन का भाषण मत करो सेठ ! शास्त्रों में कहा है कि क्रोध समस्त आपत्तियों-विपत्तियों का मूल हैं ।" पुरोहित जी अद्‌भुत शान्ति से बोले : "इस शुभ और पवित्र हाथ से मैंने रादल माता की स्थापना की है, अब यदि अपने इसी शुभ और पवित्र हाथ से उनका विसर्जन न करूँ तो माता मुझी पर कुपित होगी, देव-दोष मुझी को लगेगा ।"

"तो विसर्जन करके जा, मगर जल्दी से रास्ता नाप ।" कपूर सेठ ने कहा ।

"जहाँ तक वर-वधू प्रणाम न करें, माताजी की पीठिका का विसर्जन नहीं किया जा सकता । शास्त्र वचन के विरुद्ध कोई कार्य......"

"अब वर-वधू लायें कहां से ?" कपूर सेठ ने झुँझला कर कहा : "तुम और तुम्हारी पंडिताइन वर-वधू बन जाओ तो काम बने......"

"उतनी दूर जाने की क्या जरूरत ?"

"दूर न जायें तो कोई पास मे है ?"

"हैं तो सही !"

"कौन है ?"

"वर-वधू ही है, और कौन ?"

"कहाँ हैं ?" कपूर सेठ ने कुतूहल से पूछा ।

"नजरों के सामने ही हैं ।"

"नजरों के सामने हैं—कहाँ ?"

"मुझे तो दिये के उजाले-जैसे साफ दिखायी दे रहे हैं—वर और वधू दोनों ही ।"

"हैं कौन ?"

"चम्पा बहिन और......और......वे जो आये हैं न, क्या नाम है, प्रभुलाल सेठ ।"

"उनका नाम नरोत्तम है, प्रभुलाल सेठ नहीं ।"

"शास्त्रों को नाम से नही, काम से मतलब है जजमान ।" पुरोहित

ने अपने मन का शास्त्र गढ़ा : "कन्या का कौमार्य ग्रह उतारने के लिए उसका विवाह पेड़ के तने से भी किया जा सकता है ······यदि मनुष्य जाति का वर न मिले तो फूल के गुच्छे को भी वर मान कर उससे कन्या को ब्याहने का विधान शास्त्रों मे है········जबकि हमारे पास तो नगों में उत्तम नरोत्तम नामक श्रेष्ठ वर उपलब्ध है, फिर चिन्ता किस बात की ?'

"हाँ········· ··!"

"हाँ············!"

पुरोहित का यह सुझाव कपूर सेठ और सन्तोकबा, दोनों को फौरन पसन्द आ गया।

यजमान को मेरी योजना पसन्द आ गयी, यह समझ में आते ही पुरोहित जी ने चुटकी बजाते हुए कहा : "शास्त्र वचन है कि शुभस्य शीघ्रम्········"

"लेकिन क्या इस कदर जल्दी मचाने से यह काम पार लग सकता है ?"

"कहा है कि देर सो अन्धेर; विलम्ब का विपरीत फल······"

"लेकिन यह तो चट मंगनी पट ब्याह—जैसी बात हो जायेगी।"

"होने दो यजमान ! कहते है कि अच्छे काम में अनेकों बिघ्न आ खड़े होते हैं। शास्त्र वचन है कि··········"

"आप अपने शास्त्रो का प्रमाण देना बन्द करो तो हम कुछ सोचें-विचारें·········"

"जरूर सोचो, पूर्णरूपेण सोचो, यजमान ! शास्त्र वचन है कि विचारशील मनुष्य······"

"अब थोड़ी देर चुप भी रहोगे ?"

"जैसी यजमान की इच्छा !"

और पुरोहित जी इस बार सचमुच चुप हो गये।

उसके बाद कपूर सेठ ने कीला के समक्ष अपनी यह परेशानी रखी

और इसके निवारण के लिए चम्पा के साथ नरोत्तम के विवाह का प्रस्ताव भी रखा।

"शादी-ब्याह के मामले में यह कीला कुछ भी नहीं समझता।" कह कर कीला ने सलाह दी : "आप कपूर सेठ, इस बारे में नरोत्तम के भाई साहब से बात कीजिये।"

"ओतमचन्द सेठ तो ठेठ वाघणिया में है और यहां हमारा पुरोहित·········"

"ओतमचन्द भाई यहां, आपके गाँव में ही है·········"

"यहाँ कहाँ ? किसके यहाँ ?"

"एथल अहीर के घर·········"

पता चलते ही कपूर सेठ दौडे-दौड़े एथल अहीर के घर जा पहुँचे।

४६

घोड़ा गाड़ी के घुँघरू

उसी के लिए तैयार किये गए लग्न-मण्डप मे उसी रात ओतमचन्द बटुक और लाडकोर की उपस्थिति में चम्पा और नरोत्तम की शादी कर दी गयी।

मेंगणी के ठाकुर को जब पता चला कि ओतमचन्द सेठ गाँव में आये हैं और एथल अहीर के यहाँ ठहरे हैं तो ठाकुर स्वयं एथल के घर पहुँच गये। इस तरह चुपचाप आने और रहने के लिए उन्होंने ओतमचन्द को मीठा-सा उलहना भी दिया। फिर तो ठाकुर साहब ने गोरे हाकिम के सरिश्तेदार कीला भाई को भी पहचान लिया। उसके बाद उन्होंने दौड़-दौड़ कर सबकी आव-भगत की, नरोत्तम के विवाह में शुरू से अन्त तक हाजिर रहे और धूमधाम से वह शादी करवायी।

उधर शादी की विधियां की जा रही थीं इधर कीला मनसुखलाल से कह रहा था :

"मनसुख भाई, आपने हम पर बड़ी ज्यादती की।"

"वाह साहब, उलटा चोर कोतवाल को डाँटे ! ज्यादती मैंने की या आपने ?"

"आपने। अब देखिये, हम चले आये थे यों ही आपके साथ घूमते-फिरते; और आपने प्रभुलाल को पकड़कर बेचारे की शादी भी करदी।"

"भले मानस, अब तो उसका असली नाम नरोत्तम कहो, या अब भी प्रभुलाल नाम की रट लगाये रहोगे ?"

"उसका असली नाम तो नरोत्तम भी नहीं है......"

"नरोत्तम नहीं है तो क्या है ?"

"मोटा !" कीला ने कहा : "मैंने उसे शुरू दिन से ही मोटा कहा है, इसलिए अब नरोत्तम-जैसा अटपटा नाम जबान पर चढ़ता नहीं। आपके मन वह भले ही नरोत्तम सेठ अथवा प्रभुलाल सेठ हो, मेरे मन तो मेरा मोटा ही है।"

जब कीला इस तरह सन्तोष व्यक्त कर रहा था, एथल अहीर और हीर बाई आज के अप्रत्याशित शुभ प्रसंग के परिणाम स्वरूप कीला से कहीं अधिक कृतज्ञता का अनुभव कर रहे थे।

अकेली लाडकोर बहुत सी बातें अपने से आज तक छिपाकर रखने के लिए अपने स्वभाव के अनुसार पति को उलहने-पर-उलहने दिये जा रही थी :

"तुम गजब के चुप्पे निकले ! मुझे इन सब बातों की गन्ध तक न लगने दी !"

पत्नी द्वारा बार-बार लगाये जा रहे इन आरोपों का ओतमचन्द के पास कोई जवाब नहीं था, इसलिए उसने चुप रहना ही ठीक समझा। परिणाम स्वरूप पत्नी की शिकायतें और भी उग्र होती गयीं :

"चुप्पे तो चुप्पे, हाय राम, इतना गहरा पेट ! मुँह में जैसे दही जमा हो !"

ओतमचन्द इन प्रहारों से विचलित न हुआ और चुप्पी साधे रहा तो लाडकोर और चिढ़ गयी।

× × ×

दूसरे दिन सब वाघणिया के लिए रवाना हुए। ओतमचन्द की एक घोड़ा गाड़ी में सब समा नहीं सकते थे, क्योंकि तीन नये व्यक्तियों की, नरोत्तम, चम्पा और कीला की वृद्धि हो गयी थी। इसलिए ठाकुर साहब ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी गाड़ी उन्हें दे दी। ओतमचन्द ने अपनी घोड़ी

वही छोड़ दी, जिससे कीला के साथ बैठ कर रास्ते-भर गप्पें लड़ायी जा सकें।

विदा के समय अच्छा-खासा मेला लग गया। ठाकुर साहब से लेकर एथल, हीरबाई और बीजल तक सभी स्नेही-सम्बन्धी उन्हें विदा करने आ जुटे। अपनी सहेली के वियोग में शारदा के आँसू थम ही नहीं रहे थे।

मेंगणी के गोहड़े से एक के बदले दो घोड़ा गाड़ियाँ एक साथ रवाना हुईं और घुंघरुओं की झनकार ने सारे जंगल और रास्ते को गुंजा दिया।

कीला के लिए आज का दिन बहुत ही मंगलमय था। रास्ते-भर वह ओतमचन्द को अपनी और साथ ही नरोत्तम की भी बीती सुनाता रहा। बीच-बीच में मनसुख लाल की बेवकूफी का मज़ाक भी उड़ाता जाता था: "बेचारा मनसुख लाल! उसमे और तो सब-कुछ है, सिर्फ नमक की जरा कमी रह गयी, इसलिए बुद्धूराम पहचान ही न सका कि मैं कौन?......कीला कंघी वाला!"

"अब आपको कंघी वाला कैसे कहा जाये! आप तो हो गये हैं लाट साहब के सरिश्तेदार।"

"नही भाई साहब, कघी वाले की पदवी सरिश्तेदार के पद से सात गुना ऊँची है।" कीला ने समझाते हुए कहा। "सरिश्तेदार का ओहदा गोरे साहब का दिया हुआ है, मगर कंघी वाले की पदवी तो लोगो ने, मेरे भाइयों ने दी है। इस दुनिया में मेरे तीन जिगरी दोस्त है....."

"कौन-कौन?" ओतमचन्द ने पूछा।

"एक दोस्त है दखलशा फकीर, दूसरा मगला पागल और तीसरा मेरा मोटा......"

"यह मोटा कौन है?"

"आपका छोटा भाई, जिसे मनसुखलाल अभी तक प्रभुलाल सेठ समझते रहे....."

सुनकर ओतमचन्द को हँसी आ गयी।

लेकिन तभी कीला ने सहसा गम्भीर होकर कहा : "मैं जल्दी ही इस सरिश्तेदारी को लात मार कर फिर स्टेशन पर खिलौनों की फेरी करने लगूँगा।"

"ऐसा तो नहीं करना चाहिए कीला भाई।

"क्यों न करूँ ? ठेला चलाने में जो सुख चैन है वह अफसरी करने में कहाँ, ओतमचन्द भाई ?"

यों बातें होती रहीं और रास्ता कटता रहा।

जब चलते-चलते नदी किनारे पहुँचे तो ओतमचन्द ने कहा : "एक दिन मैं यहां अधमुआ पड़ा हुआ था और एथल भाई अहीर ने आकर मुझे बचा लिया :"

"हम सब सुन चुके है, ओतमचन्द भाई ! आपको बहुत मुसीबतें झेलनी पड़ी....."

"मगर आप से फिर भी कम।" ओतमचन्द ने कहा : "आपकी जिन्दगी का पूरा हाल मैं भी सुन चुका हूँ।"

"तब तो हम दोनों एक ही जैसे दुखियारे हुए।"

"दु.खी कहिये या सुखी।" ओतमचन्द ने निष्कर्ष निकाला :"मगर मेरी राय में तो हमारे-जैसा सुखी शायद ही कोई हो।"

"मुझे भी यही लगता है।"

अमरगढ़ स्टेशन पर पहुँचते ही, घुँघरुओं की आवाज सुनकर, साधु-सन्यासी से लेकर स्टेशन मास्टर तक सभी लोगों ने घोड़ा गाड़ियों को घेर लिया और 'सेठ ! सेठ !' करके सम्मान प्रदर्शित करने लगे।

गाड़ियाँ वहां से वाघणिया की ओर आगे बढ़ीं तो कीला ने अपनी राय ज़ाहिर की : "आपकी तो यहाँ लोग बड़ी इज्जत करते हैं, भाई साहब !"

"मेरी नहीं, मेरी घोड़ा गाड़ी की। जिस प्रकार हाकिम को नहीं,

उसके डण्डे को लोग सलाम करते हैं, उसी तरह की यह बात है।"
ओतमचन्द ने कहा : "अभी कल की ही तो बात है—मैं नंगे पाँव पैदल चलता हुआ यहाँ से निकलता था और कोई मुझे पूछता तक न था।"

"इस दुरंगी दुनिया का यही दस्तूर है।"

बातें करते-करते कुछ ही दूर गये होंगे कि कीला सहसा चिल्ला उठा :

"रोको-रोको ! थोड़ी देर के लिए गाड़ियाँ रोक दो !"

आगे वाली गाड़ी पर वशराम था। उसने सुना और घोड़ा गाड़ी को खड़ा कर दिया।

"गाड़ियाँ क्यों रुकवायी ?" ओतमचन्द ने पूछा :

"वह देखिये, सामने से महासती जी मीठी बाई स्वामी विहार करती हुई पधार रही हैं।" कीला ने कहा। "वर-वधू को महासती की वन्दना का इतना बढिया मौका और कहाँ मिलेगा ?"

थोड़ी देर में सामने से श्वेत वस्त्रधारिणी मीठीबाई अपनी शिष्याओं के साथ आ पहुँची। सब लोग गाड़ियों में से उतर कर उनकी वन्दना के लिए खड़े हो गये।

कीला ने हाल-चाल पूछा। मीठी बाई ने बताया कि विहार करते हुए अमरगढ़ जा रहे हैं। कीला ने नरोत्तम के विवाह की बात बतायी। सुनकर साध्वी जी ने प्रसन्नता प्रकट की।

कीला ने नरोत्तम से कहा : "तुम वर-वधू महासती जी को प्रणाम करो।"

नव दम्पती उनकी पाद-वन्दना करने के लिए झुक ही रहे थे कि मीठी बाई ने बरज दिया और कहा : "मेरे नहीं कीला भाई के चरण छुओ।"

"अरे, यह आप क्या कह रही है ?" कीला ने साश्चर्य पूछा।

"ठीक ही कह रही हूँ।" महासती जी ने जवाब दिया : "हम तो संसार छोड़ कर और सिर मुड़ा कर साधु बने हैं, आप तो संसार में ही रह कर साधु से श्रेष्ठ हो गये !"

"मुझे लज्जित मत कीजिये महासती जी !"

"आप-जैसे सच्चे साधु को देख कर लज्जित तो हम-जैसों को होना चाहिये ।"

दुनिया की निगाहों में कभी जिनका वाग्दान हुआ था, ऐसे दो साधु चरित्र व्यक्ति सर्वथा भिन्न वेश भूषा और बिलकुल निराली परिस्थितियों में एक-दूसरे के सामने खड़े थे; और सब लोग हृदय मे पूज्य भाव एवं आंखो मे अश्रुओं का अर्घ्य लिये उन्हें देख रहे थे ।

× × ×

फिर गाड़ियाँ आगे बढ़ी और वाघणिया का सीमान्त दो-दो गाड़ियों के घुंघरुओ से गूंज उठा ।

आगे वाली गाड़ी मे नरोत्तम और चम्पा के साथ बैठी हुई लाडकोर अब भी किसी-न-किसी बहाने से अपने पति की शिकायत करती जा रही थी :

'बटुक के बापूजी गजब के चुप्पे निकले । मुझे बिलकुल ही अँधेरे मे रखा । आखिर तक कुछ भी नही बताया । ऐसे घुन्ने को अब क्या कहूँ !"

बटुक हमेशा की तरह एक बार फिर अपने प्रिय पक्षियों के साथ मौन वार्तालाप मे व्यस्त हो गया था । कभी-कभी वह बसी बजाने लगता और कभी किसी उड़ते हुए पक्षी का परिचय पूछ लेना था :

"काका, वह जो उड़ा जा रहा है न, उसे क्या कहते है ?"

इतने में, एक बार, जब नरोत्तम अन्यमनस्क था तो बटुक की सतर्क दृष्टि खेत में एक पक्षी-युगल पर पड़ी । आज तक उसने इस तरह के पक्षी देखे नहीं थे, इसलिए वह पूछने लगा :

"काका, वे जो खड़े हैं न, उन्हें क्या कहते है ?"

लेकिन नरोत्तम का या तो ध्यान कहीं और था या पक्षियों के उस परिचित जोड़े को देख कर वह जाने किन गम्भीर विचारों में खो गया था, इसलिए बटुक को उससे अपने प्रश्न का कोई उत्तर न मिला ।

बटुक लगातार तीनेक बार पूछ गया : "काका, ओ काका ! बताओ न, वे जो दो खडे हैं, उन्हें क्या कहते हैं ?"

चोंच-में-चोंच दिये सारसों की वह जोड़ी खड़ी थी और नरोत्तम उनकी ओर टक लगाये देख रहा था। तभी बटुक की जिज्ञासा को शांत करने के उद्देश्य से चम्पा ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया :

"उनमें के एक पक्षी का नाम सारस है और दूसरे का सारसी। इनका एक खिलौना भी मैं तुम्हारे लिये लायी हूँ हाँ, बटुक भाई !"

स्वयं शारदा के हाथों भेजे हुए सारस-युग्म के प्रतीक का जब चम्पा ने यों अप्रत्याशित उल्लेख किया तो नरोत्तम झेंप गया। और मानों उसे तंग करने के ही उद्देश्य से चम्पा ने इतना और कह दिया :

"घर पहुँचते ही मैं तुम्हे अपनी पेटी में से इन पक्षियों का खिलौना निकाल कर दे दूँगी, हाँ, बटुक भाई !"

नरोत्तम ने कृत्रिम रोष भरी आँखो से चम्पा को तरेरा तो बटुक को सुनाने के बहाने चम्पा ने नरोत्तम को ही सुना दिया :

और फिर खेत के सारस-सारसी का यह जोड़ा हमारे घर में ही खेला करेगा, हा, बटुक भाई !"

इस सब के बीच स्थित प्रज्ञ-जैसा वशराम अपने भजनों में लीन था। वह अपने मधुर, बुलन्द स्वर में सारे जगल को गुँजाता हुआ गा रहा था :

खूँदी तो खमे माता प्रथमी
ने वाढी तो खमे वन राई·····
कठण वचन ओल्यां साधुडा खमे
ने नीर तो सायर माँ समाय···

[रौदा जाना तो धरती माता सहती है, और काटाजाना सहता है जगल·········कठोर वचन साधु जन सहते है और पानी तो सागर म ही समाता हे········]

———